गोस्वामी तुलसीदास

लेखक

स्व० बाबू शिवनन्दन सहाय

सम्पादक

श्रीनलिनविलोचन शर्मा

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

संशोधित पुनर्मुद्रित संस्करण
शकाब्द १८८२; विक्रमाब्द २०१७; खृष्टाब्द १९६१

मूल्य ५.५० न० पै० मात्र

मुद्रक
सर्वोदय प्रेस
आर्यकुमार पथ, पटना–४

वक्तव्य

परिषद् के संचालक-मंडल ने, कई वर्ष पूर्व, एक प्रस्ताव द्वारा यह निर्णय किया था कि बिहार के प्राचीन सुलेखकों की अप्राप्त कृतियों के पुनर्मुद्रण की व्यवस्था परिषद् द्वारा की जाय। उक्त निर्णय के अनुसार पुनर्मुद्रण के योग्य पुस्तकों के चुनाव के लिए परिषद् ने जो समिति बनाई थी, उसने स्व० बाबू शिवनन्दन सहाय की अधुना अप्राप्य पुस्तक 'गोस्वामी तुलसीदास' को चुना।

स्व० बाबू शिवनन्दन सहाय की साहित्य-सेवा और उनके हिन्दी-उत्थान के कार्य विशिष्ट स्थान रखते हैं। जीवनी-लेखकों में उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। सच तो यह है कि जीवनी-लेखन में वे मार्ग-दर्शक थे। गोस्वामी तुलसीदास, मीराबाई, चैतन्य महाप्रभु और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रामाणिक जीवनियाँ स्व० बाबू शिवनन्दन सहाय की अमर देन हैं, जिन्हें हिन्दी-भाषाभाषी श्रद्धा और आदर से सदा स्मरण करेंगे। अपने समय में यह 'गोस्वामी तुलसीदास' बहुविख्यात ग्रंथ था और बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा यह प्रामाणिक माना गया था। यही कारण था कि इस पुस्तक को पटना-विश्वविद्यालय ने बी० ए० की परीक्षा में पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्थान दिया था तथा युक्तप्रदेश (उत्तरप्रदेश), मध्यप्रदेश तथा पंजाब की सरकारों ने अपने-अपने पुस्तकालयों के लिए इसे स्वीकृत किया था।

प्रस्तुत पुस्तक की प्रेस-कॉपी लेखक ने अपने जीवन-काल में ही तैयार कर दी थी, किन्तु हमें खेद है कि वे इसे पुनर्मुद्रित रूप में स्वयं देख न सके। उन्होंने अपनी प्रेस-कॉपी में स्थान-स्थान पर अपने हाथों चिटें साट-साटकर और मुद्रित पृष्ठों की पंक्तियाँ काट-छाँटकर आवश्यक परिवर्द्धन और परिवर्त्तन किया था। हमने उनके द्वारा प्रस्तुत प्रेस-कॉपी की बड़ी सावधानी से नकल कराई और फिर उसका सम्पादन कराया। इस प्रकार, हमें प्रसन्नता है कि १९१६ ई० की

यह प्रथम प्रकाशित कृति लेखक द्वारा संशोधित और परिवर्द्धित तथा विद्वान् सम्पादक के द्वारा सम्पादित होकर, पैंतालीस साल के बाद एक नये रूप में, प्रकाशित हुई है। लेखक के जीवन और उनकी कृतियों पर प्रस्तुत ग्रंथ के सम्पादक श्रीनलिनविलोचन शर्मा ने यथास्थान प्रकाश डाला है। हम सम्पादन-कार्य के लिए श्रीशर्माजी के प्रति आभारी हैं।

विश्वास है, परिषद् के अन्य प्रकाशनों की तरह यह पुस्तक भी हिन्दी-संसार में आदर पाने की अधिकारिणी होगी।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्-कार्यालय, पटना
हरिशयनी एकादशी, २०१८ वि०

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
संचालक

सम्पादकीय

[एक]

'कवि शिवनन्दन हैं पिता, लेखक जगविख्यात'—स्व० व्रजनंदन सहाय की अपने महान् पिता के सम्बन्ध में यह उक्ति श्रद्धा-जनित या पद्योचित अत्युक्ति मात्र नहीं है। भारतेन्दु-सखा शिवनंदन सहाय जीवनी तथा आलोचना के पाश्चात्य लेखकों की तरह कवियों तथा महापुरुषों के जीवन और कृतित्व के हिन्दी के आद्य व्याख्याता तो थे ही, साथ ही साथ नाथूराम शर्मा 'शंकर', जगन्नाथदास 'रत्नाकर' एवं नवनीत चतुर्वेदी जैसे पुराने खेवे के श्रेष्ठ समसामयिक कवियों के भी समकक्ष थे। वे हिन्दी-जग-विख्यात तो थे ही!

बिहार-राज्य के शाहाबाद जिला के अन्तर्गत आरा नगर के पश्चिम, प्रायः दो मील दूर 'कुंडेसर' नदी के तट पर अख्तियारपुर ग्राम है। यह ग्राम श्रीवास्तव कायस्थों का प्राचीन केन्द्र रहा है। इसी ग्राम में शिवनंदन सहाय का जन्म संवत् १९१७ की आश्विन शुक्ल द्वितीया, सोमवार, को एक कायस्थ-परिवार में हुआ था। अख्तियारपुर का इतिहास शिवनंदन सहाय तथा हरनंदन सहाय ने 'History of Akhtiyarpur' नामक अँगरेजी पुस्तिका में १८८५ ई० में लिखा था। इसके आधार पर मेरे एक छात्र श्रीहरिहरनाथ ने मेरे निर्देशन में व्रजनंदन सहाय पर लिखित अपने शोध-प्रबन्ध में अख्तियारपुर का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया है।[1]

शिवनन्दन सहाय ने स्वयं ही अपने पूर्वजों तथा उनके मूल निवास-स्थान आदि का संक्षिप्त विवरण अपने ग्रन्थों में उपस्थित किया है—

कवित्त

(क) सिरी भगवान सिंह भये एक जन तहाँ करत वकीली रहे नगर जवनपुरा।
तासु लघु भ्राता भे गनेश परसाद जौन बड़े विद्यावान गुनवानहु निपुन वर॥
पुत्र गुरुसहाय सो तसिल्दार गाजीपुर जाहि गुनागार सुत चार दिन्हें ईशवर।
सिरी हरिबंश, जगदम, रामानुग्रह श्री अरु सिरी काली चारों भाई बड़े नेहधर॥

---

१. पटना-विश्वविद्यालय की १९६० की एम्० ए० परीक्षा के लिए लिखित शोध-प्रबन्ध।

प्रथम द्वै भाई नहिं पायो कोऊ पुत्ररत्न तीसरे को पांच नाम नीचे जो गनायो है।
रघु, हरि, राम, हर, श्याम इन शब्दन में 'नन्दन' लगाये नाम पूरन सुहायो है।।
करैं श्यामनन्दन वकीली, रामनन्दन जू बांकीपुर जजिमों किरानी काम पायो है।
रघु,हर रहै मुनसिफी के सिरिस्तेदार, हरितो जवानी सुरधाम को सिधायो है।।

उल्लाला

सुवन रामनन्दन सुखद, श्रीभवेशनन्दन अहैं।
सुत हरनन्दन मीतवर, श्रीयुगेशनन्दन कहैं।।

दोहा

द्वै सुत कालिसहाय को, शिवनन्दन इक नाम।
अपर महानन्दन गयो, बालकाल सुरधाम।।

सवैया

मतिन पांहि सुनावत हौं सुवृतान्त कछु अब आपन खास।
सम्वत उन्निस सै दस सात भयो मम जन्म सुआसिन मास।।
वार निसाकर दूज तिथी रितु शारदि पक्ष अँजोर प्रकास।
याम चतुर्थ भयो अति मोद हिये उमह्यो सब केर हुलास।।

आदि पढ्यो पारसी करामत अली के पास, पुनि पूज्यपाद पितु नेह सों पढ़ायो है।
पाछे पढ़ि बांकीपुर कियो इन्टरेन्स पास, शीघ्र प्रभु दोयम किरानी बनवायो है।।
भयो एकवंट पुनि अव्वल किरानी तिमि, अब मुतरजिम को पदवर पायो है।
'शिव' की कृपातें कन्या तीन युग पुत्र पायों ज्येष्ठ सुत सुख जगदीश ने दिखायो है![1]

(ख) आरा तें पच्छिम निकट,
अख्तियारपुर ग्राम।
नदी कुंडेसर पर बसत,
सोभा लसत ललाम।।

× ×

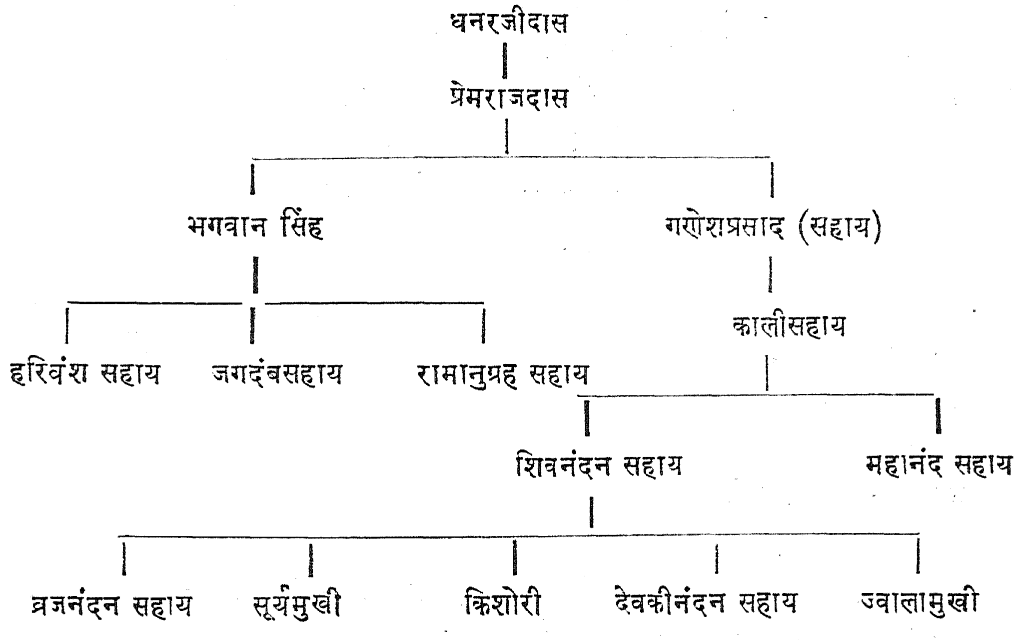
अहै पुरातन गाँव यह, कायथ कर अस्थान।
जँह श्रीवास्तव दूसरे, बसत प्रसिद्ध महान।।

---

१. श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसादजी की जीवनी, षोडश परिच्छेद, ग्रंथकर्त्ता का परिचय, पृष्ठ० १३१—१३२।

'छौसैया' पदवी अहै, दिल्लीपती प्रदत्त।
कोउ कोउ कानुन गोय पुनि, भे कछु काल विगत्त ॥
महामान्य भगवान सिंह, रहै तहाँ गुनवान।
नगर जवनपुर में हुते, करत वकालत काम ॥
गुरुसहाय तिनके तनय, तासू कालिसहाय।
पूज्यपाद सो मम पिता, कहत चित्त हरषाय ॥
दिये सुवन जो दास को, सानुकूल हरि होइ।
करत वकीली कहत तिहि, ब्रजनंदन सब कोइ ॥[१]

श्रीहरिहरनाथ ने व्रजनन्दन सहाय का यह वंश-वृक्ष, अपने पूर्वोक्त प्रबन्ध में प्रस्तुत किया है—

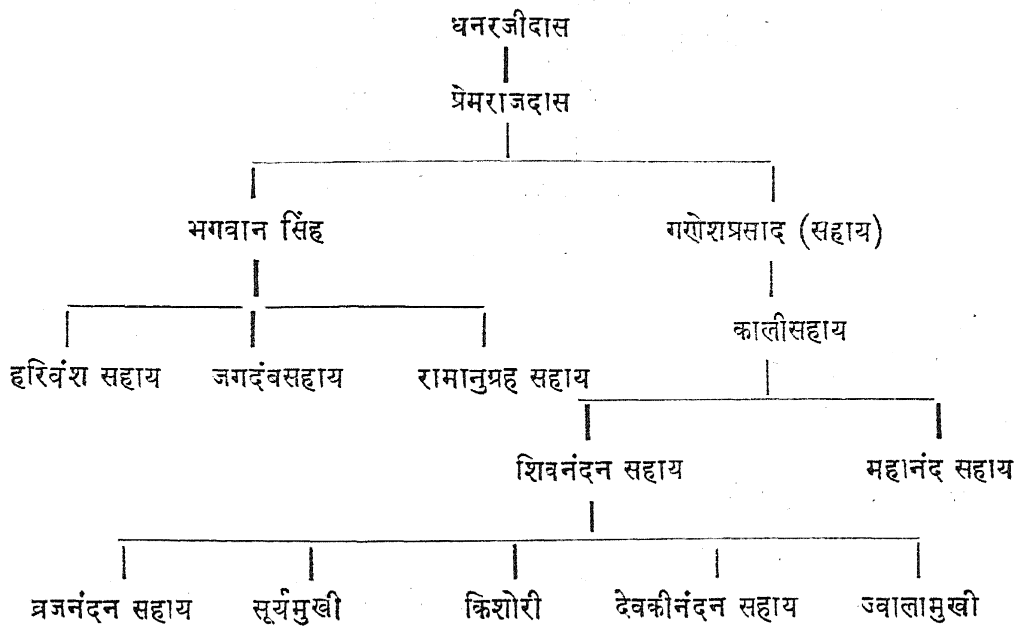


किन्तु, यहाँ यह विचारणीय है कि स्वयं शिवनंदन सहाय ने अपने पूर्वजों के जो विवरण दिये हैं उनसे इस वंश-वृक्ष में भिन्नता है। शिवनंदन सहाय के विवरण के अनुसार उनके पूर्वज भगवान सिंह थे, उनके पुत्र थे गुरुसहाय, जिनके पुत्र हुए शिवनंदन सहाय के पिता कालीसहाय। जाने क्यों श्रीहरिहरनाथ का ध्यान इस भिन्नता की ओर नहीं गया और उन्होंने इसकी और छान-बीन न की। मेरे निर्देशन में शोध-कार्य करनेवाले श्रीगोपालजी

१. श्रीगौरांग महाप्रभु, पृ० ५०६।

'छौसैया' पदवी अहै, दिल्लीपती प्रदत्त।
कोउ कोउ कानुन गोय पुनि, भे कछु काल विगत्त ॥
महामान्य भगवान सिंह, रहै तहाँ गुनवान।
नगर जवनपुर में हुते, करत वकालत काम ॥
गुरुसहाय तिनके तनय, तासू कालिसहाय।
पूज्यपाद सो मम पिता, कहत चित्त हरषाय ॥
दिये सुवन जो दास को, सानुकूल हरि होइ।
करत वकीली कहत तिहि, ब्रजनंदन सब कोइ ॥[१]

श्रीहरिहरनाथ ने व्रजनन्दन सहाय का यह वंश-वृत्त, अपने पूर्वोक्त प्रबन्ध में प्रस्तुत किया है—



किन्तु, यहाँ यह विचारणीय है कि स्वयं शिवनंदन सहाय ने अपने पूर्वजों के जो विवरण दिये हैं उनसे इस वंश-वृत्त में भिन्नता है। शिवनंदन सहाय के विवरण के अनुसार उनके पूर्वज भगवान सिंह थे, उनके पुत्र थे गुरुसहाय, जिनके पुत्र हुए शिवनंदन सहाय के पिता कालीसहाय। जाने क्यों श्रीहरिहरनाथ का ध्यान इस भिन्नता की ओर नहीं गया और उन्होंने इसकी और छान-बीन न की। मेरे निर्देशन में शोध-कार्य करनेवाले श्रीगोपालजी

१. श्रीगौरांग महाप्रभु, पृ० ५०६।

प्रथम द्वै भाई नहिं पायो कोऊ पुत्ररत्न तीसरे को पांच नाम नीचे जो गनायो है।
रघु, हरि, राम, हर, श्याम इन शब्दन में 'नन्दन' लगाये नाम पूरन सुहायो है ।।
करैं श्यामनन्दन वकीली, रामनन्दन जू बांकीपुर जजिमों किरानी काम पायो है।
रघु,हर रहै मुनसिफी के सिरिस्तेदार, हरितो जवानी सुरधाम को सिधायो है ।।

उल्लाला

सुवन रामनन्दन सुखद, श्रीभवेशनन्दन अहैं।
सुत हरनन्दन मीतवर, श्रीयुगेशनन्दन कहैं ।।

दोहा

द्वै सुत कालिसहाय को, शिवनन्दन इक नाम।
अपर महानन्दन गयो, बालकाल सुरधाम ।।

सवैया

मतिन पांहि सुनावत हौं सुबृतान्त कछु अब आपन खास।
सम्बत उन्निस सै दस सात भयो मम जन्म सुआसिन मास ।।
वार निसाकर दूज तिथी रितु शारदि पच्छ अँजोर प्रकास।
याम चतुर्थ भयो अति मोद हिये उमह्यो सब केर हुलास ।।

आदि पढ्यो पारसी करामत अली के पास, पुनि पूज्यपाद पितु नेह सों पढ़ायो है।
पाछे पढ़ि बांकीपुर कियो इन्टरेन्स पास, शीघ्र प्रभु दोयम किरानी बनवायो है ।।
भयो एकवंट पुनि अव्वल किरानी तिमि, अब मुतरजिम को पदवर पायो है।
'शिव' की कृपातें कन्या तीन युग पुत्र पायों ज्येष्ठ सुत सुख जगदीश ने दिखायो है ![1]

(ख) आरा तें पच्छिम निकट,
अख्तियारपुर ग्राम।
नदी कुंडेसर पर बसत,
सोभा लसत ललाम ।।

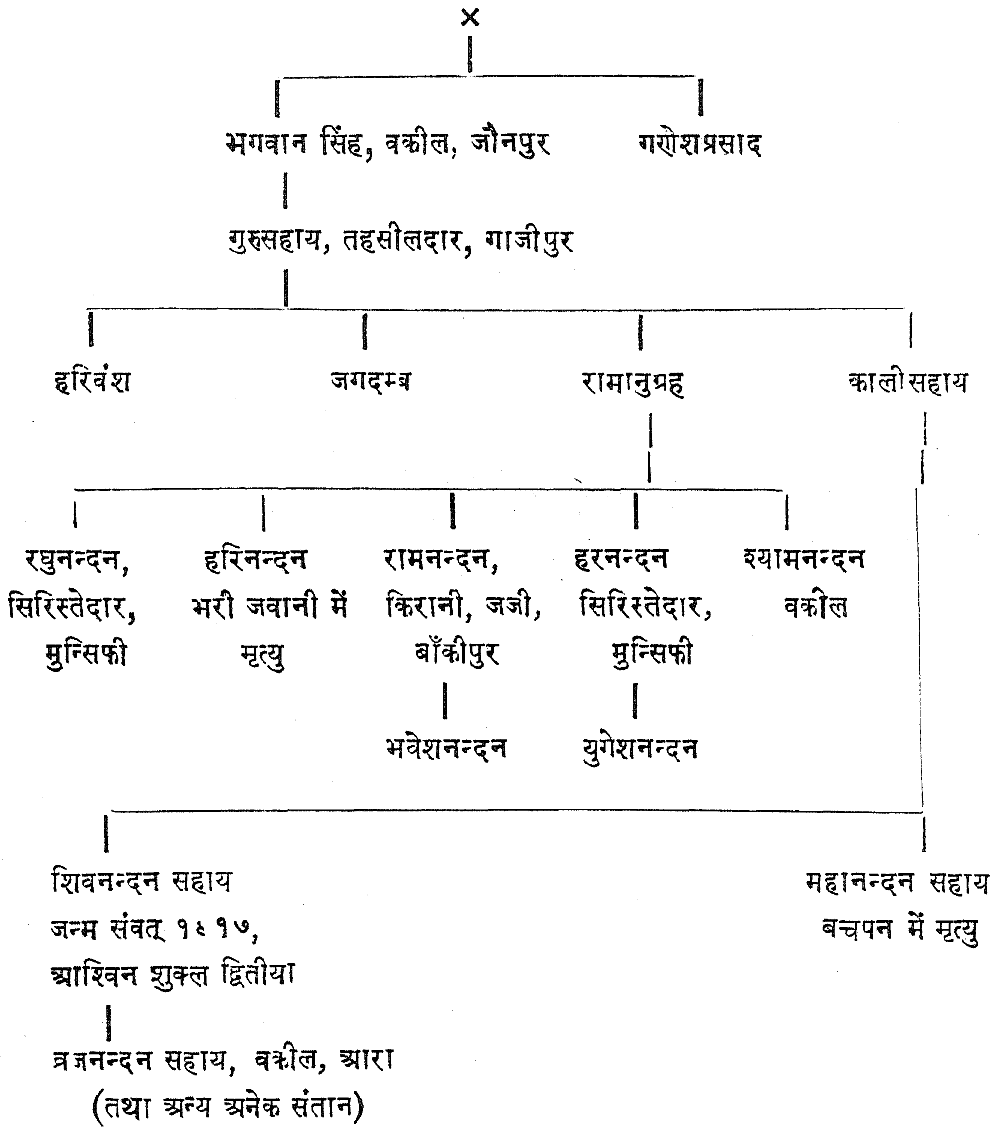
× ×

अहै पुरातन गाँव यह, कायथ कर अस्थान।
जँह श्रीवास्तव दूसरे, बसत प्रसिद्ध महान ।।

---

१. श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसादजी की जीवनी, षोडश परिच्छेद, ग्रंथकर्त्ता का परिचय, पृष्ठ० १३१—१३२।

'स्वर्णकिरण' ने, शिवनंदन सहाय द्वारा प्रस्तुत विवरणों के आधार पर मेरी सुविधा के लिए यह वंश-वृक्ष तैयार किया है, जिसे प्रामाणिक माना जा सकता है—



शिवनंदन सहाय की संक्षिप्त जीवनी श्यामसुन्दर दास ने लिखी है।[1] उनके निधन के बाद 'सुकवि'[2] में श्रीअवधविहारी शरण ने पूर्णतर जीवनी लिखी थी, जिसका एक अंश यहाँ दिया जा रहा है—

१. सचित्र हिन्दी-कोविद-रत्नमाला, द्वि० भा०, पृ० ३०-३२।
२. वर्ष ५, नवम्बर, १९३२ ई०।

"इनके पिता मुंशी कालीसहाय अपनी परिपाटी के अनुकूल पारसी भाषा में निपुण और निष्णात थे। तदनुकूल बालक शिवनन्दन सहाय भी तेरह वर्ष की अवस्था तक अपने पूज्य पिता के अधीन पारसी भाषा का अध्ययन करते रहे। परन्तु उस समय तक अँगरेजी भाषा की प्रधानता सर्व-स्वीकृत हो चुकी थी, अतएव ये भी अँगरेजी पढ़ने के लिए पटना भेजे गये और वहाँ इनका नाम पटना कालिजियट में लिखाया गया। विद्याध्ययन में इनकी अभिरुचि स्वाभाविक थी। यथासमय परीक्षाओं को उत्तीर्ण करते सन् १८८० ई० में इन्होंने इण्ट्रेन्स परीक्षा पास की। परन्तु, परिवार की उस समय आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि कॉलेज में इनके पढ़ने का प्रबन्ध हो सके, अतएव इन्हें कॉलेज की पढ़ाई का विचार छोड़ देना पड़ा।

कॉलेज तो छूटा, परन्तु इनका विद्याध्ययन आजीवन बना रहा। परिवार के विचार से इन्होंने नौकरी कर ली। पटना में जजी कचहरी में सेकण्ड क्लर्क का पद इन्हें मिला। यथासमय ये एकाउण्ट हेड क्लर्क और अन्त में अनुवादक (ट्रांसलेटर) हुए। कुछ काल के लिए ये सरिश्तेदार के पद पर भी प्रतिष्ठित हुए थे। परन्तु ऊँचा सुनने के कारण स्थायी रूप से यह पद प्राप्त न कर सके। नौकरी के काल में सदा ये उच्च पदाधिकारियों की प्रतिष्ठा के भाजन बने रहे। अन्त में, सन् १९१५ ई० में पेंशन लेकर अपने सुयोग्य पुत्र तथा सुलेखक बा० व्रजनन्दन सहाय वकील के साथ आरा में निवास करने लगे।

स्कूल में इनकी अतिरिक्त भाषा पारसी थी। पहले इनके यहाँ हिन्दी का आदर बहुत कम था। उस समय भी साहित्य से इनको प्रेम था। उसका विकास अँगरेजी निबन्धों में होता था। इनके लेख 'इंडियन क्रॉनिकल', 'बिहारी' तथा 'लाइट ऑव दि ईस्ट' में प्रकाशित होते थे। बाद को हिन्दी के अनन्य प्रेमी पं० अम्बिकादत्त व्यास, साहित्याचार्य, प्रोफेसर, पटना कॉलेज तथा बा० रामदीन सिंह, अध्यक्ष तथा अधिष्ठाता, खड्गविलास प्रेस, के समागम से हिन्दी का प्रेम इनके हृदय में अंकुरित हुआ। पहले तो इन्होंने पं० अम्बिकादत्त व्यास-रचित गोसंकट नाटक का अनुवाद अँगरेजी में किया। आगे चलकर हिन्दी के अविरत अध्ययन से इनका रचना-प्रवाह भी इसी स्रोत में प्रवाहित हुआ।"

इनके धर्म-गुरु उदासीन पंथ के साधु, रियासत पटियाला के अंतर्गत भाटिंडा-निवास बाबा ब्रह्मबालाजी थे। इस पंथ के अनुयायी होने के कारण शिवनन्दन सहाय ने गुरुमुखी का भी अध्ययन किया था। वे बँगला भी जानते थे और प्रारंभ में तो ज्यादा अँगरेजी में ही लिखते थे। इनकी प्रारंभिक रचनाएँ 'इंडियन क्रॉनिकल', 'बिहार टाइम्स', 'बिहार हेराल्ड', 'लाइट ऑव एशिया' आदि समसामयिक अँगरेजी पत्रों में प्रकाशित होते थे।

किन्तु अवधविहारी शरणजी ने अपनी उपर्युक्त जीवनी में ठीक ही लिखा है—हिन्दी-साहित्य के अग्रगण्य महाकवि श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी तथा कविश्रेष्ठ बा० भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी के ग्रन्थों ने इनके हृदय पर पूर्ण प्रभाव डाला। इन दोनों आदर्श कवियों के ये आदि से अन्त तक भक्त बने रहे। भारतेन्दुजी की नाटकावली से प्रभावित हो

"इनके पिता मुंशी कालीसहाय अपनी परिपाटी के अनुकूल पारसी भाषा में निपुण और निष्णात थे। तदनुकूल बालक शिवनन्दन सहाय भी तेरह वर्ष की अवस्था तक अपने पूज्य पिता के अधीन पारसी भाषा का अध्ययन करते रहे। परन्तु उस समय तक अँगरेजी भाषा की प्रधानता सर्व-स्वीकृत हो चुकी थी, अतएव ये भी अँगरेजी पढ़ने के लिए पटना भेजे गये और वहाँ इनका नाम पटना कालिजियट में लिखाया गया। विद्याध्ययन में इनकी अभिरुचि स्वाभाविक थी। यथासमय परीक्षाओं को उत्तीर्ण करते सन् १८८० ई० में इन्होंने इण्ट्रेन्स परीक्षा पास की। परन्तु, परिवार की उस समय आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि कॉलेज में इनके पढ़ने का प्रबन्ध हो सके, अतएव इन्हें कॉलेज की पढ़ाई का विचार छोड़ देना पड़ा।

कॉलेज तो छूटा, परन्तु इनका विद्याध्ययन आजीवन बना रहा। परिवार के विचार से इन्होंने नौकरी कर ली। पटना में जजी कचहरी में सेकण्ड क्लर्क का पद इन्हें मिला। यथासमय ये एकाउण्ट हेड क्लर्क और अन्त में अनुवादक (ट्रांसलेटर) हुए। कुछ काल के लिए ये सरिश्तेदार के पद पर भी प्रतिष्ठित हुए थे। परन्तु ऊँचा सुनने के कारण स्थायी रूप से यह पद प्राप्त न कर सके। नौकरी के काल में सदा ये उच्च पदाधिकारियों की प्रतिष्ठा के भाजन बने रहे। अन्त में, सन् १९१५ ई० में पेंशन लेकर अपने सुयोग्य पुत्र तथा सुलेखक बा० व्रजनन्दन सहाय वकील के साथ आरा में निवास करने लगे।

स्कूल में इनकी अतिरिक्त भाषा पारसी थी। पहले इनके यहाँ हिन्दी का आदर बहुत कम था। उस समय भी साहित्य से इनको प्रेम था। उसका विकास अँगरेजी निबन्धों में होता था। इनके लेख 'इंडियन क्रॉनिकल', 'बिहारी' तथा 'लाइट ऑव दि ईस्ट' में प्रकाशित होते थे। बाद को हिन्दी के अनन्य प्रेमी पं० अम्बिकादत्त व्यास, साहित्याचार्य, प्रोफेसर, पटना कॉलेज तथा बा० रामदीन सिंह, अध्यक्ष तथा अधिष्ठाता, खड्गविलास प्रेस, के समागम से हिन्दी का प्रेम इनके हृदय में अंकुरित हुआ। पहले तो इन्होंने पं० अम्बिकादत्त व्यास-रचित गोसंकट नाटक का अनुवाद अँगरेजी में किया। आगे चलकर हिन्दी के अविरत अध्ययन से इनका रचना-प्रवाह भी इसी स्रोत में प्रवाहित हुआ।"

इनके धर्म-गुरु उदासीन पंथ के साधु, रियासत पटियाला के अंतर्गत भाटिंडा-निवास बाबा ब्रह्मबालाजी थे। इस पंथ के अनुयायी होने के कारण शिवनन्दन सहाय ने गुरुमुखी का भी अध्ययन किया था। वे बँगला भी जानते थे और प्रारंभ में तो ज्यादा अँगरेजी में ही लिखते थे। इनकी प्रारंभिक रचनाएँ 'इंडियन क्रॉनिकल', 'बिहार टाइम्स', 'बिहार हेराल्ड', 'लाइट ऑव एशिया' आदि समसामयिक अँगरेजी पत्रों में प्रकाशित होते थे।

किन्तु अवधविहारी शरणजी ने अपनी उपर्युक्त जीवनी में ठीक ही लिखा है— हिन्दी-साहित्य के अग्रगण्य महाकवि श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी तथा कविश्रेष्ठ बा० भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी के ग्रन्थों ने इनके हृदय पर पूर्ण प्रभाव डाला। इन दोनों आदर्श कवियों के ये आदि से अन्त तक भक्त बने रहे। भारतेन्दुजी की नाटकावली से प्रभावित हो

'स्वर्णकिरण' ने, शिवनंदन सहाय द्वारा प्रस्तुत विवरणों के आधार पर मेरी सुविधा के लिए यह वंश-वृत्त तैयार किया है, जिसे प्रामाणिक माना जा सकता है—

- ×
  - भगवान सिंह, वकील, जौनपुर
    - गुरुसहाय, तहसीलदार, गाजीपुर
      - हरिवंश
      - जगदम्ब
      - रामानुग्रह
        - रघुनन्दन, सिरिस्तेदार, मुन्सिफी
        - हरिनन्दन भरी जवानी में मृत्यु
        - रामनन्दन, किरानी, जजी, बाँकीपुर
          - भवेशनन्दन
        - हरनन्दन सिरिस्तेदार, मुन्सिफी
          - युगेशनन्दन
        - श्यामनन्दन वकील
      - कालीसहाय
        - शिवनन्दन सहाय जन्म संवत् १९१७, आश्विन शुक्ल द्वितीया
          - व्रजनन्दन सहाय, वकील, आरा (तथा अन्य अनेक संतान)
        - महानन्दन सहाय बचपन में मृत्यु
  - गणेशप्रसाद

शिवनंदन सहाय की संक्षिप्त जीवनी श्यामसुन्दर दास ने लिखी है।[1] उनके निधन के बाद 'सुकवि'[2] में श्रीअवधविहारी शरण ने पूर्णतर जीवनी लिखी थी, जिसका एक अंश यहाँ दिया जा रहा है—

१. सचित्र हिन्दी-कोविद-रत्नमाला, द्वि० भा०, पृ० ३०-३२।

२. वर्ष ५, नवम्बर, १९३२ ई०।

इन्होंने अपने ग्राम में एक नाटक-मण्डली स्थापित की। इस प्रकार, अपने ग्राम-निवासियों को हिन्दी की शिक्षा तथा नाटकवली का उपदेश हिन्दी में प्रदान किया।

इन कवियों की कविताओं ने पद्य-रचना की ओर इनकी प्रवृत्ति कराई। उस समय पटना में सिखों के दशम गुरु के स्थान 'हर मन्दिर साहेब' में बाबा सुमेरसिंह महन्त थे। ये स्वयं तृतीय गुरु श्रीअमरदास के वंशधरों में थे और काव्यशास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। श्रीशिवनन्दन सहायजी ने इन्हीं को अपना काव्यगुरु बनाया। आपने अपने गुरुजी की वन्दना इस प्रकार की है--

श्री गुरु-गन गुन-गान करत गुन-ग्रन्थ कथत नित।
जप पूजा लौं ध्यान भजन मों सदा निरत चित॥
काव्य-शास्त्र-मर्मज्ञ कुसल कविता रचना महँ।
बृहद लघू बहु ग्रन्थ रचित परकासित जिन्ह कहँ॥
श्री गुरु दसम जनम थल पटना नगर उजागर।
तिहि गद्दी पर हुते महन्त महा पण्डित वर॥
दास दीन पै दया नेह सब दिन दिखरावत।
अतिहिं प्रीति सौं काव्यरीति हूँ कछुक सिखावत॥

काव्य-सुधा का स्वाद मिलने पर इसकी प्रधानता इनके हृदय में बराबर बनी रही। समस्या-पूर्त्ति से इनकी तृप्ति कदापि नहीं होती थी और यह व्यसन अन्त काल तक रहा। पहले काशी में 'कविमण्डल' और 'कविसमाज' नामी दो संस्थाओं में समस्या-पूर्त्तियाँ छपा करती थीं। बाबू शिवनन्दन सहाय अपनी समस्या-पूर्तियों को इन्हीं दोनों में भेजते थे। कुछ दिनों के उपरान्त पटना से ही 'समस्या-पूर्त्ति' प्रकाशित करने का प्रबन्ध किया गया, जिसके संचालक तो ये थे, परन्तु सम्पादक इनके सुयोग्य आत्मज उपन्यास-लेखक कवि बाबू व्रजनन्दन सहाय थे।

बा० शिवनन्दन सहाय १० मई, १९३२ को पक्षाघात से आक्रान्त और १५ मई, १९३२ को ४.३० संध्या में दिवंगत हुए थे। जब इस अन्तिम रोग का आक्रमण उनपर हुआ था, वे 'सुकवि' के लिए समस्या-पूर्त्ति कर रहे थे।

[दो]

सहायजी की कृतियों की तालिका नीचे प्रस्तुत है। इसे यथासंभव प्रामाणिक बनाने में मुझे डॉ० माताप्रसाद गुप्त, श्रीगोपालजी 'स्वर्णकिरण' अनुसंधायक, पटना-विश्वविद्यालय तथा श्रीहरिहरनाथ से जो साहाय्य प्राप्त हुआ है, उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

१. History of Akhtiyarpur (सहलेखक, हरनन्दन सहाय)—बिहार बन्धु प्रेस, पटना—१८८५।

२. विचित्र संग्रह (कुछ अँगरेजी कविताओं का अनुवाद)—खड्गविलास प्रेस, पटना, १६०० (प्रथम संस्करण), १६०५ (द्वि० संस्करण), १६०६ (तृ० संस्करण)।
३. सचित्र हरिश्चन्द्र (जीवनी)—खड्गविलास प्रेस, पटना, १६०५।
४. श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसादजी की सचित्र जीवनी—खड्गविलास प्रेस, पटना, १६०७।
५. सुदामा (नाटक)—खड्गविलास प्रेस पटना, १६०७।
६. स्व० बाबू साहिबप्रसादसिंह की जीवनी—१६०७।
७. कृष्ण सुदामा (पद्य)—खड्गविलास प्रेस, पटना १६०७।
८. उद्धव नाटक (तथा सुदामा नाटक)—सं० व्रजनन्दन सहाय, खड्गविलास, प्रेस, पटना, १६०६।
९. गोस्वामी तुलसीदास (भूमिका में दी हुई तिथि २४-११-१६१६)—१६१७।
१०. गत पचास वर्षों में हिन्दी की दशा—आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा, १६२०।
११. श्रीगौरांग महाप्रभु—खड्गविलास प्रेस, पटना, १६२७।
१२. चयनिका, अर्थात् भारतेन्दु काव्य-संग्रह—खड्गविलास प्रेस, पटना, १६२७।
१४. स्वामी दयानन्दमतमूलोच्छेद—(दो भाग)।
१४. अम्बिकादत्त व्यास-कृत गोसंकट नाटक का अँगरेजी में अनुवाद।
१५. सिक्ख गुरुओं की जीवनी—आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा।[1]
१६. बंगाल का इतिहास।

[तीन]

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के अंतिम वर्षों में जब जीवनी और आलोचना-विषयक पुस्तकें हिन्दी में लिखी जाने लगीं, तब यह भी स्वाभाविक था कि उनके विषय प्रधानतः वे भक्त होते, जो अपने आदर्श चरित्र तथा उत्कृष्ट काव्य दोनों के लिए ही समान रूप से स्मरणीय माने जाते थे और आज भी माने जाते हैं। इनमें भी तुलसीदास ऐसे थे, जिनपर अधिकाधिक लेखकों का लिखना सर्वथा स्वाभाविक था। विश्वेश्वरदत्त शर्मा का तुलसी-चरित प्रकाश १८७७ में और कमलकुमारी देवी लिखित गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित्र १८६५ में प्रकाशित हुए थे। शिवनन्दन सहाय के प्रस्तुत ग्रंथ, गोस्वामी तुलसीदास के १६१७ में प्रकाशित होने के पूर्व तुलसीविषयक उपर्युक्त दो ही स्वतन्त्र पुस्तकें उल्लेख्य हैं,

---

१. इसमें इनकी जीवनियाँ तथा कुछ अन्य विवरण हैं, नानक, गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुन, गुरु हरगोविन्द, गुरु हरिराम, गुरु हरिकृष्ण, गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्दसिंह, बंदावीर, बाबा सरूपचन्द, बाबा कृपादयालसिंह, बाबा साधूसिंह, बाबा सुमेरसिंह, तथा बाबा केसरासिंह की जीवनियाँ, बाबा सुमेरसिंह-कृत ग्रन्थों की समालोचना तथा उपसंहार में, जोधपुर के बिशुनसिंह, गुरु ग्रन्थ साहब, दसवें पादशाह का ग्रन्थ और ग्रन्थकर्त्ता का परिचय। अवधविहारी शरण द्वारा लिखित जीवनी में ऐसा संकेत है कि दसों सिक्ख गुरुओं की जीवनी है, पुस्तक में वस्तुतः अन्य विषय भी हैं, जैसा ऊपर दी गई सूची से स्पष्ट होगा।

यद्यपि इनमें भी तुलसी का जीवन-चरित ही वर्णित है, जब कि तीसरी पुस्तक में विस्तृत जीवनी तो है ही, साथ ही साथ कृतियों का विशद विवरण और साधिकार मूल्यांकन भी है।

शिवनन्दन सहाय ने उन सभी प्राचीन भक्त-चरित-लेखकों तथा समसामयिक विद्वानों एवं टीकाकारों आदि के मत-मतांतरों का यथास्थान उल्लेख कर अपने ग्रंथ को प्रामाणिक बनाने की चेष्टा की है, जिन्होंने सविस्तर या संक्षेपतः पुस्तकों या पत्र-पत्रिकाओं में तुलसीदास के जीवन या साहित्य पर कुछ लिखा था। इनमें निम्नलिखित का उल्लेख किया जा सकता है : भक्तमाल, प्रियादास-कृत भक्तमाल की टीका, श्रीसीताराम भगवान प्रसाद-कृत भक्तमाल की टीका, वेणीमाधवदास-कृत मूल गोसाईंचरित, शिवसिंह सरोज, इंपीरियल गैजेटियर, महादेव प्रसाद-कृत भक्तिविलास, श्रीराधाचरण गोस्वामी-कृत नवभक्तमाल, तुलसीराम अग्रवाल-कृत उर्दू भक्तमाल, राजाप्रतापसिंह-कृत भक्तकल्पद्रुम, भक्तिसिंधु, वृहद् रामायण-माहात्म्य, रघुवरदास-कृत तुलसीचरित्र, महाराज रघुराजसिंह-कृत भक्तमाला राम-रसिकावली, हिंदी नवरत्न, 'हरिबर'-कृत भक्तमाला, हरिभक्तिप्रकाशिका, बलदेवदास-कृत राजापुर-माहात्म्य, आदि; तथा रेवरेंड एडविन ग्रीव्ज, एफ्० एस्० ग्राउज, विलसन, ग्रियर्सन, श्यामसुन्दरदास, रानी कमलकुँअरी (कमलकुमारी), रामगुलाम द्विवेदी, सुधाकर द्विवेदी, रघुराजकिशोर, गौरीशंकर द्विवेदी, गोविन्दवल्लभ शास्त्री, योगेन्द्रमोहन दत्त, ज्वालाप्रसाद, रामेश्वर भट्ट, बैजनाथदास, रघुवंश शर्मा, शिवनन्दन मिश्र, रोशनलाल, काष्ठजिह्वा स्वामी, सुखदेवलाल सक्सेना, रामचरणदास, शिवरामसिंह, गुरसहाय लाल, ज्ञानी संतसिंह, शिवलाल वारुक आदि।

इनके अतिरिक्त, काल-क्रम की दृष्टि से शिवनन्दन सहाय के पूर्व तुलसीदास पर विचार करनेवाले दो ही अन्य विद्वान् हैं, जिनका उल्लेख वे नहीं कर पाये हैं। ये विद्वान् हैं—गार्सां द तासी तथा एल्० पी० टेसीटरी, पहले फ्रांसीसी और दूसरे इतालवी और फलतः सहायजी के सम्बन्ध में दुष्प्राप्य। सहायजी के बाद तुलसीदास पर जो अध्ययन-अनुसन्धान हुए हैं, उनपर यहाँ कुछ कहना अनावश्यक है।

शिवनन्दन सहाय-लिखित यह पुस्तक ही वस्तुतः तुलसीविषयक प्रथम सर्वांगपूर्ण पुस्तक है, और सत्य तो यह है कि इसके पूर्व हिन्दी के किसी प्राचीन कवि पर हिन्दी में इतनी वृहत् एवं ऐसी सुविचारित पुस्तक नहीं लिखी गई थी। यहाँ यह उल्लेख अप्रासंगिक न होगा कि शिवनन्दन सहाय की ही पुस्तक सचित्र हरिश्चन्द्र, जो १६०५ में प्रकाशित हुई थी, हिन्दी के किसी आधुनिक साहित्यकार पर भी लिखित सर्वप्रथम तथा परिपूर्ण पुस्तक है, यद्यपि पुस्तक का वह बहुत बड़ा भाग वस्तुतः प्रकाशित हो ही नहीं पाया, जिसे प्रकाशक उस समय प्रकाशित करने का साहस न कर पाया होगा, और बाद में जिसे सहायजी के घनिष्ठ मित्र 'हरिऔध' जी सहायजी के पुत्र व्रजनन्दन सहाय से माँगकर ले गये, तो उसके लौटाये जाने की नौबत ही न आई, और जिसे अब लुप्त ही समझना चाहिए![1]

इसमें सन्देह नहीं कि शिवनन्दन सहाय तुलसीदास तथा हरिश्चन्द्र-विषयक अपने दो ग्रन्थों के कारण हिन्दी में अविस्मरणीय बने रहेंगे।

---

१. आचार्य शिवपूजन सहाय से श्रुत।

[चार]

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी नामक प्रस्तुत पुस्तक में दो खंड हैं। पहले खंड में बड़े विस्तार से, सत्रह परिच्छेदों में, तुलसीदास के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। इन परिच्छेदों के शीर्षक तुलसी के जीवन के निरूपित विभिन्न पक्षों को स्पष्टतः द्योतित करते हैं। शीर्षक हैं—जन्मकाल और जन्मस्थान, जाति और जनक-जननी, बाल्यावस्था, विवाह, राजापुरवास, श्रीरामदर्शन, श्री हनुमानजी विषयक दो-एक अन्य बातें, काशीवास-वृत्तांत, दिल्ली-गमन, ब्रज-गमन, चित्रकूट तथा अवध-वास, मित्र और सम्मान, बंधु और वंशज, भ्रमण, स्वभाव, तथा स्वर्गप्रयाण। तुलसी की जीवनी के पुनर्निर्माण के इस प्रयास की सर्वातिशायी विशेषता यह है कि लेखक ने प्राचीन कवियों के जीवन-वृत्त के लेखन में जनश्रुतियों का जो महत्त्व है, उसे ठीक-ठीक समझा है और इस रूप में प्राप्य सामग्री का सम्यक् उपयोग किया है। प्राचीन साहित्य के इतिहास में जन-श्रुतियों का केवल इसी कारण महत्त्व नहीं होता कि उनके अतिरिक्त प्रायः अन्य कोई आधार प्राप्य रहता ही नहीं। इस पुस्तक के प्रथम खंड के संबंध में डॉ० माताप्रसाद गुप्त की यह आलोचना कि इस खंड को ध्यानपूर्वक पढ़ने पर कुछ ऐसा लगता है कि जनश्रुतियों को उनकी योग्यता से अधिक महत्त्व दिया गया है, युक्ति-रहित है, और यह क्षमा-दान अनावश्यक कि 'यह सही है कि उस समय तक जनश्रुतियों के अतिरिक्त कवि के जीवनवृत्त-संबंधी सामग्री बहुत कम थी।'[1] प्राचीन कवियों के सम्बन्ध में सर्वत्र प्रायः यही स्थिति पाई जाती है कि उनके सम्बन्ध में, प्रामाणिक जीवनी या आत्मचरित के अभाव में, अंतस्साक्ष्य तथा उनसे समंजस जनश्रुतियों का ही एकमात्र आधार सुलभ रहता है। बहुधा अंतस्साक्ष्य से कवि-वृत्त का वह कंकाल प्राप्त होता है, जिसे जनश्रुतियों की सहायता से ही मांस और रक्त, किं बहुना स्पंदन तक प्राप्त हो जाते हैं। इसी कारण परम्परया प्राप्त प्राचीन जनश्रुतियों का बड़ा ही महत्त्व है, यद्यपि यह भी ठीक है कि उनमें भी प्राचीन-अर्वाचीन की दृष्टि से चुनाव करना पड़ता है, यह देखना पड़ता है कि दृष्टिकोण-विशेष की पुष्टि के लिए तो कोई जनश्रुति आधुनिक काल में गढ़ नहीं ली गई है, और अंततः यह भी कि अंतस्साक्ष्य के प्रतिकूल तो वे नहीं हैं। यदि जनश्रुतियों को सर्वथा महत्त्वशून्य मान लिया जाय, तो प्राचीन कवि-वृत्त के पुनर्निर्माण का प्रयास ही व्यर्थ है।

जहाँतक शिवनन्दन सहाय के द्वारा तुलसी-सम्बन्धी जनश्रुतियों के उपयोग का प्रश्न है, उनके प्रयास का यही महत्त्व नहीं है कि उन्होंने बिखरी तथा लुप्त होने के खतरे में पड़ी हुई अनेकानेक जनश्रुतियों का संकलन-मात्र कर दिया है, बल्कि यह भी कि उन्होंने इन जन-श्रुतियों का अवधानपूर्ण उपयोग किया है और इस प्रकार तुलसी का सजीव व्यक्तित्व पुनर्निर्मित कर सकने में सफलता पाई है। उन्हें इसका श्रेय भी है कि उन्होंने एक ओर जनश्रुति-विशेष को अंतस्साक्ष्य से सत्यापित किया है और, दूसरी ओर, अंतस्साक्ष्य से उपलब्ध तथ्य-विशेष में जनश्रुति की सहायता से प्राण-संचार कर दिया है। यही कारण है कि इस पुस्तक का जीवनी-खंड 'भक्तमाल' प्रकार का न होकर वास्तविक जीवनी की कोटि में परिगणनीय है।

---

१. तुलसीदास, प्र० सं०, भूमिका, पृष्ठ० ११-१२।

[पाँच]

इस पुस्तक के द्वितीय खंड में तुलसीदास की कृतियों के साहित्यिक महत्त्व पर साधारणतः पृथक् कृतियों को ध्यान में रखते हुए तथा समवेत रूप से भी विचार किया गया है। जैसा इस खंड के तीस परिच्छेदों के उद्धृत शीर्षकों से स्पष्ट है। शीर्षक ये हैं—कविताशक्ति तथा भाषा, गोस्वामी तुलसीदास कृत ग्रंथावली, रामायण की सृष्टि, रामायण का रचना-काल, रामायण का मूलाधार, रामायण का वास्तविक नाम, रामायण का विषय, रामायण में त्रुटियों का आभास, रामायण में नवों रस, रामायण में रूपकादि की बहार, रामायण में राजनीति-विचार, रामायण के पात्र-वर्ग, रामायण का आधार और प्रचार, क्षेपक और काटछाँट, रामचरितमानस के संस्करण तथा टीकाएँ, कबित्त रामायण तथा कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका, दोहावली, रामाज्ञा प्रश्न, जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, कृष्णगीतावली, वैराग्य-संदीपिनी, रामललानहछू, सतसई या रामसतसई, गोसाईं जी की संस्कृतज्ञता, गोसाईं जी का मत और वाल्मीकीय तथा अध्यात्म रामायण।

इस खंड के संबंध में डॉ० माताप्रसाद गुप्त का यह कथन उचित है कि 'समालोचना बहुत कुछ बहिरंग है, अंतरंग नहीं', तथा 'कहीं-कहीं लेखक ने तुलसीदास की तुलना शेक्सपियर से करके अपने कवि को दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने का यत्न किया है।'[१] फिर भी, तुलसी के आलोचक शिवनन्दन सहाय की इन दो त्रुटियों के संबंध में यह भी अविचारणीय नहीं है कि उस युग में यदि एक हद तक भी अंतरंग आलोचना हुई, केवल बहिरंग ही नहीं, तो यह भी अपवाद ही है। इसके साथ ही साथ यह भी उल्लेखनीय है कि बहिरंग हो या अंतरंग, और पूर्ण श्रद्धा-भावना के बावजूद, आलोचक प्रशंसनीय मात्रा में बहिर्निष्ठ दृष्टिकोण बनाये रख सका है, यह दूसरी बात है कि आलोच्य को अपनी महत्ता के कारण आलोचक की वकालत की विशेष अपेक्षा थी भी नहीं।

दूसरी त्रुटि—शेक्सपियर से अनावश्यक तुलना आदि—के संबंध में भी हमें यह स्मरण रखना होगा कि पद्मसिंह शर्मा या कृष्णबिहारी मिश्र जैसे परवर्ती आलोचकों की तथाकथित तुलनात्मक आलोचना के असंयम और आह-वाह की तुलना में, या और भी बाद के उन विद्वानों की अपेक्षा जो तुलसी तथा विश्व-साहित्य पर विचार करते पाये जाते हैं, शिवनन्दन सहाय के अतिरेक भी नियंत्रित और सीमित ही हैं।

पूर्ण रूप में लेने पर पुस्तक की विशेषताओं के संबंध में डॉ० गुप्त के इन शब्दों की आवृत्ति पर्याप्त है : "ग्रंथ दो दृष्टियों से उपादेय है : एक तो इसके पहले कवि के संबंध में जो कुछ लिखा गया था, इस ग्रंथ में उस पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है, और दूसरे 'मानस' में अपने पूर्ववर्ती संस्कृत ग्रंथों की जो प्रतिच्छाया मिलती है, उसकी ओर स्पष्ट रूप से पहले-पहल इसी ग्रंथ में तुलसीदास के पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है।[२]

---

१. तुलसीदास, प्र० सं०, भूमिका, पृ० १२।

२. उपरिवत्।

[छह]

शिवनन्दन सहाय की इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक के पुनर्मुद्रण के संपादन का भार देकर परिषद् के अधिकारियों ने मुझे गौरवान्वित किया है। पुस्तक और पहले ही सुलभ हो सकती थी, किन्तु मेरे कारण अत्यधिक विलंब हो गया है, जिसके लिए मैं खेद प्रकट करने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता हूँ !

पुनर्मुद्रण में यथासंभव पुस्तक के मूल रूप को सुरक्षित रखा गया है। मूल पुस्तक से यत्र-तत्र जो थोड़ी-बहुत भिन्नताएँ हैं, वे इस कारण कि मूल पुस्तक की जो प्रति आचार्य शिवपूजन सहायजी को स्व० व्रजनन्दन सहायजी से मिली थी, उसमें शिवनन्दन सहायजी ने स्वयं कहीं-कहीं कुछ आवश्यक संशोधन और परिवर्धन कर दिये थे, और इनका ध्यान रखना तथा इन्हें यथास्थान सम्मिलित कर लेना आवश्यक समझा गया।

मै परिषद् के वर्त्तमान संचालक डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' का आभारी हूँ कि उन्होंने इस भूमिका की प्रतीक्षा की कोई अवधि निर्धारित नहीं की। परिषद् के प्रकाशनाधिकारी श्रीअनूपलाल मंडल का जब धैर्य समाप्त ही हो गया, तब यह भूमिका तैयार हुई, सो उनके प्रति भी मेरी अनल्प कृतज्ञता है। सहधर्मिणी श्रीमती कुमुद शर्मा ने वे सारी पुस्तकें बार-बार जुटाई न होतीं, जिनमें से दो-चार का ही उपयोग मैंने किया, तो सब होने पर भी मैं ये कुछ पृष्ठ लिख न पाता। प्यारी बेटी मीनू से भी पाठ मिलाने में मैंने काम लिया है, जिसका मूल्य उसे मालूम नहीं।

—नलिनविलोचन शर्मा

समर्पण

श्रीमान् बनैलीनरेश

आनरेबुल राजा कीर्त्यानन्द सिंह जी

के

कमनीय करकमलों में

श्रीमान् की कृपामय आज्ञा से

यह तुच्छ ग्रंथ

अत्यन्त श्रद्धा और नम्रतापूर्वक

सादर समर्पित।

ग्रन्थकर्त्ता

प्रथम संस्करण की भूमिका

प्रिय पाठकवर्ग,

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी के विषय में जो कुछ पुस्तकों तथा लेखों में लिखा गया है प्रायः सबों को देखकर आज कई वर्ष हुए यह जीवनी तैयार की गयी थी। सामग्रियों के प्रस्तुत करने में अर्ना (जिला सारन) निवासी बाबू गोविन्द नारायण बी० ए० ने बहुत परिश्रम किया था। इस पुस्तक के प्रकाशक होने की भी उनकी इच्छा थी, किन्तु यह अभिलाषा पूरी होने के पूर्व ही वे इस संसार से चल बसे। उनके स्वर्गवास के अनन्तर उनके परम स्नेही बाबू व्रजेन्द्रप्रसाद, एम० ए० बी० एल०, मुन्सिफ, बाबू अयोध्याप्रसाद, एम० ए०, डिपुटी कलक्टर तथा बिहार के विख्यात अँग्रेजी कवि बाबू रघुवीर नारायण प्रभृति इस के शीघ्र प्रकाशित होने के प्रयत्न में प्रवृत्त हुए और सफलतापूर्वक यथासाध्य उनलोगों ने इस कार्य में हमलोगों की सहायता की।

हिन्दीरसिक श्रीमान् आनरेबुल राजा कीर्त्यानन्द सिंहजी बनैलीनरेश ने कृपा-पूर्वक इस के प्रकाशन में यथेष्ट आर्थिक साहाय्य प्रदान कर हमलोगों को बाधित किया है। यह कहना बाहुल्य है कि यदि श्रीमान् की दया नहीं होती, तो आज इस पुस्तक को हमलोग पाठकों को भेंट नहीं कर सकते। हमलोग श्रीमान् को हार्दिक धन्यवाद देते हुए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि मातृभाषा में नित्य प्रति उनका स्नेहवर्द्धन होता रहे और आप इस की उन्नति में सदैव बद्धपरिकर रहें।

ईस्वी सन् १९१५ के सेप्टेम्बर के अन्त में प्रेस में यह पुस्तक छपने के लिए दी गयी। उस समय तक बहुत सी अन्य बातों की जानकारी हो जाने से पूर्व लिखित कापी में यथावश्यक काटछांट और परिवर्द्धन कर दिया गया। प्रेस ने वादा किया था कि दो मास में पुस्तक छापकर तैयार कर दी जायगी, किन्तु वह प्रतिज्ञा कार्य में परिणत नहीं हो सकी। लगभग एक बरस में पूरी हुई।

इधर ग्रंथकार को आँख का पट्टर खुलवाना पड़ा और तत्पश्चात् वे ज्वर से पीड़ित हो गये। परिणाम यह हुआ कि वे प्रूफ स्वयम् नहीं देख सके और उन के हाथ से प्रूफ का संशोधन निकल गया।

पुस्तक में शुद्धाशुद्ध पत्र देने में हमलोग व्यर्थ का क्लेश तथा व्यय समझते हैं। आजकल किसी को नहीं देखा गया कि उसके अनुसार पुस्तक को शुद्ध कर पाठ करे।

अब तो जैसा है आप लोगों के आगे है। आशा है कि पाठक वर्ग इसकी त्रुटियों की ओर ध्यान नहीं देकर इस के विषय के नाते इसे अपनावेंगे।

बाबू बाजार—आरा
२४ नवम्बर, १९१९ ई०।

विनीत
रघुनाथप्रसाद सिंह

विषयानुक्रमणी

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

गोस्वामी तुलसीदास

श्री सीतारामजी।

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी

छप्पै

श्री सियराम अनन्य उपासक परम भक्तबर।
ध्यायो आठो जाम युगल पद पदुम नेहधर॥
श्री रामायण, विनय आदि रचि हरि-गुन गायो।
भवसागर के तरन हेतु दृढ़ पोत बनायो॥

श्री तुलसी के परताप तें, कलि हूँ ग्राम गराम नित।
सियराम नाम कल्यान हित, कहत सकल उमहात चित॥

प्रथम परिच्छेद

जन्मकाल और जन्मस्थान

जगदादरणीय परम पूजनीय प्रातःस्मरणीय कवितानभोमण्डल के उत्कृष्ट नक्षत्र वैष्णव-शिरोमणि महात्मा गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म लगभग संवत् १५८९[1] में हुआ। जैसे 'ईलियड' नामक सुविख्यात वीरात्मक काव्य के रचयिता युनान-देशीय प्रसिद्ध कवि 'होमर' की जन्मभूमि कहलाने के लिये उस की मृत्यु के अनन्तर सात गाँव[2] आपस में झगड़ने लगे थे वैसे ही हस्तिनापुर, चित्रकूट-निकटस्थ हाजीपुर, राजापुर तथा तारी ये कई एक गाँव हमारे चरित्रनायक के जन्मस्थान कहलाने का दावा करते हैं। ग्रियर्सन साहब ने तारी का दावा जबरदस्त समझा है। परन्तु उन्हों ने इस का कोई कारण नहीं बताया है। हाँ! श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद जी[3] ने

---

१. 'शिवसिंह सरोज' में सं० १५८३ के लगभग लिखा है। श्री रानी कमल कुँअरी ने भी यही संवत् माना है। रेवरेन्ड एड्विनग्रीवस् ने जन्मकाल सं० १६००—१० के मध्य में लिखा है और 'मानसमयंक' के प्रेमी लोग इस दोहे के आधार पर "मन ऊपर सर जानिये, सर पर दीन्हें एक। तुलसी प्रगटे रामवत, राम जनम की टेक॥" सं०१५५४ मानते हैं (मयंक का १३५वाँ दोहा देखिये)। परन्तु अधिकांश लोगों ने सं० १५८९ माना है।

२. इस के सम्बन्ध में यह पद बहुत प्रसिद्ध है—

"Seven rival towns contend for Homer dead.
Through which the living Homer begged his bread."

"पादड़ी जे० एस० वाट्सन एम० ए० द्वारा सम्पादित पोपकृत 'ईलियड' के अनुवाद में उन स्थानों के नाम स्मर्ना, रोड्स, कोलोफन, सलामिस, कियास, अर्गस तथा एथेन्स दिये हुये हैं। और पादड़ी थियोडोर एलाइस बकली एम० ए० द्वारा सम्पादित ग्रन्थ में लिखा है कि होमर की अनाथा माता अर्गस में रहती थी, बोएशिया में नदी किनारे होमर का जन्म हुआ और समर्ना (स्मर्ना) में एक शिक्षक का गृहिकाज इस की माता सम्हालने लगी। उस शिक्षक ने पीछे उस से अपना विवाह कर होमर को अपना 'पोसपुत' बना लिया।" इत्यादि।

३. इस प्रबन्ध के लेखक ने इन की भी जीवनी लिखी है जिसे छपरा जिला अर्नानिवासी स्वर्गीय बाबू गोविन्ददेव नारायण बी० ए० ने प्रकाशित किया है।

स्वरचित 'भक्तमाल' की टीका[1] में लिखा है कि राजापुर में जाकर यह बात भलीभाँति निश्चय की गयी है कि गोसाईं जी का जन्म तारी में हुआ था और विरक्त होने के पीछे राजापुर में निवास कर उन्हों ने वहाँ भजन किया है। इसी से वहाँ गोस्वामी जी की स्थापित की हुई संकटमोचन श्रीहनुमान जी की मूर्ति है और श्री रामायण अयोध्याकांड भी है। और इस विषय में पत्र द्वारा पूछने पर उन्हों ने कृपापूर्वक हमें लिख भेजा है कि "तारी में जन्म बूढ़े २ भक्तमाली बताते हैं; कई एक प्रसिद्ध रामायणी लोगों ने अपने २ रामायणी गुरुओं से सुना है; संस्कृत में जो भक्तमाल का उल्था है उस में भी तारी ही लिखा है; राजापुर के बूढ़ों से भी सुना गया है कि तारी ही में गोस्वामी जी का जन्म हुआ था, राजापुर में नहीं। अयोध्यानिवासी श्री रामरसरंगमणि जी ने भी कवित्त रामायण की टीका में तारी ही को जन्म-स्थान माना है।"

जो लोग यमुनातटवर्त्ती राजापुर को यह गौरव प्रदान करते हैं उनका यह कथन है कि शिवसिंह ने गोस्वामी जी के सहवासी पस्कानिवासी श्रीवेणीमाधव दास कृत 'गोसाईंचरित्र' के आधार पर राजापुर को जन्मस्थान माना है; प्रसिद्ध रामायणी पण्डित रामगुलाम द्विवेदी जी[2] ने भी उसी को जन्मस्थान बताया है; रामायण की भाषा भी राजापुर प्रान्त ही की है। गोसाईं जी की हस्तलिखित रामायण अयोध्याकाण्ड अद्यावधि वहां वर्त्तमान है और लोग आज भी वहां गोसाईं जी का स्थानादि एवं आप की संस्थापित श्री महावीर जी की मूर्त्ति दिखलाते हैं। परन्तु जब ठाकुर शिव सिंह जी का लिखा जन्म संवत् मानने में राजापुर के पक्षपाती असम्मत दीखते हैं तो उनका लिखा हुआ जन्मस्थान क्योंकर ठीक समझा जायगा। उन्हों ने गोस्वामी जी के साथी वेणीमाधव दास जी का ग्रंथ देखकर जैसे जन्मस्थान लिखा है वैसे ही जन्म संवत् भी। फिर एक को प्रामाणिक और दूसरे को अप्रामाणिक मानना क्या न्यायसंगत होगा?

---

१. श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद कृत भक्तमाल की टीका, प्रथम संस्करण, पृ० १०९६ देखिए।

२. ये मिरजापुर के रहनेवाले प्रसिद्ध रामायणी थे। रामचरित मानस के विद्यार्थी प्रणाली में ये गोस्वामी जी से छठीं पीढ़ी में थे। परन्तु बनारस के स्वर्गीय सुप्रसिद्ध ज्योतिषी महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी जी कहते हैं कि "तुलसीदास जी के कोई चेले नहीं थे, यदि होते तो वे लोग कबीरपंथी, दरियादासी इत्यादि के समान अपने को 'तुलसीदासी' के नाम से प्रसिद्ध करते।" उस रीति के सम्प्रदायी चेले न हों (और इन का प्रचारित कोई सम्प्रदाय सुना भी नहीं जाता) परन्तु इससे किसी को इन से रामायण पढ़ने वा शिष्य ही होने की बात अप्रमाणित नहीं हो सकती। क्योंकि किसी के पास कुछ पढ़ने से कोई उस व्यक्ति का सम्प्रदायी शिष्य नहीं हो सकता। यदि ऐसी बात होती तो मिशन स्कूल के पढ़नेवाले अपने को 'मिशनशाही' और मकतब के पढ़नेवाले अपने को 'मौलवीशाही' प्रसिद्ध करते। और शिष्य तो सभी ब्राह्मण बिना अपना कोई सम्प्रदाय चलाये बना सकते हैं। पण्डित रामगुलाम जी का वृत्तान्त अन्यत्र लिखा गया है।

और जैसे पं० रामगुलाम जी ने इस विषय में अन्वेषण कर राजापुर को जन्मस्थान माना है वैसे ही औरों के अन्वेषण से तारी जन्मभूमि सिद्ध हुई है और बहुत से लोग तारी को प्रधानता देते हैं"[1] एवम् राजापुर के कई बूढ़े भी गोसाईं जी का वहां जन्मस्थान नहीं मानते हैं।

रामायण की भाषा राजापुर के प्रान्त की भाषा होने से भी लोगों को कुछ सहायता नहीं मिल सकती। कोई किसी विशेष भाषा में ग्रन्थ लिखने के कारण जहां की वह भाषा है वहां का निवासी नहीं कहा जा सकता। ऐसा मानने से कितने भारतवासी विलायती कहलाने लग जायंगे। और कितने विलायतियों की भी गिनती हिन्दुस्तानियों में होने लगेगी; भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों के निवासियों की बात तो दूर रहे।

फिर राजापुर से तारी ५-६ ही कोस पर यमुना के एक ही तीर पर है[2] एवम् दोनों स्थानों की भाषा भी एक ही है। और अधिक अन्तर भी हो तो क्या विरक्त होने के बाद वहाँ निवास करने के समय वहाँ के लोगों के संसर्ग से गोस्वामी जी को उस प्रान्त की भाषा जान लेने में कोई कठिनाई हुई होगी ? और रामायण में सर्वत्र एक ही भाषा देखी भी तो नहीं जाती। इसी से सुकवि भिखारी दासजी ने कहा है "तुलसि गंग दोऊ भये, सुकबिन के सरदार। जिनकी कबिता में मिली भाषा बिबिध प्रकार।" और कृष्ण गीतावली की भाषा व्रजभाषा होने से क्या गोसाईं जी का जन्मस्थान व्रजदेश में माना जायगा ?

विचार कर देखने से रामायण अयोध्याकाण्ड की प्रति और श्री हनुमान जी की मूर्त्ति आदि राजापुर में होने से गोसाईं जी का वहां जन्मस्थान सिद्ध नहीं होता वरन् विरक्त होने के पश्चात ही इनका वहाँ निवास करना अधिकतर प्रतिपादित होता है। क्योंकि लड़कपन में तो गोसाईं जी ये सब करने के योग्य थे ही नहीं, और विवाह के अनन्तर तो इन्हें पत्नीप्रेम ही में आसक्त पाते हैं। तब इन सब बातों के होने की विशेष सम्भावना इनके विरक्त होने पर ही है और जो घर छोड़कर विरक्त हो जाता है वह प्रायः गाँव ही में जाकर डेरा नहीं जमाता और वहीं देवमन्दिर आदि संस्थापित नहीं करता।

फिर रामायण की रचना इन्हों ने ४१ वर्ष की अवस्था में की है। तो क्या ये गाँव ही के नाते रामायण लिख कर एक प्रति वहाँ दे आये और मन्दिर आदि बना आये जिसमें लोग जानें कि वही इनकी जन्म भूमि थी। यदि इन को यह बात प्रसिद्ध करने की

---

१. काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रामायण पृष्ठ ८ देखिये।

२. यह पुस्तक छपने पर और इसे पढ़कर एक सज्जन ने एलाहाबाद से प्रकाशित ११ अगस्त १९१७ ई० के अंगरेज़ी पत्र 'लीडर' में लिखा था कि 'बांदा जिला की मऊ तहसील से प्रायः ३ मील पर और राजापुर से १५ मील पूर्व यमुना के दाहिने तट पर तारी एक क्षुद्र ग्राम अवस्थित है। डाक्टर ग्रियर्सन के लेखानुसार यह 'दोआब' में नहीं है, यद्यपि यह असम्भव नहीं कि ३०० वर्षों के मध्य में नदी का स्राव बदल गया हो।"

इच्छा होती तो ये इस विषय में कोई कविता ही कर देते जिस से यह बात और भी दृढ़ हो जाती।[1]

अतएव जिन कारणों से लोग राजापुर को इनका जन्मस्थान होना बताते हैं उनसे यह बात प्रमाणित नहीं होती। परन्तु राजापुर गोस्वामी जी को अपनाने की चेष्टा में बहुत तत्पर है। बहुत लोगों को निज पक्ष का प्रतिपादक बनाता जाता है और उस ने अपने निकटवर्त्ती खटवार ग्रामनिवासी बलदेव कवि से अपने माहात्म्य की कविता में अपने यहाँ यमुना के तट पर गोस्वामी जी का 'आगार' होना कहलवाया है।

उक्त पुस्तक में राजापुर मंडल एवम् राजापुर ग्राम की सीमा इस प्रकार वर्णित हुई है।

अथ राजापुर मण्डल की सीमाएं

"दक्खिन में बालमीक सैल एक योजन[2] पै नैॠत[3] में चित्रकूट योजन अढ़ाई है। सात कोस पच्छु अमरे ही नाथ दुइ कोस यमुना में आय पयश्रवनि समाई है। उत्तर में चंडिका भवानी सात कोस ही पै पूरब मऊ में सियाराम दोऊ भाई हैं। एते बीच बांदा प्रान्त मांहि बलदेव कहैं राजापुर मंडल की अधिक बड़ाई है।"

अथ राजापुर की सीमाएं

"पूरब में प्रभुघाट तुलसी गोसाईं थान जासु कृत रामायण जाहिर तमाम है। दक्खिन शिवाला पाठशाला डाकखाना थाना जा सों एक मील खटवार मम ग्राम है। पश्चिम में सँकट मोचन महावीर मठ सोहै सियारामानुज झाँकी अभिराम है। उत्तर यमुना जी की धारा जल सियाम रंग देख बलदेव दास करत प्रणाम है।"

राजापुर में श्री हनुमान स्थान, सिद्धिदायिनी भवानी, श्री राम और श्री भैरवादि के कई एक मन्दिरें हैं और प्रति वर्ष कार्त्तिक और वैसाख की पूर्णिमा को वहाँ मेला भी हुआ करता है।

---

१. १२ सितम्बर १९१७ ई० के उक्त 'लीडर' में श्री रघुराज किशोर बी० ए० ने लिखा था कि यह सन्देहपूर्ण बात है, कि गोसाईं जी कभी फिर अपनी जन्मभूमि पर गये। क्योंकि उन्होंने स्वयम् कहा है—

"तुलसी वहाँ न जाइये, जहाँ जन्म को ठाँव।
गुन औगुन जानै नहीं, धरैं पाछिला नाँव॥"

इससे अनुमान होता है कि गोसाईं जी पुनः अपने ग्राम में गये नहीं और गये तो वहाँ उन के साथ सद्व्यवहार नहीं हुआ। उर्दू कवि ज़ौक़ ने भी कहा है :—

अहले जौहर की वतन में क़द्र कुछ होती अगर,
लाल क्यों इस रंग से आता बदख्शाँ छोड़कर।

२. चार कोस परिमाण।

३. दक्खिन-पश्चिम कोन।

१५ दिनों तक मेला रहता है। कई हजार मनुष्य आस पास के ग्रामों से आकर रोट आदि चढ़ाते हैं।

निस्सन्देह जिला बान्दा [१] परगना मऊ में यमुना तट पर राजापुर एक प्रसिद्ध ग्राम है और करवी नामक (जी० आई० पी०) रेलवे स्टेशन से उत्तर-पूर्व ६ कोस पर बसा है। एक समय राजापुर वाणिज्य का एक प्रधान स्थान था। परन्तु अब वह बात नहीं है। 'इण्डियन इम्पीरियल गजेटियर' में लिखा है कि "दन्त कथा के अनुसार यह गाँव भाषा रामायण के सुविख्यात रचयिता तुलसीदास ने बसाया....और वहाँ उन्होंने कई एक अपूर्व नियम प्रचलित किये जो अभी तक माने जाते हैं। वहाँ (सिवाय देवमन्दिरों के) कोई अन्य मकान पत्थर का नहीं बनाया जाता और वेश्यादि वहाँ रहने नहीं पातीं।" [२]

यह अङ्गरेजी लेख ध्यान देने के योग्य है। लेखक ने दन्तकथा राजापुर के प्रान्त ही में सुनी होगी और दन्तकथा के अनुसार राजापुर गोस्वामी जी का बसाया हुआ है (जन्मभूमि नहीं है)। इनका ग्राम बसाना और वहाँ कई एक कठिन नियमों का प्रचार करना जो आज तक माने जाते हैं केवल साधु होने के अनन्तर वास करने के प्रमाण हो सकते हैं। क्योंकि साधु

---

१. श्री ज्ञानेन्द्र मोहनदत्त ने बङ्गला मासिक पत्र 'प्रवासी' भाग ११ खण्ड २ में राजापुर जिला और बान्दा ग्राम लिखा है। अजानकारी के कारण उन्हों ने ऐसी भूल की है।

२. Rajapur town (or Majhgawan)—Town in the main Tahsil of Banda District, U. P. situated on the bank of Jamuna, 18 miles North East of Karwi, population (1901) 5,491. Rajapur is the name of the town, and Majhgawan that of the Mouza or village area within which it is situated. According to tradition the town was founded by Tulsidas the celebrated author of the vernacular version of the Ramayan and his residence is still shown. He is said to have established several peculiar restrictions which are scrupulously observed; no houses (except shrines) are built of stone and potters, barbers and dancing girls are rigorously excluded. The only public buildings are police station, P. office, school and dispensary. Rajapur was for a time chief commercial centre of the District. Owing to its position on the Jamuna; but many of the merchants have migrated to Karwi and the place is declining. Besides the export of country produce, there is a small manufacture of shoes and blankets.—Imperial Gazetteer of India : Vol. XXI

महात्माओं की आज्ञा के अनुसार कार्य करने को लोग शीघ्र ही उद्यत हो जाते हैं। कोई बालक वा स्त्री स्नेहरत युवक का चलाया ऐसा नियम नहीं चल सकता।

हमारे स्वर्गीय युवक मित्र बाबू गोकर्ण सिंह २५वीं अक्तूबर से १० नवम्बर १६११ ई० तक राजपुर में ठहरे थे। उनसे भी ज्ञात हुआ है कि राजापुर में कवि मंगलदीन शर्म्मा एवम् कई एक वृद्धा स्त्रियाँ आज भी वर्तमान हैं जो राजापुर को गोस्वामी जी का जन्म स्थान होना नहीं बतातीं। कई महीने हुये कि हम को आरा निवासी स्वर्गीय बाबू सीताराम महाफिज दफ्तर कलक्टरी के मकान पर राजापुर के पं० रघुनन्दन जी से भेंट हुई थी वे भी कहते थे कि राजापुर में गोसाईं जी का जन्म नहीं हुआ था।

इन्हीं सब कारणों से हम राजापुर को गोस्वामी जी का निवास स्थान मानते हैं; जन्म स्थान मानने को तैयार नहीं हैं।[१]

इसमें सन्देह नहीं कि तारी एक छोटा सा गाँव है और वहाँ गोसाईं जी के स्थान का कोई चिन्ह नहीं है। परन्तु चिन्ह नहीं रहना स्वाभाविक बात है, क्योंकि गृहस्थावस्था में तो ये पत्नी प्रेम ही में मग्न रहते थे और विरक्त होने के पीछे इनका वहाँ रहना कहा नहीं जाता जो बात भी स्वाभाविक है, तब कोई अवशिष्ट चिन्ह आवे तो कहाँ से ?

राजापुर में गोस्वामी जी के स्थान पर चन्दे से ४५००) लगा कर श्रीराम जी का एक मन्दिर बना है। उस में गोस्वामी जी की मूर्त्ति भी स्थापित हुई है और विधिपूर्वक पूजा हुआ करती है। ७५०) प्रान्तिक सरकार से भी मिला है और सरकार की ओर से उन की यादगार में एक संगमरमर की तखती लगाई गई है और चन्दा देनेवालों का नाम दूसरे पत्थर पर खुदा है।

राजापुर में गोसाईं जी के स्मारक चिन्ह संस्थापित होने एवं उसके सम्मानित किये जाने में कोई आपत्ति नहीं क्योंकि गोस्वामी जी के वहां कुछ काल निवास करने से उस को भी इन से निश्चय सम्बन्ध है। हम तो यही कहेंगे कि जिन २ स्थानों को गोस्वामी जी से किसी प्रकार का सम्बन्ध था उन सब स्थानों में इन का स्मारक चिन्ह स्थापित होना चाहिए।

पण्डित महादेव प्रसाद जी ने 'भक्ति विलास' में राजापुर में गोस्वामी जी का नानिहाल और जन्म माना है और लिखा है कि "गोस्वामी जी के पिता माता का स्थान पत्यौजा था,

---

१. अब लखनऊ से प्रकाशित 'माधुरी' वर्ष ७ खण्ड २ पृष्ठ ७६१ में एक महाशय गौरीशङ्कर द्विवेदी ने सोरों निवासी पंडित गोविन्द वल्लभ जी शास्त्री के किसी लेख के आधार पर लिखा है कि गोसाईं जी का जन्म सोरों (शूकर क्षेत्र) मुहल्ला योगमार्ग में हुआ था।

सोरों कासगंज के पास ईटा जिला में है। शास्त्री जी वहीं के रहने वाले हैं।

रामचरित मानस के अँगरेजी अनुवादक ग्रडस साहब ने पहले पहल सोंरो को शूकर क्षेत्र होना लिखा और तब से देशीय विदेशीय सब लेखक उनका अनुकरण करते हैं।

सोरों के वर्णन में ईटा के डिस्ट्रिक्ट गजेटियर में लिख मारा है कि वाराह रूप धारी भगवान ने यहाँ हिरण्डकस्य का वध किया। वाह कैसा अनुसन्धान और जानकारी है!

गर्भस्थिति अन्तरवेद तारी में हुई और वहीं से उनलोगों के आने पर राजापुर में गोसाईं जी का जन्म हुआ।'' इसमें गोसाईं जी का तारी और राजापुर से सम्बन्ध तो अच्छे ढंग से जोड़ा गया, परन्तु ऐसा लिखने का पण्डित जी ने क्या प्रमाण पाया यह बात ज्ञात नहीं होती। अतएव इस की समालोचना की आवश्यकता नहीं।

द्वितीय परिच्छेद

जाति और जनक जननी

गोस्वामी जी ने जन्म ग्रहण कर किसी ब्राह्मण ही कुल को पवित्र किया था इसमें तो सन्देह नहीं, क्योंकि यह बात इन के लेखों ही से प्रकट है। परन्तु आप कौन ब्राह्मण थे इस में मतभेद है। मिरज़ापुरनिवासी तुलसीराम अग्रवाल कृत उर्दू भक्तमाल तथा राजा प्रताप सिंह[1] कृत 'भक्तकल्पद्रुप' में आप को कान्यकुब्ज ब्राह्मण लिखा है। किन्तु ठाकुर शिवसिंह पंडित राम गुलाम द्विवेदी, डाक्टर ग्रियर्सन एवम् बहुत से अन्य महाशय आप को सरवरिया (सरयूपारी) ब्राह्मण बताते हैं और उस में कोई शुक्ल गर्गगोत्री और कोई पराशरगोत्री द्विवेदी पत्यौजा के मानते हैं। पत्यौजा के दूबे से यह तात्पर्य होगा कि ये उस दूबे श्रेणी में थे जिन के पूर्वपुरुषगण पत्यौजा स्थान में रहते थे और वहीं से इधर उधर फैले एवम् भिन्न २ स्थानों में जा बसे। "तुलसी परासर गोत्र दूबे पत्योजा के" ऐसा श्री काष्ठ जिह्वा स्वामी[2] ने भी लिखा है।

फिर कोई २ राजापुर प्रान्त में कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का अभाव बता कर गोसाईं जी को सरयूपारी ब्राह्मण होना और कोई बांदा जिला भर में कान्यकुब्जों ही की अधिकता दिखा कर इन्हें कान्यकुब्ज होना बताते हैं। परन्तु जिस नगर में पहले एक वंगदेशीय बन्धु का दर्शन भी दुर्लभ था वहाँ आज बड़ा २ बंगाली टोला देखा जाता है एवम् जहाँ एक दिन मुसलमान भाइयों का घना आवास था आज वहाँ उन की सूरत भी नजर नहीं आती। तब किसी विशेष स्थान में किसी विशेष जाति के आधुनिक अभाव या आधिक्य से वहाँ की प्राचीन (५०० वर्ष पूर्व की)

---

१. "पड़रौना नृप प्रताप हरि भक्तमाल वार्त्तिक भनित।
राम धाम बनवाय अवध को अनुभव कीनो॥
स्याम धाम व्रजभूमि रसिकजन को सुख दीनो॥
रसिक उपासक अतुल प्रेम पद्धति पहचाने।
जनकराज सम सतत भक्ति भागौत बखाने॥
भक्तकल्पद्रुम नामधरि निष्ठा क्रम सर्वसुगनित।
पड़रौना नृप०"

(श्री वृंदावन निवासी श्रीराधाचरण गोस्वामी कृत 'नव भक्तमाल' देखिये।)

२. जय कासीवासी देव पद काष्ठजिता स्वामीकृपाल। बालपने व्याकरण न्याय वेदान्त पढ्यो बहु। करत बाद अनुवाद पंडितन संग सदा रहु। गुरुन कही धमकाय वृथा क्यों काल बितावत। जीभ काठ की डालि नहीं क्यों हरि गुन गावत। तब जीभ काठ सो मढ़ लई राम नाम बिनु सब जंजाल।

(श्री राधाचरण गोस्वामी कृत 'नवभक्तमाल' पृ० १६)

अवस्था निर्णय नहीं की जा सकती जब तक इस कार्य के साधन के लिये अन्य सामग्री नहीं हो एवम् उस समय की कुछ और बातें न्यूनाधिक ज्ञात न हों।

हमारे एक सुविज्ञ पंडित मित्र ने हम से कहा है (और स्मरण आता है कि हम ने किसी पुस्तक में भी पढ़ा है) कि सरयूपारीण ब्राह्मण भी कान्यकुब्ज ही हैं, क्योंकि जो कनौजिया ब्राह्मण श्री रामचन्द्र जी के यहाँ यज्ञ में दान ग्रहण कर सरयूपार ही में बस गये वे ही लोग सरयूपारीण और सरवरिया नाम से प्रसिद्ध हुये। वाल्मीकीय रामायण में कनौज से ब्राह्मणों के बुलाये जाने का हाल स्पष्ट नहीं लिखा हुआ है किन्तु उस में अश्वमेध यज्ञ के समय जब कि रामचन्द्र को लव और कुश से मिलन हुआ, देश देशान्तरों से ब्राह्मणों के बुलाये जाने की बात देखी जाती है।[1] इस से कनौज के ब्राह्मणों का भी वहाँ जाना निश्चय है। यद्यपि उस में दानादि देने का विशेष वर्णन नहीं है कि किस को क्या दिया गया, परन्तु इतना अवश्य लिखा है कि लोगों को प्रचुर दान दिया गया। जिस ने जो मांगा उसे वही मिला; मांगते देर हुई देते विलम्ब नहीं हुआ।[2] यदि उस समय न मिला हो तो उन्हें जागीर आदि किसी अन्य अवसर पर मिली होगी, क्योंकि वाल्मीक जी ने लिखा है कि रामचन्द्र ने अनेक बार अश्वमेधादि यज्ञ[3] सम्पन्न किये थे यद्यपि उन्हों ने सबों का सविस्तर विवर्ण (विवरण) नहीं दिया है।

कनौज के ब्राह्मणों का अन्य प्रदेशों में बुलाये जाने का प्रमाण बंगाल के इतिहास में भी वर्त्तमान है। वंगदेशाधिपति आदिसूर ने भी देशसुधार के निमित्त ५ ब्राह्मणों को कनौज ही से बुलाया था; और पूछने पर हमारे कई एक ब्राह्मण बंगाली मित्रों ने कहा है कि वे लोग अपने को कान्यकुब्ज भी कहते हैं। बिहार के प्रायः सभी अनपढ़े तथा पढ़े लिखे सरवरिया ब्राह्मण भी अपने को कान्यकुब्ज कहते हैं और कोई २ सरयूपारी कनोजिया कहते हैं। हम ने ऐसे कई लोगों से पूछ कर इस बात का निश्चय किया है; और कदाचित इसी कारण से किसी लेखक ने गोस्वामीजी को कान्यकुब्ज और किसी ने सरयूपारीण लिखा है। हमारी समझ में यह बात उत्तम होगी कि हमलोग इन्हें सरयूपारी कान्यकुब्ज कहें।

कोई २ कहते हैं कि पहले अर्थात रामचन्द्र के समय कनौज का नाम महोदय था और वहाँ के लोग उस समय कान्यकुब्ज (कनौजिया) नहीं कहलाते होंगे। रामचन्द्र के समय वह स्थान किस नाम से ख्यात था यह बात तो रामायण से विदित नहीं होती। परन्तु उसका कोई अन्य नाम होने से भी वहाँ के ब्राह्मणों को यज्ञ के अवसर में जाने और दान पाने में कोई आपत्ति नहीं हुई होगी। फिर उस समय वहाँ के ब्राह्मण जिस नाम से प्रसिद्ध हों किन्तु गोस्वामी जी के जन्म के से बहुत दिन सरवरिया, कनौजिया आदि पदवियां सुख्यात हो रही थीं और यज्ञ सम्बन्धी पूर्वोक्त घटना से भी लोग परिचित थे।

'भक्ति सिन्धु' तथा 'बृहद् रामायण माहात्म्य' के अनुसार इन के पिता का नाम आत्माराम, माता का नाम हुलसी एवम् इन का बालकाल का नाम रामबोला था। इनके लेखों में

१. "देशान्तरगता ये च द्विजा धर्म्मसमाहिताः। आमंत्रयस्व तान्सर्वानश्वमेधाय लक्ष्मण॥" उत्तर काण्ड सर्ग ९१ श्लोक १३।
२. उत्तर काण्ड सर्ग ९२।
३. उत्तर काण्ड सर्ग ९९ श्लोक ८-९।

इनके पिता के नाम का तो कहीं प्रमाण नहीं मिलता। किन्तु इन की माता के नाम का प्रमाण लोग इस चौपाई में "सम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी" और रहीम खान खाना[१] के 'इस अर्द्धांश दोहे में "गर्भ लिये हुलसी फिरै, तुलसी से सुत होय" बताते हैं एवम् इन का पहले 'रामबोला' नाम होने का प्रमाण 'कवित रामायण' तथा 'विनय पत्रिका' के इन पदों में पाते हैं "साहब सुजान जिन स्वान हुँ को पक्ष कियो 'रामबोला'। नाम हौं गुलाम राम साही को" (क० रा० उ० काण्ड कवित्त नम्बर ६४); और "राम को गुलाम नाम रामबोला राम राख्यो काम इहै नाम द्वै हों कब हूं कहत हौं" (विन० पद ७५)।

ये पद केवल यही बात प्रकटित नहीं करते कि इन का आदि में रामबोला नाम था वरन् इन से यह भी सिद्ध होता है कि विरक्त होने और तुलसीदास नाम पाने के पूर्व भी ये कविता किया करते थे एवम् बालकाल ही से इन की इस ओर प्रवृत्ति थी तथा स्त्री के उपदेश के पूर्व भी इन का श्री राम में अवश्य स्नेह था। स्त्री का वाक्य अग्निकुंड में आहुति के समान होकर उस स्नेह को पूर्णरूप से प्रज्वलित और प्रकाशित कर दिया। कवितावली तथा विनय पत्रिका में इन के भिन्न २ समय के बनाये कवित तथा पद समावेशित हैं।

ग्रियर्सन साहब ने १८९३ के 'इन्डियन एन्टिकुयेरी' (Indian Antiquary) पत्र के पृ०५३ टिप्पणी में तीन दोहे दिये हैं। उन में इन की माता, पिता, गुरु,पुत्र पत्नी, श्वशुर सब के नाम वर्णित हुये हैं। परन्तु वे किस ग्रंथ के या किस के रचे दोहे हैं यह बात आपने नहीं लिखी है। कवि कृत ग्रंथों में तो वे दोहे अवश्य नहीं देखे जाते। हम उन दोहों को नीचे उद्धृत कर देते हैं:—

"दूबे आत्मा राम है, पिता नाम जग जान।
माता हुलसी कहत सब तुलसी के सुन कान॥
प्रहलाद उधारन नाम है गुरुका सुनिये साध।
प्रगट नाम नहीं कहत जो, कहत होय अपराध॥
दीन बन्धु पाठक कहत ससुर नाम सब कोइ।
रत्नावलि तिय नाम है सुत तारक गत होइ॥"

इन सब नामों की सत्यता में हम, चाहे कोई अन्य व्यक्ति, शंका करें, किन्तु इस बात में सभी सहमत होंगे कि आप की माता निस्सन्देह परम धन्य और पुण्यवति (ती) थीं जिन के उदर से ऐसे महान महात्मा का जन्म हुआ कि जिन की रचनायें इस अधर्मप्रायण (परायण) समय में भी लाखों मनुष्यों को सदाचारी, जगहितकारी, भक्तिव्रतधारी बना रही हैं। और ईश्वर प्रेमियों को तो वे सदा हितकारिणी हुई हैं आप ने रामायण में स्वयम् भी लिखा है और बहुत ठीक लिखा है "पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भक्त जासु सुत होई।" आप ने इसी चौपाई में अपनी पूजनीय माता की गुप्तरूप से स्तुति भी की है कि "तू धन्य है जिस की पवित्र कोख से जन्म ग्रहण करने से मेरा मन ईश्वरपादपद्म का अनुरागी हुआ है।"

---

१. इन का वृत्तान्त १३वें परिच्छेद में लिखा गया है।

तृतीय परिच्छेद

बाल्यावस्था

प्रवाद है कि गोसाईं जी का जन्म 'अभुक्तमूल' में हुआ था और 'मूहूर्त्ति (मुहूर्त्त) चिन्तामणि'[1] में लिखा है कि "मूल के आदि की ८ घड़ी और ज्येष्ठा के अन्त की तेरह घड़ी 'अभुक्तमूल' है। इस में जो बालक उत्पन्न हो उसे त्याग दे अथवा आठ वर्ष तक उसका मुंह न देखे क्योंकि ऐसा बालक पितृहन्ता होता है।"[2]

आज कल तो कोई ऐसे बालक को त्याग नहीं सकता क्योंकि ऐसा करने वाले को ताजिरातहिन्द I. P. C. की ३१७ धारा (दफा) के अनुसार कारागार की विपत्ति अवश्य झेलनी पड़ेगी। कदाचित् मुसलमानी शासनकाल में ऐसा किया जाता हो। पर उस समय भी क्या सब माता पिता का ऐसा बज्र हृदय होता था कि ऐसे पुत्र को जन्म लेते ही वे परित्याग कर देते थे। यह बात माता पिता के स्वाभाविक अनिर्वचनीय पवित्र स्नेह के विरुद्ध प्रतीत होती है। प्रतिदिन देखा जाता है कि सन्तान के सुख के लिये माता पिता कैसा २ कष्ट उठाने को सदा तत्पर रहते हैं। कहीं २ तो ऐसी घटना देखने सुनने में आती है जिस से मन मुग्ध हो जाता है और बुद्धि चकित हो जाती है।

हमारे बहुत से पाठक यह बात जानते होंगे कि हुमायूं के रोगग्रस्त होने पर उन के पिता बाबर ने रोगी की चारपाई के चतुर्दिक परिक्रमा करके ईश्वर से यह प्रार्थना की थी कि "हे प्रभो! इस के बदले मेरा प्राणान्त हो; पर यह निरोग हो जाय', परम करुणामय ईश्वर ने उनकी निष्कपट प्रार्थना सुन भी ली। हुमायूं निरोग हो गये और बाबर को स्वयं इस संसार से पयान करना पड़ा।

मिनहाज उद्दिं जौजीने 'तबकातेनासरी' में लिखा है कि जब बंगाल प्रदेश के अन्तिम हिन्दू राजा लक्ष्मणिया (वा सुसेन वा अशोकसेन) की माता को प्रसवपीड़ा होने लगी तो ज्योतिषियों ने कहा कि यदि बालक तत्काल ही जन्मा तो वह शीघ्र ही मर जायगा। किन्तु यदि अमुक समय जन्मे तो १०० वर्ष पर्यन्त राज्यसुख भोगेगा। यह सुनकर उनकी माता ने अपने को उलटा टँगवा दिया और शुभ घड़ी उपस्थित होने पर वे उतारी गई। पुत्र का जन्म तो शुभमुहूर्त्त में हुआ सही, परन्तु पुत्र के कल्याणार्थ उन्हें अपना प्राण न्योछावर करना पड़ा।

---

१. इस ग्रंथ की रचना गोसाईं जी ही के समय में हुई थी।

२. "अथोचुरन्ये प्रथमाष्ट घट्यो मूलस्य सांक्रांतिम पञ्चनाड्यः।

सब माता पिता बज्र हृदय होते हों या नहीं परन्तु अभुक्तमूल में जन्मे हुए बालकों की मूलशान्ति और गोमुख प्रसवशान्ति विधि भी शास्त्रानुसार की जाती है। और जब गोस्वामी जी के जन्म संम(व)त् ही में विवाद है और कोई उसे १५५४, कोई १५८३, कोई १५८६ और कोई १६००—१६१० बतलाते हैं और मास दिवस का कुछ पता ही नहीं तो अभुक्तमूल की बात उठानी ही अनुचित है। क्या किसी वर्ष, किसी मास, किसी दिवस में इन का जन्म क्यों न हुआ हो 'अभुक्तमूल' इन के पीछे लगा ही हुआ था ? यह तो बड़ा आश्चर्य जनक कौतुक है। जो लोग 'अभुक्तमूल' की कथा कहते हैं उन्हें प्रथम स्वामी जी की जन्म कुँ(कुं)डली हस्तगत कर के उसे सर्वसाधारण को दृष्टिगोचर कराना चाहिए। हमारी समझ में जबसे लोगों का ध्यान गोस्वामी जी कृत नीचे लिखी हुई कविताओं पर गया है 'अभुक्तमूल' की बात उठाई गई है।

"मातु पिता जग जाय तज्यौ विधिहुँ (हूँ) न लिखी कछु भाल भलाई। नीच निरादर भाजन कादर कूकुर टूकन लागि ललाई॥ राम सुभाव सुन्यो तुलसी प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई। स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सु साहब षोर न लाई॥"
(क० रा० उ० कां० ५७)

"जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस षाए टूक सब के बिदित बात दूनि सो। मानस बचन काय किये पाप सत भाय राम को कहाय दास दगाबाज पुनि सो। राम नाम को प्रभाउ पाउ महिमा प्रताप तुलसी सो जग मानियत महा मुनि सो। अतिहि अभागे अनुरागत न राम पद मूढ़ ऐसो बड़ो आचरज देखि सुनि सो।"
(क० उ० कां० ७२६)

"जननि जनक तज्यो, जनम करम बिनु विधि सिरज्यो अवड़ेरे। मोहि सो कोउ २ कहत राम को सो प्रसंग केहि केरे॥ फिर्‌यो ललात बिनु नाम उदर लगि दूषहु दुषित मोहि हेरे। नाम प्रसाद लहत रसाल फल अब हौं बबुर बहेरे···
(विनय० प० २२७ पद)

"जायो कुल मंगन बधावो न बजायो सुनि भयो परिताप पाप जननी जनक को। बारे ते ललात बिललात द्वार २ दीन जानत हौं चारि फल चारहि चनक को॥ तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवकहि सुनत सिहात सोच विधि हुं गनक को। नाम राम रावरे सयानो कैधों बावरो जो करत गिरी ते गहु तिन ते तनक को।"
(क० रामायण उ० कां० ७३ कवित्त)

ग्रियर्सन साहब लिखते हैं कि "आप के मा बाप के त्याग देने पर रमता साधु ने आप को अवश्य उठा लिया होगा क्योंकि कोई भद्र गृहस्थ तो ऐसे बालक से कोई सम्बन्ध ही नहीं

करते होंगे और उसी साधु से या उनकी मंडली के किसी अन्य साधु से रामचरित सुने होंगे जैसा कि उन्हों ने स्वयं कहा है ।[१]

"मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकरखेत ।
समुझी नहीं तस बालपन, तब अति रहेंऊ अचेत ॥

पादड़ी एड्विन ग्रीव्स् साहब का यह कथन कि "एक दो पदों के आधार पर इतनी लम्बी चौड़ी व्याख्या उठानी उचित नहीं"[२] बहुत ठीक है। और सोचकर देखने से उपर्युक्त पदों से यह सिद्ध भी नहीं होता कि इनके पिता माता ने जन्म ग्रहण करते ही इन्हें कहीं फेंक दिया और कोई साधु या गृहस्थ ने इन्हें उठाकर अपने पास रखा। इन पदों से तो इतना ही विदित होता है कि—

(१) भिखमंगे (ब्राह्मण कुल) में इनका जन्म हुआ ।

(२) इन के जन्म के समय आनन्दोत्सव नहीं हुआ, चाहे माता पिता की दरिद्रता के कारण हो चाहे पापग्रह के परिताप के सोच ही के कारण हो ।

(३) अल्पावस्था ही से पेट के कारण इन्हें सब प्रकार के लोगों का द्वार झांकना पड़ा ।

(४) माता पिता ने उन्हें जन्मा कर तज दिया और ब्रह्मा ने इन्हें भागहीन बनाया ।

यदि सचमुच इनकी (के) माता पिता इन्हें फेंक देते या त्याग देते तो इन्हें अपनी जाति पांति का हाल और जन्मसमय बधावा नहीं बजने का हाल कैसे ज्ञात होता? ये बातें न इन्हें स्वयम् ही ज्ञात होतीं, और न इन्हें कोई बता ही सकता। क्योंकि उन लोगों ने यदि इन्हें फेंका या त्यागा होगा तो जन्म लेते ही। कुछ काल पोषण पालन करने पर एवम् स्नेह वर्द्धन होने पर त्यागना संभव नहीं दीखता। और जब लोग पहिले इन्हें घर ही में रखते तब फिर कुछ दिनों के बाद त्याग ही क्यों देते? यह बात दूसरी है कि श्री हनुमान जी या श्री रामचन्द्र जी की कृपा से इन्हें सब बातें ज्ञात हो गईं। अथवा महान् महात्मा ईश्वर के सच्चे प्रेमी और सच्चे भक्त त्रिकालज्ञ होते हैं अतएव भूत, भविष्य और वर्तमान सब जानने को ये समर्थ हो गये। यहाँ पर इस विषय की आलोचना उस ढंग पर नहीं हो रही है।

'तजने' से केवल फेंक देने या त्याग देने ही का बोध नहीं होता। इस से उन लोगों के परलोक गमन का भी आशय निकल सकता है। इस से निश्चय होता है कि इन के पिता माता ने इन्हें फेंक नहीं दिया था; और वे लोग इन के जन्म के पश्चात कुछ दिन जीवित भी रहे[३] जिस से इन को अपना हाल जानने का अवसर मिला ।

---

१. 'तुलसीदास के विषय में नोट' इण्डियन एण्टिकुयेरी सन् १८९३ ई० के पृ० ५३ में देखिये ।

२. काशी नागरी प्रचारिणी-पत्रिका भाग ३ सन् १८९९ ई० पृ० ५७ देखिये ।

— गौरीशंकर जी स्पष्ट लिखते हैं कि माता पिता तुलसीदास को जन्म

हाँ! यह हो सकता है कि अल्पावस्था में मातृ-पितृ-विहीन होने के कारण उदरपोषण के लिये इन्हें इधर उधर भटकना पड़ा हो। एवम् उसी अवस्था में ये सोरों (शूकरखेत वा बाराहक्षेत्र) जा पहुँचे हों और वहाँ पर रामचरित्र श्रवण का आनन्द उठाये हों।

अथवा पं० महादेवप्रसाद के लेखानुसार जब इन के पिता माता इन को साथ लेते मालवा जाते समय सोरों गये थे उसी अवसर में वहीं उन लोगों का सचमुच स्वर्गवास हो गया हो और जैसा कि पंडित जी ने लिखा है इन्हें निस्सहाय देख कर साधुओं ने इन पर दया की हो। कदाचित इसी से इन्हों ने कहा भी है कि—

"द्वार २ दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूं।
ह्वै दयाल दुनी दसों दिसा दुख दोष दलन छमि कियो न संभाषन काहूं॥
तनु तजे कुटिल कीट ज्यों, तज्यों मातु पिता हूं।
काहे को रोस दोस काहि धौं मेरे ही अभाग मोसों सकुचत सब छुई छाहूं॥
दुखित देखि संतन कहेउ सोचे जनि मन माहूं।
तोसे पसु पांवर पातकि परिहरे न सरन गये रघुवर मोर निवाहूं॥"

अर्थात् जब इनके पिता माता ने तन त्याग किया जैसे एक कुटिल [छु (क्षु) द्र] कीट (अनायास) तन त्याग देता है तब इन्हें दरिद्रता के कारण दीनतापूर्वक दाँत निकाले द्वारद्वार भटकना पड़ा और ऐसी अवस्था में इन्हें पूछता ही कौन? क्योंकि :—

"किसी का कब कोई रोजे सियह में साथ देता है।
कि तारीकी में साया भी जुदा हर शय से रहता है॥"

हाँ! सन्तों की बात न्यारी है। वे भला क्यों न दया दिखलावें? वे तो परोपकार के निमित्त शरीर ही धारण करते हैं। इसी से सन्तों ने इन पर दयादृष्टि की।

और यह पद :—

"पूछ्यो ज्योंहि कह्यो मैं हूँ चेरो ह्वैहों रावरेजू
मेरे कोउ कहूँ नाहिं चरन गहत हौं।
मींज्यों गुरु पीठ अपनाई गहि बांह बोलि
सेवक सुखद सदा बिरद बहत हौं॥
लोग कहै पोच सो न सोच न सँकोच
मेरे ब्याह न बरेखी जाति पाति ना चहत हौं।
तुलसी अकाज काज रामहि के रीझे खीझे
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं॥"—

यदि इन के सन्तों से प्रथम भेंट से सम्बन्ध रखता है और उसी घटना का इन्हों ने सङ्ग में उल्लेख किया है तो इस से इन के होश सम्हालने ही पर इन का अपने पिता माता से वियोग

होना दृढ़तर प्रमाणित होता है और उन लोगों का इन्हें त्यागना नहीं वरन् अपना ही तन त्यागना प्रतिपादित होता है। क्योंकि यदि ये शैशवावस्था में परित्यक्त होते तो इन्हें सन्तों से बात चीत करने की कहाँ से सामर्थ (थ्र्य) होती?

और इस पद में 'ब्याह न बरेखी' से लोगों का यह अनुमान करना कि इन का विवाह नहीं हुआ था अवश्य भूल है। इस का कटाक्ष उन लोगों पर है जो इनके काशीवास के समय इनसे द्वेष भाव रखते थे। उन्हीं के सम्बन्ध में ये कहते हैं कि "लोग हम को पोच कहते हैं तो उस का हमें सोच और संकोच नहीं, क्योंकि हम को किसी के यहाँ ब्याह बरेखी नहीं करनी है" (।) इसी आशय को इन्हों ने इस कविता में और भी स्पष्ट रूप से वर्णन किया है :—

"धूत कहो अवधूत कहो रजपूत कहो जो लहा कहो कोऊ।
काहु की बेटी सों बेटा न ब्याहब काहु की जाति बिगार न सोऊ ॥"

(क० रा० उत्तर कांड क० न० २४८)

और बालपने में राम के सम्मुख होना और फिर संसार में फँसना यह बात भी इन्हीं की कविता से ज्ञात होती है।

"बालपने सूधे मन राम सनमुख भयों राम नाम लेत
मांगि खात टूक टाक हौं।
पर्यों लोकरीति में पुनीत प्रीति राम राय मोह बस
बैठ्यों तोरि तरकि तराक हौं ॥
षोटे २ आचरन आचरत अपनायो अंजनीकुमार
सोध्यो राम पानिपाक हौं।
तुलसी गोसाईं भयों भोंडे दिन भूलि गयों ताको
फल पावत निदान परिपाक हौं।"

(वाहुक क० न० ४०)

राम राय की पुनीत प्रीति मोहवश चट तोड़ कर लोक रीति में फँसने का लक्ष्य सिवाय विवाह के और किसी बात की ओर नहीं हो सकता क्योंकि मातृ-पितृ-हीन होने पर तो बालपन में ये राम के सम्मुख हुए थे जैसा कि इन की स्वरचित कविता से प्रलक्षित होता है, तब रही स्त्री, स्त्री का लाना सम्भव था। विवाह द्वारा स्त्री प्राप्त कर उस के संग लोकरीति में फँसे। और पं० महादेवप्रसाद जी ने 'भक्ति विलास' ग्रंथ में लिखा है कि :—

"इहि बिधि कछुक काल सुख पाये।
मातु पिता परलोक सिधाये ॥
तिनके कर्म कीन्ह बहु भांती।
मन में सोच करत दिन राती ॥

तहँ गुरु कहि पुनि कथा पुरानी।
नरहरि दास मनोहर बानी॥
सुन तुलसी अब सोच बिहाई।
सब के मातु पिता रघुराई॥

सो तुम मानहु बिप्र बर, राजापुर को जाहु।
चेतहु मेरे बचन अब, करहु आपनो व्या (ब्या) हु॥

यह सुन तुरत चले ननियावर।
पहुँचे गृही भरे सब चाँवर॥
पुनि सुन्दर कुल देख बरावा।
मातुल ने तिहि व्याह करावा॥
करहि रमन गुरज्ञान भुलाना।
पत्नी सहित परम सुख माना॥"[१]

और श्री प्रियादास जी ने भी 'भक्त माल' की टीका में लिखा है कि :—

"तिया सों सनेह बिनु पूछे पिता गेह गई,
भूली सुधि देह भजे वाही ठौर आये हैं।
बधु अति लाज भई रिस सो निकसि गई,
प्रीति राम नई तन हाड़ चाम छाये हैं॥
सुनी जब बात मानो ह्वै गयो प्रभात् (त)
वह पाछे पछितात तजि कासीपुरी धाये हैं।
कियो तहां बास प्रभु सेवा लै प्रकास
कीन्हों लीन्हों दृढ़ भाव नेम रूप के तिसाये हैं॥"

लोगों का यह कहना कि "गोसाईं जी के सौ वर्ष पीछे प्रियादास जी ने 'भक्त माल' की टीका में विवाह की कथा लिखी है और तभी से गोसाईं जी के चरित्र लेखकों ने इस बात की वर्णना की है" हमारी समझ में ठीक नहीं। यदि यह कथा उनके पूर्व से प्रचलित नहीं होती तो प्रियादास जी को क्या पड़ा था कि वह एक मनस्कल्पित कहानी अपनी पुस्तक में घुसा देते। जब तक कोई व्यक्ति श्री प्रियादास जी के पूर्ववर्ती किसी लेखक के प्रामाणिक लेख से

---

१. मातृ-पितृ-विहीन होने पर मामा का इन का विवाह कर देना कोई आश्चर्य की बात नहीं है, परन्तु यह सविस्तर वर्णन कहाँतक ठीक है सो नहीं कह सकते।

यह न सिद्ध कर दे कि उनके पहिले विवाह की कथा नहीं मानी जाती थी तब तक हमलोगों को श्री प्रियादास जी के लेख को प्रमाण ही मानना पड़ेगा, चाहे और किसी के लेख को माने या नहीं।

सम्भव है कि वेणीमाधव जी कृत 'गोसाईं चरित्र'[1] तथा कोई अन्य गोसाईं चरित्र प्राप्त होने पर इन की जीवन कथा सर्वथा परिवर्त्तित हो जाय।

'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस में श्री प्रियादास जी के लेख पर विश्वास नहीं करते हुए भी सम्पादकों ने पाद टिप्पणी पृ० १४ में लिखा है कि "यदि बालपन से उपदेशावस्था का आरम्भ कहें तो संभव है कि विवाह इत्यादि हुआ हो। एक शास्त्र को पार कर जब बटु दूसरे शास्त्र का आरम्भ करता है तब कहता है कि मैं इस शास्त्र में बालक हूँ। संस्कृत के ग्रंथों में प्रायः बहुत स्थानों में ऐसे प्रयोग मिलते हैं।" हाँ बहुत से कवियों ने अपने को अचेत बालक लिखा है।

श्री अवधनिवासी श्री सीताराम शरण भगवानप्रसाद जी सुप्रसिद्ध विरक्त वैष्णव महात्मा ने भी 'भक्त माल' की टीका में लिखा है कि "आप का ब्राह्मणकुल में संवत् १५८६ में

---

१. यह पुस्तक तो अभी तक प्राप्त नहीं हुई। किन्तु इसी का सार स्वरूप और इन्हीं की लिखी 'मूल गोसाईं चरित' नाम की एक दूसरी पुस्तक की उपलब्धि हुई है। बाबू श्यामसुन्दर दास ने 'काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका' भाग ७ अंक ४ में उसे छपवाया है, उसपर एक नोट लिखा है और उसपर लोगों की सम्मति मांगी है।

उसके प्रामाणिक होने में बहुतों को सन्देह है। उस में लिखा है कि "गोसाईं जी बत्तीसों दान्त लिये जन्मे; जन्म लेते ही रामनाम बोल उठे और रोये नहीं। नार काटते समय धाय को शंख-ध्वनि सुनने में आई। इन्हें राक्षस समझ इन के पिता तथा अन्य लोगों के मन में महापरिताप हुआ। इन के जन्म के पांचवे दिन इन की माता मर गईं किन्तु उस के एक रात पूर्व उनके अनुनय विनय से उनकी दाई चुनिया शिशु को लेकर उसके पालन पोषण के लिये अपने ससुरार चली गयी थी। ६५ महीना बाद सांप काटने से वह दाई मर गई। इन के पिता के पास सम्वाद जाने से उन्हों ने कहा कि ऐसा बालक जिये या मरे मुझे सोच नहीं। पुनः दो वर्षों तक ब्राह्मणी का रूप धारण कर शिशु गोसाईं जी को श्री गौरी माता खिला जाया करती थीं। पीछे यह बात प्रकट हो जाने पर श्री शिवजी के आदेश और उपदेश से नरहरि दास ने इन्हें लेकर इनका संस्कारादि किया, रामचरित मानस-कथा सुनाई और इन्हें काशी में विद्याध्ययन के लिये रखकर वे स्वयम् चित्रकूट चले गये इत्यादि।" इसमें अभुक्तमूल की बात नहीं है। हमने इसके विषय में 'मनोरमा' वर्ष ५, भाग २, सं० ३, पृ० २५६ में एक लेख लिखा है। गोसाईं जी के एक दूसरे चेले और संगी श्री रघुबरदासजी कृत 'तुलसी चरित्र' एक वृहत् ग्रंथ भी प्राप्त हुआ है—जिसका कुछ हाल इस जीवनी के प्रथम खण्ड परिच्छेद ७ नोट २ में लिखा गया है। किन्तु श्री वेणीदास प्रणीत 'मूल गोसाईं चरित' और श्री रघुबरदास बिरचित 'तुलसी चरित' के वर्णनों में बात बात में प्रभेद देखा जाता है।

जन्म हुआ यज्ञोपवीत होने पर विद्याध्ययन किया, विवाह गौना भी हुआ और स्त्री का वाक्य सुनकर संसार से विरक्त होने पर (इन्होंने) नरहरिदास से राममंत्रादि ग्रहण किया और रामचरित सुना।"

इससे भी बालपन से उपदेशावस्था का आरंभ ध्वनित होता है। निस्सन्देह विना कोई प्रबल प्रमाण के श्री प्रियादास जी के स्पष्ट लेख के खण्डन करने का भी तो किसी को साहस नहीं होता। और ऐसा करना उचित भी नहीं है।

इन के विवाह की कथा पर नहीं विश्वास करनेवालों को यह भी विचार करना चाहिए कि इन्हों ने अपने ग्रंथों में विवाहादि एवम् अन्यान्य गृहस्थाश्रम की बातों का कैसा सच्चा और सुन्दर वर्णन किया है। क्या कभी सम्भव है कि जिस व्यक्ति ने गृहस्थाश्रम के सुख दुख का स्वयम् अनुभव न किया हो वह उस का ऐसा सच्चा चित्र खींच सके? क्या वह व्यक्ति जो बालपन हीं से केवल साधुओं के संग काल व्यतीत करता रहे और उन्हीं की मंडली के साथ देशाटन करता हरिभजन में मग्न रहे, गृहस्थ के घरों की रीति रसम, रहन सहन तथा गृहस्थाश्रम के कार्यों से कभी पूरा परिचित हो सकता है? पूरा परिचित होना तो दूर रहे, उसे उन बातों की साधारण जानकारी होने की भी संभावना नहीं। और लोगों से पूछ कर उन विषयों का वर्णन करनेवाला अपनी रचना ऐसा सुन्दर और मनोहारिणी नहीं बना सकता।

यहीं पर पाठकों से यह निवेदन कर देना अनुपयुक्त नहीं होगा कि यदि गोस्वामी जी की या किसी अन्य कवि की प्रत्येक कविता का भाव और आशय उन्हीं पर घटा कर उनका इतिहास लिखने का उद्योग किया जाय या उनकी कवितावर्णित सब घटनाओं का सम्बन्ध उन्हीं के साथ जोड़ने की चेष्टा की जाय तो यह परिश्रम सर्वथा व्यर्थ ही होगा। क्योंकि कवि कभी अपनी कथा दूसरों को लक्ष्य बना कर वर्णन करता है और कभी अपने ही को लक्ष्य बनाकर दूसरों के सिर की बीती बातें लिख देता है। और यह भी स्मरण रहे कि जैसे एक दो ईंट से कोई गढ़ निर्माण नहीं कर सकता। वैसे ही किसी कवि की एक दो कविता के आधार पर उस का जीवन वृत्तान्त नहीं लिखा जा सकता।

गोसाईं जी के विवाह की कथा बड़ी मनोहर है, वरन् गोसाईं जी को गोसाईं जी बनानेवाली वही कथा है। अतएव अब हम आगे वही कथा वर्णन करते हैं।

चतुर्थ परिच्छेद

विवाह

किसी के विवाह की कथा सुनने में लोग पहिले उसके ससुरार, एवम् ससुर आदि ाम जानने को उत्सुक रहते हैं। परन्तु जिसके जन्म स्थान ही में विवाद है उसके ससुरार ाम क्या पूछना ? क्या वह कभी निर्विवाद हो सकता है ? 'राजापुर माहात्म्य' में राजापुर स ही इन का ससुरार भी बताया गया है, "राजापुर यमुना कगार पर अगार रह्यो के पार सोहैं रही ससुरार है"। राजापुर के सामने ससुरार मानना उन लोगों के लिये बड़ा पयोगी है जिनलोगों ने यमुना[1] तैराकर अन्धेरी रात में गोसाईं जी को ससुरार पहुँचाया है की समालोचना इसी परिच्छेद में अन्यत्र की गई है)। हम को पूरा स्मरण है कि अपने एक मित्र अमहरा, जिला पटना, निवासी बाबू कालीचरण सिंह विरचित हरा' नामक ग्रंथ में देखा है कि रामायण तथा महाभारत की अनेक घटनाओं का । 'अमहरा', ही के आस पास बतलाया गया है। वैसे ही 'राजापुर माहात्म्य' के लेखक ने दाचित् घर और ससुरार आमने सामने बना दिया है। राजापुर के निकट निवासी पर और राजापुर के सामने ही गोसाईंजी का ससुरार रहना कह कर भी आप ने उस ग्राम ाम लिखने की कृपा नहीं की है, यद्यपि आप ने एक कवित्त में राजापुर के मंडलस्थ सब का नाम कह डाला है। इससे निश्चय है कि राजापुर के निकटवर्त्ती लोगों को भी इन के ार का नाम नहीं ज्ञात है।

किसी २ का मत है कि 'तारी' और 'सोरों' के बीच में कहीं पर गोसाईंजी का ार था। परन्तु गाँव का नाम वे लोग भी नहीं बतलाते।

वाचक वृन्द ! आप लोग ससुराल के झमेले में कहाँ [2] पड़ियेगा। गाँव का नाम न सही ्र का नाम तो लेखकों ने दीनबन्धु पाठक[3] लिख रखा है, चाहे वह मनमानी हो चाहे र्थ। यह क्या थोड़ी कृपा है ?

---

१. रानी कमल कुंअरि ने इन्हें गङ्गा पार उतारा है। इस से उन के अनुसार इनै ससुरार गङ्गा पार होता है।

२. अब देखते हैं कि उक्त गौरी शंकर जी अपने 'माधुरी' वाले लेख में सोरों ो एक उपनगर 'बदरिया' नामक ग्राम में गोस्वामी जी का विवाह होना बताते हैं। यह र हम ने सोरों निवासी गोविन्द वल्लभ जी से पूछा था कि सोरों तथा बदरिया के कोई नदी प्रवाहित है या नहीं। उस के उत्तर में आपने २३ अक्तूबर १९२६ ई०

कहते हैं कि दीनबन्धुजी दीनबन्धु श्री सीताराम के परम भक्त थे, सर्वदा पूजा पाठ में लगे रहते थे। इसी से गोस्वामी जी की स्त्री को श्री प्रभु के पाद पद्म में बचपन ही से प्रीति हो गई थी और उन्हें सन्त सेवा में अनुराग जन्मा था। ऐसा क्यों न हो? यह तो प्रत्यक्ष ही देखने में आता है कि जिस घर में जिस बात की विशेष चर्चा रहती है उस घर के छोटे २ बालकों और बालिकाओं को भी उसी का अनुराग उत्पन्न हो जाता है। इसी से यह परमावश्यक है कि जो लोग अपनी सन्तति को सदाचारी और सद्‌गुण सम्पन्न बनाने की इच्छा रखते हैं वे स्वयम् भी अपना आचरण स्वच्छ और अदूषणीय रखा करें जिस में उन की सन्तान उन का अनुकरण कर के सुखपूर्वक जीवन यात्रा निर्वाह करने में समर्थ हो सके।

दीनबन्धु कौन ब्राह्मण थे, क्या करते थे और उन की क्या अवस्था थी ये बातें भी कहीं किसी ने नहीं लिखी हैं। केवल उन की कन्या रत्नावली से गोसाईं जी का विवाह बताया गया है। गोसाईं जी का अनन्त प्रेम अनन्त ही की ओर जानेवाला था, किन्तु वह मार्ग अभी अवरुद्ध था। अतएव इनका वह भगवत्प्रेम जो भविष्यत् में भारतवर्ष को भक्तिप्रवाह से प्लावित करने वाला हुआ इन के युवाकाल में भिन्न रूप धारण कर प्रगट हुआ। वह प्रेमस्रोत स्त्री ही को परिवेष्टित कर प्रवाहित होने लगा। अर्थात् विवाह होने पर जब इन की स्त्री इन के घर आई तब ये उस के प्रेम में ऐसे आसक्त हुए कि क्षण-मात्र भी उस से विलग होना नहीं चाहते थे। जहां जांय वहां उसी का गुण गान और जहां रहें वहां उसी का ध्यान। सच है – "जिस ने कभी उल्फ़त का मज़ा पाया है। कुछ न आलम में उसे भाया है।" इसी से स्त्री की आंखों की ओट होने ही से ये उन्मत्त के समान व्यग्र हो जाते थे। इस से यह भी निश्चय होता है कि इन की स्त्री परम सुन्दरी थीं और कदाचित् सुन्दरता ही के कारण ये रत्नावली के नाम से भी प्रसिद्ध थीं, चाहे यह उन का वास्तविक नाम हो या न हो, क्योंकि सुन्दरता से बढ़कर चित्ताकर्षण की शक्ति और किसी वस्तु में नहीं देखी जाती, यह बात सभी स्वीकार करते हैं। और गोस्वामीजी सौंदर्य्योपासक थे इस में भी सन्देह नहीं। तभी तो वेलायती कवि वर्ड्सवर्थ के समान सहज सौंदर्य्यमयी प्रकृतिरूपी पुस्तक के पाठ के सहारे ये अपनी रचनाओं को इस भाँति मनोहारिणी बनाने को समर्थ हुये। एक

के कार्ड में कृपा पूर्वक लिखा है कि "सोरों और बदरिया के बीच वृद्ध गंगा (बूढ़ी गंगा) का एक सदा प्रवाही नाला है जो कि बदरिया को सोरों से भिन्न रखे हुए है। पहले कभी भागीरथी गंगा जी की एक धारा वृद्ध गंगा के नाले से मिल कर सदा प्रवाहित रहती थी। पीछे तीन कोस पर धारा चली गई। पहले चौमासे में बदरिया जाने में नौका से काम लिया जाता था परन्तु अब दो पुल बन गये । बदरिया में जिस स्थान पर गोस्वामी जी की ससुरार थी वहाँ पर एक पीपर का वृक्ष अवस्थित है। आसपास अब मुसलमानों की आबादी हो गई है।"

जो हो इससे गोसाईं जी के ससुरार का एक नाम तो ज्ञात हुआ।

३. वेणी माधवदास जी तथा रघुबरदास जी की पुस्तकों में ये नाम नहीं पाये जाते।

परमरूपवती[1] अर्द्धाङ्गिनी के पाने और आदि में उसके पवित्र प्रेम में आसक्त रहने ही से आगे इन की बुद्धि ऐसी विकसित हुई और ये शोभानिधान सकल गुण-खान श्री भगवान के प्रेमरंग में ऐसे रंजित हुये और ऐसे जगद्विख्यात प्रकृत कवि हुये।

करुणानिधान भगवान ने अपने भविष्य भक्त की बुद्धि प्रखर करने और इन्हें प्रेमपथ में अचल करने के लिये ही यह सुयोग इन्हें आदि ही में दिया और यह कहावत कि "इश्क मजाजी से इश्क सादिक़ हासिल होती है" इन के सम्बन्ध में पूरा चरितार्थ किया। क्योंकि महापुरुषों का जीवन जिस उपाय से गठित होगा उस की आयोजना पहिले ही से हुई रहती है और भगवत्कृपा से अनुकूलावस्था आप ही आप उपस्थित हो जाती है एवम् आत्मोन्नति का पथ आप ही आप परिष्कृत हो जाता है।

गोस्वामी जी के सम्बन्ध में भी यही बात स्पष्ट देखी जाती है। पहिले रूपवती पत्नी के प्रेम में आसक्त रह कर पीछे उसी के कारण संसार से विरक्त हो आप अतुल्य शोभानिधान ईश्वर के अनुराग में निमग्न हो गये। प्रवाद है कि जब इन का ब्रजदेश में गमन हुआ था तो एक दिन रहस्य में एक महात्मा ने इन से कहा था कि "श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म और अवतारी हैं; और नरसिंह, बामन, परशुराम, रामचन्द्र अंशकला से अवतार हैं। आप श्रीकृष्ण महाराज की उपासना क्यों नहीं करते? इन्होंने माधुर्य्यभाव से प्रेमभक्ति को दृढ़ाते हुए ऐसा उत्तर दिया था कि श्रीरामचन्द्र दशरथनन्दन को बहुत सुन्दर सुकुमार एवम् परम शोभाययान मनोहर मूर्त्ति देखकर हमारा मन ऐसा लग गया है कि उन से विलग नहीं होता। अब तो आप के बचन से उनमें कुछ ईश्वरत्व भी ज्ञात होता है। यह बात मनमानी हुई।" इस उपाख्यान से भी सिद्ध होता है कि आप सौन्दर्य्योपासक थे। और सौन्दर्य की उपासना आत्मा की ही उपासना है, यदि वह पवित्र भाव से हो। इसी से एक बंगदेशीय महिला ने कहा है कि 'सौन्दर्य्य आत्मेर छाया।' और कीट्स साहब[2] कहते हैं कि "सौन्दर्य्य ही सत्यता है, सत्यता ही सौन्दर्य्य है अर्थात् जो कुछ हमलोग इस भूतल पर जानते हैं और जो कुछ जानना हमलोगों को आवश्यक है वे सब सौन्दर्य ही हैं।"

एक मुसलमान कवि का कथन है कि "हुस्न खूबां बहे हकबीनी मिसाले ऐन कस्त। मिदेहद बिनाइ अन्दर दीदए नज्जारे मन॥" अर्थात् कामनियों की कमनीय कान्ति ईश्वर दर्शन के लिये आरसी के सदृश्य है; उसकी ओर दृष्टिपात करने से दिव्यदृष्टि की शक्तिवृद्धि होती है।

तब सौन्दर्य्योपासक गोसाईं जी अपनी स्त्री को आंखों की ओट कैसे होने देते? इसी से स्त्री के मायके से कई बार बुलाहट आने पर भी आपने उन्हें वहाँ जाने नहीं दिया। अन्ततः इन के साले अपनी बहन को लिवाने आये। तब भी ये उन्हें विदा करने पर सम्मत नहीं हुए। कहते हैं कि एक दिन आप हाट में कोई सौदा लाने गये थे इसी अवसर में इन के साले

१. जर्मन देशीय सुविख्यात कवि गोटी ने बुद्धि विकाशार्थ अन्य बातों में रूपवती नारियों से सम्भाषण करना भी माना है।

२. Beauty is truth, Truth is beauty, that is all.
Ye know on earth and all ye need to know —*Keats.*

अपनी बहन को लेकर घर चले गये। बाज़ार से लौट आने पर स्त्री को घर में न देख कर और पड़ोसियों से भाई के संग उनके पीहर चले जाने का हाल सुनकर आप उन के वियोग में व्यग्र हो गये एवम् उसी दम इन्होंने भी ससुराल की राह ली। क्यों न हो? "आशिके ज़ार हुं मैं तालिब आराम नहीं। नंगो नामूस से कुछ अपने तइं काम नहीं !!" स्त्री वहाँ पहुँच कर अपने परिवार से भली भांति मिलने भी नहीं पाई थी कि आप वहां जा धमके। प्रियादास जी ने 'भक्त माल' की टीका में इसी घटना प्रसंग से इन की कथा आरंभ की है।

श्री मन्महाराजा रघुराज सिंह जी एवम् मुरादाबाद निवासी पंडितवर ज्वालाप्रसादजी ने अपनी बड़ी रामायण में इस आख्यायिका का जो वर्णन किया है उस का आशय यह है कि आधीरात के समय जब निविड़ अन्धियारी के कारण अपना हाथ पसारा भी नहीं सूझता था, मेघ की झड़ी बँधी थी, एवम् यमुना लहरें ले रही थीं कामपीड़ित गोसाईं जी यमुना तयर कर ससुरार पहुँचे। बाहर की किवाड़ बन्द थी, छप्पर से लटकते हुए एक सर्प को पकड़ कर आप छप्पर फांद स्त्री के पास गये और उस को जगाया। वे पहले अचकानीं, फिर इन्हें पहचान कर उन्हें शंका हुई, इत्यादि।

गोसाईं जी को यह कैसे ज्ञात हुआ कि अमुक गृह में ही उन की स्त्री सोई थीं और वहां कोई अन्य व्यक्ति नहीं था? गोसाईं जी सदर दरवाजा खुलवा कर भीतर क्यों नहीं गये? क्या ऐसा करने से इन के ससुरार वाले इन की जान ले लेते? ऐसे तो जान जाने की सम्भावना नहीं थीं क्योंकि वे लोग तो समझ ही जाते कि पत्नीप्रेम के कारण चले आये हैं। परन्तु अन्धेरी रात में जो कहीं लोग इन के इस रीति से छप्पर तड़प कर आँगन में घुसने की आहट पाते तो चोर जान कर इन का काम तो निश्चय ही तमाम कर देते। आश्चर्य इसी बात का है कि इनके छप्पर पर चलने एवम् आंगन में धड़ से कूदने पर भी किसी की नींद नहीं टूटी।

या तो गोस्वामी जी की परमाशक्ति दिखलाने के लिये लोगों ने इस कथा में इतना रंग चढ़ाया है या लेखकों की विल्वमंगल की बात स्मरण आ गई है जिन की चिन्तामणि नामक एक गनिका में बड़ी आसक्ति थी और जो पूर्वकथित रीति से एक बार उसके पास पहुँचे थे।[१]

पंडित जी की बड़ी आकारवाली रामायण में तो ऐसा लेख है। और सम्वत् १६६६ की छपी गुटका (छोटी) रामायण में आप कहते हैं कि गोसाईं जी नहाने गये थे वहाँ से लौटकर आने पर स्त्री के चले जाने का समाचार सुन कर ये उसी दशा में ससुरार चले गये। सास ने बस्त्रादि पहनने को दिया और जब स्त्री से भेंट हुई" इत्यादि। यह तो पंडित जी ही बतावें कि पूर्वोक्त दोनों बातों में से कौन ठीक है। यदि कोई कहे कि बड़ी रामायण वाला लेख तो श्रीमन्महाराज रघुराज सिंह कृत 'भक्तमाला राम रसिकावली' से अविकल उद्धृत किया गया है, उस लेख की बातें पण्डित जी की लिखी या कही नहीं कहला सकतीं, तो आप की वह रामायण देख कर कोई कैसे जान सकता है कि वह पदबद्ध जीवन वृत्तान्त आपने किसी अन्य महात्मा के

---

१. श्री सीताराम भगवान प्रसाद कृत 'भक्त माल' की टीका पृष्ठ ५३७—५५२ देखिये।

ग्रंथ से अपनी पुस्तक में समावेशित किया है और उस के अमुक २ विषयों में आप सम्मत नहीं हैं ? इस की सूचना तो आप ने उस में कहीं नहीं दी है।

श्री रानी कमल कुँअरि ने गोसाईं जी को मुरदे पर चढ़ाकर गंगा[1] पार उतार कर लटकते हुये साँप के सहारे छत पर ले जाकर स्त्री के निकट पहुँचाया है। पूर्वोक्त पंडित जी ही ने रानी साहबा के ग्रंथ को भी शोधा है। यह बात आप ने स्पष्ट ही हमलोगों को जनाई है। परन्तु क्या शोधा सो जाना नहीं जाता। गोसाईं जी का गंगा पैरना या यमुना पैरना कौन ठीक है ?

गोस्वामी जी किसी रीति से ससुरार पहुंचे हों किन्तु इनका वहां पहुंचना देख कर इन की स्त्री को स्वभावत: बड़ी ही लज्जा हुई। अतएव भेंट होने पर उन्हों ने कदाचित् इन दोहों को कहा:—

"लाज न लागत आप को, दौड़े[2] आयहु साथ।
धिक २ ऐसे प्रेम को, कहा कहहुँ मैं नाथ॥
अस्थि-चर्म-मय देह मम, ता में जैसी प्रीति।
तैसी जो श्री राम महँ होति न तौ भवभीति॥"[3]

बस उसी क्षण सर्वमङ्गलमूल घड़ी पहुँच गयी। आप का पूर्व संचित सुसंस्कार फलीभूत हुआ उसी रात को आप के पवित्र जीवन का मानो प्रभात हुआ। उसी दम आप के चिताकाश में ज्ञान मारतंड का उदय हुआ और आप का सौभाग्यकमल विकसित हो गया। स्त्री न बोली, वरन् सृष्टि-आनन्द-दायक सुन्दर प्रातागमनसूचक पक्षी का कलरव हुआ। स्त्री वाणी ने 'जगौनी' का पूरा काम दिया। आप की मोहनिद्रा भङ्ग हो गई। आप उसी शुभमुहूर्त्त में वैराग्यपथ के सुपथगामी पथिक होने को कटिबद्ध हो गये। विचारा, कि अब इस संसार में मेरा कौन है ? मन की ऐसी अवस्था होने ही से वैराग्य उदय होता है, वैराग्य होने ही से

---

१. न जाने किसी लेखक ने स्त्री से भेंट करने के लिये इन्हें नर्वदा और टापटी पार क्यों नहीं उतारा ?

२. कदाचित इसी से श्री योगेन्द्रमोहनदत्त ने लिखा है कि स्त्री का पित्रालय जाना सुनकर ये दौड़ा दौड़ रास्ते में डोली के पास पहुँचे और डोली का दरवाजा खोल कर उस में स्त्री को देख उस से वार्त्तालाप की अभिलाषा से डोली के साथ दौड़ने लगे। इस पर लज्जित और क्रोधित होने पर भी इन की स्त्री ने साधवी स्त्री के न्याय इन्हें उपदेश किया। इत्यादि 'प्रवासी' भाग ११, खंड २, पृष्ठ १२३।

३. श्री सीतारामशरण, भगवान प्रसाद ने 'भक्त माल' की टीका में उस स्थान पर एक और दोहा लिखा है :—"काम बाम की प्रीति जग, नित नित होत पुरान। राम प्रीति नित हीं नई, बेद पुरान प्रमान। भ० म० टीका प्रथम संस्करण पृ० १०६४। यह निश्चयहै कि बात चीत दोहों में नहीं हुई थी। पीछे लोगों ने उसे दोहाबद्ध कर दिया है।

सत्यस्वरूप की ओर मन जाता है और तभी मनुष्य साधक होने के योग्य होता है। आज दाम्पत्य स्रोत में प्रागाढ्य प्रेमप्रवाह की गति स्त्री वाक्य द्वारा अकस्मात् अवरोधित होने से, प्रेमधारा पलट गई और प्रभु-पद-अनन्त-सागर की ओर सवेग प्रधावित हुई। उपासना वही सौंदर्यदेव ही की रही परन्तु प्रतिमा बदल गई। आपने निज हृदयमन्दिर से छविमयी स्त्रीविग्रह को वहिष्कृत कर उसे विस्मृति तड़ाग में भसा दिया और उसके स्थान में शोभानिधान श्री भगवान की परम मोहिनी मूर्त्ति स्थापित की और अब उसी की अखण्ड आराधना में आप मग्न हुए। धन्य आप की स्त्री! और धन्य आप! दोनों ही एक समान प्रशंसनीय और पूजनीय हैं इस में संदेह नहीं।

सारांश यह कि स्त्री वाक्य से आप को उसी क्षण वैराग्य उत्पन्न हो गया। आप उसी दम वहाँ से उठ खड़े हुए। यह देख स्त्री को बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ कि "हा! हम ने यह क्या किया? क्यों ऐसी बात कहने गई जिस से हमारे प्रेम में विह्वल हमारे परम पूजनीय पतिदेव हमें त्यागने पर उद्यत हो गये।" वे पैरों पर गिर कर विनती करने लगीं; अपराध क्षमा कराने लगीं; भोजनान्तर साथ आने की प्रतिज्ञा करने लगीं। पर आप ने एक भी न सुनी। सुनें तो कैसे? हृदय के अन्तरतम प्रदेश में प्रवेश कर स्त्री वाक्य ने सोते हुए वैराग्य को जगा दिया था, हृदय की ज्ञानतंत्री को हिला दिया था। उस से 'हरि प्रेम, प्रभु प्रेम' इत्यादि स्वर निकल रहे थे। अब दूसरी ध्वनि कहाँ? स्त्री भी अनुनय विनय कर हार मान चुप बैठ गई। विशेष आग्रह करना कदाचित् उन्हें व्यर्थ जान पड़ा। उन्होंने कदाचित् सोचा होगा कि आप रूस कर घर चले जायेंगे और यदि इन के सचमुच विरक्त होने की इच्छा उनपर प्रगट भी हो गई हो, तो उन्होंने अब इस काम में बाधा डालना अनुचित समझा होगा, क्योंकि जिस के मुख से सहज ही ऐसे वाक्य स्फुरित हों उस का हृदय भी निश्चय वैराग्यमय होगा, वह हरि प्रेम से कदापि शून्य नहीं होगा और कोई सच्चा हरिप्रेमी किसी हरिभक्त के प्रेम भजन में कदापि वाधक भी नहीं हो सकता।

कहते हैं कि आप के घर छोड़ने पर आप की स्त्री ने एकबार आप के पास यह दोहा लिख भेजा था :—

> "कटि की खीनी कनक सी, रहत सखिन सँग सोई।
> मोह फटे की डर नहीं, अनत कटत जनि होई॥"

कदाचित् यह दोहा उन्हों ने उस समय भेजा था जब उन्हें इस बात की निश्चय खबर नहीं थी कि आप गृहत्यागी होने पर किस रङ्ग में रंगे थे। अतएव स्वामी जी ने भी अपनी यथार्थावस्था इस दोहा में उन्हें जना दी :—

> "कटे एक रघुनाथ सों, बांधि जटा सिर केस।
> हम तो चाखा प्रेम रस, पत्नी के उपदेस॥"

यह उत्तर पाकर स्त्री बड़ी प्रसन्न हुई होगी। ईश्वर से इन के भक्तिपथ में अविचल रहने की प्रार्थना भी की होगी। एवम् यह बात निश्चय जान लेने पर कि उन के स्वामी प्रभु प्रेम में

मत्त हो शुद्ध चित्त से ईश्वराराधना में रत हैं वे भी अधिकतर चाव से सन्तसेवाव्रत अवलम्बन कर दिन बिताने लगी होंगी।

कथित है कि एक दिन चित्रकूट या राजापुर से लौटते समय ईश्वरध्यान में निमग्न गोसाईं जी अनजानते अपने ससुरार पहुँच गये थे। उस समय आप की वृद्धावस्था हो गई थी। आप की स्त्री भी निश्चय बूढ़ी हो गई थीं। उन्हों ने अपने व्रतानुसार चौका आदि का प्रबन्ध कर दिया। आप पाककार्य्य में प्रवृत्त हुये और वे वहीं बैठकर कुछ बातें करने लगीं। दो चार बातों से ही उन्हें ज्ञात हो गया कि ये अवश्य उनके परमपूजनीय ईश्वरस्वरूप स्वामी ही थे। अहा ! उस समय उन को कैसा अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ होगा ? जिस सुख की उन्हें स्वप्न में भी कभी आशा नहीं थी आज उन्हें वह सुख आप ही आप अकस्मात् प्राप्त हुआ। पतिदर्शन—इस के समान आर्य्य महिलाओं को संसार में क्या कोई अन्य सुख हो सकता है ? पति आनन्ददाता, पति सुखदाता, पति प्राणदाता, पति देवता, पति परमेश्वर—भला उसके दर्शनसुख की सीमा कहाँ ? उस में भी जब वह दर्शन चिरविछोह के अनन्तर हो, आशातीतावस्था में हो; पति के ईश्वर की अनन्य भक्ति प्राप्त होने पर हो। क्योंकि एक पति, दूसरे हरिभक्त सन्त—सोना में सुगन्ध। पति को पहचानकर उन के चित्त की कैसी दशा हुई होगी, उन के मन में कैसे २ भावों की तरंगें उठने लगी होंगी यह तो सहृदय पाठक सहज ही में अनुभव कर सकते हैं। पूर्व घटनाएँ स्मृतिपथ में एक २ करके आने लगीं। वह दिन जब ये उन के मुख से ज्ञानोत्पादक विरागजनक, यद्यपि मर्मवेधक, वाक्य सुनकर निकल खड़े हुये थे, उन के अनुनयविनय पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया था, उनकी प्रार्थना कुछ भी कान नहीं की थी, भोजन तक भी नहीं ग्रहण किया था, आज वह चित्र उन के नयनों के सामने खड़ा होकर उन के चित्त को व्यथित और बुद्धि को भ्रमित करने लगा। अपने ही को पति विछोह का कारण (मान) उन्होंने अपने को आज भी कितना धिक्कार दिया होगा। जिस सजीव प्रतिमा की सेवा से उन्हें दोनों लोकों में स्वर्ग सुख प्राप्त होता, हा ! उस को उन्हों ने कठोर वाक्य कहकर स्वयम् ही विलग कर दिया था। इस का सोच उन के हृदय में कैसी २ तरङ्गें उठायी होंगी। प्रेम ने चाहा कि चट दौड़ कर प्राणाधार के चरणों में लिपटकर क्षमाप्रार्थना करें। परन्तु पूर्व अपराध ने साहस नहीं दिलाया। किन्तु स्वामी के चरणों को धोकर चरणोदक पान करने का तो दृढ़ विचार हुआ और उन्हों ने चरण धोना चाहा। दुर्भाग्यवश स्वामी ने उन्हें इस सुख से वञ्चित रखा। मन में मड़ोर खाकर वे बैठ गईं। वे जानती थीं कि स्वामी को खटाई मिरचाई की बड़ी रुचि थी; अतएव उन्हों ने पूछा कि 'मिरचाई चाहिये।' गोसाईं जी ने उत्तर दिया कि 'मेरी झोली में है।' फिर जब खटाई एवम् पूजा के निमित्त कपूरादि लाने के लिये उन्हों ने पूछा तब गोस्वामी जी ने उन वस्तुओं को भी झोली (खरिया) में रहना कहा। निदान गोसाईंजी श्रीठाकुर जी को भोग लगा, भोजन के अन्तर निद्रादेवी की गोद में जा रहे। परन्तु इन की स्त्री नाना भांति के संकल्प विकल्प का खिलौना बन जाग्रण करती रहीं। कभी संग जाने की मनसा करतीं और कभी सोचतीं कि स्वामी विरक्त हो निर्द्वन्द्व भाव से ईश्वर भजन में रत हैं अब हम भारस्वरूप होकर उन के संग रहकर उन्हें क्यों कष्ट दें। फिर विचार करतीं कि जब झोली में खटाई मिरचाई आदि ढोते स्वामी को कष्ट नहीं होता तो हमारे साथ रहने से क्यों

भार होगा ? इसीप्रकार सोचते विचारते आगा पीछा करते भोर हुआ। प्रातःकाल उन्हों ने गोसाईं जी को कुछ दिन वहीं ठहरने और पूजापाठ करने के लिये विनीत भाव से प्रार्थना की। गोसाईं जी ठहरने पर सम्मत नहीं हुये। तब इन के चरणों में गिरकर अति नम्र भाव से अपना परिचय दे इन की स्त्री ने परम पूजनीय स्वामी की चरण सेवा के लिये एवम् पति के साथ २ श्री रामचन्द्र के भजन करने के लिये साथ चलने की इच्छा प्रकट की और प्रार्थना की। परन्तु स्वामीजी इसपर भी सम्मत न हुए। तब उन्होंने कहा कि

खरिया खरी कपूर लों, उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलिके, अचल करो अनुराग॥

अर्थात् जब खरी से कपूर तक झोरी में टांगे फिरते हैं तब स्त्री को परित्याग करना उचित नहीं। यातो मुझे भी साथ लीजिये या झोली को भी परित्याग कीजिये।

यह सुनते ही स्वामी जी ने सब वस्तुओं के समेत अपनी झोली वहीं पटक दी। स्त्री का यह दूसरा उपदेश हुआ और आप ने इसे भी मान लिया। यह देख कर स्त्री को अति आनन्द हुआ और निज कल्याणार्थ पति से आशीर्वाद की प्रार्थी हुई। स्त्री के सम्बन्ध में ये ही सब कथाएँ प्रचलित हैं। इन की सत्यता का कोई प्रबल प्रमाण नहीं होने पर भी हम इतना अवश्य कहेंगे कि धर्म्मवती पत्नी होने से पति का बहुत कुछ सुधार और उपकार होता है, और हो सकता है, इस में तनिक भी सन्देह नहीं। इस का बहुतेरों को अनुभव होगा यद्यपि वे इस विचार से कि स्त्री से उपदेश पाने तथा उसके उपदेशानुसार कार्य करने की बात जनाने में लज्जास्पद होना है इस बात को किसी पर प्रगट नहीं करते हों। परन्तु बङ्गदेशीय प्रसिद्ध उपन्यास लेखक स्वर्गीय बाबू बंकिमचन्द्र चटोपाध्याय ने अपनी स्त्री के विषय में स्पष्ट लिखा है कि "हमारे जीवन पर सब से अधिक प्रभाव हमारी घरनी का पड़ा है। हमारी जीवनी लिखने के लिये बैठने पर उसकी भी जीवनी लिखनी पड़ेगी। यदि हमारी पत्नी नहीं रहती तो आज हम क्या हो जाते सो नहीं कहा जा सकता। नीति-गुरु, धर्म्मगुरु हमारे लिये सब वही है।" उन्ही के लिये क्यों ? कितनों के लिये स्त्री गुरु होती है चाहे कोई स्वीकार करे या न करे।

परन्तु यह बात तभी संभव है जब स्त्री धर्म्म शिक्षा प्राप्त और लिखी पढ़ी हो। वक्तृबाजी और बाइकबाजी की उतनी आवश्यकता नहीं। स्वामी जी की स्त्री रूपवती, गुणवती, विद्यावती, बुद्धिमती, धर्म्मरती सभी थीं। इस का प्रमाण क्या पाठकों को ऊपर नहीं मिला है ?

पंचम परिच्छेद

गुरु

यह बात अभी कही गई है कि गोस्वामीजी को अपनी प्रेममयी पत्नी का उपदेशमय वाक्य सुनकर वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसी क्षण संसार से मुँह मोड़ कर एवम् ऐसी प्रिय सहधर्म्मिणी को, जिस के निमिष विछोह से इन का चित्त व्यथित होने लगता था, परित्याग कर ये गृहित्यागी हो गये।

किसी २ के लेखानुसार आप ससुरार से लौटकर घर गये और तब काशी आये। हमारी समझ में यह ठीक नहीं जचता। स्त्री की चोखी वाणी से इन का मर्मस्थल विद्ध गया था। उस समय इन्हें क्या घर बार ही की सुधि रही होगी? इन का जीवनधन तो केवल स्त्री थी जब उसी को त्याग चले तब घर में था ही क्या जिसके लिये वहां जाते? प्रियादास जी ने भी लिखा है "सुनी जब बात मानो ह्वै गयो प्रभात वह पाछे पछितात तजि कासीपुरी धाये हैं।"

इससे भी ससुरार से काशीपुरी जाना सिद्ध होता है। घर जाना और तब वहाँ से काशी जाना यह बात नहीं पाई जाती।

प्रवाद है कि ससुरार से निकल चलने पर राह में एक ठिकाने गंगाजल पानकर ये सोये हुये थे, स्वप्न में शिव जी ने इन्हें राम जी के षड़ाक्षर (षडक्षर) मन्त्रराज का उपदेश कर आदेश किया कि "यही मंत्र तथा श्रीरामनाम तुम जपा करो, इसी से श्रीरामचन्द्र दर्शन देंगे।" आप जाग उठे एवम् उसी क्षण से श्रीराम नाम जपने में उत्साहपूर्वक प्रवृत्त हुये। इसी से इन्हों ने श्री शिवजी को गुरुदेव करके माना है जैसा कि 'हनुमान वाहुक' में देखा जाता है—"सीतापति साहब सहाय हनुमान नित हित उपदेश को महेश मानो गुरु हैं।"

स्वप्न की बात ठीक हो या नहीं परन्तु 'हितोपदेश' में ये महेश को गुरु के सदृश्य अवश्य जानते थे। गुरु ही क्यों? इन्हों ने तो ऐसा भी लिखा है 'गुरु पितु मातु महेस भवानी।'

किसी ने स्त्री के उपदेश के अनन्तर शूकर क्षेत्र[1] में गुरु का रामायण का उपदेश देना लिखा है और किसी ने काशी में आना और फिर शूकर क्षेत्र में जाकर गुरु से रामायण

---

१. सूकर क्षेत्र कई हैं। एक तो जिला इटा वाला सारों जिसके विषय में ३१ अगस्त १९१७ई०के 'लीडर' में एक महाशय ने लिखा था कि गोसाईं जी के वहाँ आवासित होने का कोई चिन्ह वा निशान नहीं पता है और न उसके बारे में वहां कोई दन्तकथा ही प्रचलित है।

किन्तु अब देखते हैं कि यही सारों (सूकर क्षेत्र) गोसाईं जी का सर्वथा अपनाने के यत्न का विचार कर रहा है।

सुनना लिखा है। महात्मा श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद जी ने भक्त माल की टीका में लिखा है "कि तद(न)न्तर (स्त्री के उपदेश के पीछे) बाराह क्षेत्र में आकर श्री रामानन्दीय महात्मा नरहरिदास जी से श्रीराममंत्रादिक पंच संस्कार ग्रहण कर श्रीरामायण जी सुना, फिर आज्ञा लेकर वहाँ से श्री काशी आये।"[१]

उन के लेख से प्रतीत होता है कि ससुरार से आते समय इन की राह ही में बाराह क्षेत्र पड़ा था। परन्तु वह राह ही में मिला हो या ये काशी आकर वहाँ गये हों यह बात इतनी विवेचनीय नहीं है। बात विचारने की यह है कि गोसाईं जी ने कहा है "मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत। समुझी नहि तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत।।"

इस से इन का शूकर क्षेत्र में जाना तथा वहां रामायण श्रवण करना सिद्ध होता है। यह तो निर्विवाद है, चाहे ये कभी और कहीं से गये हों। परन्तु साथ ही साथ इन की अति अचैतन्यावस्था में रामायण श्रवण करना पाया जाता है। लोग कहते हैं और यह हो भी सकता है कि उस विषय में उस समय अबोधावस्था के कारण इन्हों ने ऐसा लिखा है। किन्तु आप की अन्य कविताओं से भी जो अन्यत्र उद्धृत हुई हैं आप का बाल्यावस्था में सन्तों का साथ होना प्रलक्षित होता है। सब ठौर वही अबोधावस्था कह कर हमारी जान का छुटकारा नहीं होगा।

श्री भगवान प्रसाद जी ने यह भी लिखा है कि "यज्ञोपवीत होने पर विद्याध्ययन किया विवाह गौना भी हुआ।"[२] इस से स्पष्ट विदित होता है कि विवाह गौना के पूर्व ही शिक्षा हुई; और विवाह गौना या स्त्री में ऐसी आसक्ति एवम् विरक्त होना कब सम्भव है? साधारणतः कम से कम २० वर्ष की अवस्था के ऊपर होने पर। तब लड़कपन में ही विद्याध्ययन आरम्भ करने पर उस अवस्था में तो कभी ये ऐसे निर्बोध नहीं हो सकते थे कि रामचरित सम्बन्धी बातें समझने में 'अतिअचेत' हों तथा गुरु के बारंबार कहने पर भी कुछ नहीं समझे हों।

हमारी समझ में यह बात आती है कि बालपन ही में सन्तों के संग रह कर इन्हों ने शूकर क्षेत्र में अपने गुरु—विद्या गुरु—से रामायण भी सुनी हो, फिर गृहित्यागी होने के अ(न)न्तर वहां पुनः जा कर उन्हीं महात्मा से इन्हों ने राममंत्रादिक संस्कार ग्रहण किया हो एवम् उन सब बातों की शिक्षा पाई हो जो गृहित्यागी होने पर विरक्त साधुओं को करना आवश्यक है। क्योंकि भारतवर्ष में शिष्य तो सभी होते हैं, परन्तु गृहस्थ चेला तथा विरक्त चेला में बहुत अन्तर होता है। गृहस्थ शिष्य की अपेक्षा विरक्त शिष्य को गुरु से आचार व्यवहार सम्बन्धी अधिक शिक्षा लेनी पड़ती है। अतएव इन के गृहस्थाश्रम के समय के गुरु, या विद्यागुरु, सोरों में थे जिन से इन्हों ने बालापन ही में रामायण भी सुनी (पढ़ी) थी। जब गृहित्यागी हो विरक्त होने चले

इस के सिवाय तीन और बाराह क्षेत्र हैं जिन में गोंडा जिला में सरयू तथा घाघरा का संगमस्थ स्थान सबों से अधिक प्रसिद्ध है। यह अयोध्या के समीप एक पुराना स्थान है और वहाँ आज भी बहुत साधु रहते हैं।

१. श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद लिखित 'भक्त माल की टीका' प्रथम संस्करण; पृ० १०६५ देखिए।

२. वही ग्रन्थ पृ० १०६४।

तो अन्य गुरु क्यों, और कहाँ, खोजने जायं, अपने वही पूर्व गुरु की सेवा में उपस्थित हो उन्हीं से आवश्यकीय मंत्रादिक ग्रहण कर काशी पधारे। यही अनुमान अवलम्बन करने से गोस्वामीजी तथा अन्यान्य लेखकों के परस्पर विरोध का निबटारा हो सकता है, अन्यथा नहीं। श्रीभगवान प्रसाद जी ने भी हमारे इस अनुमान को असंगत नहीं समझ कर लिख भेजा है कि "यह ऊहा बहुत ठीक है, यथार्थ हो सकता है।" अस्तु।

अब देखना होगा कि गोस्वामी जी के गुरु कौन थे? गुरु का नाम तो प्रत्यक्ष कहीं नहीं मिलता, परन्तु इन्हों ने 'रामचरित मानस' बालकाण्ड में गुरु की वंदना में लिखा है—

"बन्दौ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नररूप हरि।[1]
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर॥"

इसी बन्दना से लोग अनुमान करते हैं कि इन के गुरु श्री नरहरिदासजी थे और गुरु का नाम स्पष्ट नहीं कहना चाहिये इसी कारण से इन्हों ने 'नर' तथा 'हरि' इन शब्दों के मध्य में 'रूप' शब्द रख दिया है।

'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है कि इसी नर रूप हरि से लोगों ने निकाला है कि "नरहरिदास इन के गुरु थे। नरहरिदास श्री रामानन्द जी के बारह शिष्यों में से थे।" यह लिख कर ग्रियर्सन साहबवाली गोस्वामी जी की गुरु परम्परा की सूची जो 'इन्डियन एनीकुयेरी' में प्रकाशित हुई है ज्यों की त्यों इस टिप्पणी के साथ कि 'यह ठीक नहीं है' उस में उद्धृत कर दी गई है। परन्तु सूचीपत्र ठीक हो या नहीं, सम्पादक महाशयों ने यह स्पष्ट नहीं लिखा है कि श्री १०८ रामानन्द स्वामी जी के शिष्य नरहरिदास गोसाईं जी के गुरु नहीं थे। ऐसा नहीं करने से उन के लेख से यह अनुमान किया जा सकता है कि उन लोगों ने भी उन्हीं को गोसाईं जी का गुरु माना है।

निस्सन्देह की रामानन्द स्वामी के मुख्य १२ शिष्यों में[2] से एक नरहरियानन्द थे। उन्हीं को किसी ने नरहरिदास, किसी ने नरहरि आचारी एवम् किसी ने नरहरि स्वामी लिखा है। किन्तु श्री १०८ सामानन्द जी के चेले श्री नरहरि दास गोसाईं जी के गुरु नहीं हो सकते

---

१. 'नररूप हरि' गुरु का विशेषण भी हो सकता है। कैसे गुरु हैं कि नर के रूप तो हैं पर साक्षात ईश्वर ही हैं। गुरु में ऐसी बुद्धि रखनी ही चाहिये। या सूर्यवत हैं जैसे सूर्य्य अपनी रश्मिराशि से जगत का अन्धकार नाश कर देता है वैसे ही गुरु शिष्य के हृदय के अज्ञानान्धकार को अपने उपदेशरश्मि से नाशकर उसे सुख पहुँचाते हैं। कहा भी है :—"गु शब्दस्त्वन्धकारस्य रु शब्दतन्निरोधकः। अन्धकार निरोधत्व गुरु—रित्यभिधीयते।"

२. श्री अनन्तानंद; श्री सुरेशानन्द (सुरासुरानन्द), श्री कबीरजी, श्री सुखानन्द श्री पद्मावती, श्रीनरहरियानंद (नरहरिदास), श्री पीपाजी, श्री भवानन्द, श्री रामदास (रइदास, रविदास) श्रीधन्ना, श्री सेन तथा श्री सुरसुरी (सुरेश्वरी जी) यही लोग मुख्य चेले हैं। और भी अनेक चेले सुने जाते हैं।

क्योंकि श्री रामानन्द जी का जन्म १३५६ संबत्[1] में बताते हैं। अधिकांश इतिहास-वेत्ताओं ने श्री इन का समय १४वीं शताब्दि माना है और कोई २ चौदहवीं का अन्त भाग या १५ वीं शताब्दि का आरम्भ मानते हैं। यदि हम श्री रामानन्द जी का समय १५वीं शताब्दि का आदि ही मान लें और गोसाईं जी का जन्म मयंक ही के अनुसार १५५४ संबत् स्वीकार कर लें तौ भी दोनों महापुरुषों की सुख्याति के समय में सवा सौ डेढ़ सौ वर्षों का अन्तर हो जाता है। इतने समय में केवल एक ही पीढ़ी कदापि नहीं हो सकती।

अतएव गोस्वामी जी के गुरु वे नरहरिदास हो सकते हैं (यदि इनके गुरु का सचमुच यही नाम हो) जो श्री १०८ रामानन्द जी के चेले श्री अनन्तानन्द के मंत्र शिष्य तथा उन्हीं के दूसरे चेले सुरसुरानन्द जी के साधक चेले थे अर्थात् जो श्री १०८ रामानन्द स्वामी के पोते चेले, श्री अनन्तानन्द के चेले, एवम् श्री सुरसुरानन्दजी के भतीजे तथा साद्ध(ध)क चेले थे।

किसी २ ने नरहरिदास जी को श्री अनन्तानन्द जी का पौत्र श्री रंग जी का शिष्य लिखा है। यह बात हमारे पक्ष में हानिकारिणी नहीं वरन् इस से उस को लाभ ही पहुँचता है कि एक या दो पीढ़ियां और बढ़ जाती हैं।

किसी २ के मत से बाराह क्षेत्र-निवासी गोपालदास जी के चेले नरहरि दास गोसाईं जी के गुरु थे; और 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में जो ग्रियर्सन साहबवाली सूची समावेशित की गई है उस में भी गोपालदास जी को नरहरिदास जी का गुरु लिखा है। परन्तु यह बात ठीक नहीं प्रतीत होती, क्यों कि श्री नाभा जी गोसाईं जी के समसामयिक थे और दोनों में भेंट की भी बात कही जाती है। वे श्री १०८ रामानन्द जी से ५वीं पीढ़ी में हैं और पूर्वोक्त सूची के अनुसार गोसाईं जी श्री रामानन्द जी से ८वीं पीढ़ी में होते हैं। इस से इन दोनों महानुभावों में ४ पीढ़ियों का अन्तर होता है। तब श्री नाभाजी कितने दिन जीवित रहे होंगे कि गोसाईं जी ने ७२[2] वर्ष की अवस्था के बाद दिल्ली दरबार से लौटने पर व्रजप्रदेश में जाकर उन से साक्षात्कार का आनन्द उठाया?

---

१. विल्सन साहब ने इन का जन्म ११वीं (के) अन्त में और इन की सुख्याति का समय १२वीं शताब्दि का प्रथम अर्द्धांश माना है। परन्तु श्री रामानुज जी का समय ११वीं शताब्दि माना जाता है तब श्री रामानन्द जी का समय भी ११वीं सदी नहीं हो सकता क्योंकि श्री १०८ रामानन्द जी० श्री १०८ रामानुज स्वामी से पांच पीढ़ी नीचे हैं। यहाँ हमें सुख्याति के समय से प्रयोजन नहीं क्योंकि सुख्याति के बहुत दिन पूर्व आप किसी के शिष्य हुये होंगे।

२. गोसाईं जी का जन्म १५८९ संबत् में माना जाता है और इन का दिल्ली दरबार में जहांगीर बादशाह के समय जाना कहा जाता है अतएव इन का दिल्ली जाना १६०५ ई० (सं० १६६२) के अनन्तर ही हुआ होगा। दशम परिच्छेद देखिये।

क	ख[1]
१. श्री १०८ रामानन्द स्वामी ।	१. श्री १०८ रामानन्द स्वामी ।
२. श्री अनन्तानन्द जी ।	२. श्री सुरसुरानन्द जी ।
३. पौहारी श्री कृष्ण दासजी ।	३. श्री माधवानन्द जी ।
४. श्री अग्रदास जी ।	४. श्री गरीबानन्द जी ।
५. श्री नाभा जी ।	५. श्री लक्ष्मी दास जी ।
—	६. श्री गोपाल दास जी ।
—	७. श्री नरहरि दासजी ।
—	८. गोसाईं तुलसीदास जी ।

श्री स्वामी नाभा जी कृत मूल 'भक्त माल' में दोनों नरहरिदास का वर्णन आया है।

अतएव यदि नरहरिदास नामक महात्मा गोस्वामी जी के गुरु थे तो वे श्री रामानंद स्वामी के पोते शिष्य नरहरि दास जी थे। अन्य कोई नरहरिदास नहीं थे।[2]

हां! इतना और भी कह देना है कि कोई २ महाशय श्री रामदासजी को इनका गुरु मानते हैं; परन्तु वे रामदास जी कौन थे सो नहीं बताते। यों तो रामदास सभी साधु महात्मा हैं।

---

१. ग्रियर्सन साहबवाली सूची का यह अंशमात्र है।

२. उक्त गौरी शंकर जी कोई नरहरिदास साधु की बात नहीं कहते। वह लिखते हैं कि "गोसाईं जी के माता-पिता के स्वर्गवास पर उन की अनाथावस्था में (सोरों) नगर के चौधरी, सनाढ्य कुलरत्न, सर्वशास्त्रज्ञ श्री पं० नरसिंह जी ने इन को पाला-पोसा पढ़ाया-लिखाया और गृहस्थ बनाया था।"

षष्ठ परिच्छेद

राजापुर वास

स्त्री के वाक्य से विरक्त होकर गुरु से राममंत्रादि ग्रहण कर गोस्वामी जी काशी में आ बसे। किसी के मत से अयोध्या होते काशी आये। यह बात असम्भव नहीं। अपने प्रभु के जन्म स्थान में कुछ काल निवास कर यदि काशी आये तो इस में सन्देह ही क्या है? और प्रियादास जी जो ससुरार से इन्हें काशी लाये हैं वह भी ठीक ही है। वहाँ से चल कर यथायोग्य अन्य स्थानों में ठहरते काशी आये। प्रियादास जी ने यह कहा ही नहीं है कि राह में कहीं नहीं ठहरे। उनके कथन का आशय यही है कि ससुरार से तुरत काशी की ओर चल निकले।

गोस्वामी जी प्रायः काशी में रहते थे। परन्तु अयोध्या जी भी विशेषतः जाते और रहते थे एवम् चित्रकूट, मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, पुरुषोत्तमपुरी, प्रयाग आदि स्थानों में भी पहुंच जाते थे और तीर्थयात्रा के समय मार्गस्थ छोटे बड़े अन्य गांवों के निवासियों को भी अपने दर्शन से कृतार्थ किया करते थे। विरक्त होने पर ही कुछ काल राजापुर में भी ठहरे थे और वहां पीछे भी जाया करते थे।

काशी तथा अयोध्या, एवम् गंगा तथा सरयू के तट, को विहाय ये राजापुर में जाकर क्यों भजन करने लगे थे यह प्रश्न बहुतेरों के मन में उठ सकता है। महात्माओं का तो कथन यह है कि किसी कारण से इन के लिये वहीं कुछ काल भजन करना उपयुक्त विचार कर प्रभु ने हनुमान जी तथा शिव जी के द्वारा इन के मन में प्रेरणा कराई थी। यह गुप्त रहस्य है। हमारी समझ में साधुओं की मौज। और भजन करने में यह कुछ नियम नहीं कि अमुक स्थान ही में रह कर भजन किया जाय। आप रमता साधु थे। भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों में विचरण किया करते थे। जहां मन की मौज हुई वहीं कुछ दिन ठहर गये, जहां चित्त नहीं लगा किसी के अनुनय विनय पर भी वहां नहीं ठहरे—यह बात तो साधुओं में प्रायः देखी जाती है। ऐसा लोग क्यों करते हैं इस का हाल वे ही जानें। परन्तु यहां पर हम पाठकों को एक अपनी जानी हुई कथा सुनाते हैं।

आज से ४० वर्ष हुये कि तैलङ्गदेशीय उदासी साधु बाबा गरीब दास जी प्रायः हमारी बस्ती[1] में आकर एक पाकड़ के वृक्ष के तले ठाकुरबारी के समीप महावीर स्थान में ठहरा

---

१. अख्तियारपुर आरा नगर से लगभग डेढ़ कोस सीधे पश्चिम है।

करते थे। आप की दशा विचित्र थी। कभी महीनों तक धूनी की राख घोल छान कर शर्बत की नाई पीया करते, कभी दिनों तक कच्चे आम की खटाई खाया करते; कभी कोई जो कुछ श्रद्धापूर्वक भोजन के लिये ले जाता उसे सहर्ष खा लेते; कभी किसी का लाया भोज्य पदार्थ देखकर उसे गाली देने लगते और जब डर से भोजन ले जाने का किसी को साहस नहीं होता एवम् कुछ दिन गांव से भोजन जाना बन्द हो जाता तब भी गाली देना आरंभ करते। एक दिन हमारे नगर-निवासी एक भद्र पुरुष मु० गोपाल लाल जो सर्वदा संतसंगति में रहा करते थे, उन्हें गाली देते सुनकर, विनीत भाव से दोनों हाथ जोड़कर बोले कि "महाराज! जब लोग आप की सेवा में भोजन लाते हैं तब आप कुवाच्य कहते हैं और जब नहीं लाते तब भी गाली सुनाते हैं; आप के लिये तो संसार ही घर है; तब यहां विराजमान होकर अपने पर क्यों कष्ट उठाते हैं?" यह सुनकर महात्मा जी बहुत हंसने लगे और बोले "गोपाल! तू क्या समझेगा? जो काम हमारा अन्यत्र वर्ष दिन में होगा वह यहां छः महीने में होगा। यहां गुप्त रूप से एक बड़े महात्मा विराजमान हैं।" यह बात श्रवण करने से सभी लोग चकित तथा स्तम्भित हो गये। क्योंकि इतने दिनों तक नगर-निवासियों को कभी उनका दर्शन नहीं हुआ था। दर्शन कैसे हो? जब उस रीति की आंखें बनाई जायं, वैसा चित्त बनाया जाय तब तो। और यदि किसी को सौभाग्यवश हुआ भी तो उसने दूसरों पर यह बात कभी प्रगट भी नहीं की थी।

सारांश यह कि हमारा गांव कोई तीर्थस्थल नहीं, वहां कोई पवित्र नदी नहीं, बन पर्वत नहीं, परन्तु बाबा गरीब दास जी ने ईश्वर की प्रेरणा से वहीं ठहर कर कुछ काल भजन करना उपयुक्त समझा था। और राजापुर के निकट तो कृष्णप्रिया, कृष्णसलिला, कलकलनादिनी, परमानन्द प्रदायिनी रविजा लाखों मनुष्यों का पाप प्रहार कर उन्हें गोलोक में पहुँचाने वाली प्रवाहित है। वहां कुछ दिन रह कर भजन करने में क्या सन्देह हो सकता है।

परन्तु काशी से गोस्वामी जी को भारी सम्बन्ध है। काशी ही में आप को रघुनायक-पायक हनुमान का दर्शन हुआ है। वहीं सर्वजीव-मुक्तिदायक भोलानाथ के दर्शन का सुख प्राप्त हुआ है और वहीं सकल अघनाशक अलभसुखदायक श्री रघुनायक के दर्शन का सूत्रपात हुआ है। काशी में आप के कई एक चमत्कार देखे गये हैं। काशी में अस्सी पर आप के नाम का एक घाट है; एक कोठरी में आप की चरणपादुका, गद्दी, चँवर, इत्यादि तथा आप की संस्थापित हनुमान जी की मूर्त्तियां विराजमान हैं।

सप्तम परिच्छेद

श्री रामदर्शन

"आशिक़ां रा सूए जानां इश्क़ रहबर कामिलस्त।
आशिक़ अर सादिक़ बवद मंज़िल ब मंज़िल मीरसद॥"

प्रेमियों का प्रेम ही उसे प्रेमपात्र के निकट पहुंचाने के लिये पथप्रदर्शक होता है यदि प्रेमी सच्चा हो तो क्रमशः वह अपने अभीष्ट स्थान को पहुंच ही जाता है। यह बात गोस्वामी जी में प्रत्यक्ष देखी जाती है। विरक्त हो काशी में वास करने के अनन्तर इन के निष्कपट प्रेम के कारण इन्हें प्रभु के पादपद्म के दर्शन का भी सुअवसर मिला।

कहते हैं कि काशी में गोस्वामी जी गंगा[1] पार शौच के निमित्त जाया करते थे और रास्ते में शौच का शेष जल एक आम के पेड़ की जड़ में डाल दिया करते थे। उस पेड़ पर एक प्रेत[2] रहता था। इन के वहां नित्य जल डालने से सन्तुष्ट हो और एक दिन प्रगट हो उसने

---

१. श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद ने अस्सी पर शौच के लिये जाना एवम् बड़र वृक्ष के नीचे जल गिराना लिखा है। किसी २ ने बबूर का पेड़ कहा है।

२. यह पुस्तक छपने के समय हमें अपने एक मित्र जिला मुजफ्फरपुर नन्दबारा ग्राम निवासी बाबू नरेन्द्र नारायण सिंह जी से ज्ञात हुआ है कि गोस्वामी जी के जीवनकाल ही में उनके एक चेले ने उन के निषेध करने पर भी उनकी पद्यवद्ध बृहद् जीवनी कोई एक लाख दोहे चौपाइयों में तैयार की थी। गोसाईं जी ने इस का हाल जानकर लेखक को यह कहकर वैसा करने से निषेध किया कि ईश्वर का गुणानुवाद छोड़कर मनुष्य का चरित्र लिखना ठीक नहीं, पर उन्हों ने उन की बात न मानी। इस पर कुपित होकर गोसाईं जी ने शाप दे दिया कि उस पुस्तक का प्रचार नहीं होगा। वह चेला मनस्ताप से अत्यन्त पीड़ित हो श्री नाभा जी या किसी अन्य महापुरुष के शरणापन्न हुआ और उन के आग्रह तथा प्रार्थना से गोस्वामी जी ने संवत् १९६७ के अन्त में शाप मोचन का वचन दिया। और वह प्रश्न उठने पर कि इतने दिनों तक उस हस्तलिखित पुस्तक की रक्षा कौन करेगा वह काम इसी प्रेत को सौंपा गया। यह बात शायद उसी पुस्तक में लिखी है। यह पुस्तक भुट्टान-राज्य में किसी ब्राह्मण के घर में पड़ी रही। बलरामपुर (गोंडा) के एक मुनशी जी उस बाबाजी के घर उस के बालकों को शिक्षा देने पर नियुक्त हुए। उन्हीं बालकों के वह पुस्तक दिखाने पर उन्हों ने धीरे धीरे कैथी में उस की नकल उतार डाली। यह बात प्रकट होने पर जब वह ब्राह्मण महा क्रोधित हो उनका प्राण लेने पर उद्यत हुआ तब वे वहां से चम्पत हुये।

इन से कहा कि "मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हुआ, तुम कहो क्या चाहते हो ?" आप ने उत्तर दिया कि "मुझे श्री रामचन्द्र के दर्शन के अतिरिक्त इस जीवन तथा इस संसार में कोई दूसरी इच्छा और लालसा नहीं है, तुम मुझे उन्हीं का दर्शन करा कृतार्थ करो।" वह प्रेत हँस पड़ा और उस ने बहुत ही यथार्थ बात कही कि "यदि मुझ में यही सामर्थ्य होती तो क्या मैं प्रेतयोनि का दुःख भोगा करता ? यह बात मेरी शक्ति के बाहर है; भगवद्भक्त की सहायता बिना भगवान का दर्शन दुष्कर है। तौ भी मैं आप को एक उपाय बताता हूँ यदि भाग में दर्शन बदा होगा तो हो ही जायगा। कर्णघंटा स्थान पर रामायण की कथा होती है, श्रीहनुमान जी एक कोढ़ी का भेष बनाये मैला-कुचैला वस्त्र पहने नित्यप्रति वहाँ सबसे पहले आते हैं एवम् कथा विसर्जन होने पर सब से पीछे वहाँ से जाते हैं। आप उन्हीं को घेरिये, उन्हीं का चरण पकड़िये। यदि उन को कृपादृष्टि हो गई तो श्री राम का दर्शन कुछ दुर्लभ नहीं है।"

गोसाईं जी नियत समय पर प्रेत के बताये हुये स्थान पर उपस्थित हुये। कोढ़ी के भेष बनाये हनुमान जी भी वहाँ पहुँचे। उस कोढ़ी को देख इन के आनन्द की सीमा नहीं रही। कथा समाप्त होने पर जब वह व्यक्ति वहाँ से चला तो आप भी उसके पीछे-पीछे चले और एक

उन से वह पुस्तक बलरामपुर के किसी राजकर्म्मचारी को मिली। उन से वह अलवर राज के गुरु स्वामी हंसस्वरूप जी को मिली और अब वह पुस्तक केसरिया (चम्पारन) निवासी बाबू इन्द्रदेव नारायण के घर है।

किन्तु प्रेत ने कैसे उस जीवनी की रक्षा की और उस ब्राह्मण के घर वह पुस्तक कैसे पहुंची, यह किसी को मालूम नहीं। मुनशी जी के घर में कोई नहीं और उस ब्राह्मण का नाम तथा ठिकाना लोगों को ज्ञात नहीं। उस दीर्घकाय पुस्तक के प्रकट होने पर लोग देख सकेंगें कि उस के उदर में क्या क्या वस्तुएं भरी हैं। परन्तु तब तक हम मुनशी जी की बहादुरी की अवश्य प्रशंसा करेंगे कि आप ने सारी पुस्तक नकल कर ली। तब तक बाबा जी को खबर नहीं हुई; और ऐसे अवसर में जब उनकी जान की बारी आ गई थी वे अपने माल असबाब के साथ पुस्तक का बोझा भी लेकर भाग निकले और उस ब्राह्मण ने उनके पकड़ने का कदाचित् यत्न भी नहीं किया और उन्हें वह पकड़ भी नहीं सका। किन्तु खेद इस बात का है कि गोसाईं जी का परमोपकारी वह प्रेत उस समय तक प्रेत ही बना रहा। गोसाईं जी ने नीमषारण्य के एक प्रेत को तथा केशव दास को (जैसा कि आगे विदित होगा) प्रेतयोनि से मुक्त किया, और इस प्रेत के साथ जिस की बदौलत उन्हें सब कुछ हुआ कुछ भी प्रत्युपकार नहीं किया वरन् इस के माथे ३०० वर्ष तक निज जीवन ग्रंथ की रक्षा का भार डाल दिया। सिवाय ज्ञान मोहन बाबू के किसी लेखक को भी उस के उद्धार का ध्यान नहीं आया है।

'मर्यादा' में 'नवरत्न' की समालोचना में इसी जीवनी से दिखलाया गया था कि गोस्वामी जी की तीसरी शादी में ६००० तिलक पड़ा था। लोग अब भी कहते हैं कि तब प्रथम विवाह में दस हजार से तो कम नहीं मिला होगा ? परन्तु हमें तो उस पुस्तक का दर्शन ही नहीं हुआ; हम क्या कहें ?

निर्जन स्थान पाकर, आप ने बड़े प्रेम तथा दृढ़ता से उस पुरुष के पैरों को पकड़ लिया। कोढ़ी भेषधारी हनुमान जी [1] ने अपना पैर छोड़ा कर इन से जान बचाने का बहुत उद्योग किया परन्तु ये कब छोड़नेवाले थे। इन का हठ तथा प्रेम देख कर अन्त में हनुमान जी ने अपना रूप प्रगट किया और रामदर्शन के लिये इन के बहुत विनय करने पर कहा कि "जाओ, चित्रकूट में दर्शन मिलेगा।" कोई-कोई कहते हैं कि शिव जी का मंत्र देकर चित्रकूट जाने का आदेश किया।

लोग कहते हैं कि गोस्वामी जी के शौच का शेष जल पाने से वह प्रेत इसलिये संतुष्ट हुआ कि प्रेतगण अपवित्र ही जल पान के अधिकारी होते हैं। परन्तु ज्ञानेन्द्र मोहन दत्त ने लिखा है कि "गोस्वामी जी अवशिष्ट जल से एक बदरी वृक्ष के तले पैर धोया करते थे। साधु के चरण धोये हुए जल स्पर्श से पवित्रता लाभ कर वह प्रेत स्वर्ग जाने के लिये उपयुक्त हुआ। उस समय उस ने गोसाईं जी से बातें कीं एवम् इन्हें हनुमान जी का पता बताया।" इस आख्यायिका की यह व्याख्या उपयुक्त तथा उत्तम प्रतीत होती है और इससे सन्त माहात्म्य प्रतिपादित होता है।

हम तो उस प्रेत को भी प्रेत नहीं कहेंगे। उसे एक महात्मा ही कहेंगे। ईश्वरप्राप्ति का पथप्रदर्शक कैसा ही निकृष्ट जीव क्यों न हो, वह हमारे लिये महात्मा ही है। यदि वह अपवित्र प्रेत माना जाय तो महात्मा कौन कहा जायगा? केवल लम्बा-लम्बा तिलकधारी संडमुसंड बाबा जी।

इस में जिसका जो विचार हो, परन्तु गोस्वामी जी ने हनुमान जी की आज्ञा पाकर चित्रकूट चलने की तैयारी की।[2]

---

१. श्रीहनुमान जी का कल्याणकारक दर्शन कहाँ हुआ इस विषय में 'माधुरी' वर्ष २, खंड २, पृष्ठ ३८४ में रायबहादुर श्री अवध वासी लाला सीताराम का एक छोटा लेख छपा है। उस से जाना जाता है कि यह घटना लखीमपुर-खीरी के जिले में खीरी से १२ कोस पूर्व धौरहरा के पास जो अवराम बटी के नाम से प्रसिद्ध है, यह घटना हुई थी। इस समय धौरहरा कपुर्थला राज्य के अधीन है। उस स्थान पर हनुमान जी की एक विशाल मूर्त्ति अभी तक स्थापित है। वहां श्री राम जानकी का एक मन्दिर और एक पक्की कोठरी का भग्नावशेष है।

लाला साहब को ये बातें एक भद्र जन माधव प्रसाद जी से मालूम हुई हैं।

परन्तु पंजाब की ओर इनके पर्यटन की बात किसी पुस्तक में नहीं देखी गई और उधर वैष्णवों का प्रधान स्थान ही सुना गया जिस कारण से इन के उधर जाने की सम्भावना होती। यों साधुओं का मौज। जो हो यह कथा कहाँ तक सत्य है नहीं कह सकते।

२. विश्वनाथ के तनय विनय गुनगन समलंकृत। सास्त्र पुरान अधीन नीति अनुगत्त वृद्धवृत्त ॥ श्री भागवत पुरान सरल भाषा में भाख्यो ॥ पद पदावली परम सरस रसिकन रस चाख्यो ॥ नारायन पद पंकज भ्रमर पूर्व पुरुष पद्धति गये। रघुराज सिंह रीवां नृपती कृष्ण कृपा भाजन भये ॥ —नवभक्तमाल।

श्रीमान् महाराजा रघुराज सिंह जी [1] ने 'भक्तमाला रामरसिकावली' में लिखा है कि चित्रकूट चलते समय गोस्वामी जी श्री विश्वेश्वर नाथ के मन्दिर में गये; किन्तु शिव जी ने दर्शन नहीं दिया। काशी के बाहर जाने पर एक ब्राह्मण के भेष में शिवजी ने इन से कहा कि "काशी छोड़ कर अनत मत जाओ, यहाँ से जाने में तुम्हारा निर्वाह नहीं है।" और गोसाईं जी के यह कहने पर कि इतने दिन सेवा करने पर भोलानाथ प्रसन्न नहीं हुये वह ब्राह्मणदेवता बोले कि "मैं ही शिव हूं" और फिर निज रूप में गोसाईं जी को दर्शन देकर उन्हों ने कहा कि "चित्रकूट चलो वहां रामचन्द्र का दर्शन पाओगे।'"[2] यह क्या ? अभी शिवजी कह रहे थे कि काशी से अनत जाने में तुम्हारा निर्वाह नहीं और तुरत ही आप ने चित्रकूट चलने की सम्मति दी। शिव के मुख से अबोध बच्चों की नाईं क्षण में कुछ और क्षण में कुछ बातें कहानी उत्तम प्रतीत नहीं होता। तब रघुवंश शर्म्मा का कथन युक्तियुक्त पाया जाता है कि श्री शिवजी का दर्शन पाने पर गोस्वामी जी ने स्वयम् कहा कि "जब आप का दर्शन प्राप्त हुआ तब श्री रामजी के दर्शन का सुख भी अवश्य प्राप्त होगा" और यह कह कर गोसाईं जी चित्रकूट सिधारे एवम् वहां पहुंच कर श्री राम भजन में प्रवृत्त हुए।

कुछ काल के अनन्तर आप एक दिन क्या देखते हैं कि दो सुन्दर युवक—एक मेघ विनिन्दक श्याम तथा दूसरा विदुत-दुति विमर्दक गौर—कोमल करों में धनुष वाण लिये एक मृग के पीछे घोड़ा फेंकते चले जा रहे हैं। रूप-लावनता देख गोस्वामी जी विमोहित हो गये। पर यह नहीं जान सके कि जिन के दर्शन के लिये आप उत्कण्ठित थे वे सुखधाम शोभाभिराम श्री राम भ्राता सहित वे ही दोनों सवार थे, वरन् उन्हें कोई मृगयाशील पुरुष जान कर इन्हों ने आंखें नीचा करलीं। थोड़ी देर के बाद श्री हनुमान जी ने प्रकट होकर पूछा कि "श्री रामचन्द्र का दर्शन हुआ या नहीं ?" इन्हों ने कहा कि "उन का दर्शन तो नहीं हुआ परन्तु अभी दो सुन्दर युवक अश्वारोही इसी राह से गये हैं।" यह ज्ञात होने पर कि वे ही श्री रामचन्द्र तथा लखन लाल थे, आप उन्हीं मूर्त्तियों को हृदय में स्थापित कर उन्हीं के ध्यान में मग्न हो गये एवम् यह पद रचकर प्रेमपूर्णहृदय से इस का गान करने लगे—

"लोचन रहे बैरी होय। जान बूझे अकाज कीन्हों गये भू में गोय॥
अवगति जो तेरी गति न जान्यों रह्यौं जागत सोय। सबै छबि की अवधि में हौ

---

१. बोध होता है कि गोसाईं जी का जो पद्यबद्ध जीवनचरित्र इस पुस्तक में दिया हुआ है उसी को मुरादाबादनिवासी पण्डितवर ज्वालाप्रसाद जी ने अपनी बड़ी रामायण में अविकल उद्धृत कर दिया है।

२. रानी कमलकुँअरी लिखती हैं कि "बहुत दिन काशी में रहने पर श्री रामदर्शन की लालसा से गोस्वामी जी ध्यान करने लगे, तब इनका विश्वास देख हनुमान जी ने दर्शन देकर चित्रकूट में प्रभु दर्शन का वरदान दिया और काशी से जाते समय श्री शिवजी ने संन्यासी के रूप में दर्शन दिया।" और उन से वैसी ही बातें हुईं जैसी कि महाराजा साहब ने लिखी हैं।

निकसि गे ढिग होय ।। करमहीन मैं पाय हीरा दियो पल में खोय। दास तुलसी राम बिछुरे कहो कैसे होय ।।"

'भक्त कल्पद्रुम', 'भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका'[1] तथा मुं॰ तुलसीरामकृत उर्दू भक्तमाल में श्रीरामदर्शन की केवल यही कथा लिखी हुई है और श्री प्रियादास जी ने भी यही कथा इन दोनों कवित्तों में वर्णन की है।

"सौचजल सेष पाय भूत हुं विशेष कोऊ बोल्यो सुखमान हनुमान जू बताए हैं।
रामायण कथा सो रसायन है कानन को आवत प्रथम पाछे जात घृना छाए हैं।।
जाई पहचान संग चले उर आनि आए बन मधि जान धाइ पांय लपटाए हैं।
करे सीत कार कहाँ सकोगे न टारि मैं तो जान्यो रससार रूप धर्‌यो जैसे गाए हैं।।"
"मांग लीजै बर कही दीजै रामभूपरूप अति ही अनूप नित नैन अभिलाषिए।
कियो लै संकेत वाही दिन हीं सो लाग्यो हेत आई सोई समय चेत कवि छवि चाषिए।।
आए रघुनाथ साथ लछुमन चढ़े घोड़े पट रंगबोरे हरे कैस मन राषिए।
पाछे हनुमान आए बोले देषे प्रान प्यारे, नेकु न निहारे मैं तो, भले फेर भाषिए।।"

परन्तु बहुत से लोग कहते हैं 'कि फेर भाषिए' से प्रियादास जी का अभिप्राय पुनः दर्शन से है। अर्थात् गोसाईं जी ने सविनय हनुमान जी से प्रार्थना की, कि इस दर्शन से तृप्ति नहीं हुई, कृपया एक बार फिर दर्शन कराइए एवमू पवननन्दन ने इन का गूढ़प्रेम देख इन का मनोरथ सफल करने की प्रतिज्ञा की और चित्रकूट ही में उन की प्रतिज्ञा पूरी हुई।

'भक्तमाला रामरसिकावली' तथा पं॰ ज्वालाप्रसाद सम्पादित बड़ी रामायण में दर्शन की दूसरी कथा यों लिखी है कि " स्वामी जी एक बार स्नान कर चित्रकूट के रामघाट पर बैठे पूजा के लिये चन्दन रगड़ रहे थे, इतने में श्याम गौर दो ब्राह्मण बालक वहाँ पहुँचे और उन्हों ने तिलक करने के लिये गोसाईं जी से चन्दन मांगा। उन्हों ने स्वयम् लगा देने को कहा। अन्ततः चन्दन लेके दोनों बालक चले गये। पीछे हनुमान जी के आने तथा दर्शन का हाल पूछने पर गोस्वामी जी ने कहा 'चित्रकूट कै घाट पर भइ साधुन की भीर। तुलसिदास चन्दन घिसैं तिलक देत रघुबीर।" और पंडितजी ने अपनी गुटका (छोटी) रामायण[2] में लिखा है कि "चन्दन घिसते समय ८-६ वर्ष के बालकरूप में भगवान गोस्वामी जी के समीप आये और उन्हों ने कहा कि "बाबाजी हम अपने हाथ से आप को चन्दन लगा दें एवमू जब वे चन्दन लगाने लगे, तब हनुमान जी एक तोता बन कर एक पेड़ पर बैठ पूर्वोक्त दोहा पढ़ने लगे।

---

१. खेतड़ी निवासी हरिपरिपन्न रामानुजदास उपनाम 'हरिबर' कायस्थ माथुर माणिक्य भंडार कृत, यह पुस्तक पं॰ ज्वालाप्रसाद द्वारा संशोधित होकर श्रीवेंकटेश्वर यन्त्रालय में संवत् १९५६ में छपी है। वही हमारे देखने में आई है।

२. यह रामायण संवत् १९६३ में श्री वेंकटेश्वर यन्त्रालय में छपी है।

कदाचित् इस लोकप्रसिद्ध दोहा को सार्थक करने ही के लिये इस आख्यायिका की कल्पना हुई है। परन्तु पंडित जी की एक पुस्तक का लेख दूसरे के लेख से सर्वथा भिन्न है। आप की पुस्तकों की आख्यायिकायों में से कौन सी प्रामाणिक है यह बात वे ही जानते हैं।

उपयुक्त ग्रन्थों के अनुसार गोस्वामी जी को चित्रकूट में श्री राम लक्ष्मण का तीन बार दर्शन हुआ है। एक बार अहेरी के भेष में, दूसरी बार चन्दन रगड़ते समय एवम् तीसरी बार कामता में। इन दोनों महानुभावों ने वहाँ पर श्री रामचन्द्र को सब भाइयों तथा हनुमानादि के सहित घोड़े हाथियों के साथ बुलाया है और गोसाईं जी ने आरती की है एवम् रामचन्द्र ने इन के माथे पर करकमल रख कर इन्हें कृतार्थ किया है।[1]

ग्रियर्सन साहब ने एक और ही कथा लिखी है। वह यह है कि एक दिन गोस्वामी जी ने चित्रकूट में जनपद से दूर घूमते समय रामलीला होते देखा कि लङ्काविजय के अनन्तर विभीषण को राजतिलक देकर श्री राम, लक्ष्मण, हनुमान अन्यान्य भाल बानरों के संग श्री अवध लौटे जा रहे हैं। लीला देख कर इन का मन महानन्दित हुआ। वहाँ से लौटते समय ब्राह्मणभेषधारी श्री हनुमान जी से भेंट हुई। उन से आप उस रामलीला की बड़ी प्रशंसा करने लगे। ब्राह्मणदेवता ने कहा कि "महाराज आप सनक तो नहीं गये हैं ? भला आज कल कहीं रामलीला होती है ? रामलीला होने का समय कुआर कातिक है।"

इस पर गोसाईं जी बोले कि "चलो मैं अभी दिखा देता हूँ।" परन्तु फिर रामलीला स्थान पर जाने पर कहाँ रामलीला, और कहाँ लीलामूर्त्तियाँ ? लीला होने का चिन्हमात्र भी वहाँ नहीं दीख पड़ा। वहाँ के लोगों से पूछने पर सबों ने कहा "खूब कही बाबा जी, आजकल रामलीला ?" तब गोस्वामी जी का ज्ञानपटल खुला और आप ने सोचा कि "हो न हो, वे ही राम लक्ष्मण अपनी असीम कृपा से मुझे दर्शन दिये हैं। हा ! धिक्कार ! कि उन के चरणकमलों में गिरकर दंडप्रणाम भी मैं ने नहीं किया।" विमना हो कर अपने स्थान पर आ पश्चात्ताप और रोदन करते २ आप निद्राभिभूत हुये। स्वप्न में हनुमान जी ने कहा कि "पछताने की कोई बात नहीं, कलि में किसी को प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता। तुम बड़े भाग्यवान हो कि तुम्हें इस प्रकार से दर्शन हो गया। अब भजन में लगे रहो।" वहाँ से काशी लौट कर आप अधिकतर प्रेमानुराग से प्रभु की अर्चना सेवा में समय बिताने लगे।

पं० रामेश्वर भट्ट ने अपनी रामायण में लिखा है कि गोसाईं जी कृत प्रागुक्त पद को श्रवण कर और अति प्रसन्न हो हनुमान जी ने पुनः दर्शन कराने का वचन दिया था और रामलीला के बहाने दर्शन कराया।

---

१. बैजनाथ दास तथा रानी कमल कुअँरी ने श्री रामचन्द्र को लषन हनुमानादि समेत विमानस्थित देवताओं से वन्दित सिंहासन पर बैठाकर उन्हें गोसाईं जी से तिलक कराया है। और उन लोगों ने यह दोहा लिखा है :—

रामघाट मन्दाकिनी भई विमानन भीर।
तुलसीदास चन्दन घिसै तिलक देत रघुबीर॥

सोचने से प्रतीत होता है कि कामना स्थान-वाला दर्शन एवम् रामलीला द्वारा दर्शन दोनों एक ही हैं। भिन्न २ लेखकों ने भिन्न २ रीति से एक ही कथा को हेर फेर कर वर्णन किया है। ऐसा अनुमान करने से प्रथम बार दर्शन पाकर श्री रामचन्द्र को नहीं पहचानने के कारण गोस्वामी जी का पुनः दर्शन के लिये प्रार्थी होना एवम् दर्शन लाभ करना संगत बोध होता है, तौ भी तोता पढ़ाने की बात बिलग ही रह जाती है। परन्तु इस के लिये आपत्ति उठाने से क्या लाभ? जिस की जैसी इच्छा हुई है कागज पर रगड़ डाला है। सारांश इतना ही है कि परम दयालु भक्तवत्सल भगवान ने अपनी असीम कृपा से किसी बहाने दर्शन देकर गोस्वामीजी को कृतार्थ किया जो बात असम्भव नहीं।

महात्माओं से यह भी सुना है कि गोसाईं जी की विनयपत्रिका का यह पद "हे हरि कवन दोस तोहि दीजै" (पद नम्बर ११७) रचने पर भी इन्हें श्रीराम, लक्ष्मण तथा हनुमान का साक्षात दर्शन हुआ था।

एकबार, दोबार, तीनबार, चारबार, पाँचबार कलि-कलुष-निकन्दन श्री रघुनन्दन का साक्षात दर्शन होने में आश्चर्य्य ही क्या? हम तो समझते हैं कि भक्ति, प्रेम तथा भजन के प्रभाव से गोसाईं जी को प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन प्रतिक्षण हुआ करता था। प्रकृति की चित्रविचित्र चित्रकारियों में ये सदा चित्रकार ही को देखा करते थे आभ्यांत्रिक (आभ्यांतरिक) दृष्टि से भी ये प्रत्येक पदार्थ को उसी का प्रत्यक्ष-कारक-स्थल वा प्रतिरूप देखते थे।[1] इन की पवित्र भक्ति ही ऐसी थी, इन का स्वच्छ प्रेम ही ऐसा था। श्री गुरु नानक जी का वचन है कि "संसार में बहुत-से लोग उस का अन्वेषण करते हैं किन्तु कदाचित् कोई २ उस को पाते हैं क्योंकि तीव्र वैराग्य और एकान्त अनुराग बिना मनुष्य भगवत्कृपा का भाजन नहीं हो सकता।" गोसाईं जी आत्मविस्मृत हो उसी तीव्र वैराग्य तथा एकान्त अनुराग के साथ ईश्वराराधना में प्रवृत्त हुये थे। यह इसी सच्चे प्रेम का प्रभाव था कि ये ईश्वर को इस प्रकार सर्वत्र साक्षात देखने लगे थे। उसी में यह शक्ति है कि अनहोनी को होनी कर दिखावे। कवि ने सच कहा है "जिसे देखना ही मुहाल था, न था जिसका नामो निशां कहीं। सो हरेक जर्रे में इश्क़ ने मुझे जिलवा उस का दिखा दिया।"

गोसाईं जी की स्त्री, गुरु, प्रेत, हनुमानजी तथा शिवजी सभी लोग इन के अनुराग तथा सुकृति के प्रभाव ही से यथा समय उस नित्यधाम की ओर इन्हें अग्रसर करते गये एवम् उस प्रगाढ़ अनुराग ही के कारण हनुमान जी की इन पर सदा अनन्त कृपा बनी रही।

---

१. "कि बचश्माने दिल मो बीं जुज़ दोस्त। हर्चे बीनी बिदां कि मज़हरे ऊस्त॥" आपकी यही अवस्था थी।

अष्टम परिच्छेद

श्रीहनुमानजी विषयक दो-एक अन्य बातें

कहते हैं कि रामायण बालकाण्ड में गोसाईं जी ने जो लिखा है "करउं कथा हरि पद धरि सीसा" उस में हनुमानजी की वन्दना की गई है क्योंकि हरि शब्द का अर्थ बानर भी है। इस में आश्चर्य्य ही क्या है? गोस्वामी जी कृतघ्न थोड़े ही थे कि जिस के अनपेक्षित असीम तथा अपूर्व अनुग्रह से आप को प्रभुपादपद्मों के प्रत्यक्ष दर्शन का अलभ्य सुखानन्द प्राप्त हुआ उसकी वन्दना भी नहीं करें। यही क्यों, आप ने अनेक स्थानों में श्री हनुमान की वन्दना की है, आप निरन्तर उन की वन्दना स्तुति किया करते थे। उनकी वन्दना में आप ने 'हनुमान बाहुक' पुस्तक ही रच डाली है।

ऐसा भी कथन है कि रामायण में "बूड़े सकल समाज" लिखकर गोसाईं जी अकबका गये कि इस समाज में तो श्री राम, लक्ष्मण तथा सज्जनगण भी हैं ऐसा लिखना बड़ा अनर्थ हुआ। उस समय श्री हनुमान जी की आकाशवाणी हुई कि "रुको मत, आगे लिख दो 'चढ़े प्रथम जो मोह बस।" कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि हनुमान जी गोसाईं जी का रूप धारण कर यह स्वयम् ही लिख गये थे।[1]

---

१. ऐसी ही कथा श्री जयदेव जी कृत 'गीतगोविन्द' के विषय में भी प्रसिद्ध है। प्रवाद है कि 'प्रियेचारुशीले' इस अष्ट पदी में 'स्मरगरल खण्डनं ममशिरसिमण्डनं' के आगे जयदेवजी ने 'देहि पदपल्लवमुदारं' लिखना चाहा, परन्तु प्रभु के विषय में ऐसा पद देने का उन्हें साहस नहीं हुआ और आप लिखना छोड़ कर स्नान करने चले गये। भक्तवत्सल, भक्त-मनोरथ पूरक भगवान स्नान से लौटे हुये जयदेव के भेष में आकर पहले भोजन कर तब पुस्तक में 'देहि पदपल्लवमुदारं' लिखकर शयन करने लगे और जयदेव जी की स्त्री भी भोजन करने लगी। इतने में जयदेवजी स्नान कर के घर लौट आये। स्त्री को भोजन करते देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि वह इन को भोजन कराये विना स्वयम् जल भी नहीं पीती थी। अतएव उन्हों ने इसका कारण पूछा। स्त्री ने सब वृत्तान्त कह सुनाया। तब जयदेव जी जाकर देखें तो पुस्तक में वही पद लिखा हुआ है। तब आप ये सब लीलाएं श्रीकृष्ण कृत समझ कर परमानन्द को प्राप्त हुये, वरन् अपनी पत्नी पद्मावती की थाली का अन्न भोजन कर आप ने अपने को कृतार्थ माना।

श्री जयदेवजी का जीवनवृत्तान्त जानने के लिये श्री भारतेन्दुकृत चरितावली, श्री भगवानप्रसादकृत भक्तमाल की टीका, श्री रमेशचन्द्रदत्त कृत 'लिटरेचर औफ बंगाल'

रामायण में धनुषभंग प्रकरण देखने से सहज ही ज्ञात होता है कि जिन्हें डुबोना था उन्हें गोसाईं जी पहले ही चांपजहाज पर बिठा चुके थे। फिर रामादि के डूबने के भय से इन्हें लेखनी रोकने की क्या आवश्यकता थी? वे लोग तो जहाज पर चढ़ाये नहीं गये थे। और रघुबर का बाहुबल ही तो सागर था। सागर जहाज के संग में कैसे और कहाँ डूबता?

यह कथा भी प्रसिद्ध है कि हनुमान जी को अपना अनन्य सेवक जान कर श्री रामचन्द्र जी ने उन से एक बार कहा था कि "मैं वाल्मीकीय रामायण के अनुसार कार्य्य कर रहा हूँ।" इस पर हनुमान जी पत्थरों पर अपने नखों से रामायण लिख कर उसे रामचन्द्र के पास सही कराने को गये। श्री रामचन्द्र ने कहा कि "हम वाल्मीकिकृत रामायण पर सही कर चुके हैं, तुम उन्हीं से सही करा लो।" वाल्मीकिजी ने हनुमान जी विरचित ग्रंथ देखकर विचारा कि उस के प्रचार से उनकी रामायण का गौरव नष्ट हो जायगा, अतएव वे हनुमान जी की स्तुति करने लगे और वर माँगने की आज्ञा होने पर उन्होंने यही वर मांगा कि "आप अपनी रामायण को समुद्र में फेंक दीजिये।" हनुमान जी ने कहा "इस को तो मैं सागर में डुबो देता हूँ, परन्तु कलियुग में तुलसी नामक एक ब्राह्मण की जिह्वा पर बैठ कर भाषा रामायण कहूँगा जिसके प्रचार से तुम्हारी रामायण नष्टप्राय हो जायगी।"

यह कदापि सम्भव नहीं कि वाल्मीकि जी के समान महान कवि और प्रभुगुणगायक एवम् हनुमान जी के समान प्रभुभक्त एक दूसरी की कीर्त्ति को जिस में रामचन्द्र की कीर्त्ति का कीर्त्तन किया गया हो लोप और नष्ट करने को यत्नवान हों। और परम स्वामी-भक्त श्री हनुमान जी ऐसी पुस्तक को जिस पर उन के स्वामी की सही हो चुकी हो नष्टप्राय कराने की मनसा करें।

फिर कलि में गोसाईं जी तो कोई दूसरे ब्राह्मण नहीं हुये। स्वयम् वाल्मीकि जी ही ने गोस्वामी जी का शरीर धारण कर भाषा में श्रीरामचन्द्र की लीलाएँ वर्णन कीं और उन का गुणगान किया। उन्हीं के द्वारा संस्कृत जाननेवाले तथा केवल भाषा जाननेवाले दोनों ही का उपकार हुआ। वाल्मीकीय संस्कृत रामायण नष्ट भी नहीं हुई। संस्कृतज्ञ आज भी उस का आदर करते हैं, सर्वसाधारण भी पण्डितों के मुख से उस की कथा सुना ही करते हैं, वह रामायण लोप क्यों हो और कैसे हो? जिस में रामयश वर्णन हुआ हो और जिस पर रामचन्द्र का हस्ताक्षर हुआ हो भला वह वस्तु भी कभी लोप हो सकती है?

एवम् इस प्रबन्ध के लेखक की लिखी हुई 'हरिश्चन्द्र' नामक पुस्तक पृष्ठ १५४ पाठ कीजिये।

ऐसा भी कहते हैं कि श्री सूरदास जी ने सवा लाख पद रचने का संकल्प किया था, किन्तु पचहत्तर हजार ही पदों की रचना करने पर उन का गोलोकवास हो गया। तब श्रीकृष्णचन्द्र ने शेष पदों की रचना कर अपने भक्त का संकल्प पूरा किया।

गोस्वामी जी का वाल्मीकि जी का अवतार होना तो सभी के मुख से सुना जाता है। इस का ग्रंथों में भी प्रमाण पाया जाता है। श्री नाभा जी ने भी स्वरचित भक्तमाल[1] में लिखा है।

भविष्य पुराण[2] भी इस बात को सिद्ध करता है और स्वयम् गोस्वामी जी भी यह बात एक रीति से कह रहे हैं "जन्म जन्म जानकीनाथ के गुनगन तुलसी दास गायो।"

हाँ, यह शंका हो सकती है कि वाल्मीकि जी मुक्तजीव होकर फिर क्यों शरीर धारी हुये? श्री सीताराम शरण भगवानप्रसाद जी इसके उत्तर में लिखते हैं कि "ईश्वर को तथा साकार मुक्तजीवी को ऐसी सामर्थ्य होती है कि पूर्वरूप से ज्यों के त्यों बने भी रहें और अपने सत संकल्प से रूपान्तर तथा अवतार भी धारण कर लें।" दुखी जगत के हितसाधन की इच्छा उन्हें फिर इस संसार में आने को और अपने ऊपर कष्ठ उठाने को वाधित करती है। सृष्टि की स्थिति के दृढ़ रखने वाले नियमों में विघ्न तथा हलचल उपस्थित होने से जगत को दुखी देख कभी करुणानिधान भगवान् स्वयम् भिन्न २ रूप धारण कर एवं स्वकार्य्य द्वारा धर्मानुकूलाचार की शिक्षा दे सांसारी जीवों का कल्याण करते तथा धर्म्म संस्थापन करते हैं एवम् कभी अपने परम प्रिय भक्तों ही को भेजकर यह कार्य्य साधन करते हैं। क्योंकि सच्चे आदर्श पुरुष ऐसे शक्ति-सम्पन्न होते हैं कि मृतप्राय व्यक्ति और जाति में भी पुनः जीवन प्रदान कर उसे उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित कर देते हैं।

और हनुमान जी गोसाईं जी के जिह्वाग्र पर बैठे हों या नहीं, अथवा आकाशवाणी द्वारा मज़मून बताते गये हों या नहीं, अथवा स्वयम् आकर लिखते गये हों या नहीं, परन्तु उन की कृपा से ही रामायण की रचना हुई इस में सन्देह किस को हो सकता है? बिना देवकृपा के कोई कार्य्य भी नहीं होता यह हिन्दूमात्र की धारणा है। अंग्रेजी कवि लोग भी मियुज (Muse) की मर्जी (कृपा) ही से कविता करने में समर्थ होते हैं।

परन्तु हम हनुमान जी सम्बन्धी पूर्वकथित बातों को सारहीन, मनोकल्पित ही समझते हैं। अन्य लोगों का जैसा विचार हो वैसा समझा करें।

---

१. "कलिकुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो। त्रेता काव्य निबन्ध-करी सत कोटि रसायन। इक अक्षर उद्धरै ब्रह्म इत्यादि परायन। अब भक्तन सुख देन बहुरि लीला बिस्तारी। रामचरन रस मत्त रटत निसि दिन व्रतधारी॥ संसार अपार के पार को सुगम रूप नउका लयौ। कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो।"

२. "बाल्मीकिस्तुलसी दासः कलौदेवी! भविष्यति।
रामचन्द्रकथा साध्वीं भाषारूपेण करिष्यति॥"

नवम परिच्छेद

काशी वास वृत्तान्त

यह बात ऊपर कही जा चुकी है कि बैराग्य जन्मने पर गोसाईं जी काशी में रहने लगे थे। किसी २ के मत से पहिले श्री अवध जाकर तब ये काशी आये और किसी के मत से काशी आकर तब श्री अवध गये और वहाँ इन्होंने रामायण लिखना आरम्भ किया किन्तु वहाँ की कुछ असह्य अनरीतियाँ देख फिर आप काशी आकर रहने लगे। गृहत्यागी होने पर ये पहिले कहीं गये हों परन्तु काशी में इन का विशेष रहना पाया जाता है। और वहीं से इन्हों ने साकेत की भी यात्रा की है।

यद्यपि ये अयोध्या से काशी चले आये थे तथापि काशी में भी ये निश्चिन्त नहीं रहने पाते थे। इसी से काशी में भी कई बार एक स्थान को परित्याग कर दूसरे स्थान में इन्हें रहना पड़ा था। काशी में पंडितों ने भी इन्हें नीचा दिखलाना चाहा, गोसाइंयों ने भी इन से विरोध किया और चोर, चाण्डाल भी इन के पीछे पड़े। परन्तु जिन के रखवारे श्री रामदूत पवनपूत हों उन का किसी के बिगाड़े क्या हो सकता है? "बाल न बंका करि सकै जो जग बैरी होय।" अपमानित करना या क्षति पहुँचाना तो दूर रहे अंग्रेजी कवि गोल्डस्मिथ के कथनानुसार "जो आए उपहास करन हित नमन लगे पद सोऊ।"[1] काशी में श्री विश्वेश्वरनाथ की कृपा से इन की सुकीर्त्तिलता दिनदिन लहलहाती चली और सुयशसुगंध चतुर्दिक फैलती ही रही।

देखिये एक बार एक हत्यारा भ्रमण करता, राम राम मुख से कहता भीख मांगता स्वामी जी के स्थान पर आ पहुँचा और बोला—"राम! राम! हत्यारे को भीख डाल दीजिये।" गोसाईं जी उस के मुख से श्री राम का नाम सुनकर प्रसन्न चित्त कुटी से निकल आये और इन्हों ने उस से उस का वृत्तान्त पूछा। उसने अपना सब हाल कह सुनाया। इन्हों ने कहा कि—"जब तुम इस प्रकार ग्लानियुत दीनतापूर्वक हमारे प्राणप्रिय श्री राम का नाम उच्चारण करते हौ तो तुम शुद्ध हो गये।" और इन्हों ने उसे अपनी कुटी में ले जाकर और अपने साथ बैठाकर ठाकुर जी का भोग लगाया, प्रसाद भोजन कराया। हत्यारे को साथ खिलाने की चर्चा सर्वत्र फैल गई। यह बात वहाँ के ब्राह्मणों[2] को जो ईर्ष्यावश इन से अकारण

---

१. "Those who came to scoffer remained to pray."
—Goldsmith.

२. 'भक्तमाला रामरसिकावली' तथा पं० ज्वालाप्रसाद जी के अनुसार निज कुटुम्बियों से जात बाहर किये जाने पर एक हत्यारे ने गोस्वामी जी के पास अपना दुख

द्वेष रखते थे, बहुत बुरी लगी। इसे महा अनर्थ समझकर उन लोगों ने सभा की, गोसाईं जी को वहां बुलवा भेजा और इन से प्रश्न किया कि "आप ने ऐसा अनुचित और अधर्म कार्य क्यों किया?" इन्हों ने उत्तर दिया कि "महाराज! शास्त्रज्ञ होकर भी आप लोगों ने शास्त्र का यथार्थ मर्म नहीं जाना। आप लोग उस की मर्यादा घटाने चले हैं; कृपा कर अपनी पोथियां पसार कर देखिये तो उन में 'राम नाम' का क्या माहात्म्य लिखा हुआ है। इस हत्यारे का हत्यापाप यदि रामनामोच्चारण से भी नहीं छूटा तो रामनाम की महिमा क्या? इस पर भी जिस प्रकार आप लोगों को इसका पापक्षय होने का विश्वास हो वह कहते जाइये, मैं करने को प्रस्तुत हूं।" उन लोगों ने कहा कि "रामनाम की महिमा पोथियों में लिखी है सही परन्तु इस ने प्रायश्चित्त नहीं किया। अच्छा! अब यदि इस के हाथ का छूआ हुआ पाक श्री विश्वनाथ जी के नन्दी भोजन करें तो हमलोगों को इस के हत्यापाप से मुक्त होने का विश्वास हो।" निदान ऐसा ही हुआ। प्रसाद तैयार कराकर हत्यारे ब्राह्मण के हाथ से नन्दी के सामने रखवाया गया और गोसाईं जी ने नन्दी के प्रति कहा कि "रामनाम के प्रताप से मति को सरस कर इस हत्यारे का प्रसाद पाइये क्योंकि श्री रामनाम का माहात्म्य आप के समान मैं नहीं जानता हूँ।" यह सुनते ही नन्दी प्रसाद खा गये और ब्राह्मणवर्ग लज्जित हो अपने २ घर सिधारे। यहां श्री विश्वनाथ जी के पत्थर के बैल ने उन पंडितों को "लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर" सिद्ध कर दिया। सच है "न मोहक़्क़िक़ बवद न दानिश्मन्द। चारपाये बरो किताबे चन्द।" अनुवाद—होय न चतुर न पंडित ज्ञानी। बरु पशु, पुस्तक पीठ लदानी। जब शास्त्र पढ़ कर उस के यथार्थ मर्म का ज्ञान नहीं हुआ तो उस से नहीं पढ़ना ही उत्तम है।

हाँ! हाँ! जिस समय अवध का एक भंगी रामनौमी के अवसर पर या किसी अन्य समय काशी में आया था एवम् अवधवासी जान कर इन्हों ने उसे स्नेहपूर्वक छाती से लगाया था उस समय फिर लोगों ने सभा करने का साहस किया था या नहीं, यह बात हमें कोई प्राचीन लेखक स्पष्ट नहीं बताते। हत्यारे ब्राह्मण से भङ्गी तो कम अपवित्र नहीं था। जो हो, इस हत्यारे की कथा से यह स्पष्ट फलित होता है कि अपने कुकर्मों पर स्वच्छहृदय से पश्चात्ताप करने तथा ग्लानि मानने से प्रभु अवश्य दयादृष्टि कर अपराध क्षमा करते हैं। गोसाईं जी ने इस उदाहरण से यही सिद्ध कर दिया।

पंडितों ने गोस्वामी जी कृत रामचरित्र मानस (रामायण) के प्रचार में बाधा डालने की भी चेष्टा की थी, परन्तु वे उस में भी कृतकार्य्य नहीं हुये। इस का सविस्तर वर्णन अन्यत्र किया जायगा।

फिर बहुत से अल्पज्ञ पुरुषों ने इन की निन्दा कर इन से सर्वसाधारण का मन

निवेदन किया कि इन्हों ने उस के कुटुम्बियों को बुलवा कर कहा कि "रामनाम कहने से इसका पाप छूट गया जिस प्रकार से तुम लोगों को इस का विश्वास हो सो करो।" तब उन लोगों के कहने से नन्दी को पेड़ा दिया गया और वे उसे खा गये।

किसी के कहने से नन्दी को पेड़ा या कोई अन्य पदार्थ दिया गया हो, परन्तु इस परीक्षा में गोस्वामी जी पास तो हो गये न।

फेरने का उद्योग किया था। किन्तु उस में भी सफलता प्राप्त नहीं हुई। रानी कमल कुँअरी के लेखानुसार एक पंडित ने इन के निधन का भी प्रयोग किया था और इन्हों ने बाहुक[1] के द्वारा उस का निवारण किया।

तुलसी राम जी ने उर्दू भक्तमाल में लिखा है कि एक तांत्रिक ने इनकी मृत्यु के निमित्त जप किया था और श्री शंकर की स्तुति में इन के एक भजन बनाने से तांत्रिक का उद्योग विफल हुआ। किसी ने मारणमंत्र का प्रयोग किया हो और 'बाहुक' या भजन किसी से उसका निवारण हुआ हो, गोसाईं जी की जान तो बची। यही बड़े आनन्द की बात है। नहीं तो रामायणसा अमूल्य रत्न हिन्दी-साहित्य-भण्डार में कहां से दृष्टिगोचर होता।

यह भी कहा जाता है कि एक बार क्रूर प्रकृति के कई एक मनुष्य इन के प्राणघात की मनसा से एक जगह इन के आने-जाने की राह में छिप कर बैठे थे और इन को आते देख उन लोगों ने इन पर आक्रमण करना चाहा था। परन्तु इसी क्षण हनुमान जी की विशाल मूर्त्ति देख सबों का हृत्पिंड कम्पायमान हो गया और सब के सब भयभीत हो वहाँ से भाग गये। कदाचित् इसी घटना को ग्रियर्सन साहब ने रात को गोसाईं पर चोरों का आक्रमण लिखा है। उसका वर्णन आगे मिलेगा।

ऐसे ही लोगों से दुखित तथा पीड़ित होकर इन्हों ने कई एक कवित्तों की भी रचना की थी। तो भी वे लोग अपने कुकर्म से बाज नहीं आये। और इन्हें सताने पर कटिबद्ध ही रहे। सच है—"हासिद को एक दम न सेहत है जहान में। रंजो हसद हैं जान है जब तक कि जान में।"

परन्तु जब उन लोगों का सब यत्न विफल होता गया तब अन्त में हार मानकर लोगों ने किसी प्रकार इन्हें काशी से बाहर करना चाहा और इसी विचार से कई एक कुविचारियों ने इन के पास जाकर यह प्रार्थना की, कि "आप काशी छोड़ कर कहीं अनत चले जाइये।" गोसाईं जी इस पर सम्मत हो गये और नीचे लिखा हुआ पद बना कर एवम् उसे श्री विश्वनाथ जी के मन्दिर द्वार पर साट[2] कर आप प्रातःकाल वहाँ से चल बसे :—

"सुरसरि सेइ त्रिपुरारि हौं तिहारे ग्राम रामहिं को नाम लै लै उदर भरत हौं।
तुलसी न देवे योग लेत ना काहु सों कछु लिखी न भलाई भाल सोचो ना करत हौं॥
एतेहुँ पै जुरि कै जोराबर जो जोर करैं ताके जोर देव दरबार गुदरत हौं।
पाइ कै उराहनो उराहनो न दीजै मोहि कालि कदा कासीनाथ कहे निबरत हौं॥

---

१. गोसाईं विरचित एक पुस्तक है। पुस्तकों की समालोचना देखिये।

२. बैजनाथदास ने मंदिर में रख कर जाना लिखा है। परन्तु यदि मंदिर खुला रहने पर रखते तो उसी समय वा मन्दिर बन्द होने के पूर्व पुजारी आदि उसे अवश्य देख लेते और मन्दिर बन्द होने पर तो उस में रखना ही असम्भव था। अतएव द्वार पर वा दिवार पर साट ही देना ठीक जान पड़ता है। हाँ, यदि किवाड़ की कोई सन्धि वा किसी खिड़की से उसे भीतर गिरा दिये हों तो यह बात न्यारी है, पर यह रखना नहीं कहलावेगा।

रानी कमल कुँअरी ने विश्वनाथ को पढ़कर सुनना लिखा है।

प्रातःकाल जब वे पंडितगण श्रीविश्वनाथ जी के दर्शन के लिये गये तो अकस्मात् फाटक बन्द हो गया और ऐसी सकोप वाणी हुई कि "तुम लोग एक हरिजन को कष्ट देने और अपमानित करने पर कटिबद्ध हुये हो इस का फल तुम लोगों को अवश्य भोगना पड़ेगा। यदि तुलसीदास फिर आवें तभी तो कुशल है अन्यथा नहीं।" यह वाणी सुनते ही लोगों ने दौड़कर गोसाईं जी को राह में घेरा और वे बहुत अनुनय विनय करके उन्हें काशी में फेर लाये। कर्मफल तो निश्चय भोगना होता है। यदि आकाशवाणी न भी हुई होती और न भी हुई हो, तो आज तीन सौ वर्ष पीछे गोसाईं जी के चरित्र लेखकों ने जो उन महापुरुषों के कुव्यवहार का वर्णन किया या कर रहे हैं यह क्या कर्मफल भोगना नहीं कहलावेगा ?

काशी के पंडित ही लोग गोसाईं जी को कष्ट नहीं देते थे। परन्तु पूर्ववर्त्ती लेखकों के अनुसार काशी के कोतवाल कालभैरव भी गोसाईं जी के कभी उनकी वंदना नहीं करने से कुपित होकर एक बार इन्हें भय दिखलाने और कष्ट पहुँचाने के लिये उधत हुये थे और उस समय भी श्री हनुमान जी ने वहाँ उपस्थित होकर उन का हक्का-बक्का बन्द कर दिया था; और पीछे श्री शिव जी ने भी भैरव जी से कह दिया कि "तुलसीदास जी एक सच्चरित्र हरिभक्त हैं, तुम उन्हें कदापि दुख मत दो।" रानी कमल कुँअरी के अनुसार हनुमान जी और कालभैरव में वार्त्तालाप भी हुआ एवम् हनुमानजी ने श्री शिव जी को भी उस का समाचार जनाया था।

'भक्तमाला रामरसिकावली' में श्री महाराज रघुराज सिंह कह रहे हैं कि "भैरव जी ने गोस्वामी जी की बाँह में पीड़ा दी थी और गोसाईं जी ने (पूर्वोक्त) 'बाहुक' से उस का निवारण किया। और शिवजी ने भी भैरव को इन्हें पीड़ा देने से निषेध किया एवम् स्वप्न में गोसाईं जी को भी भैरव की स्तुति करने का आदेश किया।"

शिव जी ने दोनों को समझा बुझाकर अच्छी पंचायती की। परन्तु हम कहते हैं कि पशुपति के एक मुख्य गण एवम् सिद्धपीठ विश्वनाथपुरी (काशी) के कोतवाल भैरव जी को सज्जन और असज्जन पहचानने की भी योग्यता न हो, इतनी भी खबर न हो कि गोसाईं जी सच्चे हरिभक्त थे या यहीं, यह बड़े आश्चर्य्य की बात है, एवम् स्तुतिरूपी घूस (रिश्वत) नहीं पाने से सांसारिक किसी २ कोतवाल के समान एक सज्जन तथा निरपराधी साधु को पीड़ित करने पर उद्यत हो जायं यह भी उन के विषय में कहने का साहस हम को नहीं होता। हमारी समझ में भैरव को हनुमान जी से नीचा दिखलाने ही के निमित्त किसी ने इस कथा की सृष्टि की है।

फिर रानी साहबा 'बाहुक' से एक पंडितकृत गोसाईं जी के निधन का प्रयोग निवारण कराती हैं और महाराजा साहब भैरव-कोप-जनित बांह की पीड़ा। यह विरोध कथन भी सन्देहजनक ही है।

महिसुर तथा देवकृत उत्पातों की कथा तो हो चुकी अब चोरों का वृत्तान्त सुनिये।

गोसाईं जी की यह बान थी कि अपनी चीज वस्तु अपने निवासस्थान में जहाँ का तहाँ छोड़कर सो रहते थे। गोसाईं जी की सेवा में बहुत पूजा चढ़ते जान कर एक रात जब कई

चोर[1] चोरी करने की इच्छा से इन की कुटी पर पहुंचे तो क्या देखते हैं कि एक श्याम सुन्दर दूसरे गौर सलोने बालक हाथ में धनुषवाण लिये पहरा दे रहे हैं। रात्रि में वे सब जब २ और कुटी की जिस ओर गये उन मनोहर बालकों को पहरा देते देखा। पूर्व संस्कार के उदय होने से एवम् बारम्बार युगलकिशोर का दर्शन पाने से उन सबों के मन की मलीनता दूर हो गयी। प्रातःकाल उन चोरों ने गोस्वामी जी के पास रात की घटना ज्यों की त्यों वर्णन की और पूछा कि "महाराज ! वे दोनों मनोहर किशोर जो आपके यहाँ रात को पहरा देते हैं कौन हैं ?" यह सुनते ही गोसाइं जी यह जान कर कि उनके लिये श्री प्रभु नित्यप्रति ऐसा कष्ट उठाते हैं विह्वल चित (चित्त) हो गये। नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगा एवम् अनुतापपूर्वक यह सोचकर कि न कोई पदार्थ रहेगा और न उसके लिये प्रभु को कष्ट उठाना पड़ेगा। इन्हों ने अपने पास का पदार्थ ब्राह्मणों को दे दिया। रात को वे मनोहारिणी मूर्त्तियाँ एवम् भोर की यह लीला देख कर चोरों का भी ज्ञानपटल उधर गया। वे सब भी अपने कल्याणार्थ गोसाइं जी के पैरों पर गिर कर इन के शरणागत हुए। गोसाइं जी ने कहा कि "तुम्हीं लोग धन्य हो जिन्हें बिना परिश्रम प्रभु का साक्षात दर्शन हुआ।" तौ भी वे सब इन के शिष्य हो चौर्य्यकर्म परित्याग कर रामभजन में लग गये। ईश्वरकृपा ने क्षण ही में चोरों को साधु बना दिया। धन्य ईश्वर की कृपा तथा भक्तवत्सलता ! प्रिय पाठकवृन्द ! यदि हम लोग भी स्वच्छ हृदय से प्रेमपूर्वक ऐसी प्रार्थना करते रहें—

"अति सुन्दर रूप अनूप महा छबि कोटि मनोज लजावनहारे।
उपमा न कहूं सुखमा के सुमन्दिर मन्दिर हूं के बचावनहारे !!
दिननायक हूँ निसिनायक हूँ मदनायक के मदतावनहारे।
साँवरे राजकिसोर बसो चित चोरन हुं के चोरानवहारे॥"

तो क्या वह करुणानिधान भगवान हमलोगों पर कृपादृष्टि नहीं करेंगे ? और यों तो सर्वदा हमारी रक्षा करते ही हैं, चाहें यों ही करें चाहे कोई विशेष रूप धारण कर के करें।

अपने साथ लोगों का ऐसा २ कुव्यवहार होने पर भी गोसाईं जी काशी में ठहरे रहे। वहां पर आपने जो कई एक चमत्कार देखलाया था अब उन का वर्णन किया जाता है।

---

१. ग्रियर्सन साहब ने यह कथा भी लिखी है कि एक बार अन्धेरी रात में घर आते समय चोरों ने इन्हें रास्ते में रोका था। परन्तु गोस्वामी जी ने अचल तथा निर्भीक भाव से हनुमान जी का स्मरण कर यह दोहा पढ़ा :—

'वासर ढासनि के ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर।
दलत दयानिधि देखिये, कपि केसरी किसोर॥'

बस गोसाईं जी के दुहराने पर हनुमान जी प्रकट हो चोरों को मार भगाये।

उपर्युक्त दोहे के विषय में ऐसा भी कहा जाता है कि हनुमान फाटक पर रहने के समय अलईपुर के जुलाहों से नाकों दम आकर इन्हों ने इस की रचना की थी। परन्तु यदि जुलाहों के कारण यह दोहा बनाया जाता तो रजनी तथा चोर की बात इस में कैसे आती ? हाँ, यदि वे जुलाहे इन के यहाँ चोरी भी करते हों तो हो सकता है।

एक दिन शीतकाल में गोसाईं जी गंगा स्नान कर के छाती भर पानी में खड़ा हो प्रभु का ध्यान कर रहे थे। उसी समय कोई वेश्या पश्मीने के वस्त्रों से ढकी हुई निज समाजी के साथ कहीं जा रही थी। इन की दशा देख चकित हो वहीं ठठक गई और मनहीं मन कहने लगी कि "यह विचित्र जीव है जो इस जाड़े में स्नान कर फिर पानी ही में नेत्र बन्द किये खड़ा है। कहाँ मेरा यह सुख आनन्द ? और कहाँ इसकी यह दशा ?" इतने में ध्यान से निवृत्त होकर थोड़ा जल हाथ में लिये गोसाईं जी बाहर किनारे पर आये और उस जल को उन्होंने अपने पहनने के वस्त्र पर छींटा। कहते हैं कि जल की कई एक छींटें उस वेश्या के शरीर पर भी जा पड़ीं जिस से उस की दिव्यदृष्टि हो गई और उसे नर्क स्वर्ग का दुख सुख प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगा और उसी दम वह अपनी सब चीज वस्तुएँ समाजी को देकर आप विरक्त हो गयी। परन्तु वह समाजी भी विरक्त होकर सन्तसेवी बन गया। सारांश यह कि गोसाईं जी के दर्शन से एक वेश्या और उस का समाजी भगवद्भक्ति के रंग में रंग गये।

सत्संगति और संतदर्शन की महिमा अपार है। जहाँ सच्चे महात्मा रहते हैं निस्सन्देह वहां के जलवायु में प्रभु-प्रेम-उपजानेवाली कुछ विचित्र शक्ति आ जाती है फिर सन्तजनों का पूछना ही क्या है ?

एक बार एक नाममात्र का अलखिया फकीर 'अलख जगाता हुआ' अर्थात् 'अलख २' करता हुआ गोसाईं जी के पास पहुँचा। उससे गोसाईं जी ने कहाः—

"हम लख, हमें, हमार, लख, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहिं का लखै, रामनाम कहु नीच॥"

यह सुनकर उस को भी रामनाम का अनुराग हो गया। अर्थात् इन्हों ने अपने उपदेश से एक अलखिया को शीघ्र ही वैष्णव बना दिया।

कहते हैं कि एक तांत्रिक दण्डी (या चेटकी) देशाटन को गया था। उसके परोक्ष में कोई वैरागी उस की स्त्री को भगा ले गया। दण्डी को दक्षिणी सिद्ध थी। उस के द्वारा उस ने सम्राट को पकड़वा मंगाया और उन से सब वैष्णवों की माला-कंठी उतारने और तिलक मिटाने की आज्ञा करा दी। जब राज्यकर्मचारी-गण यह दूषणीय कार्य्य करते गोसाईं जी के स्थान के निकट पहुंचे तब वहाँ एक भारी भयङ्कर मूर्त्ति देख और भयभीत हो सब के सब भाग गये और गोसाईं जी के प्रताप से उतरी हुई कंठीमाला आप से आप लोगों के पास पहुँच गयी।[1]

---

१. पं० रघुनाथ शर्म्मा की रामायण में वैरागियों तथा योगियों में झगड़ा होना और योगियों के गुरु का योगबल से सम्राट को बुलाना लिखा है।

'भक्तमाला रामरसिकावली' तथा पण्डित ज्वालाप्रसाद जी की बड़ी रामायण में बादशाही सेना का उड़कर गङ्गा जी में डूब जाना, चेटकी का रुधिर बमन करते किसी प्रकार किनारे पहुँच कर क्षमाप्रार्थी होना, गोसाईं जी के आज्ञानुसार वर्ष भर साधुओं की जूठा खाकर उस का एक रामदास बन जाना एवम् उसके सङ्ग यक्षिणी का भी—पवित्राचारिणी हो जाना लिखा है।

आज भी तेजस्वी और प्रतापी महात्माओं के सामने बड़े उद्दण्ड उत्पाती अत्याचारियों को कोई अनुचित कार्य करने का साहस नहीं होता। उन के समीप बड़े २ भयानक हिंसक जन्तु भी अपना क्रूर स्वभाव परित्याग कर देते हैं।

इस के सिवाय हम यह समझते हैं कि इस आख्यायिका को उस काल से अवश्य कुछ सम्बन्ध है जब कि जहांगीर बादशाह की आज्ञा से बनारस में मन्दिरों के तोड़े जाने का उपद्रव हुआ था। वह अत्याचार आरम्भ होने का आदि कारण कोई दंडी हुआ हो तो सन्देह नहीं।

उसी उत्पात के समय उत्पाती राजकर्मचारी यदि वैष्णवों की कंठीमाला भी उतारने लग गये हों और कोई दंडी या योगी धन की लालच या किसी वैरागी के सङ्ग बैर ही के कारण कुछ झूठ सच बातें सम्राट के कानों तक पहुँचा कर ऐसा कार्य्य कराने का कारण हुआ हो, आगे २ चल कर वैष्णवों का स्थान बतलाता चला हो और गोसाईं जी के सामने जाने पर उन के तेज प्रताप से उन सबों को आगे बढ़ने का वा कोई अनुचित कार्य्य करने का साहस न हुआ हो वरन् गोसाईं जी के उपदेशगर्भित बातों को सुन कर अत्याचारी सब भी अपने घृणित काम से रुक गये हों तो इस में कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है। ऐसा होना एवम् ज्ञानेन्द्र बाबू के लेखानुसार काशी के सूबेदार से सहायता लेनी सम्भाविक और स्वाभाविक है। उसी घोर उत्पात निवारण के लिये कदाचित गोसाईं जी ने श्री विश्वनाथ से भी बड़ी प्रार्थना[1] की थी।

श्री गङ्गा जी की स्तुति करके एक जीविका-हीन दुखी पंडित को काशी के उस पार कुछ भूमि छोड़वा देने (अर्थात् दियाराभूमि उसे दिलवा देने) की भी बात सुनी जाती है। गङ्गा जी की कृपा और गोसाईं जी की स्तुति के प्रभाव में तो सन्देह नहीं, परन्तु क्या उस समय भूमि के बन्दोवस्त का कोई नियम नहीं था? जो जहां चाहता था वहां की भूमि अपने अधिकार में कर लेता था? हम तो यही कहेंगे कि गोसाईं जी ने उस विचारे दुःखी ब्राह्मण पर दया कर किसी यत्न से गङ्गा पार की फिर नई बनी हुई भूमि उसे दिलवा दी। जिन के सेवक तथा मित्र दिल्ली के बड़े २ राज्यकर्म्मचारी हों उन को ऐसा कार्य्य कर देने में कठिनाई ही क्या हो सकती थी और वे एक दरिद्र दुखपीड़ित ब्राह्मण का दुख दूर करने में यत्नवान ही क्यों नहीं होते?

रानी कमल कुअँरी के ग्रंथ में सम्राट का ससैन आकर गोसाईं जी का बास स्थान घेरना और वहां हनुमान जी को देखते ही प्राण लेकर भागना एवम् फिर सम्राट का इन के पास आकर अपराध क्षमा कराना कहा गया है।

बाबू ज्ञानेन्द्रमोहन दत्त ने वेदान्ती तथा वैष्णवों में विवाद होने एवम् वेदान्तियों का काशी के सूबेदार से सहायता लेने की बातें कही हैं।

बात जो कुछ हो परन्तु लेखकों ने भिन्न २ रीतियों से सम्राट की दुर्गति कराने में त्रुटि नहीं की है।

१. देखिये कवितावली, उत्तर कांडव।

बैजनाथ दास और रानी कमल कुँअरी की पुस्तकों में एक और दरिद्र ब्राह्मण को, इन के शरणापन्न हो श्री राम भजन में प्रवृत्त होने पर, श्री हनुमान जी की कृपा से बहुत सा द्रव्य प्राप्त होने की बात देखी जाती है।

चित्रकूट में भी आप ने एक धनहीन ब्राह्मण के दुख निवारण का यत्न किया था। खानखाना से भी एक ब्राह्मण की सहायता कराई थी। इन लोगों का हाल आगे प्रगट होगा।

गोसाइं जी ब्राह्मणों के शुभचिन्तक थे, यह बात हमलोगों को रामायण से भी विदित होती है। परन्तु केशवदास[1] के समान ये किसी विशेष श्रेणी के ब्राह्मण के 'पक्षपाती' नहीं थे।

कहते हैं कि एक भाट के काशी आकर इन की सेवा में एक कविता प्रस्तुत करने पर इन्हों ने उसे श्री राम मंत्र दे काशीवास के लिये अपने साथ रहने की आज्ञा दी थी। वह कवित्त यह है :—

स०—"पन दो इक भोग विषय विषया अब जो रही सो न खसाइये जू।
अबलों सब इन्द्रिन लोग हस्यो अब तो जनि नाथ हंसाइये जू॥
मदमोद महा खल काम अनी मन मानस ते निकसाइयें जू।
रघुनन्दन के पद के सदके तुलसी मोहि कासि बसाइये जू॥"

बैजनाथ दास तथा रानी कमल कुँअरी ने यह भी लिखा है कि एक निन्दक भाट गोसाइं जी के दर्शनार्थ काशी आया। इन का दर्शन नहीं पाने से उस ने इन की निन्दा में एक कविता की। वह कविता रामनाम युत होने से इन की प्रशंसासूचक हो गई। फिर गोसाइं जी का दर्शन पा कर वह निन्दा वृत्ति त्याग कर हरियश गान में प्रवृत्त हो गया।

यह बात हम ऊपर ही कह चुके हैं कि विलायती कवि गोल्डस्मिथ के कथनानुसार, जो इन की निन्दा भी करने आते थे, उन्हें भी इन का आचार-व्यवहार देख इन की स्तुति ही करनी पड़ती थी। हमें वह कविता देखने में नहीं आई। वह निन्दा के मिस स्तुति की कविता होगी।

एक बार गोस्वामी जी के पास एक सिद्ध मण्डली के आने की, तथा अपनी सिद्धता सिद्ध करने के लिये अपने योगबल से आगरा से चार साहूकारों को काशी में बुला लेने की बात भी कही जाती है। जब बिचारे सम्राट ही को लेखकगण सिंहासन सहित घसीट २ कर काशी लाये हैं तब साहूकारों की क्या गिनती है!

पूर्वोक्त दोनों लेखकों ने यह भी जनाया है कि नैमिषारण्य का एक प्रेत प्रेतयोनि से मुक्ति पाने के लिये काशी के बनखंडी नामक एक ब्राह्मण को लिये काशी पहुंचा! बनखंडी आकाश में

[1] इन्हों ने 'रामचन्द्रिका' में सनाढ्य ब्राहणों ही के दानमान का बड़ा फल कहा है :—"सनाढ्यान की भक्ति जाजीय जागे। महादेव को शूलता को न लागै॥ सनाढ्य वृत्तिजो हरै। सदा समूल सो जरै॥ अकाल मृत्यु सो मरै। अनेक नर्क सो परै॥ सनाढ्य जाति सर्वदा। यथा पुनीत नर्बदा॥ भजै सजै जे संपदा। विरुद्ध ते असंपदा॥

(उसी प्रेत के कन्धे पर सवार) दृष्टिगोचर हुआ, किन्तु वह प्रेत दीख नहीं पड़ता था। आकाश में एक मनुष्य को निरावलम्ब स्थित देख सब काशी-निवासी भयभीत हो दौड़े २ गोस्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुये और उन्हें विनय पूर्वक उसी स्थान पर—जहाँ वह अपूर्व दृश्य दीखता था, ले गये। गोसाईं जी को देखते ही प्रेत ने इन्हें सहर्ष दंड-प्रणाम किया और इन के मुख से हरिनाम उच्चारण सुन कर इन की कृपा से प्रेतयोनि से मुक्त हो उस ने स्वर्ग की राह ली। तब बनखंडी भूमिस्थित हो गोसाईं जी के संग इन के स्थान पर गया। कुछ काल वहाँ रह कर गोसाईं जी के सङ्ग वह नैमिषारण्य पहुंचा और उस धन से जो उस प्रेत ने उसे स्वामी जी के सम्मुख कर देने के पुरस्कार में पहले ही बता दिया था, बनखंडी ने गोसाईं जी की सहायता से वहाँ के तीर्थस्थानों का जीर्णोद्धार किया।

कोई प्रेततुल्य पापग्रस्त व्यक्ति किसी सज्जन के द्वारा गोस्वामी जी का दर्शन पा कृतार्थ हो अपने कुकर्मों तथा पापों से मुक्त हो गया तो इस में सन्देह की बात कुछ नहीं है। "सन्त-सरनि जो जन परै सो जन उधरनहार" ऐसा श्री गुरु नानक का कथन है। और इस से यह सार बात भी ध्वनित होती है कि गोस्वामी जी की सहायता से एक द्विज बनखंडी ने नैमिषारण्य के प्राचीन लुप्त तीर्थों का जीर्णोद्धार किया।

कवि गङ्ग[1] अकबर पादशाह के प्रसिद्ध कविराजों में थे। कहते हैं कि एक बार वे गोसाईं जी से मिलने काशी आये और गोसाईं जी को माला जपते देख उन्होंने एक निरादरसूचक कवित्त में कहा कि हाथी तुलसी की माला कब खटखटाता है। इस पर गोसाईं जी ने कहा कि 'मेरा तो यही जीवनाधार हैं, तुम जानो और तुम्हारा हाथी जाने।' इसके अनन्तर उन के दिल्ली लौट जाने पर उन की एक कविता[2] में कोई अयोग्य कथन पा अकबर बादशाह ने बेगम की सम्मति से उन्हें हाथी के पैरों से कुचलवा दिया और इसके प्रमाण में

---

१. कवि गङ्ग (गङ्गा प्रसाद ब्राह्मण) नौर गांव, जिला इटावा के रहनेवाले थे। इन का जन्म संवत् १५९५ में हुआ था। बीरबल ने इन्हें एक छप्पै पर एक लाख पारितोषिक दिया था (शिवसिंहसरोज, पृष्ठ ३९५-३९६)। रहीम खानखाना के भी ये सम्मानपात्र थे। जन्मकाल के हिसाब से श्री सूरदास जी के समय इन की अवस्था २४-२५ वर्ष की होगी। परन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र संग्रहीत 'साहित्य-लहरी' सटीक के अन्त में, बाबू रघुनाथ सिंह तालुकेदार भदवर जिला शाहाबाद से प्राप्त, जो श्री सूरदास जी के समसामयिक कवियों की दोहाबद्ध तालिका छपी है, उस में कवि गङ्ग का नाम नहीं देखा जाता। सम्भव है कि वह नामावली अपूर्ण थी।

२. कविता यह है :—"सब अङ्ग प्रफुल्ल सुगन्ध सम्हार कै मार सो चित दहत महक्यो। करि सोरहो सिंगार अटा पै चढ़ि एक लालन को जियरा लहक्यो॥ कर कंकन हाथ से छूटि गयो सिढ़ियन २ जो फिस्यो बहक्यो। कवि गङ्ग कहै इक ख्याल भयो ठननन ठननन ठननन ढहक्यो।" यह सवैया हम को रानी कमल कुँअरी के ग्रंथ में देखने में आयी। परन्तु यह शुद्ध नहीं प्रतीत होती। इस के चारों चरण चार ढङ्ग के हैं अतएव नियम भी ठीक नहीं। लोगों ने निश्चय इसे बिगाड़ दिया है।

लोग 'गङ्ग ऐसे गुनी को गयन्द सो चिरायो है' यह कह सुनाते हैं, और कोई नूरजहां के भाई जैनखां के गङ्ग को हाथी से मरवा डालने की बात कह कर उस के प्रमाण में 'जैनखां जुगारदार मार्यो एक तीर सो' यह पद सुनाते हैं। परन्तु इतिहास पढ़नेवाले यह बात भली भांति जानते हैं कि जैनखां अकबर का धायभाई था और उन से ४ वर्ष पूर्व ही संवत् १६५८ में परलोकगामी हुआ। तब नूरजहां के भाई जैनखां की बात गप्प ही निकली। इस के सिवाय योधपुर निवासी मु॰ देवीप्रसाद निम्नोद्धृत छप्पै का उल्लेख करके गङ्ग कवि का औरङ्गजेब के समय तक रहना बताते हैं और कहते हैं कि अकबर की मृत्यु के ५१ वर्ष पीछे औरङ्गजेब बादशाह हुये। यदि अकबर की मृत्यु के समय कवि गङ्ग की अवस्था २५-३० वर्ष की हो तो ७५-८० वर्ष जीवित रहना कुछ आश्चर्य्य की बात नहीं और औरङ्गजेब ने इन्हें महावृद्ध ही देखकर इन्हें उपहास से वैसी हथिनी दी थी जिस के बदले इन्होंने भी उन के उपहास में यह कविता कही [1]—

छप्पै :—तिमिरलंगलइ मोल चली बब्बर के हलके।
साह हुमायूं साथ गई फिर सहर बलक्के[2]॥
अकबर करी अजाच भात जहँगीर खिलाये।
शाहजहां सुलतान पीठ कै भार छोड़ाये॥
औरङ्गजेब बखसिस किये, अब आई कविगङ्ग घर।
उन छाड़ दई उद्यान बन, भ्रमत फिरति है स्थार डर॥

परन्तु मिश्रबन्धु "मर्य्यादा भाग १, संख्या १, पृ० १०-११ में इस छप्पै का पाठान्तर दे कर इसे कवि गङ्गकृत होना और औरङ्गजेब के उपहास में इस का रचा जाना स्वीकार करने में सम्मत नहीं हैं तथा औरङ्गजेब के समय तक गङ्ग के जीवित रहने के विषय में कहते हैं कि "अब कोई नवयुवक कवि ख़ानख़ाना ऐसे गुणी और सत्कवि को कविता द्वारा ऐसा प्रसन्न तो कर ही नहीं सकता कि उन से अच्छा सम्मान पाता, तो इस ऊँचे दरजे पर पहुँचने के लिये गङ्ग एक ऐसे साधारण श्रेणी के मनुष्य को बहुत काल लगा होगा। इस से निश्चय होता है कि गङ्ग अवस्था में रहीम से बड़े नहीं तो बराबर अवश्य ही होंगे और रहीम का जन्म संवत् १६१० में हुआ और मृत्यु-संवत् १६८२ में हुई। इस से उस समय गङ्ग की अवस्था लगभग ७५ वर्ष की होगी। तब संवत् १७१४ तक इन का जीवित रहना असम्भव जान पड़ता है।"

इसका संभव या असंभव होना यही बात मान लेने पर या न मान लेने पर निर्भर है कि कोई नवयुवक कवि ख़ानख़ाना ऐसे पुरुष को कविता द्वारा प्रसन्न कर सम्मानित हो सकता था या नहीं।

यहां पर हमें इस विषय में विशेष विचार की आवश्यकता नहीं क्योंकि हम गङ्ग की जीवनी लिखने नहीं बैठे हैं।

---

१. 'सरस्वती', भाग ८, संख्या १२, पृष्ठ ५०१ देखिये।

२. बलख़।

परन्तु गङ्ग ऐसे प्रसिद्ध कवि और सदा सज्जनों के सहवासी, आवें तो दर्शन करने और आते ही, स्वयम् एक ब्राह्मण सन्तान होने पर भी, गोस्वामी जी के समान महात्मा की कंठी-माला की निन्दा करने लगे, यह बात मानने योग्य प्रतीत नहीं होती। ऐसा तो कोई महामूर्ख भी नहीं कर सकता। और यदि उन्हों ने सचमुच ऐसा किया तो उन की ऐसी ही दशा होनी उचित था। क्योंकि 'सन्त के दूषणि आरजा घटै' अर्थात् सन्तों की निन्दा से आयुर्बल का ह्रास होता है।

कथित है कि एक बार निज पति के मर जाने पर एक ब्राह्मणी[1] सर्व शृंगारों से भूषित हो पति की सहगामिनी होने जा रही थी। रास्ते में गोसाईं जी का दर्शन पा उस ने हाथ जोड़ आप को प्रेमपूर्वक प्रणाम किया। गोसाईं जी ने उसे सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया। इसपर उस के साथियों ने गोसाईं जी से उसके पति को जीवन विसर्जन की बात कही और साथ ही साथ यह भी कहा कि "आप का आशीर्वाद भी तो व्यर्थ नहीं जा सकता।" गोसाईं जी ने अपने करुणामय स्वामी को स्मरण कर कहा कि "जब तक मैं लौटकर न आऊँ इस के स्वामी की दग्धक्रिया न की जाय।" यह कह कर आप गंगास्नान करने चले गये और वहां भगवान की स्तुति में मग्न हो रहे। तीन घंटा के अनन्तर वह मृतक ब्राह्मण जैसे कोई सोकर उठा हो उठ बैठा, और लोगों से अपने वहाँ लाये जाने का कारण पूछने लगा। सब वृत्तान्त अवगत होने पर प्रभु का और गोसाईं जी का सपरिवार भक्त हो वह रामभजन में लग गया। इस कथा का उल्लेख करते हुए बहुत से रामप्रेमियों ने यह भी लिखा है कि "पहिले गोसाईं जी ने उस स्त्री से और उस के साथियों से रामभजन की प्रतिज्ञा करा ली थी तब उसके पुनर्जीवन के हेतु ईश्वर से प्रार्थना की थी।" परन्तु हमारी समझ में गोसाईं जी ने ऐसी प्रतिज्ञा नहीं कराई होगी क्योंकि वे इतना अवश्य समझ सकते थे कि वह प्राणी निश्चय अधम और महा अभागा होगा जो ईश्वर और ईश्वरभक्त की ऐसी अद्भुत कृपा और महिमा देखकर भी आप ही आप ईश्वर भजन और प्रभु गुणगान में प्रवृत्त न हो। और यदि वह इसी प्रकृति का जीव होता तो उसे प्रतिज्ञा भंग करने ही में कितनी देर लगती?

---

१. पंडित रघुवंश शर्म्मा ने इसे एक रामनिन्दक साहुकार की स्त्री होना और गोसाईं जी का मुरदे के कान में 'राम कहो' कहकर उसे जिलाना लिखा है।

रानी कमल कुँअरि ने गंगा जल मंगवाकर शव के मुंह पर हाथ फेरना लिखा है।

'भक्तमाला रामरसिकावली' और पण्डित ज्वालाप्रसाद जी की बड़ी रामायण में लिखा है कि 'उस स्त्री के गोसाईं जी से निज वचन सत्य करने के लिये कहने पर गोसाईं जी उस शव के समीप गये और उन्हों ने उस स्त्री से आँखें मूँद कर बाँह पसार कर पति से मिलने और रामनाम उच्चारण करने का आदेश दिया। उस स्त्री के और सब लोगों के 'जय राम' कहने पर वह मृतक भी हाथें उठाकर 'जय राम जय राम' बोल उठा। तब गोसाईं जी ने यह कह कर कि हे ईश्वर; तुम जानो, उस शव पर हाथ रखा और वह तुरत जी उठा।" पंडित जी की छोटी रामायण में भी प्रायः यही आशय प्रगट किया गया है।

अतएव रामभजन की प्रतिज्ञा कराने की बात हम को उपयुक्त प्रतीत नहीं होती। हाँ, श्री ज्ञानेन्द्र मोहन दत्त ने जिस प्रकार से इस उपाख्यान का वर्णन किया है वह बहुत ही स्वाभाविक और सम्भाविक है। उसमें गोसाईं जी का स्त्री को ज्ञान और भक्ति का उपदेश करना और ईश्वर कृपा से उस मृतक ब्राह्मण का पुनर्जीवित होना पाया जाता है। उन्हों ने लिखा है कि उस का आशय यह है कि 'गोसाईं जी के सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद देने पर वह रमणी बोली कि जब हमारे स्वामी ही हेरा गये तब मैं सौभाग्यवती कैसे हूंगी, मैं तो आप की पदधूलि लेकर सहमरण के लिये जाती हूं। गोस्वामी जी ने प्रश्न किया कि सहमरण के लिये क्यों जायगी? उस ने उत्तर दिया कि स्वामी के सङ्ग स्वर्ग जा सकूंगी। गोस्वामी जी ने कहा कि स्वर्ग जा कर क्या होगा, उस का भी तो शेष होता है? रमणी ने उत्तर दिया कि 'जब शेष होगा तब होगा, इस समय तो स्वामी के सङ्ग रहूँगी।' तब गोसाईं जी ने कहा कि "हे रमणी यदि तू राम का भजन कर, तो उस से रामचन्द्र को भी पावेगी और अपने स्वामी को भी पा सकेगी।" अर्थात् इन्हों ने राम भक्ति विषयक नाना तत्त्वज्ञान का उसे उपदेश दिया जिस से वह स्त्री रामभजनाभिलाषिणी हो सहमरण का संकल्प परित्याग कर रामनाम उच्चारण करती अपने स्वामी के देह सत्कार के लिये शव के पास पहुंची और वहां अपने पति को उस ने जीवित पाया। तब अधिकतर उत्साह से रामनाम कहने लगी और उस का पति भी रामनाम उच्चारण करते उठ बैठा। और दोनों व्यक्ति गोसाईं जी के शिष्य हो रामभजन में प्रवृत्त हुये।

इस में केवल गोसाईं जी का साधु योग्य उपदेश करना और ईश्वर की उस पतिव्रता स्त्री पर कृपा प्रदर्शन ही पाया जाता है जो दोनों बात आश्चर्य जनक नहीं हैं। सावित्री आदि की कथाओं में हम लोग पतिव्रता के प्रभुत्व को जान चुके हैं।

हम अनुमान करते हैं कि कदाचित् उसी समय से शव के सङ्ग 'रामनाम सत्य है, रामनाम सत्य है' कहते जाने की रीति प्रचलित हुई है।

ऐसा भी कहते हैं कि मृतक ब्राह्मण को पुनर्जीवित करने पर इन के यहां दर्शकों की बड़ी भीड़ होने लगी जिस कारण से ये गुफा में रहने लगे। दिन में एक बार निकल कर लोगों को दर्शन दिया करते थे। ऐसे दर्शकों में तीन बालक थे जिन में एक मणिकर्णिका घाट, दूसरा देवी (वा अन्नपूर्णा) मंडप और तीसरा विश्वेश्वरनाथ के पास रहता था। वे तीनों स्वामी जी से बहुत प्रेम रखते थे। एक दिन उन लोगों के नहीं आने से गोसाईं जी न गुफे से निकले और न उन्हों ने किसी को दर्शन दिया, जिस से जो लोग आये थे अपना अपमान समझकर बहुत रुष्ट हुये, पर करें तो क्या? दूसरे दिन फिर वे बालक भी आये और अन्य लोग भी एकत्रित होते गये। परन्तु स्वामी जी ने लोगों को यह दिखलाने के लिये कि उन बालकों का कैसा निश्छल प्रेम था उस दिन भी गुफा से नहीं निकले और सब दर्शनाभिलाषियों को अपने-अपने घर लौट जाना पड़ा। लौट जाने पर और लोग तो अपने २ काम धन्धे में लग गये, परन्तु वे तीनों बालक दर्शन नहीं पाने के परिताप से तड़प २ कर मर गये। फिर सब लोगों के

इकट्ठे होने पर उन बालकों का हाल सुन[1] गोसाईं जी ने प्रभु का चरणामृत भेजा जिस के प्रताप से वे बालक फिर उठ कर आप के दर्शन को आये। उन के शुद्ध प्रेम की सब लोगों ने बड़ी प्रशंसा की। अवध में भी एक मृतक ब्राह्मण बालक के पुनर्जीवित करने की बात कही जाती है, जिसका विवरण अवध के प्रसङ्ग में दिया जायगा।

काशी जी में गोसाईं जी श्री रामलीला और कृष्ण लीला भी कराते थे। परन्तु गोसाईं जी के पूर्व से भी काशी में रामलीला होना कहा जाता है। कहते हैं कि काशी में एक जन मेघाभगत[2] के श्री रामचन्द्र के दर्शनार्थ अनशन-व्रत करने पर उनको स्वप्न में आज्ञा हुई कि साक्षात दर्शन दुर्लभ है तुम मेरी लीला का अनुकरण करो। तभी से रामलीला आरम्भ हुई और कदाचित् भरतमिलाप के दिन श्री रामचन्द्र की कुछ झलक अब भी आ जाती है। मेघाभगत ही से भारतवर्ष में पहिले पहल रामलीला का सूत्रपात हुआ। मेघाभगत के समय की लीला अब काशी में चित्रकूट के नाम से प्रसिद्ध है और वही लीला प्राचीन है। परन्तु वर्तमान ढंग से गोसाईं जी की रामायण गा गा कर उसके अनुसार रामलीला करने की प्रथा गोसाईं जी ही के समय से प्रचलित हुई है। उन के समय की लीला अभी तक अस्सी पर होती है और गोसाईं जी की रामलीला कहलाती है। इन की रामलीला में खरदूषण की सेना के राक्षसगण भैंसें, घोड़े आदि पर सवार हो कर निकलते हैं, और दूसरी रामलीलाओं में विमान पर निकलते हैं। गोसाईं जी की रामलीलावाली लङ्का अभी तक लङ्का कहलाती है।

गोसाईं जी केवल रामलीला ही नहीं कराते थे, वरन् श्री रामचन्द्र के उपासक होकर आप कृष्णलीला के भी अनुरागी थे। हो क्यों नहीं ? राम और कृष्ण में भेद ही क्या है ? सच्चे ईश्वरानुरागी प्रेमियों के सामने तो भेद कुछ नहीं है। हाँ ! कोरे आडम्बर-कलेवर बकवादियों के लिये तो अवश्य ही दो हैं। काशी में तुलसी घाट पर कार्तिक-कृष्णपञ्चमी को 'कालीयदमन' लीला अभी तक बड़ी मनोहारिणी हुआ करती है।

कहते हैं कि नीमषार से लौटती समय मिसरिख से पूर्व जयराम गांव में आकर गोसाईं जी ने एक सूखी छड़ी गाड़ दी थी वह एक पूरा पेड़ हो गया। आपने उस पेड़ का नाम 'वंशीबट' रखा क्योंकि आप श्री वृन्दावन से वह बट की छड़ी लाये थे और उन्हों ने उस स्थान के निवासियों को वहां रासलीला कराने का आदेश किया। तब से बराबर श्री रामविवाहोत्सव के दिन अगहन सुदी पंचमी को वहां पर रासलीला हुआ करती है।

---

१. रानी कमल कुअँरि ने तीन दिन दर्शन नहीं पाने से बालकों का प्राण त्याग करना और गसाईं जी के पूछने पर किसी का उनके मरने का हाल नहीं कहने से आप का अपने शिष्य को भेजकर यह समाचार जानना और तब उसके द्वारा श्रीरामचन्द्र का चरणामृत भेज कर उन सबों का पुनर्जीवित करना लिखा है।

२. "मेघाराम भक्त श्री गोसाईं जू के प्रेमीवर, मानस के नेमी कथा सुनैं मन लाय कै।
जेती सुनैं कथा तेती कंठ करैं तथा मनछूटीं सब व्यथा यथा रंक धन पाय कै॥
दरस त्रिकाल चरनामृत प्रसाद नेम, सैन समय सेवत चरन हिय लाय कै।
आज्ञा जब पावै पद बन्दि घर आवैं तहां बैठि कै एकान्त मानसी में रहै छाय कै॥"
—रसिकप्रकाशभक्तमाल भाग १ टीका कबित्त १२५

बहुत से लोग कहते हैं कि कवितावली का निम्नलिखित कवित्त तथा उस के ऊपर वाले दो कवित्त गोसाईं जी ने कलिकाल के प्रति उस समय कहा था जब पूर्वोक्त मेघाभगत की स्त्री इन की परीक्षा लेने गयी थी।

"भागीरथी जल पान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौं।
मो सो न लेनो न देनो कछू कलि भूलि न रावरी ओर चितै हौं॥
जानि कै जोर करो परिनाम तुम्हीं पछितैहौं पै मै न भितै हौं।
ब्राह्मन ज्यों उगल्यो उरगारि[1] हौं त्यों ही निहारे हिये नहिं तै हौं॥"

मेघाभक्त की स्त्री का गोसाईं जी की परीक्षा लेने की कथा 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' की टीका के १२५—१३२ कवित्तों में यों लिखी है कि भक्त मेघाराम गोसाईंजी के बड़े प्रेमी और मानस की कथा सुनने के बड़े अभिलाषी थे। जो कथा सुनें उसे कण्ठस्थ कर लेते थे, सर्वदा गोसाईं जी की सेवा में लगे रहते थे और उन से आज्ञा पा कर जब घर जाते तब एकान्त में बैठ कर ध्यानावस्थित हो जाते। यद्यपि उनका घर धन धान्य से पूर्ण था और शीलवती, गुणवती, रूपवती, भागवती, और स्नेहवती स्त्री भी थी जो सदा उन से सुखप्रेम की लालसा रखती थी तथापि वे सदैव संसार से विरक्त रहते और पत्नी को भक्तिभेद का उपदेश किया करते थे। एक बार गोसाईंजी कर में माला लिये और मुख से रामनाम उच्चारण करते गंगा तट पर तरंगों का कल्लोल देख रहे थे कि उसी समय मेघाभक्त की स्त्री गंगास्नान करने गयी और "वाही समै भक्तबधू सुन्दरी निहार उर छाई छवि दंपति को भये जू अचेत हैं" और "न्हाई कै निहारि इन्हें बूझि हंसि बोली तिया नीके हम जाने सब संत उर हेत हैं।" उसी दिन घर आकर सायंकाल में पति की आज्ञा से एक दासी के सङ्ग वह स्त्री जगद्गुरु स्वामी जी की परीक्षा के हेतु भलीभांति सज धज कर मनोमोहिनी रूप बनाकर उन की कुटी पर गयी। उस को देखते ही गोसाईंजी ने उठकर उसे दंडवत किया और "गहे पांव धाय दासी दीनी है जनाय आई दरसन हेतु नीके नाहिन पछाने हैं।" तब "बोले गुरु ज्ञानी हम इष्ट निज जानी जो पै भक्तराज तिया तउ भाग अधिकाने हैं।" यह सुनकर वह स्त्री लज्जित हो माथा अवनत किये घर लौट गयी। मेघाभक्त को दासी से परीक्षा का सब वृत्तान्त ज्ञात हुआ। अन्त में वह स्त्री भी ईश्वर-भक्त हो गयी और दम्पति हरिप्रेमानन्द में कुछ काल मग्न रह कर परमधाम सिधारे।

---

१. कथा ऐसी है कि जब अमृत हरने को गरुड़ चले तो अपने क्षुधित होने का हाल अपने पिता से कहा और उनकी आज्ञा से उत्तर तटवर्त्ती पापी निषादों को उन्हों ने भक्षण किया। उन निषादों में एक भ्रष्ट ब्राह्मण भी था। गरुड़ के पेट में जाने पर वह ब्राह्मण उन के हृदय में अटका और भीतर ही जलाने लगा। अगत्या गरुड़ को निषादों के सङ्ग उस ब्राह्मण को उगल देना पड़ा। कवि के कहने का भाव यह कि जैसे भ्रष्ट ब्राह्मण को भी गरुड़ नहीं पचा सके वैसे हे कलि! तू मुझे (नाममात्र के रामभक्त को) भी नहीं दबा सकेगा।

यह सम्भव है कि मेघाभगत की स्त्री इन की परीक्षा करने गई हो और इन का वर्त्ताव देख हरिपरायणा हो गई हो। परन्तु इस आख्यायिका का यह वाक्य "वाही समै भक्तबधू सुन्दरी निहार उर छाई छवि दंपति की भये जू अचेत हैं' गोसाईं जी की प्रतिष्ठा में कहा गया है या क्या, यह अवश्य विवेचनीय है। कदाचित इस के रचयिता कवि स्वयम् अचेत हो गये हैं और उन्हों ने उमंग में यह लिख मारा है। इस के हानिकारक फल का विचार नहीं किया है। गोसाईंजी अचेत नहीं हुये।

काशीजी में गोसाईं जी का वास स्थान

'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण के अनुसार काशी जी में गोस्वामी जी के चार स्थान ख्यात हैं, अर्थात्—

(१) अस्सी पर तुलसी दासजी का घाट प्रसिद्ध है। इस स्थान पर गोसाईं जी के स्थापित हनुमान जी[१] हैं और उन के मन्दिर के बाहर बीसायंत्र लिखा हुआ है जो पढ़ा नहीं जाता है। यहाँ गोसाईंजी की गुफा है। यहाँ पर विशेष करके गोसाईंजी रहते थे और अन्त समय में भी यहीं थे।

(२) गोपाल मन्दिर—यहां श्री मुकुन्द राय जी के बाग के पश्चिम-दक्षिण के कोने में एक कोठरी है, यह तुलसीदासजी की बैठक है, यह सदा बन्द रहती है झरोखे में से लोग दर्शन करते हैं। केवल श्रावण सु० ७ को खुलती है और लोग जाकर पूजा आदि करते हैं। यहाँ बैठकर यदि सब 'बिनयपत्रिका' नहीं तो उस का कुछ अंश इन्हों ने अवश्य लिखा है, क्योंकि यह स्थान विन्दुमाधव जी के निकट है और पंचगंगा, विन्दुमाधव का वर्णन गोसाईं जी ने पूरा पूरा किया है। बिन्दुमाधव जी के श्री अङ्ग के चिन्हों का जो वर्णन गोसाईंजी ने किया है वह पुराने विन्दुमाधव जी से जो अब एक गृहस्थ के यहाँ हैं, अविकल मिलता है।

(३) प्रह्लाद घाट पर।

(४) "संकट मोचन हनुमान — यह हनुमान जी नगवा के पास अस्सी के नाले पर गोसाईंजी के स्थापित हैं। कहते हैं कि प्रह्लाद घाट के ज्योतिषी गंगाराम ने जो राजा के यहां से द्रव्य पाया था उसमें से उन्हों ने १२ हजार गोसाईं जी को साग्रह भेंट किया। गोसाईंजी ने उस से श्री हनुमानजी की बारह मूर्त्तियाँ स्थापित की थीं जिन में से एक यह भी है।'[२]

---

१. राजापुर में भी आप के स्थापित संकटमोचन महावीर जी का मन्दिर है। "नींव के वृक्ष तरे प्रथमै तुलसी हनुमंत की मूरति थारी। प्रान प्रतिष्टा करी नित पूजत इष्ट से प्रीति प्रतिति प्रतारी। राति को स्वप्न भयो तिनको बलदेव प्रभात गये तहँ आरी। दामिनी सी दमकी दुति औ दग देखत ही प्रतिमा बिच ग्यारी॥"—बलदेवदासकृत 'राजापुरमाहात्मय।'

२. 'रामाज्ञा' पुस्तक की समालोचना देखिये।

पहले आप हनुमान फाटक पर रहते थे। मुसल्मानों के उपद्रव से वहाँ से उठ कर गोपालमन्दिर में आये। वहाँ से भी वल्लभकुल [1] के गोस्वामियों से विरोध के कारण अस्सी पर चले आये और मरण पर्यन्त वहीं रहे। किन्तु ग्रियर्सन साहेब ने आयोध्या से लाकर आप को पहले ही अस्सी पर बैठाया है।

---

१. ११ बदी बैशाख सं० १५३५ में श्री वल्लभाचार्य का प्रादुर्भाव हुआ था। आप के पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट था। आप द्राविड़ ब्राह्मण थे मंदराज हाते के आक बिड़ु जिला के कांकरबल्ली गाँव में आप का घर था। आप महान पंडित तथा वक्ता थे। आप ने सारे भारतवर्ष की तीन बार परिक्रमा तथा दिगविजय किया था। आप ही वल्लभीय सम्प्रदाय के संस्थापक तथा शुद्धाद्वैत मत के प्रचारक हुये। आप के बनाये २४ ग्रंथ देखे जाते हैं जिन में दो सूत्रों का भाष्य एवम् भागवत की टीका बहुत बड़े ग्रंथ हैं। आषाढ़ २ सं० १५८७ में काशी में आप गोलोकवासी हुये। आप के पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी के ७ पुत्रों में से सबसे बड़े श्री गिरधरदास जी एवम् छोटे पुत्र यदुनाथ जी के वंशज अभी तक वर्तमान हैं। वल्लभीय सम्प्रदाय में श्री कृष्ण जी की उपासना की जाती है। आचार्य्य लोग गृहास्थाश्रमी होते हैं। ईश्वर भजन के लिये गृहत्यागी होने की विशेष आवश्यकता भी नहीं यदि घर में इस कार्य्य में कोई बाधा न हो।

दशम परिच्छेद

दिल्ली-गमन

कहते हैं कि गोस्वामी जी के मुर्दा जिलाने की बात फैलते २ जब दिल्लीश्वर (जहांगीर) के कानों तक पहुंची तो सम्राट ने इन्हें अपने दरबार में बुला भेजा। इन के बड़े २ प्रेमी तथा सहायक इन के दिल्ली जाने में सहमत नहीं थे वरन् इन के लिये युद्धक्षेत्र में अवतीर्ण होने को उद्यत थे। परन्तु सुविख्यात धर्म्म शिक्षक तथा नीतिज्ञ गोसाईं जी यह कहकर कि राजाज्ञा उलंघन करना उचित नहीं नाव पर चढ़ दिल्ली पहुँचे। वहां दिल्लीश्वर ने इन का सादर स्वागत सत्कार कर इन्हें एक उच्च आसन पर बैठा इन से कुछ करामात दिखाने की प्रर्थना की। "गुंजाइशे ख्याल तिलिस्मे जहां कहां। आँखों में जिस के जलवा हक है बसा हुआ॥' इन्हों ने स्पष्ट कह दिया कि "हम तो केवल श्री सीताराम को जानते हैं। भला करामात से हमें क्या काम?"[1] सम्राट ने इन का यह यथार्थ उत्तर करामात नहीं दिखलाने का बहाना समझकर इन्हें कारागार में स्थान प्रदान किया और कहा कि "बिना करामात दिखलाये जान का छुटकारा नहीं होगा।" गोसाईं जी को काशीवास के बदले कारागार का वास मिला। सम्राट के इस अयोग्य व्यवहार से गोसाईं जी का चित्त बहुत उदास और दुखित हुआ। इन्हों ने बन्दीगृह में अपने दुख सुख के एक मात्र सहायक श्री रघुनायक पायक पवनकुमार की स्तुति की।[2] कहते हैं कि उन की बानरी सेना दिल्ली के कोट में प्रवेश कर उत्पात मचाने और उसे तहस नहस करने लगी। मरकटों का ऐसा उत्पात देख सम्राट की आखें खुलीं और एक महान् महात्मा को क्लेश देना ही इसका कारण समझ कर वे घबड़ाये हुए श्री गोसाईं जी के पैरों पर गिर कर रक्षा तथा अपराध क्षमा के प्रार्थी हुए।[3] गोसाईं जी ने कदाचित कहा कि 'आप श्री रामचन्द्र को देखना चाहते थे। उन्हों ने पहले अपनी सेना भेजी है पीछे आप आते होंगे, उन्हें भी तो देख लीजिये।" परन्तु सम्राट को अब उन के देखने का साहस और उत्साह नहीं रहा। उन्हों ने बानरों के असह्य

---

१. इस सम्बन्ध में पादड़ी एड्विन ग्रीवस ने लिखा है कि "धन्य २ गोसाईं जी! आप ने अच्छा कहा। बादशाह अपने धर्म का अपमान कर के और चिकनी चुपड़ी बातें बना कर गोसाईं जी की प्रशंसा करते हैं और गोसाईं जी उन को झूठा बनाते हैं कि मनुष्य की झूठी प्रशंसा मत कर, एक ही परमेश्वर को पहिचान।"

२. रानी कमल कुअँरी के अनुसार 'हनुमान चालीसा' की रचना इसी समय हुई।

३. पं० रघुवंश शर्मा तथा रानी कमल कुअँरी के अनुसार सम्राट बेगमों के साथ गोस्वामी जी के पैरों पर गिरे थे। यह भी असंभव ही प्रतीत होता है।

उत्पात से रक्षा ही चाही। निदान, दयालुचित्त श्री गोसाईं जी के पुनः वन्दना करने पर श्री हनुमान जी ने बानरी सेना का निवारण किया। कथित है कि प्राण का त्राण होने पर सम्राट ने गोसाईं जी से प्रेमपूर्वक अपने योग्य सेवा के निमित्त सविनय प्रार्थना की। गोसाईंजी ने कहा कि "अब यह दुर्ग श्री हनुमान जी का हो गया, तुम इसे छोड़ दो, नया कोट बनवाओ।" और सम्राट ने ऐसा ही किया।

परन्तु इस घटना को सत्य मानने में इतिहास हमारी सहायता नहीं करता और हमें साहस नहीं दिलाता। प्रथम तो मुसल्मानी औलिया (सिद्धमहात्मा) सलीम चिश्ती के आशीर्वाद से उन्हीं के स्थान पर फिरोजपुर सिकरी में जहांगीर का जन्म हुआ था जिस के आनंद में अकबर ने वहां एक दुर्ग निर्माण किया। अकबर के शरीर त्यागने पर वे आगरा (अकबराबाद) में जहां अकबर ने अपनी नई राजधानी बनाई थी सिंहासनारूढ़ हुए। दिल्ली में उन का आना कम होता था। यात्रा को निकलते थे तो कभी राह चलते वहाँ दो एक दिन ठहर जाते थे। आगरा में रहने पर गोस्वामी जी को वहाँ न बुलावें और वहाँ से आगे सफर में दिल्ली जाने पर वहाँ बुला भेजें, इस का कोई कारण नहीं दीखता।

दूसरे 'तुजुक जहांगीरी' (वाजहांगीरनामा) में उनके शासनकाल के साल-साल का हाल लिखा हुआ है। उस में लगभग १६ वर्ष का वृत्तान्त जहांगीर बादशाह ने स्वयम् लिखा है। शेष समय का विवरण उनकी आज्ञा तथा कथन के अनुसार मोत्मिद खां द्वारा लेखबद्ध हुआ है। उस ग्रंथ में हिन्दू साधु महात्माओं से भेंटादि की बहुत सी बातें देखी जाती हैं। जहांगीर ने अपने प्रथम जश्न (राज्य के प्रथम वर्ष) के विवरण में अपने एवम् अपने हिन्दू तथा मुसल्मान कर्मचारियों के सलोनो में रक्षाबन्धन का हाल लिखा है और उस स्थान पर सलोनो, दशहरा, दिवाली तथा होली का विवरण दिया है। ग्यारहवें जश्न में यात्रा के वर्णन में लिखा है कि "इसी मंजिल (टिकान) में 'शिवरात' हुई; बहुत-से योगियों का संघटन हुआ। इस सम्प्रदाय के महानुभावों से वार्तालाप रहा।"[१] सोलहवें जश्न के सम्बन्ध में लिखा है कि "कोट कांगड़ा की सैर के बाद दुर्गा के दर्शन को गये। मूर्त्तिपूजकों के सिवाय, जिन का दुर्गा-पूजन धर्म है, झुंड के झुंड मुसल्मान दूर दूर से नजरें लाकर पूजा किया करते हैं"[२] फिर उज्जैन में जदरूप (चिदरूप) संन्यासी से भेंट का विवरण विस्तारपूर्वक ग्यारहवें जश्न के वर्णन में देखा जाता है।[3] पीछे वह महात्मा मथुरा चले आये थे। वहाँ भी अपने शासन के चौदहवें वर्ष में जहांगीर ने उन से भेंट की थी। इस का वर्णन सविस्तर लिखा गया है।[४]

उस में ये सब बातें लिखी हैं। सिक्खों के चौथे गुरु श्री अर्जुन जी का हाल एवम् अपने राज से सेवड़ों के निकाल देने की आज्ञा के प्रचार का हाल भी लिखा है, किन्तु गोस्वामी

---

१. सन १८६४ ई० का अलीगढ़वाले सय्यद अहमद द्वारा सम्पादित 'तुजुक जहांगीरी' का पृष्ठ १७८ देखिये।

२. उसी ग्रंथ का पृ० ३४० देखिये।

३. उसी ग्रंथ का पृष्ठ १७५-७६ देखिये।

४. उसी ग्रंथ का पृष्ठ २७६-२८० देखिये।

जी से भेंट की बात कुछ नहीं। यह बड़े आश्चर्य की बात है। इससे इस घटना में प्रबल सन्देह होता है। और जब भेंट ही प्रमाणित नहीं होती तो नई किला बनाने की आलोचना व्यर्थ ही होगी। वह तो इसे और भी कमजोर कर देती है तथापि उसका हाल भी कुछ लिख दिया जाता है।

बैजनाथ दास एवम् रानी कमल कुअँरी कहती हैं कि जहांगीर बादशाह ने अपने पुत्र शाहजहां के नाम से (शाहजहांबाद) नगर बसाया और वहां (अपने प्रतिज्ञानुसार) नवीन दुर्ग निर्माण कराया। परन्तु यह बात भी इतिहास के विरुद्ध पाई जाती है। ८ वीं जमादिउस्सानी हिजरी १०१४ (=१६०५ ई० = १६६२ संवत) में बृहस्पतिवार को जहांगीर सिंहासनारूढ़ हुए और लगभग २३ वर्ष तक राजदण्ड उन के हाथ में रहा। और शाहजहांबाद के नये किले की नींव हिजरी सन् १०४८ में डाली गई। शाहनवाज़ खां विरचित 'मासिर उमरा' नामक फारसी के एक प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तक में यह बात लिखी देखी जाती है। इस प्रकरण का कुछ अंश उस ग्रंथ से यहां पर उद्धृत कर दिया जाता है—

"कार आगाहान इमारत बाद पज़ोहश बिस्यार क़िता जमीनी (कि दर जाहिर दारुलमुल्क देहली म्याँ नोज़ गढ़ व अग़ाज़ आँ मामूरह वाका बूद) बिस्स-पंजुम ज़िल हिज्जा साल द्वाजदहुम सन् (१०४८) हजार चेहल व हस्त हजारी मुताबिक़ तरहे (कि दर पेशगाह खिलाफ़त मुकर्रर गशतह) बसरकारी ग़ैरतखान बिरादर ज़ादा अब्दुल्लाह खाँ फीरोज जंग (कि नज्म सूबा देहली बदो मफ़ौवज़ दूद) रंग रेख्तह बहसरे बनाँ आँ परदाख्तह व नहुम मुहर्रम साल मज़कूर असास आँ बिनाय मअश शाँ निहादन्द।

मैरीही काशी तारीख इख़्तताम् ईं बिनाए आली चुनीं याफ्तह—मिसरहः—

शुद्ध शाह जहाँ आबाद अज़् शाहजहाँ आबाद, १०५८ हिजरी।"

पं० शिवनन्दन मिश्र ने 'यंग बिहार' एक द्विभाषी पत्र[1] में शाहजहां बादशाह ही का गोसाईं को दिल्ली में बुला भेजना लिखा है। आप ने इतिहास तथा गणित की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया है। १६ जनवरी १६२८ ई० (संवत १६८५) को शाहजहां तख्त पर बैठे और सं० १६८० के श्रावन मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को गोसाईं जी का परमधाम सिधारना पंडित जी ने स्वयम् ही लिखा है।[2] तब इन के स्वर्गवास के अनन्तर शाहजहां ने क्या इन्हें स्वर्ग से बुला भेजा था?

प्रोफेसर विल्सन ने भी 'दी रेलिजियस सेक्टस आव हिन्दूज (The Religious Sects of Hindus)' नामक प्रबन्ध में किसी भक्तमाल के आधार पर यही बात लिखी है। उस को गोस्वामी जी कृत 'मानस रामायण' के अंगरेजी अनुवादक ग्रउस साहब ने भी स्वलिखित अनुवाद के उपक्रम में उल्लेखित किया है।[3] उस की पुनरालोचना की आवश्यकता नहीं।

---

१. 'यंगबिहार' प्रथम भाग, सं० १६६६, पृ० ७३ देखिये।

२. 'यंगबिहार' भाग १; सं १६६६, पृ० ८६।

३. Vide F. S. Growse's Introduction to his Translation of Ramayan, P. X of the 6th Edition, published by Ram Narayan Lal of Allahabad.

इन कारणों से 'काशी नागरी प्रचारिणी' द्वारा प्रकाशित रामचरित मानस का यह कि "नया किला बनने के बाद पुराने किले में बानरों के अधिक वास करने और कोट को नहस कर देने ही से यह बात प्रसिद्ध हो गई है"[1] ठीक जचता है।

यदि सम्राट से गोसाईं जी की भेंट की बात सन्दिग्ध नहीं होती तो नया क़िला के जहां के समय में बनने पर भी, इस कहावत के अनुसार कि "अगर पिदर न तवानद तमाम कुनद" अर्थात् बाप से न हो सके तो बेटा कर दिखलाये, हम इस घटना को सत्य ने में संकोच नहीं करते।

जो हो, इस विषय का विचार अपने पाठकों पर छोड़कर हम उन पदों को जो गार में गोसाईं जी का बनाना कहा जाता है यहां पर उल्लेखित कर देते हैं।

कानन भूधर बारि बयारि दवा विषज्वाल महा अरि घेरे।
संकट कोटि परो तुलसी तहँ मातु पिता सुत बन्धु न नेरे॥
राखहिं रामकृपा करि कै हनुमान से पायक हैं जिन केरे।
नाक रसातल भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे॥ १॥

तोहि न ऐसी बूझिए हनुमान हठीले।
साहेब काहु न राम से तुम से न बसीले॥
तेरे देखत सिंह के सुत मेढुक लीले।
जानत हूं कलि तेरेऊ मनो गुन गन कीले।
हांक सुनत दसकंध के भए बंधन ढीले
सो बल गयो कि भए अब कछु गर्वगहीले॥
सेवक को परदा फटे तूं समरथसीले।
अधिक आपु तें आपुने सनमान सहीले॥
सांसति तुलसीदास की देखि सुजस तुहीं ले।
तिहूँ काल तिनको भलो जे राम रँगीले॥ २॥
समरथ सुअनसमीर के रघुबीर पियारे।
मो पर कीबी तोहि जो करि लेहि भियारे॥
तेरी महिमा ते चलै चिंचिनी चियारे
अंधियारे मरी बार को त्रिभुवन उँजियारे।
केहि करनी जन जानि कै सनमान किया रे।
केहि अघ औगुन आपनो करि डारि दिया रे॥

---

१. उस रामायण में जीवन चरित्र का पृष्ठ २८ देखिये।

खाई खोंची मांगि मैं तेरो नाम लिया रे।
जो तो सो होतो फिरो मेरे हेत हिया रे॥
तौ क्यों बदन दिखावतो कहि बचन रिया रे।
तेरे बल आज लौं जग जानि जिया रे॥
तो सों ज्ञाननिधान को सरबज्ञ बियारे।
हौं समुझत साईं द्रोह की गति छार छिया रे॥
तेरे स्वामी राम सो स्वामिनी सिया रे।
तहँ तुलसी कहै कौन को ताको तकिया रे॥ ३॥

उपद्रव शान्ति के निमित्त तथा प्रथम पदों में जो श्री हनुमानजी को कठोर बातें **कही थीं उन के क्षमापन** में इन्हों ने नीचे के पदों को कहा था :—

अति आरत अति स्वारथी अति दीन दुखारी।
इनको विलगु न मानिये बोलहिं न बिचारी॥
लोक रीति देखी सुनी व्याकुल नर नारी।
अति बरषे अनबरषेहु देहिं दैवहिं गारी।
ना कहि आए नाथ सों भई सांसति भारी।
करि आये कीबी छमा निज ओर निहारी॥
समय सांकरे सुमिरिये समरथ हितकारी
सो सब विधि दया करै अपराध बिसारी॥
बिगरी सेवक की सदा साहेबहिं सुधारी।
तुलसी पै तेरी कृपा निरुपाधि निहारी॥ १॥
कटु कहिये गाढ़े पड़े सुनि समुझि सुसाईं।
करहिं अनभलेहु को भलो आपनी भलाई॥
समरथ सभी जो पाइए सुनि पीर पराई।
ताहि तक्यो सब ज्यों नदी बारिधि न बोलाई॥
अपने अपने को भलो चहै लोग लोगाई।
भावै जो जेहि भजै सो सुभ असुभ सगाई॥
बांह बोल दै थापिये जेहि निज बरियाई।
बिनु सेवा सो पालिये सेवक की नाईं॥

चूक चपलता मेरई तूं बड़ो बड़ाई।
हौं तौ आदरे ढीठ हौं अति नीच निचाई॥
बन्दिछोर विरदावली निगमागम गाई।
नीको तुलसीदास को तेरियै निकाई॥

प्रवाद है कि दिल्ली से आते समय राह में एक बन के पास सन्ध्या हो गई। वहां गांव का कोई चिह्न भी नहीं था। वहीं एक ग्वाला अपना पशु चरा रहा था। उस ने दूध प्रस्तुत कर गोसाईं जी का सादर सत्कार किया। गोसाईं जी ने वह दूध श्री रामचन्द्र को भोग लगाकर स्वयम् पान किया और उस ग्वाले को भी थोड़ा सा प्रसाद दे उसको प्रेमपूर्वक ऐसा उपदेश दिया कि वह प्रभु के अनुराग में मत्त होकर उन्हीं के ध्यान में लवलीन हो गया। कदाचित् वह स्थान अद्यावधि वर्त्तमान है। परन्तु इस प्रसङ्ग के लेखकों ने उस का नाम नहीं बताया है।

फिर वहां से रास्ता तय करते ये काशी लौट आये और श्री प्रियादास के लेखानुसार काशी से श्री नाभा जी से मिलने के लिये वृन्दावन गये जिस का पूरा वर्णन आगे किया गया है।

कोई २ लेखक इन्हें दिल्ली से सीधे वृन्दावन ले गये हैं।

एकादश परिच्छेद

व्रज-गमन

हिन्दी भक्तमाल[1] के सुप्रसिद्ध रचयिता श्री नाभा स्वामी से भेंट करने के लिये गोसाईं जी एक बार व्रज देश में पधारे थे।

कथा ऐसी है कि श्री नाभा जी इन से मिलने काशी आये थे। उस समय उन के ध्यानावस्थित रहने से किसी ने श्रीनाभाजी के शुभागमन का समाचार इन्हें नहीं जनाया और वे

१. श्री नाभाजी, श्री गोस्वामी तुलसी दास तथा श्री गोस्वामी विट्ठल नाथ जी के पुत्र श्री गिरिधरदास जी ये समसामयिक महापुरुष थे। इसी से श्री नाभा जी ने इन लोगों के सम्बन्ध में वर्त्तमान क्रिया का प्रयोग किया है। श्री गोस्वामी गिरिधरदास जी को निज पिता के गोलोकवास के अनन्तर सं० १६४२ में श्री नाथ जी की गद्दी की टिकैती मिली थी और गोसाईं जी का साकेतवास सं० १६८० में हुआ। इसी से लोगों का अनुमान है कि 'भक्तमाल' की रचना संवत् १६४६ के अनन्तर और सं० १६८० के पहले हुई थी। ग्रउस साहब ने लिखा है कि यह महा कठिन ग्रंथ है।

श्री प्रियादास जी ने सं० १७६९ में कवित्त में इस का भाष्य किया। उन्होंने इस कवित्त में यह बात स्वयम् ही लिखी है। "नाभाजी को अभिलाष पूरन लै कियो मैं तो ताकी साखी प्रथम सुनाई नीके गाई के। भक्ति विसवास जाके ताहि को प्रकास कीजै भींजै रंग हियो लीजै तनहु लड़ाई के॥ सम्वत प्रसिद्ध दस सात सै उनत्तर मों फालगुन मास बदी सप्तमि बिताइ के। नारायन दास सुखरासि भस्ममाल लै कै प्रियादास दास उर बस्यो रहो छाई के॥"

मैथिल पंडित चन्द्रदत्त ने भक्तमाल का संस्कृत में अनुवाद किया है। कँधला ज़िला मुजफ्फरनगर के रहनेवाले लालजी कायस्थ ने १७५१ ई० में 'भक्त उर्वशी' नामक भक्तमाल की टीका लिखी है। १८५४ ई० में मिरजापुरनिवासी तुलसीराम अग्रवाला ने इस का उर्दू अनुवाद लिखा है। मु० तपस्वी राम जी कायस्थ ने १८७९-८० में इसकी उर्दू टीका लिखी है। और उन के पुत्र सुप्रसिद्ध महात्मा श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद ने हिन्दी भाषा में इस का तिलक किया है जिस में पहले नाभा जी का छप्पै, फिर प्रियादास जी का कवित्त और तब वार्तिक तिलक है। बेलघरिया स्टेशन से आधकोस पूर्व निमतारा गाँव के रहनेवाले भगवानदास वा भगवतीदास मौलिक कायस्थ के पुत्र श्री कृष्णराम ने इस का बंगभाषा में अनुवाद किया है और गुरुमुखी तथा गुजराती भाषा में भी इस का उल्था होना सुना जाता है।

कुछ देर प्रतीक्षा कर इन के स्थान से चले गये। ध्यान से निवृत्त होने के अनन्तर श्री नाभाजी के आने और लौट जाने का हाल सुन कर इन को अत्यन्त खेद और पश्चात्ताप हुआ। ये उसी क्षण व्रज की ओर चल खड़े हुये। जिस समय आप नाभा जी के स्थान पर पहुँचे थे वहां सन्तों का भंडारा था। कहते हैं कि बिना निमंत्रण वहां जाने से (वा बदला चुकाने के लिये) नाभाजी ने जानबूझ कर पहिले इन का आदर सत्कार नहीं किया। भोजन के समय जब तस्मई (खीर) बांटने के लिये बर्त्तन खोजाने लगा, तो गोसाईं जी ने चट एक साधू का जूता लेकर कहा कि इस से बढ़ कर और क्या पात्र होगा और स्वयम् भी पंक्ति के एक किनारे खीर लेने के लिये किसी वैरागी का जूता लेकर बैठ गये। इन का ऐसा सरल स्वभाव देख कर श्री नाभा जी ने इन्हें हृदय से लगाया और कहा कि "आज मुझे भक्तमाल का सुमेर मिल गया।"

इस प्रसङ्ग में पं० ज्वाला प्रसाद जी ने लिखा है कि "निमंत्रण आया था, परन्तु गोसाईं जी यह विचार कर कि कच्चा अन्न सब के सङ्ग बैठ कर कैसे खायेंगे वहां जाने से हिचकते थे। परन्तु हनुमान जी के स्वप्न में यह कहने से कि 'नाभाजी परम भक्त हैं तुम जाव' गोसाईं जी उन के स्थान पर गये और इन्हों ने पत्तल नीचा हो जाने से उस के नीचे जूता रख कर उसे बराबर कर लिया।" जब गोसाईं जी सब के सङ्ग कच्चा अन्न खाने के भय से नाभाजी के स्थान पर जाने से हिचकते थे तब उन्हों ने पत्तल के नीचे जूता कैसे रखा? क्या जूता पवित्र पदार्थ है? इस की व्यवस्था पंडित ही लोग करें, दूसरा कौन कर सकता है?

और 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है कि "ऐसा न हो कि ये मुझे अभिमानी समझें और मेरी कथा भक्तमाल में बिगाड़ कर लिखें इसी लिये तुलसीदास भंडारे में बैरागियों की पंक्ति के अन्त में बैठे और कढ़ी या खीर लेने के लिये एक वैरागी की एक जूती लेकर बैठे। बहुत से लोग आज तक कहते हैं कि नाभा जी का बनाया 'कलि कुटिल जीव तुलसी भये वाल्मीकि अवतार धरि' यह पाठ है। इस पाठ से वाल्मीकि के साथ तुलसी की पूर्णोपमा हो जाती है; क्योंकि वाल्मीकि भी पहले कुटिल थे और तुलसी ने भी पहले नाभा से कुटिलता की।"

धन्य है! ऐसे कहनेवालों की बुद्धि की बलिहारी है। पुराणवर्णित कथा के अनुसार तो श्री वाल्मीकि जी लोगों का गला घोंट कर उन का द्रव्य अपहरण करते थे, इस से आदि में वह कुटिल कहलाने के योग्य थे, पर गोसाईं जी ने श्री नाभा जी के साथ क्या कुटिलता की? नाभा जी के जान पर कब चोट की? वा उन का कहां और कब वस्त्रमोचन किया? कुटिलता तो दूर रहे, केवल नाभा जी के आगमन, और बिना भेंट लौट जाने का हाल सुनकर आप उन से मिलने के लिये काशी से दौड़े व्रजदेश पहुँचे। तौ भी कुटिल? और नाभा जी ऐसे विचार शून्य पुरुष, कि जिसे 'भक्तमाल का सुमेर' कहें और आनन्दपूर्वक छाती से लगावें उसी को कुटिल लिखें? कुटिल न गोसाईं जी और न श्री नाभाजी? कुटिल क्या, महाकुटिल, इस आख्यायिका के गढ़ने वाले लोग हैं जिन्हों ने एक ही वाक्य में दो दो परम पूजनीय महापुरुषों की निन्दा कर डाली है। गोसाईं जी ने ऐसे ही लोगों को रामायण में बारम्बार नमस्कार किया है और ऐसे लोग दूर से ही नमस्कार के योग्य हैं भी।

फिर गोसाईं जी के मन में यह भय उत्पन्न होना कि कहीं भक्तमाल में इन की निन्दा न लिखी जाय, इन के जैसे महात्मा के विषय में कहना सर्वथा अनुचित है। क्या वे प्रशंसा के भूखे थे? यदि सचमुच यही बात थी, तो इन में और सर्वसाधारण में प्रभेद ही क्या था? भाई! ये तो 'उस्तुति निन्दा उभय सम' जाननेवाले और "उस्तुति निन्दा दोऊ त्यागो खोजो पद निर्वाण" इस श्रेणी के महात्मा थे। इन्हें क्या चिन्ता थी, चाहे कोई निन्दा ही लिखता चाहे स्तुति ही? इन्हें भय हो वा न हो, और श्री नाभाजी की मनसा ऐसा करने की हो या न हो, परन्तु कुटिलों ने तो छप्पै का पाठ बदल कर नाभा जी के मुख से निन्दा करा अपनी प्रकृति का सच्चा परिचय दे दिया।

जूता की बात भी ठीक नहीं है। इस आख्यायिका का सार केवल इतना ही मालूम होता है कि नाभाजी के बनारस से बिना भेंट किये चले जाने पर गोसाईं जी स्वयम् वृन्दावन जाकर बड़े नम्रभाव से उन से मिले जिस से सज्जन शिरोमणि नाभा जी ने स्नेहपूर्वक इन्हें कंठ से लगाया, आदर-सत्कार किया और आनन्द माना।

कदाचित् उसी समय नाभाजी को गोसाईं जी कृत 'रामचरित मानस' देखने का सुअवसर मिला था और उन्होंने गोसाईं जी के सम्बन्ध में उस छप्पै की रचना की थी जो इसी पुस्तक के पृष्ठ ४४ में छप चुका है।

यहाँ पर कुछ नाभा जी का चरित्र लिख देना भी अनुचित नहीं होगा। आप भी रामानन्दीय सम्प्रदाय के श्री अग्रदास जी के शिष्य थे। ५ वर्ष की अवस्था में इन्हें किसी साधुमंडली ने कहीं रास्ते में पड़ा देखकर इनसे नाम पूछा। इन्होंने प्रश्न किया कि "इस नश्वर शरीर का नाम पूछते हैं या अविनाशी आत्मा का?" इस प्रश्न से महा चकित और हर्षित होकर सन्तों ने इन्हें अपने साथ ले लिया और उसी समय से ये संतसेवा में लग गये। एक दिन गुरुजी के ध्यान के समय उन्हें पंखा झलते हुए उनकी आकृति से उनका चित्त-चांचल्य जान इन्हों ने दो चार बार वेग से पंखा हिलाकर कहा कि "आप निश्चिन्त ध्यान कीजिये, वह काम हो गया।" बात यह थी कि इन के गुरु का एक शिष्य कहीं नौका पर जा रहा था। नाव अटक गई थी, यह जानकर महात्मा जी चंचल हो रहे थे और इन के ज़ोर से पंखा हिला देने से वह नाव चल निकली। यह दशा देख इन के गुरु ने आज्ञा की कि सन्तों की कथा वर्णन करो, जिस ईश्वर ने तुम्हें ऐसा ज्ञानचक्षु दिया है वही यह कार्य्य सिद्ध करेगा।" इसी पर इन्हों ने भक्तमाल की रचना की। इन की यही कथा प्राचीन ग्रंथों में पाई जाती है।

यह सभी जानते हैं कि व्रजदेश श्री नन्दनन्दन रसिकशिरोमणि की लीलाभूमि है। वहाँ बाल वृद्ध सब ही श्री कृष्ण के रंग में रंगे रहते हैं। अतएव श्री रामचन्द्र का नाम कदाचित् कोई विरला ही स्मरण करता था। यह ढंग देख कर गोसाईं जी ने शायद ऐसा कहा था:—

> "राधा कृष्ण सबै कहैं, आक ढाक अरु खैर।
> तुलसी या ब्रज मों कहा, सियाराम सों बैर॥"

परन्तु गोसाईं जी क्या यह नहीं जानते थे कि श्री कृष्ण और रामजी में कोई भेद नहीं? तब ऐसा क्यों कहने लगे? ऐसा भी प्रसिद्ध है कि जब श्री नाभा जी तथा अन्यान्य वैष्णवों के संग गोसाईं जी श्री गोपालमन्दिर में गये तो वहां श्री मदनगोपाल की मूर्त्ति देखकर इन्हों ने कहा था :—

"कहा कहों छवि आज की, भले बने हौ नाथ।
तुलसी मस्तक जब नवै, धनुष बान लो हाथ॥"

बस, लकुटी मुरली हाथों से खसक पड़ी और सबों ने देखा कि सचमुच श्री गोपाल जी के हाथों में धनुष बाण विराज रहे हैं और गोसाईं जी ने तब वह दोहा पढ़ा :—

"क्रीट मुकुट माथे धरयो, धनुष बान लिये हाथ।
तुलसी निज जन कारने नाथ भए रघुनाथ॥"[1]

भगवान सर्वदा भक्त-रुचि-पालक हैं और गोसाईं जी श्री रामचन्द्र के अनन्य भक्त थे। इस से ऐसी लीला होनी असम्भव बात नहीं। परन्तु हम लोग देखते हैं कि श्री रामजी के अनन्योपासक होने पर भी गोसाईं जी ने सब देवतों की वन्दना की है जिस के अनेक प्रमाण इन के ग्रन्थों में वर्त्तमान हैं। तब श्री मदन गोपाल जी के मन्दिर में जाकर और उन की मूर्त्ति का दर्शन पा कर सविनय दंडवत कर के ये ऐसे हठ और घमंड की बात क्यों बोलेंगे कि "तुलसी मस्तक जब नवै, धनुष बान लो हाथ?" और श्री कृष्ण भगवान ही को क्या पड़ी थी कि इन के ऐसा कहते ही चट मुरली परित्याग कर धनुष बाण धारण कर लेते? इन के दडंवत नहीं करने ही से उन का क्या बिगड़ा जाता था? क्या श्री गोसाईं जी ने अपनी सिद्धता दिखलाने के निमित्त ऐसा वाक्य कहा था? स्वामी जी सरल स्वभाव के थे जिस का पूर्ण परिचय इन की रचनाओं से मिलता है। इन का ऐसा अभिमानप्रदर्शक कार्य्य श्री कृष्ण जी के सम्बन्ध में असम्भव प्रतीत होता है। ये श्री रामचन्द्र और श्री कृष्ण में निस्सन्देह कदापि भेदबुद्धि नहीं रखते थे। इस का साक्षी इन की रचनाएँ दे रही हैं। 'विनय पत्रिका' उलट कर देखिये। एक नहीं अनेक पदों में इन्हों ने श्री रामचन्द्र और श्री कृष्ण को एक माना है और श्री कृष्ण महाराज की वन्दना की है :—

१. जौं जप जाग जोग ब्रत बरजित केवल प्रेम न चहते।
तौ कस सुर मुनिवर बिहाई ब्रज गोप गेह बसि रहते॥ (वि० ९६)

२. जिन्ह बांधे सुर असुर नाग नर प्रबल करम की डोरी।
सोइ अबछिन ब्रह्म जसुमति बांध्यो हठी सकत ना छोरी॥
जाकी माया बस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाइ ग्वाल जुवतिन सोइ नाच नचायो॥ (वि० ९७)

---

१. "मुरली लकुट दुराई कै, धर्‌यो धनुष सर हाथ। तुलसी लखि रुचि दास की, नाथ भये रघुनाथ॥" कहीं २ ऐसा भी ऐसा पाठ है।

३. "हरिहु और अवतार आपने राषी वेद बड़ाई।
लै तंडुल निधि दई सुदामहि यद्यपि बाल मिताई ॥" (वि० १६३)

४. "द्रुपद सुता को लग्यो दुसानन नगन करन।
हा हरि पाहि कहत पूरे पट विविध बरन ॥
इहै जान सुर नर मुनि कोविद सेवत चरन।
तुलसिदास प्रभु को न अभय कियो नृगउद्धरन ॥" (वि० २१३)

और भी स्पष्ट देखियेगा? अच्छा यह पद अवलोकन कीजिये :—

"ऐसी कवन प्रभु की रीति। बिरद हेतु पुनीत परिहर पांवरन पर प्रीती ॥ गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाई। मातु की गति देइ ताहि कृपाल जादव राई। काम गोहित गोपिकन्हि पर कृपा अतुलित कीन्ह। जगत पिता बिरंचि जिन्ह के चरन की रज लीन्ह ॥ नेम ते सिसुपाल दिन प्रति देत गनि गनि गारि। कियो लीन सुआप में हरि राजसभा मँझारि। व्याध चित दै चरन मार्‌यो मूढमति मृग जानि। सो सदेह सुलोक पठ्यो प्रगट करि निज बानि ॥ कौन तिन्ह की कहै जिन्ह के सुकृत अरु अघ दोउ। प्रगट पातकरूप तुलसी सरन राख्यो सोउ ॥" (वि० २१४)

क्या अब भी कहियेगा कि गोसाईं जी श्री रामकृष्ण में भेदबुद्धि रखते थे? और क्या इससे भी अधिक प्रमाण की आवश्यकता होगी? तब स्वयं इन के ग्रंथों के पढ़ने का परिश्रम उठाइये। हां! इतना हम से और भी सुन लीजिये कि इन्होंने 'कृष्ण गीतावली' नामक एक स्वतंत्र ग्रंथ का भी प्रणयन किया है और ये कृष्णलीला भी कराते थे जैसा कि पहले कहा जा चुका है।

यदि कहिये कि व्रजगमन के अनन्तर और श्री मदनगोपाल जी के रामरूप में दर्शन के पीछे इन सभों की रचना हुई है तो प्रथम तो यह अनुमान ही अनुमान है, इस कथन का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं और यदि यह अनुमान सत्य ही हो तो रामायण की रचना तो निश्चय और निर्विवाद इन के व्रजगमन के पूर्व हुई थी। तो क्या 'नानापुराण निगमागम' के जाननेवाले श्री मद्भागवत और श्रीमद्भगवद्गीता के भावों और आशयों को श्री रामायण में समावेशित करनेवाले, 'सियाराममय' सब जगत को समझनेवाले, और अतएव, सारे जगत् को एवम् दुष्ट खलों को भी बार-बार, बिना किसी के अनुरोध के, नमस्कार करनेवाले, गोसाईं जी इतना भी नहीं जानते थे कि श्री कृष्णचन्द्र कौन थे, उन में और श्री रामचन्द्र में कितना अन्तर था, वह श्री मदनगोपाल जी की मूर्त्ति जगत के भीतर थी वा बाहर? तब वे क्यों ऐसा कार्य्य करने लगे होंगे।

'भक्त कल्पद्रुम' में लिखा है कि "सियाराममय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोर जुग पानी ॥" यह चौपाई जिस की कही है, भला सो कब भगवत् के सामने ऐसी वाणी कह

सकता है ? इस बात के फैलने की यह बात है कि उपासक जिस देवता के मन्दिर में जाता है अपने इष्ट का ध्यान करता है, यह रीति शास्त्र के सम्मत के अनुकूल है, सो गोसाईं जी दर्शन को गये, परम मनोहर मूर्त्ति को देखा तो श्री रघुनन्दन धनुषधारी का ध्यान कर के दंडवत किया, सो गोसाईं जी भक्त सांचे और सिद्ध थे। इस हेतु मदनगोपाल जी ने भी उन के ध्यान के अनुकूल रूप देखा दिया। जो कोई उस समय दर्शन करानेवाले थे उन को भी धनुषधारी दृष्टि में आये। इस हेतु यह बात फैली और किसी ने एक दोहा भी बना लिया। यही बात "भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका" में खेतड़ीनिवासी हरिपरिपन्न रामानुजदास हरिवर कायस्थ माथुर ने भी लिखी हैं।

तुलसी राम जी ने उर्दू भक्तमाल में लिखा है कि "गोसाईं जी का हठपूर्वक ऐसा कहना कदापि सम्भव प्रतीत नहीं होता जब कि उन्हों ने 'विनयपत्रिका' में छोटे २ देवतों की भी वन्दना की है। हां, इस की अधिक सम्भावना है कि भक्तिभाव से अपने इष्टदेव की भावना से ही श्री मदनमोहन जी के चरणों में दंडवत किये हों और भक्तवत्सल श्री कृष्णचन्द्र ने उन के इष्टदेव ही के रूप में उसी क्षण उन्हें दर्शन दिये हों और यह घटना और लोगों ने भी अवलोकनकी हो।"

ये बातें हो सकती हैं। परन्तु हमारी समझ में गोसाईं जी जैसे भक्ति के गाढ़े रङ्ग में रंगे हुये और ईश्वर को निरन्तर सर्वत्र वर्त्तमान देखनेवाले महात्मा का चित्त आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र की सुहावनी ललित मूर्त्ति निरखते ही सहज ही विह्वल हो गया होगा, नेत्र प्रेमाश्रुपूर्ण हो गये होंगे और श्री मदनमोहन की मोहनी मूर्त्ति अवलोकनमात्र से ही इन का मस्तक उन के चरणकमलों में अवनत हो गया होगा और उन्हें दंडवत करने में गोसाईं जी को कुछ भी संकोच नहीं हुआ होगा। श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद जी भी लिखते हैं कि गोसाईं जी श्री मदममोहन की मनोहर मूर्त्ति निहारते ही दंडवत करने को उद्यत थे कि इतने में एक श्री कृष्णोपासक ने श्री प्रशुरामकृत यह दोहा पढ़ा "अपने २ इष्ट को नवन करै सभ कोइ। प्रसुराम बिनु इष्ट के नवे सो मूरख होइ॥" वाचक वृन्द! जब यह बात थी कि वे महात्मा इन्हें व्यर्थ मूर्ख बनाने चले थे तब तो उन का भ्रमोच्छेद करना इन्हें बहुत ही आवश्यक था। क्योंकि गोसाईं जी का चित्त द्वेषाग्नि से जर्जरित नहीं था, इन की जगोपकारिणी वृत्ति थी और उस महात्मा का इसी में कल्याण था कि वे जान जायं कि श्री राम और श्री कृष्ण सर्वथा अभिन्न हैं। इसी से इन्हों ने अपने प्रभु को हृदय में सम्हार कर यह दिखलाना चाहा कि यह श्री कृष्णमूर्त्ति जो सामने विराजमान है श्री राम से भिन्न नहीं है। इसी अभिप्राय से इन्हों ने ऐसा वाक्य उच्चारण किया और श्री कृष्णचन्द्र ने भी रामरूप धारण कर अपने तथा रामचन्द्र में अभिन्नता सिद्ध कर लोगों का भ्रमतम नाश कर दिया और अपने अनन्य भक्त की प्रतिष्ठा रख ली।

यह बात भी जान लेने के योग्य है कि श्री प्रियादास जी के लेख से यह बात कि "तुलसी मस्तक जब नवे धनुष बान लो हाथ" कदापि ध्वनित नहीं होती। उस से यही बात प्रलक्षित होती है कि श्री मदनगोपाल जू का दर्शन कर चाहे किसी कारण से हो, ये अपने इष्टदेव के रूप के दर्शन के अभिलाषी हुये। तब कृष्ण भगवान ने कृपापूर्वक उस रूप का भी इन्हें वहीं दर्शन दिया। श्री प्रियादास जी का कवित्त यह है :—

"मदनगोपाल जू को दरसन करि कही, सही, राम इष्ट मेरे दृग भाव पागी है।
वैसई सरूप कियो दियो है लखाय रूप मन अनरूप छवि देखि मन भाई है॥"

इसमें हठ तथा मद की गन्ध भी नहीं है। अन्य लोगों के लेखों से अभिमान की धुनि निकलती है। इसी से इतना कहना पड़ा।

व्रज में जाने पर गोस्वामी जी ने चौरासी कोस व्रजभूमि की यात्रा तथा परिक्रमा की थी। सब घाटों पर स्नान तथा सब मन्दिरों का दर्शन किया था। फिर ज्ञानगूदरी में आसन जमा कर सत्संग का आनन्द उठाया था।

खेद है कि इस प्रकार से श्री कृष्णचन्द्र तथा श्री रामचन्द्र में अभिन्नता सिद्ध होने पर एवम् श्री कृष्ण भगवान के ऐसा स्पष्ट उपदेश करने पर भी कि 'जो मुझे जिस भाव से भजता है मैं उसे उसी ही भाव से अपनाता हूँ' कतिपय श्री कृष्णोपासक तथा रामोपासक अब भी ऐसा परस्पर द्वेषभाव रखते हैं जिस से एक प्रकार की घृणा उत्पन्न होती है और जिस से उन लोगों की भक्ति तथा उपासना भी कलंकित होती है। किसी एक का अनन्योपासक होना तो अति उत्तम तथा सराहनीय बात है, परन्तु दूसरे से द्वेष का क्या काम? यह कार्य्य किसी की भक्ति उपासना में सहायता नहीं कर सकता और न किसी का मानवर्द्धन ही कर सकता है। यदि द्वेषभाव रखने ही से कार्य सिद्धि की सम्भावना होती तो सुप्रसिद्ध कृष्णोपासक श्री सूरदास जी एवम् सुविख्यात रामोपासक गोस्वामी तुलसीदास जी श्री राम और कृष्ण दोनों ही की स्तुति वन्दना नहीं किया करते।

आप लोग गोस्वामी जी कृत श्री कृष्णस्तुति तो ऊपर ही देख चुके हैं। अब सूरदास जी कृत भजन देखिये जिस से श्री राम और कृष्ण की अभेदता स्पष्ट विदित होती है।

"भजु मन नन्द नन्दन चरन।
परम पंकज अति मनोहर सकल सुख के करन॥
सनक संकर ध्यान ध्यावत निगम अवरन बरन।
सेष सारद रिषिसुनारद संत चिंतत चरन॥
जासु पदरज परसि गौतमनारि गति उद्धरन।
जासु महिमा प्रगट केवट धोय पग सिर धरन॥
सोह पद मकरंद पावन अरु नहीं सरवरन।
सूर भजु चरनारविन्दन मिटै जीमनमरन।।"

यही नहीं श्री सूरदास जी ने 'सूर सागर' में १४५ पदों में समुच्चय रामायण की कथा कही है।[1]

कोई द्वेषभाव दिखा कर महात्मा कहलाने की चेष्टा करे परन्तु द्वेषरहित तुलसीदास तथा सूरदास जी के आसन को पानेवाला वह कदापि नहीं हो सकता।

---

१. 'श्री वेङ्कटेश्वर' छापाखाना से प्रकाशित बाबू राधाकृष्ण संकलित 'सूरसागर' पृष्ठ ७० — ९५ देखिये।

इसी अवसर में वृन्दावन में श्री रामघाट पर श्री कौशल्यानन्दन की मूर्त्ति संस्थापित हुई थी। प्रवाद है कि यह राममूर्त्ति दक्षिण देश में किसी सौभाग्यवान रामभक्त के यहां विराजमान थी। उसे एक रात को स्वप्न हुआ कि 'मुझे अब श्री अवध में पहुँचवा दो, मेरा यथार्थ स्थान वही है।' वह हरिभक्त प्रभु की आज्ञा पालने के अभिप्राय से उस मूर्त्ति को बड़े आदर के साथ पालकी पर चढ़ाकर ब्राह्मणों के सङ्ग अवध की ओर प्रस्थान कराया। मार्ग में वे लोग व्रजदेश में ठहर गये। वहाँ एक प्रेमी दरिद्र ब्राह्मण की यह इच्छा हुई कि वह मूर्त्ति वहीं विराजमान हो। भक्त-प्रेम-वशीभूत भगवान् ने अपने निष्कपट भक्त की अकृत्रिम भावना से प्रसन्न होकर जो लोग साथ आये थे उन्हें स्वप्न में आदेश किया कि 'अब मैं यहीं रहूँगा, मुझे यहीं रहने दो।' श्री रामचन्द्र के उसी विग्रह की वहाँ स्थापना हुई और गोसाईं जी की अनुमति से उस देवमूर्त्ति का नाम कौशल्यानन्दन रखा गया। वह स्थान अद्यावधि व्रज में विराजमान है। परन्तु वह प्रेमी दरिद्र ब्राह्मण कौन था? हमारे चरित्रनायक जी ही तो नहीं थे? जो कुछ हो, वहां पर उस राममूर्त्ति के संस्थापन से हमारे चरित्रनायक को अवश्य सम्बन्ध है। और यदि उसे इन का व्रजगमन का स्मारक कहें तौभी अनुचित नहीं होगा।

'भक्ति विलास' तथा किसी-किसी अन्य लेखकों के अनुसार व्रज में व्रजविहारी मुरलीधारी मदनमदहारी श्री नन्दनन्दन गुणगायक स्वामी सूरदास, एवम् श्री अवधविहारी धनुषबाणधारी कन्दर्पदर्पहारी श्री रघुनन्दन गुणगायक गोसाईं तुलसीदासजी से परस्पर सम्मिलन का आनन्द हुआ था। और 'भक्तमाला रामरसिकावली' के लेखक तथा उन के अनुगामी लेखकों ने इन दोनों महानुभावों में दिल्ली दरबार में भेंट कराई है अर्थात् जब दिल्लीश्वर ने गोसाईं जी की करामात देखने के लिये इन्हें दिल्ली में बुलाया था और इन के इष्टदेव की करामातें देख कर जब वे चकित और लज्जित हुए थे, उसी समय श्री सूरदास जी भी वहाँ बुलाये गये थे। सूरदासजी का वहाँ जाकर यह कहना कि 'अमुक शाहजादी पूर्वजन्म में व्रजगोपिका थी, उस ने श्रीकृष्ण के श्राप से यवनगृहि में जन्म लिया है' और सब के सामने उस के विशेष २ अंगों में विशेष २ चिह्न दिखलाना यह सब कहाँ तक ठीक है हम नहीं कह सकते।

परन्तु व्रज में वा दिल्ली में श्री गोसाईंजी और श्री सूरदास जी का परस्पर सम्मिलन हम को असम्भव दीखता है। कारण यह है कि श्री हरिश्चन्द्र एवम् मिश्रबन्धु इत्यादि के लेखानुसार श्री सूरदास जी का समय १५४०—१६२० वि० संवत् है और योधपुर निवासी मुं० देवीप्रसाद जी ने सं० १५६०—१६४२ माना है। अब चाहे सूरदास जी का समय १५४०—१६२० संवत् मानिये, चाहे १५६०-१६४२ संवत् स्वीकार कीजिये उन की गोसाईं जी से दिल्ली में उस समय भेंट की कदापि संभावना नहीं जबकि गोसाईं जी को सम्राट ने करामातें दिखलाने के लिये बुला भेजा था (जो घटना स्वयम् प्रमाणित नहीं हुई है)। क्योंकि सूरदास जी का अकबर के पास जाना कहा जाता है और गोसाईंजी मुर्दा जिलाने के बाद जहाँगीर के समय गये हैं और जहाँगीर ने १६०५ ई० (सं० १६६२) में राजदण्ड ग्रहण किया था जब

और जब गोसाईं जी नाभाजी से भेंट करने गये थे उस समय भी सूरदास जी से भेंट की आशा नहीं। क्योंकि श्री प्रियादास जी के कवित्तों से स्पष्ट विदित होता है कि गोसाईं जी दिल्ली से लौट आने पर ब्रज सिधारे थे।

'भक्तमाला रामरसिकावली' तथा कई एक अन्य ग्रंथों में यह भी लिखा है कि "एक दिन श्री सूरदास जी और गोसाईं जी दिल्ली के बाजार में बैठे थे। बादशाह का एक मतवाला हाथी आया; तब सूरदासजी यह कह कर कि हमारे नन्दलाल बहुत बालक हैं वे डरेंगे, आपके इष्टदेव धनुषधारी हैं आप चाहें, ठहरें, वहाँ से चम्पत हुये और गोसाईं जी वहीं टहरे रहे। हाथी सामने आया, उस के माथे में एक वाण लगा और वह चिक्कार करता हुआ भूतल में गिरकर मर गया।"

उस समय सूरदास जी को निश्चय यह बात भूल गई होगी कि उन के बाल-नन्दलाल ही 'कोबिलियावीर' हाथी के दान्त उखाड़ने वाले और उसे यमालय पिठानेवाले थे। यदि यह बात स्मरण होती तो वहां से वे कदापि नहीं भागते। हम नहीं समझते कि इस आख्यायिका से लेखकों ने कौन-सी बात सिद्ध करने की मनसा की है। श्री कृष्णचन्द्र की अपेक्षा श्री रामचन्द्र की श्रेष्ठता या श्री सूरदास जी की अपेक्षा श्री गोसाईं जी का निज इष्टदेव में अटल विश्वास? इसमें से कोई बात सिद्ध करने की चेष्टा करनी बड़ी ही भूल कही जायगी। हमारे जानते तो इस आख्यायिका के द्वारा एक परम पूजनीय महात्मा व्यर्थ ही नीचा दिखलाये गये हैं।

सुमेरपुर निवासी पं० रघुवंश शर्म्मा ने लिखा है कि "जब जहांगीर बादशाह काशी में गोसाईं जी से मिले थे तो उन्हों ने काशी का इलाका गोसाईं जी की सेवा पूजा के निमित्त भेंट करना चाहा था और इन के अस्वीकार करने पर कहा था कि सूरदासजी उन के पिता के नवरत्नों में से थे और जब जब दिल्ली जाते थे तब तब जो कुछ मिलता था वह ले लेते थे।"

इस आख्यायिका से पंडित जी ने क्या दिखलाने की चेष्टा की है हमारे विज्ञ पाठक समझ ही गए होंगे। हम नहीं जानते कि एक महात्मा की प्रतिष्ठा करते हुये लोग दूसरे के सम्बन्ध में क्यों बेजड़ बीज की अपमानसूचक बातें लिख मारते हैं। न जाने ऐसे महात्मा लोग किस-किस महात्मा की दुर्गति नहीं करेंगे।

'चौरासी वार्त्ता' के अनुसार सूरदास जी का एक ही बार सम्राट (अकबर) के पास जाना सिद्ध है जब कि सम्राट ने उन की कविता और गानकौशल्य की प्रशंसा सुन कर उन्हें बुला भेजा था और जिस समय उन्होंने पहिले स्वरचित यह पद गाया था:—"मन रे करु माधो सों प्रीति।" और बादशाह के निज प्रशंसा में कुछ कहे जाने की इच्छा प्रगट करने पर उन्होंने नीचे लिखा हुआ पद गान किया था।

"नाहिन रह्यो मन में ठौर
नन्द नन्दन अछत उर में आनिये कस और॥
चलत चितवत दिवस जागत सुखन सोवत राति।
हृदय तें वह मदनमूरति छिन न इत उत जात॥

कहत कथा अनेक ऊधो लाख लोभ दिखाय।
कहा करों चित प्रेम पूरन घट न बिन्दु समात॥
स्याम गात सरोज आनन ललित गति मृदु हांस।
सूर ऐसे दरस कारन भरत लोचन खास॥"

इस पद के ५वें और ६वें चरणों से पाठक अनुभव कर सकते हैं कि दरबार में बार-बार आदाब बजा लाकर वहां से कुछ हाथ लगानेवालों में से सूरदास जी हो सकते हैं या नहीं ?

और मुंशी देवीप्रसाद साहब को योधपुर के कविराज मुरारी दान जी से सम्राट से भेंट के सम्बन्ध में यह भी ज्ञात हुआ है कि सूरदासजी अकबर बादशाह के बुलाने पर लोगों के बहुत कहने सुनने से फतहपुर सिकरी में सम्राट से मिले थे और उस समय उन्हों ने यह पद गान किया था।

"सिकरी कहा भगत को काम।
आवत जात पन्हैया फाटी भूलि गयो हरिनाम॥
जाको मुख देखे ह्वै पातक ताहि करयो परनाम।
फेर कबौं ऐसो जन करियो सूरदास के स्याम॥"

यह पद सुन कर कदाचित् सम्राट ने उन की फ़क़ीरी की बड़ी प्रशंसा की और उन के अस्वीकार करने पर भी उन्हें एक सदी का मनसब दिया कि उस की आमदनी वे खैरात किया करें और उन्हें उसे अंगीकार ही करना पड़ा।[1]

यदि यह घटना ठीक मानी जाय तो यहाँ सूरदास जी ने बड़ी बुद्धि मानी दिखलाई। क्योंकि बार बार अस्वीकार करने से उन्हें निश्चय तत्काल ही आपत्ति झेलनी पड़ती। स्वीकार कर लेने से उस समय तो प्राण का परित्राण हो गया।

परन्तु जो पुरुष प्रभु से यह प्रार्थना करता था कि फिर सम्राट के निकट आने जाने की बारी नहीं आवे, वह क्या बार बार दरबार में जाकर वहां जो ही कुछ हाथ लगता उसे लाकर अपना घर भरा करता होगा? और आईन अकबरी में अबुलफ़ज़ल ने जो सूरदास का नाम गोयंदा (गवैया) की सूची में लिखा है वह भी सन्दिग्ध ही है। यदि सचमुच वह सूरदास यही हों तो उन का नाम सूची में सम्मिलित किये जाने का कारण उन का उस समय मनसब का स्वीकार कर लेना ही कहा जायगा क्योंकि शाही दरबार में उन का नियमानुसार नौकरी करना नहीं पाया जाता और आईन अकबरी से यह पता नहीं लगता कि ये कब से कबतक नौकर रहे। पता लगे कैसे? वे सचमुच नौकर हों तब तो। इसी से तो 'चौरासी वार्त्ता' और 'भक्तमाल' में केवल इन के सम्राट के पास जाने की कथा लिखी हुई है, नौकरी की कोई बात नहीं। वरन् मनसब का अस्वीकार ही करना लिखा है।

---

१. मुं० देवीप्रसाद कृत 'सूरदास जी का जीवन चरित्र' पृ० १७—२० देखिये।

मुन्शी देवीप्रसाद ने अपने ग्रंथ में 'मुनशियात अबुलफ़ज़ल' से एक पत्र उद्धृत किया है। उस के आरम्भ में लिखा है कि 'यह पत्र सूरदास के नाम से है जो बनारस में था।' वह पत्र सम्राट की आज्ञा से लिखा गया था। उस में सूरदास के सम्बन्ध में महान साधु महात्माओं के योग्य शब्द प्रयोग किये गये हैं और सम्राट से मिलने को वे इलाहाबाद बुलाये गये हैं।

पत्र से विदित होता है कि उस के लिखे जाने के समय तक अबुलफ़ज़ल को सूरदास से कभी भेंट नहीं हुई थी। उस में लिखा है कि 'मैं आप की विद्या और बुद्धि का वृत्तान्त पहले से सज्जनों और निष्कपट पुरुषों से सुना करता था और परोक्ष ही आप को मित्र मानता था' इत्यादि।

यदि उस समय तक भेंट नहीं हुई थी तो जन्म भर भेंट नहीं हुई इस में भी सन्देह नहीं, क्योंकि उस पत्र के लिखे जाने की तारीख़ उस में नहीं रहने से मुन्शी जी उस का लिखा जाना १६४० के पीछे और १६४२ के पूर्व अनुमान करते हैं और कहते हैं कि उस के लिखे जाने के अनंतर पादशाह और सूरदासजी में भेंट नहीं हुई क्योंकि 'अकबरनामा' के अनुसार पादशाह शीघ्र ही गुजरात चले गये। फिर फ़तहपुर आये और पंजाब जाकर वहाँ से १३ वर्ष बाद १६५५ में आगरा आये।

अब यदि सूरदास अकबर के दरबारी नौकर होते और वहां बराबर जाया आया करते तो क्या अबुलफ़जल को उन से जन्म भर कभी भेंट नहीं होती? हम समझते हैं कि भेंट नहीं होने और यथार्थ वृत्तान्त अवगत नहीं होने के कारण ही आईन अकबरी के लेख में गड़बड़-सा हो गया है। परन्तु हम यहां पर सूरदास जी की जीवनी की समालोचना करने नहीं बैठे हैं। इसलिये अधिक लिखना उपयुक्त नहीं।

'भक्तमाल' में सूर मदन मोहन के अकबर के दरबार में नौकरी का वृत्तान्त अवश्य लिखा हुआ है कि वह संडीला के अमीन थे और एक बार सन्दूकों में पत्थरें भरकर इस छंद के साथ "डेढ लाख संडीला उपजै सब सन्तन मिल गटकै। सूरजदास मदनमोहन ढिग आधि रात हीं सटकै॥" दिल्ली भेजकर आप व्रजप्रदेश की ओर चल बसे। इसपर टोडरमल्ल ने उन के पकड़ मँगाने की आज्ञा दी थी, परन्तु सम्राट ने उन का अपराध क्षमा किया।[1]

सूर मदनमोहन जी भी बड़े कृष्णभक्त, गानकुशल और कवि थे। व्रजगमन के अनन्तर वे भी फिर दरबार में बुलाये गये थे और गये भी थे। क्या आश्चर्य्य है यदि गानकुशलता के कारण ही उन का पहले दरबार में प्रवेश हुआ हो और फिर मनसब पाने पर वे संडीला रखे गये हों? इस में भी क्या आश्चर्य्य है यदि पूर्ववर्त्ती लेखकों ने दोनों महानुभावों की कथाओं की खिचड़ी बना दी हो?

यह भी प्रवाद है कि व्रज-गमन-काल में गोसाईं जी ने ओड़छा गांव में कविवर केशवदास को प्रेतयोनि से मुक्त किया था। इस की कथा यों कही जाती है कि ओड़छे के

---

१. श्रीसीताराम शरण भगवानप्रसाद कृत 'भक्त माल की टीका', प्रथम संस्करण, पृ० १०७७—८३ देखिये।

राजा इन्द्रजीत[1] सिंह ने कविसमाज नियत कर के कवि केशवदास को उस का सभापति बनाया था और इस अभिप्राय से कि वह कविमंडली चिरस्थायिनी हो, उस ने केशव दास के आदेशानुसार प्रेतयज्ञ किया था। उसी से मरने पर वे लोग सब के सब प्रेत हो गये थे। उस समय केशवदास कृत 'रामचन्द्रिका' समाप्त नहीं हुई थी। प्रेत होने पर वे पेड़ पर से चिल्लाया करते थे कि 'कोई गोसाईं जी से चन्द्रिका शोधवा ले।' यह समाचार सुन कर गोसाईं जी उस वृक्ष के समीप गये। केशवदास ने प्रेतयोनि ही में रहकर इन्हें रामचन्द्रिका सुनाई। उस की समाप्ति होने पर केशवदास प्रेतयोनि से मुक्त होकर परमधाम सिधारे।

ऐसा भी प्रसिद्ध है कि ओछड़े में एक कुआं से जल भरने के समय प्रेत केशवदास ने गोसाईं जी का लोटा थाम लिया और कहा कि 'जब तक मेरा इस योनि से उबार नहीं कीजियेगा तब तक मैं लोटा कदापि नहीं छोड़ूंगा।' गोसाईं जी ने 'रामचन्द्रिका' २१ बार पाठ करने को कहा। उन्हें उसका प्रथम ही छन्द स्मरण नहीं होता था। परन्तु गोसाईं जी के याद दिलाने से वे उस ग्रन्थ का २१ बार पाठ कर के प्रेतयोनि से मुक्त हो गये।

सच पूछिये तो ये दोनों आख्यायिकाएं सर्वथा मनोकल्पित प्रतीत होती हैं और एक गोसाईं जी की श्रेष्ठता और दूसरी 'रामचन्द्रिका' का माहात्म्य प्रतिपादन के निमित्त रची गई है।

यह जो कुछ हो, परन्तु केशवदास का कुछ वास्तविक वृत्तान्त सुन लीजिये। आप सनाढ्य ब्राह्मण और मिश्र थे। उन का जन्म लगभग १६०८ संवत् में और मृत्यु १६७५ में मानी जाती है। उनका घर टेहरी बुन्देलखंड में था। वे ओछड़ा के मधुकर शाह से बहुत सम्मानित हुये थे। पीछे उन के चौथे पुत्र इन्द्रजीत बुन्देले ने उन्हें २१ गाँव दिये थे। तब से वे सपरिवार ओछड़े ही में रहने लगे थे। उन्होंने क्रम से 'रसिकप्रिया' ओछड़ा दरबार की गायिका 'प्रवीनराय पातुरी' के प्रसन्नार्थ, 'कविप्रिया' इन्द्रजीत के मनोरञ्जनार्थ एवम् 'रामचन्द्रिका' और 'विज्ञात गीता' की रचना की थी।

काशीनरेश श्रीमान् ईश्वरीप्रसाद सिंहजी के दरबार के सुप्रसिद्ध सरदार कवि, उन के शिष्य नारायण कवि, ग्वालियर के कालिका राव तथा हरि कवि ने 'कविप्रिया' का भाष्य किया है। काशीनिवासी पं० जानकीप्रसाद और धनीराम ने 'रामचन्द्रिका' की टीका की है। सूरत मिश्र, याकूब खां, युसुफ़खां, पूर्वोक्त सरदार कवि तथा ललितपुर के हरिजान कवि ने 'रसिक प्रिया' का भाष्य किया है। काशी 'हिन्दूविश्वविद्यालय' के प्रोफेसर लाला भगवान दीन कायस्थ श्रीवास्तव दूसरे ने 'रामचन्द्रिका' तथा 'कविप्रिया' की टीकाएँ लिखी हैं।

१. ये श्रीरामचन्द्र वंशोद्भूत गहरवार क्षत्रिय थे। इन्हीं के एक पूर्वज बुन्देल के कारण गहरवार लोग बुन्देला कहलाने लगे और उन लोगों से बसा हुआ देश बुन्देलखंड के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी वंश के भारतीचन्द्र ने कालिंजर दुर्ग पर धावा करते समय शेरशाह का वध किया था जिसे मेगजीन में आग लगने से मर जाना कहा जाता है, ओछड़ा अभी तक (गहरवार वा) बुन्देला क्षत्रिय ही के अधिकार में है।

द्वादश परिच्छेद

चित्रकूट तथा अवधवास

गोस्वामी जी के चित्रकूट तथा अवध में वास की बात अन्यत्र कही गई है एवम् चित्रकूट में श्री रामचन्द्र के साक्षात दर्शन का हाल भी सविस्तर वर्णन हो चुका है। अब उन स्थानों की कुछ अन्य घटनाओं का उल्लेख किया जाता है।

जब आप श्री हनुमानजी के आदेश से रामदर्शन के निमित्त चित्रकूट जाकर एक गुफा में वास करते थे उसी समय स्वामी दरियानन्द जी इन से मिलने गये थे। वह गुफा के पास बैठे २ इन की प्रतीक्षा कर रहे थे। इतने में ये पेशाब करने बाहर निकले और फिर गुफा में घुस गये। तब दरियानन्द जी ने कहा—"वाह गोसाईं जी! लघुशंका के लिये तो बाहर निकले, एक हरिप्रेमी साधु क्या उससे भी गया गुज़रा है कि दर्शन देने को बाहर नहीं आते।" यह सुनते ही ये त्राहि २ कहते गुफा के बाहर आ उन से सादर प्रेमपूर्वक मिले और उस दिन से इन्हों ने गुफा में रहना भी छोड़ दिया।

प्रवाद है कि दरियानन्द जी कहीं भंडारे में नेवता गये थे। वहां आचमन के लिये आपने जल मांगा तो महन्थ जी ने कहा कि दरियानन्द होकर हमसे थोड़ा जल मांगते हैं। यह सुनकर आप तो मौन हो रहे, परन्तु वहाँ एक धारा इस वेग से प्रवाहित हुई कि मंदिर आदि ढहने लगे और महंथ के विनीत भाव से विनय करने पर उसका वेग निवारण हुआ।

चित्रकूट में एक दरिद्र ब्राह्मण का दुःख दूर करने के लिये गोसाईं जी की स्तुति से मन्दाकिनी से दरिद्रमोचन शिला निकल आई थी। वह स्थान अभी तक दरिद्रमोचन के नाम से ख्यात है। कहते हैं कि एक दरिद्र ब्राह्मण दरिद्रता के कारण घाट पर प्राणत्याग करने को उद्यत था। गोसाईं जी ने पहले धन का बहुत कुछ दूषण दिखला कर उसे आत्महत्या से रोकने का यत्न किया। किन्तु बिना धन पाये उसकी प्राणरक्षा की आशा न देख कर आप ने उस के कल्याणार्थ यही उपाय उत्तम समझा। निस्सन्देह उसे आत्महत्या के पाप से बचाकर और उस का दुखमोचन कर आप ने सन्तोचित काम किया। और यह भी आदर्श सन्त ही का काम किया कि उस का दुःखमोचन के लिये ईश्वर ही की स्तुति प्रार्थना की। "हक़ के होते गैर से क्यों आशनाई कीजिये। छोड़ वह दर, किस के दर पर जुबहासाई कीजिये?"

संडीलानिवासी स्वामी नन्दलाल जी अयोध्या होते चित्रकूट जाकर गोसाईं जी से मिले थे। परस्पर मिलन से दोनों महात्माओं को महानन्द प्राप्त हुआ था। गोसाईं जी ने अपने हाथ से रामकवच लिखकर उन्हें भेंट की थी।

कहते हैं कि संडीले से आते समय मलीहाबाद में एक पठान के बुलवाने पर उस के समीप नहीं जाने से उस ने नन्दलाल जी को पकड़वाना चाहा था कि इतने में उसके मुंह से रुधिर वमन होने लगा और तब भयग्रसित हो वह पठान उन से प्राणरक्षा का प्रार्थी हुआ। महात्मा जी ने उस पर दयादृष्टि की और वह भला चंगा हो गया। आगे बढ़ने पर एक स्थान में आरती के समय पठान के बालकों ने उत्पात मचाना आरम्भ किया था परन्तु सक्कर खां नामक एक पठान बालक डांट डपट कर उन्हें उस कुकर्म से रोकने के लिये नन्दलाल जी के आशीर्वाद का भागी हो सानन्द कालाक्षेप करने लगा।

अवधवास

अवध में सब से उत्तम कार्य यह हुआ कि वहीं पर गोसाईं जी ने 'रामचरित मानस' की रचना आरम्भ की। इस का सविस्तर वृत्तान्त अन्यत्र मिलेगा।

अवध में एक महाशय मुक्तामणि दास रहते थे। वे ईश्वर के भक्त और कविताप्रेमी थे। उन्हें संडीलावाले पूर्वोक्त नन्दलाल जी तथा गोसाईं जी से बहुत प्रेम था। एक दिन वसन्तऋतु में अपने बन्धु और सखाओं के संग श्री रामचन्द्र आमोद प्रमोद में थे, रात अधिक व्यतीत हो गई थी, अतएव कौशल्या जी ने उन्हें शयन करने के निमित्त कहला भेजा था। उसी सम्बन्ध में मुक्तामणि ने एक कविता की थी। वह कविता सुनकर गोसाईं जी बहुत प्रसन्न हुये थे। कविता यह है :—

"सैन करहु रघुबीर पिआरे। हौं आई पठई कौशल्या बड़े भूप उठि सदन सिधारे॥ जुगल जाम जामिनी बीती है नयनन नींद भरे रतनारे। प्रफुलित सरद कोकनद मानो मंद समीर मलयकर धारे॥ रतनजड़ित मनिमय मन्दिर मँह रचि सुचि सोभित जनक सुतारे। मग जोवति सहचरी सिया की सैन उचित सब सों जसवारे॥ अति आलसयुत भये हैं भरत युत लषन लाल रिपुहन उजियारे। सुनत सकल दै पान बिदा कर उठे दास मुकुतामनि वारे॥"

श्री महाराज रघुराज सिंह जी ने लिखा है कि अवध ही में एक बणिक ने तत्काल ईश्वर के दर्शन पाने के लिये गोसाईं जी से विनय किया। इन्हों ने बहुत कुछ समझाया कि यह बात महा कठिन है। पर उसने एक भी नहीं सुनी। तब इन्हों ने कहा कि "बन में जाकर बर्छी गाड़ कर और उस के नीचे आग जलाकर पेड़ से उस बर्छी पर कूदो; तो श्री रामचन्द्र का दर्शन हो जायगा।" वह वणिक बर्छी गाड़ कर और आग जला कर वृक्ष पर चढ़ा तो सही, परन्तु प्राणभय से कूदने में आगा पीछा करता रहा। इसी अवसर में एक क्षत्रिय वहां आ पहुंचा और सब वृत्तान्त अवगत होने पर उस ने बनिये को तो कुछ द्रव्य देकर बिदा कर दिया और आप पेड़ पर चढ़ कर ज्योंही कूदा कि भगवान ने अपने भक्त का वचन प्रामाणिक करने के लिये उसे बीच ही से रोक लिया और श्री प्रभु का अलभ दर्शन पाकर वह परम कृतार्थ हुआ।

बैजनाथदास के अनुसार वह क्षत्रिय नहीं वरन् मनसूर नामक मुसाफिर था। सूली पर चढ़ने का प्रसङ्ग आने ही से उन्हें मनसूर याद आ गया जिसे 'अनहलक़' (अर्थात् मैं ही खुदा हूँ) कहने से सूली दी गई थी।

हमें इस घटना की सत्यता में सर्वथा सन्देह है। ईश्वर का दर्शन कुछ हँसी खेल नहीं कि कोई राह चलते उन्हें देख लिया करे। गोसाईं जी भी इस प्रकार प्रभु का तमाशा दिखाना उचित नहीं समझते होंगे। इस प्रकरण में मनसूर का नाम लाना इसे और भी अप्रामाणिक कर देता है।

कहते हैं कि अवध में भी एक मृतक ब्राह्मण बालक को गोस्वामी जी ने हनुमान जी की प्रार्थना कर यमलोक से लौटा मँगाया था। हनुमान जी के परम भक्त होकर बिचारे गोस्वामी जी तो उन्हें बारम्बार कष्ट देना नहीं चाहते होंगे पर करें क्या? किसी पर दुःख आने से परोपकार के निमित्त इन्हें हनुमान जी से सहायता की प्रार्थना करनी ही पड़ती थी।

यह आख्यायिका प्रार्थना की शक्ति प्रदर्शित करती है और पूर्वोक्त कार्य कोरा बाजीगर का तमाशा प्रतीत होता है।

त्रयोदश परिच्छेद

मित्र और सम्मान

क्षत्रिय टोडर—भदैनी[1], नदेशर, शिवपुर, छीतपुर और लहरतारा इन पाँच गावों के, जो काशी के एक छोर से दूसरे छोर तक फैले हैं, जमीन्दार थे। उन के घर का कुछ अवशिष्ट भाग हालतक काशी की कचौड़ी गली में वर्त्तमान था। और उन के वंशजों का एक घर अभी तक भदैनी के अन्तर्गत अस्सी पर है। वहां वे लोग अब भी कभी २ आ जाते हैं। वे बड़े रामभक्त थे। किसी कारण वश गोसाइयों ने उन्हें तलवार से काट डाला था। उन से गोसाईंजी को बहुत प्रेम था। उनके मरने पर गोसाईं जी ने नीचे लिखे हुये कई दोहे बनाये थे।

"चार गाँव के ठाकुरो, मन को महा महीप।
तुलसी या कलिकाल में, अथए टोडर दीप॥
तुलसी राम स्नेह को, सिर पर भारी भार।
टोडर कांधा ना दियो, सब कहि रहे उतार॥
तुलसी उर माला बिमल, टोडर गुनगन बाग।
ये दोऊ नयना सीचिहों, समुझि २ अनुराग॥
रामधाम टोडर गये, तुलसी भये असोच।
जिय बो मीत पुनीत बिनु, यही जानि संकोच॥"

गोसाईं जी के स्वर्गवास काल से आजतक उन की निधनतिथि पर टोडर के वंशज बराबर एक सीधा दिया करते हैं।

---

१. भदैनी ही के अन्तर्गत गोसाईं जी का निवास स्थान अस्सीघाट है। और यह भदैनी श्री काशीराज के अधिकार में है; नदेशर में अदालत कचहरी है; शिवपुर पंच कोश में है। यहाँ पांचों पाण्डवों का मन्दिर और द्रौपदी कुंड है जिसका अकबर के प्रसिद्ध राजस्वमंत्री राजा टोडरमल्ल ने जीर्णोद्धार किया था। छीतपुर भदैनी से पश्चिम है और लहरतारा काशी के केन्टोन्मेन्ट स्टेशन के पास है और अब सुप्रसिद्ध राजा पटनी मल्ल के परपोते राय शिव प्रसाद के अधिकार में है। लहरतारा ही की झील में नीमा ने कबीर जी को बच्चा पड़ा पाया था और कबीर जी की एक प्रतिमा भी बनी हुई है।

टोडर के स्वर्गवास पर उन के बेटे आनन्द राम और पोते कन्हाई के बीच झगड़ा निपटाने के लिये आप पंच नियत हुए थे और १३ सुदी आस्विन स० १६६६ में आप ने जो पंचायती फैसला दिया था, वह उपसंहार (क) में अनुवाद के साथ अविकल उद्धृत किया गया है। वह फैसला ११ पीढ़ी तक उन के वंशधरों के पास था और पृथ्वीपाल सिंह ने उसे काशी नरेश को दे दिया। वह उन्हीं के पास है। उस का फोटो 'खड्गविलास' यन्त्रालय द्वारा प्रकाशित रामायण में दिया हुआ है।

टोडर को ग्रियर्सन साहब ने राजा टोडरमल्ल अकबर का सुविख्यात अमात्य माना है जिन का देहान्त स० १६४६—४८ में हुआ एवम् लहरतारा को उन का जन्म स्थान लाहरपुर (अवध) अनुमान किया है। परन्तु यह बात असम्भव प्रतीत होती है, क्योंकि राजा टोडरमल्ल को गोसाईंजी न तो 'चार गाँव को ठाकुरो' या 'महतो' ही कहते और न उन को 'मन को महा महीप' ही कहते। टोडरमल्ल मन ही के महीप नहीं कहला सकते थे, वे सचमुच महीप थे। और अकबर के ऐसा प्रसिद्ध वीर अमात्य का केवल चार ही गाँव का मालिक होना भी सम्भव नहीं। आज के साधारण जमीन्दार दस-बीस गांवों के मालिक पाये जाते हैं। चार-पांच गांव वाले जमीन्दारों की तो गिनती ही नहीं हो सकती। और उस समय राजा लोग कवियों को १०-२० गावों का मालिक बना दिया करते थे। फिर क्या एक साधारण क़ाजी को साहस होता कि टोडरमल्ल के आत्मज तथा टोडरमल्ल ही के नाम का बिना कोई सम्मान सूचक शब्द के उल्लेख करता? राजा तक का विशेषण भी टोडरमल्ल के नाम के साथ नहीं लगता? जैसा कि 'आनन्द राम बिन टोडर बिन देव राम' इत्यादि में देखा जाता है।

काशी में राजा टोडरमल्ल का अन्य कोई अवशिष्ट चिन्ह नहीं है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र प्रकाशित कुंड के शिलालेख से केवल यही विदित होता है कि उन्हों ने सं० १६४६ में उस का जीर्णोद्धार किया था। वह कुंड शिवपुर में काशी की पंचकोशी में एक तीर्थस्थल है। वहाँ पाण्डवों का मन्दिर था। वह शिलालेख उपसंहार (ख) में प्रकाशित कर दिया जाता है।

महाराजा मानसिंह—आमेर के महाराजा मानसिंह अकबर के एक बड़े नामी सरदार और उन की दाहिनी भुजा थे। आप बड़े शूर-वीर थे और आप ने जय पर जय लाभ किया था। खोटान से लेकर समुद्र पर्य्यन्त का देश दिल्ली सम्राट के अधीन कर दिया था। उनका आतङ्क सारे भारतवर्ष में फैल गया था। तारीख़ फ़िरिश्ता में लिखा है कि उन्होंने आसाम विजय कर के १२० हाथी पादशाह के पास भेजा था। उन्हों ने बङ्गाल, बिहार, दक्षिण और काबुल की सूबेदारी बड़ी योग्यता से की थी। उनका प्रताप ऐसा बढ़ गया था कि अकबर और जहाँगीर भी उन से भय खाते थे। कवि कोविदों का वे बड़ा सत्कार करते थे। विज्ञवर श्री रमेशचन्द्र दत्त विरचित 'बङ्ग विजयता' उपन्यास से ज्ञात होता है कि बङ्गला रामायण सुनकर उन्हों ने उस के रचयिता श्री कृतवास जी का बड़ा सम्मान किया था। कविवर हरिदास के पुत्र हरिनाथ कवि उन की सभा के महान कवियों में से थे। 'मानचरित्र', 'आईन अकबरी' तथा ब्लाकमैनकृत उस के अङ्गरेजी अनुवाद पृ० ३३९ में उनका वृत्तान्त सविस्तर

वर्णित हुआ है।[१] श्रीमान् मानसिंह को और उन के चचा जगत सिंह को गोसाईं जी से बड़ा स्नेह था और वे लोग इनके दर्शन को प्रायः आया करते थे।[२]

खानखाना—अबदुलरहीम खां [३] खानखाना बैरम खां के पुत्र थे जिस बैरम खां की सहायता से हुमायूं को भारतवर्ष में विजय-लाभ हुआ था। खानखाना अकबर के एक सुप्रसिद्ध सरदार और आंखों की पुतली थे। अरबी, फ़ारसी, तुर्की, संस्कृत एवम् हिन्दी के अच्छे ज्ञाता और कवि थे। इन्होंने 'वक़ाय बावरी' को तुर्की भाषा से फ़ारसी में अनुवाद किया है। इन्होंने रहीम सतसई, बरवै नायिका-भेद, रासपंचाध्यायी, मदनाष्टक और एक फारसी दीवान की भी रचना की है। इन के संस्कृत के श्लोक बहुत कठिन पाये जाते हैं। इन के नीति आदि के दोहे बड़े बांके, मधुर और मनोहर देखे जाते हैं। इन के बहुत से दोहों पर काशी-निवासी स्वर्गीय मित्रवर बाबू राधा कृष्ण दास ने कुण्डलियां भी बनाई हैं जो 'सरस्वती' के कई एक संख्याओं में प्रकाशित हुई हैं। इन के दोहे 'खड्गविलास' प्रेस द्वारा प्रकाशित 'भाषा सार' ग्रंथ में भी संग्रहीत हुए हैं।[४] ये पंडित, कवि, ज्योतिषी, शायर सब प्रकार के गुणियों का यथायोग सत्कार करते थे। कवि गङ्ग पर इन की विशेष कृपा रहती थी। मिथिला प्रदेश के लक्ष्मीनारायण कवि भी इन की सभा में रहते थे। एक बार इन्होंने रीवां के नरेश के पास यह दोहा "चित्रकूट में रमि रहै, रहिमन अवधनरेस। जापर विपदा परति है, सो आवत यह देस॥"

---

१. मुसलमान लेखक गण हि० १०२४ (१६१५ ई०) में बङ्गाल में इन का देहान्त होना बताते हैं। परन्तु आमेर के काग़ज़ों से दो वर्ष पीछे खिलज़ी की चढ़ाई में इनका वीर गति को प्राप्त होना पाया जाता है। इसी से ग्रियर्सन साहब ने 'दी माडर्न वर्नेकुलर लिट्लेचर' (The Modern Vernacular Literature) ग्रंथ के पृ० १०६ में १६१८ ई० में इन का स्वर्गवास होना लिखा है। शिवसिंह ने सं० १५८० (१५२३ ई०) में लिखा है। यह सर्वथा भूल है। अकबर १५५६ ई० में राज सिंहासन पर बैठे और उन के नामी विजयी सरदार का परलोक हो १५२३ में ! क्या खूब !

२. 'सरस्वती' भाग ५ सं० १२ पृ० ४२३ में लिखा है कि मानसिंह भगवान सिंह के भाई जगत सिंह के पुत्र थे। उन्हें भगवान सिंह ने गोद लिया था। और कलकत्ता के ललित मोहन अडये द्वारा सम्पादित 'टाडराजस्थान' पृ० २६३ के नोट में लिखा है कि भगवान सिंह के तीन भाई थे—सूरत सिंह, जगत सिंह और माधो सिंह और मानसिंह सबसे अन्तिम भाई के पुत्र थे। परन्तु न जाने आगे चलकर उसी भाग के पृष्ठ २६४ में जगत सिंह को मानसिंह का भाई कैसे लिख दिया है, "Jay Sinha the grandson of Jagat Sinha (brother of Man) was raised to throne." कदाचित् इसी से ग्रियर्सन साहब ने भी मानसिंह को जगत सिंह का भाई लिखा है।

३. इन का जन्म सम्वत् १६१३ और देहान्त सम्वत् १६८३ में हुआ।

४. हम भी यहाँ पर पाठकों के अवलोकनार्थ कई एक दोहे उद्धृत कर देते हैं :—

"जो रहीम ओछे बढ़ै, बढ़त करै उत्पात।
प्यादे से फरजी भयो, तिरछो २ जात॥

लिखकर एक जाचक को बहुत-सा धन दिलवाया था। कहते हैं कि इन्हें श्रीकृष्णभगवान में प्रेम था और अन्त में इन्होंने संन्यास धारण कर भिक्षावृत्ति ग्रहण की थी। उसी अवसर पर इन्होंने एक बार कहा था, "ए रहीम दर दर फिरैं, मांगि मधुकरी खांहि। यारो यारी छोड़िये, वे रहीम अब नाहिं।।"

इस का वृत्तान्त 'आईन अकबरी' और उस के अनुवाद के पृष्ठ ३३८ में सविस्तर लिखा है। योधपुर-निवासी सुप्रसिद्ध मुं० देवीप्रसाद ने भी इन की जीवनी उर्दू में लिखी है। वह हिन्दी में भी छप गई है।

विद्यानुरागी तथा ईश्वरप्रेमी होने के कारण इन की गोस्वामी जी में बड़ी श्रद्धा थी और दोनों पुरुषों में पत्र-व्यवहार भी रहता था। जब-जब ये काशी में आते थे, गोसाईं जी का अवश्य दर्शन करते थे। प्रवाद है कि एक दरिद्र ब्राह्मण ने गोसाईं के पास अपनी कन्या के विवाह के लिए सहायता की प्रार्थना की। गोस्वामी जी ने एक पुर्जे पर यह पूर्वार्द्ध दोहा लिख कर उसी ब्राह्मण के हाथ ख़ानख़ाना के पास भेजा:—

"सुर तिय, नर तिय, नाग तिय, सह बेदन सब कोई।"

ख़ानख़ाना ने इसके उत्तर में यह उत्तरार्द्ध दोहा लिखा और उस ब्राह्मण को बहुत कुछ द्रव्य भी दिया:—

"गर्भ लिये हुलसी फिरै, तुलसी से सुत होइ"[६]

जो गरीब को आदरे, ते रहीम बड़ लोग।
कहां सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग।।
छमा बड़न को चाहिये, छोटन को उत्पात।
का रहीम हरि को घट्यो, जौं भृगु मारी लात।।
राह चलत सिर धुर रखत, कहु रहीम किहि काज।
जो रज रिषिपतनी तरी, सोइ खोजत गजराज।।
ते रहीम मन आपनो, कीनो चारु चकोर।
निसुवासर लाग्यो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर।।
खीरा को मुख काटि कै, मलियत लोन लगाय।
रहिमन कड़ुए मुखन को, चहिये यही सजाय।।"

६. इस दोहा के सम्बन्ध में श्री ज्ञानेन्द्र मोहन दत्त ने लिखा है:—"बादशाह के एक मंत्री का पुत्र तुलसीदास की बड़ी भक्ति करता था। एक दिन कथा प्रसंग में तुलसी दास ने उस से कहा कि देखो स्त्रियां कितनी गर्भयन्त्रणा भोगा करती हैं तो भी पुत्र की कामना करती हैं। मंत्री पुत्र ने उत्तर दिया कि "तुलसीदास के समान भगवद्भक्त पुत्र पाने से गर्भ सार्थक होगा यही आशा करके नारीगण यह कष्ट स्वीकार करती है।"

ख़ानख़ाना के साथ इस दोहे का बेजोड़ प्रसंग जोड़ने की अपेक्षा मंत्री पुत्र से इस का सम्बन्ध उपयुक्त प्रतीत होता है।

अर्थात् यद्यपि सब स्त्रियों को प्रसव पीड़ा समान होती है तथापि वे सब गर्भवती होने पर हर्ष मानती हैं कि कदाचित् तुलसीदास के सदृश उन्हें पुत्र उत्पन्न हो। उत्तरार्द्ध दोहे के मिसि खानखाना ने गोसाईं जी की गुप्त रूप से प्रशंसा की। किन्तु इस दोहे को उस ब्राह्मण के कार्य्य से क्या सम्बन्ध था यह बात हमारी समझ में नहीं आती। दरिद्रों तथा ब्राह्मणों पर खानखाना की स्वभावतः प्रीति और दया रहती थी जिस का कई एक प्रमाण मुंशी देवी प्रसाद विरचित खानखाना की जीवनी में देखा जाता है। इस से यदि ब्राह्मण देवता को कुछ प्राप्त हो गया तो कोई सन्देह नहीं।

धर्मपरायण बड़े २ नामी पुरुष, साधु, महात्मा, कविकोविद, राजमंत्री आदि तो आप के दर्शनार्थ आया ही करते थे, परन्तु जहांगीर पादशाह का भी इन के पास कभी २ आना कहा जाता है और कहते हैं कि एक बार गोसाईं जी का दर्शन कर जहांगीर के चले जाने पर लोगों ने आप से कहा कि "सम्राट के पिता अकबर बादशाह बड़े नामी, सुजन और बुद्धिमान थे और उन का दरबार गुणियों, पंडितों और विद्वानों से भरा रहता था जिन में वीरबल बड़े ही कृपालु चित और गुणनिधान थे।" इस पर कदाचित् गोसाईं जी ने कहा था कि "ये सब बातें हुईं तो क्या जब ईश्वर में प्रेम नहीं हुआ" और साथ ही साथ उन्हों ने यह कविता भी पढ़ी थीः—

"काम से रूप प्रताप दिनेस से सोम से सील गनेश से माने।
हरिचन्द से सांच बड़े विधि से मघवा से महीप विषै सुख साने॥
सुक से मुनि सारद से बकता चिर जीवन लोमस ते अधिकाने।
ऐसे भये तौ कहा तुलसी जो पै राजिवलोचन राम न जाने।"

प्रथम तो अकबर के विषय में गोसाईं जी स्वयम् बहुत कुछ जानते ही होंगे, क्योंकि उन की मृत्यु के समय इन की अवस्था ७१ वर्ष की होगी। इन से ये सब बातें कहने की कोई आवश्यकता नहीं थी। दूसरे इस कविता से यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता कि यह कविता पादशाह के सम्बन्ध में की गई अथवा वीरबल के सम्बन्ध में अथवा सर्व साधारण के सम्बन्ध में? पादशाह के सम्बन्ध में तो यह नहीं हो सकती, क्योंकि वे 'राजीवलोचन श्री राम' से कैसे प्रीति लगा सकते थे? वे मुसलमान थे, उन्हें अपने ही धर्म्म के अनुसार ईश्वर में प्रीति करना उचित था। और वे ईश्वर को भूले भी नहीं थे वरन् उन्होंने स्वयम् 'इलाही मजहब'[1] का प्रचार किया था जिसके बहुत से माननीय लोग अनुयायी थे। और वीरबल के सम्बन्ध में भी यह बात नहीं कही जा सकती थी। क्योंकि वे भी ईश्वर से अचेत नहीं थे जैसा कि उनकी कविता से प्रतीत होता है।

१. गर्भ चढ़ै पुनि रूप चढ़ै पलना पै चढ़ै चढ़ै गोद धना के।
हाथी चढ़ै पुनि घोड़ा चढ़ै सुखपाल चढ़ै चढ़ै जोम धना के॥

---

१. इस पंथ का सविस्तर वृत्तान्त मिर्ज़ा मुहसिन फ़ानी कृत 'दबिस्तानुल मजहब' के अन्त में देखिये।

बैरी औ मित्र के चित्त चढ़ै कवि ब्रह्म भनै दिन बीते पना के।
ईस कृपाल को जान्यो नहीं अब कांधे चढ़ै चले चार जना के॥[१]

२. यद्यपि सोच करै अब द्रव्य को गर्भ में कौन की गांठ को खायो।
जा दिन जन्म लियो जग मों तब केतिक कोटि लिये सँग आयो॥
वा को भरोस क्यों छोड़े अरे मन! जा सों अहार अचेत में पायो।
ब्रह्म भनै जनि सोच करै वहि सोचिहैं जो बिरवा उलहायो॥

हम कह सकते हैं कि गोसाईं जी की पूर्वोक्त कविता से ये कुछ कम उपदेशजनक नहीं हैं। और उपर्युक्त आख्यायिका कोरे गप्प ही गप्प है, इसमें सन्देह नहीं। अच्छा जो हो, आप लोग वीरबल का भी कुछ हाल सुन लीजिये।

ये अकबर पादशाह के एक सुविख्यात सरदार और हासप्रिय मित्र थे।[२] कविता भी अच्छी करते थे और कविता में अपना नाम 'ब्रह्म' रखते थे क्योंकि आप ब्राह्मण थे। इसी से पहिले इन्हें 'कविराय' की उपाधि मिली थी, फिर राजा की। इनका पद तीन हजारी का था और नगरकोट में विजय प्राप्त करने के अनन्तर इन्हें 'मोसाहब दानिश्वर' की पदवी मिली थी। अफ़ग़ानिस्तान के विकट पर्वत कन्दरा में युसुफ़जाइयों के हाथ से इन के वीरगति को प्राप्त होने पर पादशाह को असह्य शोक हुआ था और उन्होंने दो दिन तक अन्न जल भी ग्रहण नहीं किया था। इनकी १२-१३ सवैयाएँ हमको 'सुन्दरी तिलक' में 'शिवसिंह सरोज' पृष्ठ २०० तथा ३-४ 'मनोरमा' वर्ष ३, खंड २, पृष्ठ १० में देखने में आई हैं।

इस प्रसंग में जहांगीर पादशाह का पुनः नाम आने से हम यहां पर यह कहना चाहते हैं कि गोसाईं जी के दिल्ली में बुलाये जाने एवम् वहां वानरी सेना कृत उपद्रव का हाल तो जहाँगीर ने 'तुजुक जहांगीरी' में सम्भवतः इस कारण से भी न लिखा हो कि उस में उन की मानहानि थी, परन्तु बनारस में इन से भेंट का हाल तथा गोसाईं जी का चित्र खिंचवाने[३] की बात लिखने में क्या आपत्ति थी यदि ये सब घटनाएँ सत्य थीं? श्री कृष्ण

---

१. इसी आशय की एक कविता केशवदासकृत 'रामचन्द्रिका' में भी देखी जाती है और वह रावण के प्रति अंगद का वाक्य है:—

"पेट चढ्यो पलना पलिका चढ़ि, पालकिहूँ चढ़ि मोह मढ्यो रे।
चौक चढ्यौ चित्रसारी चढ्यो गजबाजि चढ्यो गढ़गर्व चढ्यो रे॥
व्योम विमान चढ्योई रह्यो कहि केशव सो कबहूँ न पढ्यो रे।
चेतत नाहीं रह्यो चढ़ि चित्त सों चाहत मूढ़ चिता हूँ चढ्यो रे।"

२. इनके जन्मस्थान का निश्चय नहीं है। योधपुरवाले इन का जन्म मकराने में, जयपुरवाले अजमेर के निकट एक गाँव में, कोई दिल्ली, कोई बुन्देलखंड के अन्तर्गत टिहरी में, कोई काशी में और कोई कालपी से आगे अकबरपुर में बताते हैं।

३. सुनते हैं कि जहांगीर पादशाह ने गोसाईं जी का कोई चित्र खिंचवाया था और वह प्रह्लाद घाट में गंगाराम ज्योतिषी जी के वंशधर रणछोड़ लाल व्यास के पास है। 'रामाज्ञा' की समालोचना देखिये।

प्रेमानुरागिनी सुविख्यात मीराबाई का भी गोसाईं जी से पत्र-व्यवहार करना लोग मानते हैं और कहते हैं कि जब स्वपरिवार तथा कुटुम्बियों की ताड़ना से उन का नाकोंदम आ गया तब उन्हों ने निम्नोद्धृत पत्र भेजकर गोस्वामी जी से सम्मति मांगी थी कि ऐसे अवसर में उन्हें क्या करना उचित था।[१] उन का भेजा हुआ पत्र यह है:—

"स्वस्ती श्री तुलसी गुन दूषन हरन गोसाईं।
बारहिबार प्रनाम करउँ अब हरहु सोक समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मुहि देत कलेस महाई॥
बालपने ते मीरा कीन्हों गिरधर लाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहिं क्यो हूं लगी लगन बरिआई॥
मेरे मातु पिता के सम हौ हरिभक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखिये समुझाई॥"

उसके उत्तर में गोसाईं जी ने कदाचित् यह पद लिख भेजा था :—

"जिनके प्रिय न राम बैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम स्नेही॥
तात मात भ्राता सुत पति हित इन समान कोउ नाहीं।
रघुपति बिमुख जानि लघु तृन इव तजत न सुकृत डेराहीं॥
तज्यो पिता प्रह्लाद बिभीषण बन्धु भरत महतारी।
गुरु बलि तज्यो कन्त ब्रज बनितन भे सब मंगलकारी॥
नातो नेह राम को मानिए सुहृदय सुसेव्य जहाँ लौं॥
अंजन कौन आँखि जौं फूटै बहुतै कहौं कहां लौं॥
तुलसी सोई सब भाँति आपनो पूज्य प्रान तें प्यारो।
जातें होय स्नेह राम सों सोई मतो हमारो॥"[२]

कहते हैं कि यही पत्र पाकर मीराजी गृहत्यागिनी होकर तीर्थाटन को निकल गईं।

१. पण्डित रघुवंश शर्म्मा ने मीराबाई जी का गोसाईं जी की सेवा में स्वयम् उपस्थित होना लिखा है। 'भक्तमाल कल्पद्रुम', 'भक्तमाल राम रसिकावली' तथा 'भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका' में भी मीराबाई और तुलसीदास में बातचीत लिखी है।

२. काशी निवासी बाबू कार्त्तिक प्रसाद के लेखानुसार मीरा जी के पत्र के उत्तर में गोस्वामी जी ने 'सो जननी सो पिता सोई भ्राता' (क० रा० उत्तरकाण्ड नम्बर ३५) वाली कविता भी लिख भेजी थी।

टाड साहब के लेखानुसार माड़वार देश के मैड़ता के राठौर क्षत्रिय सरदार योद्धा के चतुर्थ पुत्र दादू की मीराबाई कन्या थीं [१] और मेवाड़ के लखणा के पोते तथा मोकलदेव के पुत्र कुम्भूराणा [२] से जो अपने पिता के पीछे सं० १४७५ (१४१८ ई०) में राजसिंहासन पर विराजमान हुये थे, उन का विवाह हुआ था। ग्रियर्सन साहब विवाह का समय १४७० सं० (१४१३ ईसवी) लिखते हैं। टाड साहब का यह भी कथन है कि मीराबाई अपने समय की बड़ी प्रसिद्ध रानी थीं—सुन्दरता के कारण भी, एवम् धर्मपरायणता के लिये भी। उनके रचे पद और भजन अभीतक वर्त्तमान हैं और उन की प्रशंसा होती है। यमुना से लेकर द्वारिका पर्यन्त अधिक तीर्थाटन करने से लोग उन का बहुत नाम भी धरा करते थे। यह नहीं कहा जा सकता कि मीराबाई के कारण कुम्भू को पदरचना का उत्साह हुआ या उन के कविताप्रेमी होने के कारण मीराबाई की पदरचना में रुचि हुई; परन्तु इस का फल गीत गोविन्द का भाष्य हुआ इत्यादि।

"Koombhoo married a daughter of Rahtore of Mairta, the first of the clans of Marwar. Meerai Bai was the most celebrated princess of her time for her beauty and romantic piety.

Her compositions were numerous, though better known to the worshippers of the Hindu Apollo than to the reliable bards Some of her odes and hymns to the deity are preserved and admired. Whether she imbibed her poetic piety from her husband, or whether from her he caught the sympathy which produced the sequel to the songs of Govind, .we cannot determine. Her history is a romance, and her excess of devotion at every shrine of the favourite diety with the fair of Hindu from the Jamna to the world's end, gave rise to many tales of scandals."[3]

साहब बहादुर के विचार में जो आया है, उन्हों ने वही लिख मारा है, परन्तु यह बात आगे स्पष्ट विदित होगी कि उनका लेख ठीक नहीं है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र संगृहीत सूरदास कृत 'साहित्य लहरी' सटीक के पृष्ठ २१० में जो चित्तौड़ का प्राचीन प्रबन्ध दिया हुआ है वह भी राजस्थान ग्रंथ के ही आधार पर लिखा हुआ प्रतीत होता है। दोनों का वर्णन प्रायः एक सा देखा जाता है।

---

१. ललितमोहन आढ्य द्वारा सम्पादित 'टाड राजस्थान' भ० २, पृ० १७-१८ देखिये। ग्रियर्सन साहब ने रतियाराणा लिखकर टिप्पणी में टाड साहब वाला भी नाम दिया है।

—The modern Vernacular Literature ; P. 12.

२. वही 'टाड राजस्थान', परिच्छेद ७, पृ० २२८—२९।

३. वही 'टाड राजस्थान', पृ० २३९। आठवां परिच्छेद के पृ० २३७ से ही पाठ कीजिये।

बाबू कार्त्तिक प्रसाद खत्री ने 'मीराबाई का जीवन चरित्र' नामक ग्रंथ में लिखा है कि "माड़वार-मैरता-निवासी राठौर सरदार जैमल्ल की परम रूपवती कन्या मीराबाई ने १४७५ संवत् में जन्म ग्रहण किया था" (पृष्ठ १) एवम् "उदयपुर के राणा कुम्भ जी से उनका विवाह हुआ था" (पृष्ठ ३)। आप ने अकबर बादशाह का भेष बदलकर तानसेन के साथ मीराबाई के दर्शन के लिये जाना भी लिखा है (पृ० १२)।

'तारीख तुहफ़ए राजस्थान' में मौलवी महम्मद उबैदुल्लाह फ़र्हती ने लिखा है कि "सांगा को इस शिकस्त का नेहायत रंज हुआ, वह इसी साल के अन्दर मेवाड़ के पहाड़ी इलाके में मौत से या किसी के जहर देने से इन्तक़ाल कर गये......इन महाराणा के दो बेटे इन के सामने गुजर चुके थे जिन में से बड़े भोजराज के साथ मेड़तिया राठौर जयमल्ल की रिश्तेदार बहन मीराबाई जिस के फ़क़ीराना भजन अवाम में मशहूर हैं ब्याही गई थी।"

मीराबाई सम्बन्धी लेखों में ऐसा गड़बड़ पाने से हम ने सुविख्यात इतिहासवेत्ता योधपुरनिवासी मुं० देवीप्रसाद मुन्सिफ के पास इस विषय का एक पत्र भेजा। आप ने कृपा-पूर्वक जो उत्तर भेजा है उसका सारांश नीचे लिख दिया जाता है:—

"मीराबाई और राणा कुम्भा की शादी का हाल भी मिनजुमले बहुत-सी ग़लतीहाय टाड साहब के हैं। उन्हों ने चित्तौड़ में राणा कुम्भा और मीराबाई के बनाये हुये मन्दिर पास पास में देखकर ऐसा ग़लत ख़याल कर लिया। सहीह तारीखी अगर यह है कि मीराबाई मेड़ता के दादू जी राठौड़ के बेटे रतन सेन की लड़की थीं और उनकी शादी राणा सांगा के दूसरे बेटे भोजराज से हुई थी जो अपने बाप की जिन्दगी में मर गया था। मीरा बाई का इन्तक़ाल सं० १६०४ में हो गया था।.........मीरा बाई को राणा विक्रमादित्य के दीवान कौम महाजन बीजाबर्गी ने जहर दिया था......मीराबाई का श्राप बीजाबर्गी कौम को अब तक लगा हुआ है और वे मानते हैं कि उस श्राप से हमारी औलाद और दौलत में तरक्की नहीं होती है। मैंने मीराबाई का हाल जहां तक मुझको मालूम हुआ है उनकी स्वानेह उम्री 'महिला मृदुवानी' में छाप दिया है।"

'महिला मृदुवानी' देखने से यह भी ज्ञात हुआ कि सं० १५७३ में इन का विवाह हुआ था, परन्तु वे शीघ्र ही विधवा होकर भगवद्भजन करने लगी थीं। उन के देवर महाराणा रतन सिंह, विक्रमादित्य सिंह तथा उदय सिंह तीनों क्रम से अपने पिता की गद्दी पर बैठते गये। उनमें से रतन सिंह तथा विक्रमादित्य इन की ड्योढ़ी पर साधु सन्तों का आना-जाना देखकर चिढ़ते थे और उन लोगों के निषेध करने पर भी नहीं मानने से विक्रमादित्य ने अपने दीवान की सम्मति से चरणामृत के नाम से इन के पास विष भेजा था। वे माथे चढ़ाकर उस को पी गईं। परन्तु विष उन को नहीं चढ़ा और राणा जी का मुंह उतर गया। फिर ये तीर्थ-यात्रा को गईं और कुछ काल के बाद श्री द्वारका में गोलोकवासिनी हुईं।

मुंशी जी का पत्र और लेख मौलवी साहब के लेख से मिलता है। भेद इतना ही है कि मौलवी साहब ने भोजराज को राणा सांगा का ज्येष्ठ पुत्र और मीराबाई को जयमल्ल की बहन लिखा है। अन्य लोगों के लेख इन दोनों महाशयों के लेखों से सर्वथा भिन्न पाये जाते हैं। कार्त्तिक प्रसाद ने मीराबाई को जयमल्ल की कन्या और मौलवी साहब ने बहन

कहा है। टाड के अनुसार वे जयमल्ल की फूआ तथा दूदा की कन्या थीं। मुंशी देवीप्रसाद इन्हें मेड़तिया राठौर रतन सिंह की बेटी, रावे दूदा जी की पोती एवम् योधपुर के बसानेवाले राव योधा की परपोती बताते हैं।

चाहे ये किसी की कन्या या बहन हों इस से हमलोगों को इतना प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन है इस बात से कि गोसाईं जी के साथ उन का पत्र-व्यवहार करना या मिलना सम्भव है या नहीं?

अब यदि इन का कुम्भ राणा की पत्नी होना प्रतीत कीजिये तब तो ये बातें सर्वथा असम्भव हैं। क्योंकि कुम्भ राणा सं० १४७५ में राजसिंहासन पर विराजमान हुये थे और उन का मीराबाई से संवत् १४७० में विवाह होना कहा जाता है। यदि मीराबाई का विवाह १२ वर्ष की अवस्था में माना जाय तब गोस्वामी जी के जन्मकाल ही के समय (किसी हिसाब से क्यों न हो) उन की अवस्था न्यूनाधिक १०० वर्ष की हो जाती है। फिर गोसाईं जी के संग पत्र-व्यवहार कराने के लिये उन्हें कितने दिन तक जीवित रखिएगा?

यदि राणा सांगा के पुत्र भोजराज से विवाह मानिये तो सम्भव और असम्भव दोनों ही दीखता है। क्योंकि राणा सांगा ने १५३० ई० (१५८७ सं०) में शरीर त्याग किया और गोसाईं जी का जन्म लोग सं० १५८६ में मानते हैं। अब यदि भोजराज का जन्म राणा जी की मृत्यु के २०-३० वर्ष पहले भी हुआ हो तो उन की स्त्री का गोसाईं जी का समकालीन होना और इन से पत्र व्यवहार करना कोई आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु मुंशी जी मीराबाई का श्री कृष्ण में लीन होना सं० १६०४ में बताते हैं, जबकि गोसाईं जी की अवस्था १५-१६ वर्ष की होगी। उसी समय क्या इन की सुख्याति ऐसी फैल गई थी कि मीराबाई इन से धर्म्म सम्बन्धी सम्मति मांगती? उस समय तो ये विरक्त भी नहीं हुये होंगे, कदाचित् इन का विवाह भी नहीं हुआ होगा। अतएव यदि मुंशी जी लिखित मीराबाई का मृत्यु काल ठीक माना जाय तो दोनों के समसामयिक होने पर भी दोनों में पत्र-व्यवहार की सम्भावना नहीं। और मुंशी जी का कथन ठीक नहीं मानने का[1] हम कोई कारण नहीं देखते। यदि हैं तो यही कि बहुत से लोग इन दोनों 'पूजनीय' व्यक्तियों में पत्र-व्यवहार होना मानते आते हैं। परन्तु लोगों ने तो मीरा जी के मुख से उन के पूज्य पति के प्रति भी बहुत सी ऐसी बातें कहलवाई हैं जो मीराबाई जैसी सती तथा पतिव्रता स्त्री के मुख से निकलना संभव नहीं।

हां, यदि 'मानस-मयंक' के अनुसार गोसाईं जी का जन्म १५५४ सं० में माना जाय तो मीरा जी के शरीरत्याग के समय आप की अवस्था ५० वर्ष की होगी तो सही, परन्तु उस समय भी आप की सुख्याति के सम्बन्ध में हम को सन्देह ही है। हमारी यह धारणा है कि आप की सुख्याति जिस से लोग धर्म्म सम्बन्धी बातों में आप से अनुमति लेने लगे हों रामायण रचना के पीछे ही हुई होगी। और मयंक के अनुसार आप ने उस ग्रंथ की रचना ७७-७८ वर्ष की

---

१. मुंशी जी का लेख अवश्य प्रामाणिक (मानने योग्य) है, क्योंकि एक तो आप सुख्यात इतिहासवेत्ता दूसरे मीराबाई के स्वदेशी।

अवस्था में (अर्थात् सं० १६३२ में) आरम्भ की, जब कि मीरा को स्वर्गपयान किये २७ वर्ष हो गये होंगे।

हम को जो कुछ जहां तक अवगत हुआ है ; पाठकों के सामने हमने उसे उपस्थित कर दिया है। विज्ञ वाचक वृन्द निज विवेचना से जो उचित समझें उसे स्वीकार करें।

हां ! हम इतना और कह देंगे कि "जिनके प्रिय न राम वैदेही"—इस विशेष पद में कोई भी ऐसा शब्द नहीं है जिससे यह निश्चयपूर्वक कहा जाय कि यह पद मीराबाई के पत्र के उत्तर ही में लिखा गया था, अन्यथा नहीं। हमारी समझ में तो इस की रचना सर्वसाधारण के उपदेश हेतु भी कही जा सकती है।

निश्चय मीराबाई का पत्र स्पष्ट है। परन्तु जैसे पं० ज्वाला प्रसाद जी ने अपनी बड़ी रामायण में जनक जी का दशरथ जी के पास भेजा हुआ पत्र रख दिया है वैसे किसी को यह पद ही बना देने और रख देने में क्या हिचक हुआ होगा ?

श्री सीता रामशरण भगवान प्रसाद जी के पिता मुं० तपस्वी रामजी ने लिखा है कि सन्तों की सम्मति से मीरा जी गृहत्यागिनी होकर विरक्त हो गईं। उन्हों ने गोसाईं जी का नाम स्पष्ट नहीं लिखा है।

मीराजी की मृत्यु संवत् १६०४ में मानने से अकबर का तानसेन के सङ्ग उनसे मिलने की बात भी प्रमाणित नहीं होती, क्योंकि अकबर सं० १६१३ (१५५६ ई०) में राजसिंहासन पर विराजमान हुये थे।

ये सब जो कुछ हों, परन्तु मीरा जी एक भक्तशिरोमणि थीं। उन की गणना प्रथम श्रेणी के भक्तों में है। उन के उपास्य देव श्रीकृष्ण रणछोड़ जी थे। बाल्यावस्था ही से वे उन के रंग में रंगी हुई थीं और उन्हीं के ध्यान तथा गुणगान में मग्न रहा करती थीं। मीरा जी विरचित 'नरसी जी का मायरा'। 'गीत गोविन्द की टीका' तथा 'राग गोविन्द' अभी तक वर्तमान हैं। उन के रचे सरस भजन और पद, मन्दिरों में, गृहस्थों के घरों में एवम् सन्त-मण्डलियों में बड़े प्रेम से गाये जाते हैं। उन की कविता सुकोमल, मधुर भक्तिरसपूर्ण, ईश्वरप्रेमवर्द्धिनी एवम् वैराग्य उत्पादिनी पाई जाती हैं। नाभा जी कृत भक्तमाल, तुलसीदास कायस्थ कृत भक्तमाल, श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद कायस्थ कृत भक्तमाल की टीका आदि ग्रंथों में उनकी कथा सविस्तर लिखी हुई है। काशी निवासी स्वर्गीय बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री ने उन की एक पृथक जीवनी लिखी है। योधपुर निवासी मुं० देवी प्रसाद ने भी 'महिला मृदुवाणी' में उनके जीवन वृत्तान्त का वर्णन किया है।

'बनारसी विलास' [1] से विदित होता है कि बनारसी दास तथा गोस्वामी जी से आगरा में कई बार सम्मिलन हुआ था और दोनों में मित्र भाव भी था। बनारसीदास एक जैन महात्मा पंडित तथा सुकवि थे। गोस्वामी जी के स्वर्गवास के समय उन की अवस्था ३७ वर्ष की थी। सज्जनों से मिलना उन का एक स्वभाव था।

---

१. देवरी (मध्य प्रदेश) निवासी नाथूराम सम्पादित ग्रंथ पृ० १०२—४ और २४२ देखिये।

कहते हैं कि एक बार के सम्मेलन में गोसाईं जी ने उन्हें अपनी रामायण की एक प्रति दी थी और बनारसी दास की भेंट की हुई पार्श्वनाथ स्वामी की स्तुतिमय कई एक कविताएँ वे अपने साथ लेते गये थे। कई वर्ष बाद फिर दोनों पुरुषों में भेंट होने पर प्रसंगवश स्वामी जी ने रामायण के विषय में उनसे प्रश्न किया। उस के उत्तर में बनारसी दास ने उसी समय नीचे लिखी हुई कविता रचकर उन्हें सुनाई।

"विराजै रामायण घट माहिं। मरमी होय मरम सो जाने मूरख माने नाहिं॥ आतम राम ज्ञान गुन लक्ष्मण सीता सुमित समेत। शुभ प्रयोग बानरदल मंडित वरबिबेक रन खेत॥ ध्यान धनुपटंकार सोर सुनि गई विषयदिति [1] भाग। भई भस्म मिथ्या मत लंका उठी धारना आग॥ जरे अज्ञानभाव राक्षस कुल लरे निकांक्षित सूर। जूझे रागद्वेष सेनापति संसै गढ़ चक चूर॥ विलखत कुम्भ करन भवविभ्रम, पुलकित मन दरियाव। थकित उदार वीर महिरावन, सेतुबंध सम भाव॥ मूर्छित मंदोदरी दुरासा, सजग चरन [2] हनुमान। घटी चतुर्गति परनति सेना छुटै छपक गुन वान॥ निरखि सकति गुन चक्र सुदर्शन उदय बिभीपन दीन। फिरै कवंध मही-रावन की प्रान भाव सिर हीन॥ इह विधि सकल साधु घट अन्तर, होय सहज संग्राम। यह विवहार दृष्टि रामायण, केवल निश्चय राम॥"

गोस्वामी जी उन के इस अध्यात्म चातुर्य्य को देख बहुत प्रसन्न हुये और आप ने कहा कि "मैं इस सुन्दर कविता के बदले एक पार्श्वनाथ स्तोत्र जो आप की पार्श्वनाथ स्तुति पढ़कर मैंने बनाया है आप को भेंट करता हूँ।" उस का नाम 'भक्त विरदावली' था। उस के दो छन्द 'बनारसी विलास' के सम्पादक ने स्वसम्पादित ग्रंथ में उद्धृत किया है :—

"पद जलज श्री भगवान जू के, बसत हैं उर माहिं।
चहुँ गति विहंडन तरनतारन, देख विघन विलाहिं॥
थकि धरनिपति नहिं पार पावत, नर सो वपुरा कौन?
तिहि लसत करुना जन पयोधर; भजहिं भविजन तौन॥
दुति उदित त्रिभुवन मध्य भूषन, जलधि ज्ञान गंभीर।
जिहि भाल ऊपर छत्र सोहत दहत दोष अधीर॥
जिहि नाथ पारस युगल पंकज चित्त चरनन जास।
रिधि सिद्धि कमला अजर राजित, भजत तुलसी दास॥"

---

१. सूपनखा।

२. सम्यक् चरित्र।

और सम्पादक महाशय ने लिखा है कि "उक्त 'विरदावली' में तुलसी दास नाम के अतिरिक्त और कोई बात ऐसी नहीं है जिससे यह निश्चय हो सके कि ये 'तुलसी' गोसाईं जी ही थे अथवा कोई अन्य। परन्तु गोसाईं जी का होना सर्वथा असम्भव नहीं। क्योंकि उस समय के विद्वानों में आजकल की नाईं धर्म्मद्वेष नहीं था। वे (अर्थात् गोस्वामी जी) बड़े सरल हृदय के भक्त थे।"

काशी के श्री मधुसूदन स्वामी से भी गोसाईं जी की मित्रता कही जाती है। मधुसूदन जी का वर्णन अन्यत्र रामायण के प्रकरण में हुआ है।

चतुर्दश परिच्छेद

बन्धु और वंशज

श्री नन्ददास जी को कोई गोसाईं जी का सगा भाई और कोई गुरु भाई बताते हैं; और कहते हैं कि जब गोसाईं जी श्री वृन्दावन पधारे थे, तब श्री नन्ददास जी वहां इन से मिलने आये थे। गोसाईं जी ने, उन्हें सप्रेम आलिंगन कर कुशलक्षेम पूछने के अनन्तर, विहंसि कर उन्हें रामचरित गान करने को कहा। उस पर उन्होंने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि "यदि मेरा नाम आप लोग दशरथ दास रखते तो मैं रामगुण कथन करता। जब नन्द दास हो गया तब नन्दनन्दन को छोड़ दूसरे का गुण कैसे गान करूं।" गोसाईं जी उनकी अनन्यता देख बहुत प्रसन्न हुये थे। यह कथा जो कुछ हो, परन्तु यह बात विचारणीय है कि नन्ददास जी इन के भाई थे या नहीं; और यदि थे, तो कैसे भाई थे।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल' के एक छप्पै में कहा है:—
श्री तुलसीदास प्रताप ते नीच ऊँच सब हरि भजै।। नन्ददास अग्रज द्विज कुल मति गुनमंडित।.... रामायण रचि राम भक्ति जग थिर करि राखी" इत्यादि। और दूसरे में कहा है—'श्री नन्ददास रसरासरत प्रान तज्यो सुधि सी करत।। तुलसिदास के अनुज सदा बिट्ठल पदचारी" इत्यादि।

उन दोनों छन्दों को स्वसम्पादित रामायण में उद्धृत करके म० कु० रामदीन सिंह जी ने लिखा है कि "यहां एक बात और भी शंका की हुई कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी नन्ददास को तुलसी दासजी के अनुज कहते हैं और ऊपर के लेख को देखने से मालूम हुआ कि ये दोनों दो स्थान के और दो ब्राह्मण हैं, फिर अनुज कैसे हो सकते हैं। यदि गुरुभाई ही को छोटे बड़े के लेखा के नाम से लिखा हो तब तो एक रीति से ठीक है अथवा अनुज का अर्थ 'पीछे' किया हो तब भी ठीक हो सकता है। जैसे 'भक्तमाल' के मंगलाचरण में लिखा है:—
भक्तमाल अनुजै भये, भक्त जक्त विख्यात। तिन सब नव नव चरित नव भक्तमाल सुख्यात।।"

इस से मित्रवर का कदाचित् यह आशय है कि पहले गोसाईं जी का जन्म हुआ और तब नन्ददास जी का, चाहे वे सगे भाई हों या न हों। परन्तु ऐसे तो अनेक भक्त गोसाईं जी के अनुज कहा सकते हैं, नन्द दास जी ही की क्या बात है?

बात यह है कि नन्ददास जी रामपुर के रहनेवाले एक ब्राह्मण थे और इन के बड़े भाई का नाम चन्द्रहास[१] था। कोई२ इन्हें कन्नौज के पास के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहते हैं। 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' में नन्ददास को तुलसीदासजी का सगा भाई लिखा है। इसी से भारतेन्दु ने भ्रमवश इन्हें रामायण के रचयिता तुलसीदास का भाई बना दिया है। 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है कि ये दूसरे तुलसीदास सनाढ्य ब्राह्मण थे जो कि नन्ददास के जीवन चरित्र से स्पष्ट है। वल्लभ सम्प्रदाय में नन्ददास का जीवन चरित्र प्रसिद्ध है।"[२]

इन सब बातों से तो सगा भाई होने की कथा निर्मूल होती है। अब रही गुरुभाई की बात। तो नन्ददास जी अष्ट छापों में अर्थात् उन मुख्य कृष्णभक्तों में से हैं जिन्होंने कृष्णलीला सम्बन्धी ग्रंथों तथा पदों की रचना की है एवम् व्रजप्रदेश में श्री कृष्ण के मन्दिरों में जिनके पदों का गान किया जाता है। श्री सूरदास, श्री कुम्भणदास, श्रीपरमानन्द दास तथा श्री कृष्णदास, श्री १०८ वल्लभाचार्य जी के शिष्य और श्री छीति स्वामी, श्रीगोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास तथा श्री नन्ददास, श्री विट्ठलनाथ जी के शिष्य—ये ही आठ महापुरुष अष्टछाप के भक्त कहलाते हैं।[३]

इस से स्पष्ट पाया जाता है कि नन्ददास जी, श्री विट्ठल महाराज के शिष्य तथा वृन्दावन-विहारी वेणु-लकुट-धारी श्री कृष्णमुरारी के उपासक थे और गोसाईं जी श्री नरहरि दास (अथवा किसी अन्य महापुरुष) के शिष्य एवम् प्रमोद बन-बिहारी धनुष-बाणधारी श्री रामखरारी के उपासक थे। तब दोनों गुरुभाई भी कैसे हो सकते थे?

---

१. श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद ने 'भक्त माल की टीका' पृ० १०-११ में 'अग्रज' अर्थात् बड़ा भाई लिखा है। और 'भक्तमाल कल्पद्रुम' में इन्हें नन्ददास जी का पिता लिखा है। कदाचित् उस के रचयिता ने 'अग्रज' को अंगज पढ़कर ऐसा लिखा है। रानी कमल कुँअरी, बैजनाथ दास तथा पंडित रघुनाथ शर्म्मा ने बरैली के समीप 'हवेली' ग्राम के रहनेवाले नन्ददास जी को गोसाईं जी का भाई बना दिया है। क्योंकि रानी साहबा एवम् बैजनाथ दास ने नन्ददास के कुटुम्बियों के द्वारा एक मृतक गऊ उन के द्वार पर, और पंडित जी ने एक मरी बछिया उन के खेत में फेंकवा कर, उन पर हत्या लगाने की बात कही है, जिस कथा को रामपुर वाले नन्ददास से कुछ सम्बन्ध नहीं। उपर्युक्त 'भक्तमाल की टीका' पृ० ६६७ और १०११ देखिये।

२. उस रामायण में जीवन चरित्र का पृ० ३३ देखिये।

३. भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित 'चरितावली' पृ० ५५ में तथा 'शिवसिंह सरोज' में यही सब मंगलमय नाम दिये हुये हैं। परन्तु 'भक्तमाल कल्पद्रुम' तथा 'भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका' में कुम्भणदास तथा श्री गोविन्द स्वामी का नाम नहीं देकर श्री व्यास और श्री हरिदास के नाम लिखे हुये हैं। और श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद ने 'भक्तमाल की टीका' पृ० १०१२ में श्री कुम्भण दास के स्थान में खिन्नदास तथा श्री छितिस्वामी के स्थान में चेत स्वामी लिखा है। सम्भवतः 'खिन्न' और 'चेत' कुम्भण तथा छिति का अपभ्रंश वा नामान्तर है।

लोगों का यह अनुमान कि नन्ददास जी भी पहले नरहरि दास जी के चेले थे पीछे श्रीकृष्णानुरक्ति के कारण श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य हो गये हों, उन के आचरण तथा धर्मनिष्ठा पर आक्षेप करता है और सिद्ध करता है कि उन का मन दृढ़ नहीं था, एक पक्ष को परित्याग कर दूसरे का अवलम्बन किया करते थे; परन्तु ऐसे महात्मा के सम्बन्ध में हम ऐसा कहने का साहस नहीं कर सकते।

यदि इन दोनों महापुरुषों ने एक ही गुरु के पास विद्योपार्जन किया हो और दोनों में अति घनिष्ठ मित्रता हो तो हो सकता है कि ये दोनों गुरुभाई थे और परस्पर अधिक प्रीति रीति के कारण किसी २ ने इन लोगों को सगा भाई भी समझ लिया हो तो सन्देह नहीं। हम दो चार ऐसे मनुष्यों को जानते हैं कि जिन लोगों के विद्याध्ययन काल में सदा संग तथा घनिष्ठ सम्बन्ध रहने एवम् परस्पर विलक्षण प्रीति के कारण हमें चिरकाल तक यही विश्वास था कि वे लोग आपस में सगे भाई थे और यदि हमें विश्वासी व्यक्ति से ज्ञात नहीं हुआ होता कि वे लोग भिन्न स्थानों के रहनेवाले भिन्न जातियों के लड़के थे तो हम आज भी समझते कि वे लोग सगे भाई थे और उन्हें देखकर अब भी कभी २ ऐसा भ्रम हो ही जाता है।

हमारी समझ में जैसे लोग रामपुर निवासी नन्ददास जी तथा बरैली निकटवर्त्ती हवेली निवासी नन्ददास को एक बना कर उधर गड़बड़ मचाते हैं वैसे ही इधर रामायण के रचयिता तुलसीदास और 'दो सौ वैष्णवों की वार्ता' वर्णित तुलसीदास को भी एक बनाकर लोगों ने भ्रमोत्पादन कर दिया है।

पूर्वोक्त बातों से विदित होता है कि नन्ददास जी गोसाईं जी के भाई नहीं थे। अन्य कोई इन का भाई हो तो हो।

जिस नन्ददास जी को लोग गोस्वामी जी का भाई बनाते हैं वे भी प्रशंसनीय कवि थे। आप की श्लाघा में कवियों ने कहा है—"और सब गढ़िया नन्ददास जड़िया" अर्थात् और लोग कविता रूपी आभूषणों के गढ़नेवाले हैं और नन्ददास कविता भूषणों में नग जड़नेवाले हैं। आप ने रास पञ्चाध्यायी, रुक्मिणी मंगल, दशम स्कन्ध, नाममाला, अनेकार्थ, दानलीला, मानलीला आदि ग्रंथों की रचना की है।

कहा जाता है कि गोसाईं जी को तारक नामक एक पुत्र भी हुआ था और वह बालकाल ही में स्वर्गवासी हो गया।

जो हो, अब तो इन की लेखनी से निर्गत ग्रंथ समूह ही इन के वंशधरों के समान हैं एवम् वंशजों से बढ़कर इन के नाम को चिरस्थायी करनेवाले हैं। सब मनुष्यों के मुख से जो सदा इन की प्रशंसा हुआ करती है वही नित्य तर्पणादि के तुल्य है। पूना आदि स्थानों में जो इन की मृत्यु तिथि पर उत्सव हुआ करता है वही वार्षिक श्राद्ध के सदृश है। एक मुसलमान कवि ने सच कहा है :—

"रहता सो खन से नाम क्यामत तलक है ज़ौक़।
औलाद से तो बस यहि दो पुश्त, चार पुश्त॥"

पञ्चदश परिच्छेद

भ्रमण

गोस्वामी जी काशी और अवध से कभी २ तीर्थाटन तथा भ्रमण के लिये अन्यत्र भी चले जाते थे। कब कहां गये थे यह बात तो नहीं कही जा सकती, परन्तु जहां-जहां इन का जाना सुना गया है उस का संक्षिप्त वृत्तान्त पूर्ववर्त्ती लेखकों के लेखानुसार यहां पर वर्णित होता है।

एक बार आप काशी से पुरुषोत्तम क्षेत्र जाते समय भृगु आश्रम (बलिया) पहुँचे। वहां श्री भृगु जी का स्थान बताते हैं और प्रति वर्ष कार्त्तिक की पूर्णमासी को वहां भारी मेला होता है। वहां से हंसनगर तथा परसिया[1] होते गायघाट के हयहोवंशीय राजा गम्भीर देव के यहाँ ठहर आप ने उन्हें महा कृतार्थ किया। अब उन के वंश के लोग हल्दी में निवास करते हैं। जो युक्तप्रदेश के बलिया जिला में शाहाबाद (आरे) जिला के सामने गंगा के वामतट पर वर्त्तमान है। इस समय परसिया और गायघाट गंगा के दोनो तटों पर स्थित हैं। उनके उत्तर के अंश तथा परगना तथा जिला बलिया में है और दक्षिणस्थ भाग परगना भोजपुर जिला शाहाबाद में ब्रह्मपुर से डेढ़ कोस उत्तर गंगा के कूल पर है।

गायघाट के सामने गंगा पार उतर कर आप शाहाबाद जिला में ब्रह्मपुर[2] पहुँचे। वहां पर ब्रह्मेश्वरनाथ महादेव का मन्दिर है और प्रतिवर्ष फाल्गुन तथा वैशाख की शिवरात्रि को वहां मेला हुआ करता है। गाय, बैल, घोड़ा आदि की अच्छी बिक्री होती है। प्रवाद है कि स्वयम् ब्रह्मा जी ने ब्रह्मेश्वरनाथ की स्थापना की है। महादेव जी का दर्शन कर आप वहाँ से निकट ही कांट (कान्त)[3] गाँव में आये, परन्तु वहां के अधिवासियों की राक्षसी प्रकृति देख आप जो वहां से आगे बढ़े तो थोड़ी ही दूर संवरू[4] अहीर के पुत्र मंगरू से भेंट हुई।

---

१. यहां पराशर मुनि का स्थान बताते हैं।

२-३. ये दोनों गाँव शाहाबाद जिले के बगसर सबडिविजन परगना भोजपुर में हैं। रघुनाथपुर ईष्ट इण्डिया रेलवे स्टेशन से लगभग एक कोस उत्तर गंगा के समीप बसे हैं। न जाने लोगों ने इन्हें बलिया जिला में कैसे लिखा है। ब्रह्मपुर से कांट थोड़ी ही दूर पूर्व दक्षिण है। निकटवर्त्ती होने के कारण लोग दोनों का नाम मिलाकर कांट ब्रह्मपुर कहा करते हैं।

४. इस नाम के दो अहीरों का वर्णन लोरिकगीतों में सुना जाता है।

वह बड़ा ही सन्तसेवी था और बड़े आदर के साथ गोसाईं जी को अपनी गोशाला में उतार दूध लेकर उपस्थित हुआ। गोसाईं जी ने उस का खोआ बना कर भोजन किया। आप के आज्ञानुसार प्रभुभक्ति तथा वंशवृद्धि का वर मांगने पर गोस्वामी जी ने आशीर्वाद किया कि "यदि तेरे वंशधर चोरी नहीं करेंगे और किसी को दुःख नहीं देंगे तो तेरी मनोकामना अवश्य पूरी होगी", सुनते हैं कि उसके वंशज अभीतक अतिथि सेवा में तत्पर रहते हैं और चोरी नहीं करते।

मंगरू की १५—१६वीं पीढ़ी में बिहारी अहीर के पुत्र साधुसेवी सखीचंद और जौखी इस समय वर्तमान हैं। वहां से चलने पर बेलापतौत में गोस्वामी जी को शाकद्वीपीय ब्राह्मण गोविन्द मिश्र तथा रघुनाथसिंह क्षत्रिय से भेंट हुई। उन लोगों ने आप की बड़ी सेवा शुश्रुषा की।

वे लोग विद्वान, धर्मिष्ट और सतसंगी थे। इस से गोसाईं जी वहां प्रायः एक मास ठहर गये। आप के सहवास से उन लोगों को और अधिक ज्ञान तथा वैराग्य उत्पन्न हुआ। अपनी सेवा से प्रसन्न कर उन लोगों ने हरिचरणों में प्रेमाभक्ति का शुभाशीर्वाद पाया।

आप ने उस गांव का नाम बदल कर उस का नया नाम रघुनाथपुर रखा जिस में कि रघुनाथ सिंह का यादगार भी रहे और इस बहाने लाखों मनुष्यों के मुखों से बराबर भगवान का नाम भी उच्चारण हुआ करे। रघुनाथपुर आरा से पश्चिम ईस्ट इण्डिया रेलवे का चौथा स्टेशन है। नूतन नाम रखे जाने के बाद से यह बस्ती सब प्रकार से समृद्धिशालिनी हो रही है।

जहां गोसाईं जी ठहरे थे वहां अभी तक उन के नाम का एक चबूतरा विद्यमान है उस के उत्तर एक पुराना सरोवर है जो तुलसी कुंड के नाम से प्रसिद्ध है। प्रत्येक पर्व पर नगरनिवासी आदि उस चबूतरे का पूजन करते और वहां उत्सव मनाते हैं। नित्य प्रति पूजा के लिये रघुनाथ सिंह के वंशजों की दी हुई कुछ मिल की भूमि है और बाजार तथा गोलों से गोसाईं जी के नाम पर चुंगी निकाली जाती है।

उस चबूतरा पर लोगों का इतना विश्वास है कि अनावृष्टि के समय सब नगर निवासी मिलकर वहां हवन तथा ब्राह्मभोजन कराते हैं और वृष्टि भी शीघ्र ही हो जाती है और उस स्थान के शरणापन्न होने से लोगों की सब मनसाएँ सफल होती हैं। १६२६ ई० की फाल्गुनी शिवरात्रि को एक पक्षाघात पीड़ित २५ वर्ष के वयस का साधु किसी प्रकार से वहां पहुंच गया। बोलने चालने की पूरी शक्ति नहीं थी। आठ महीने के बाद वह प्रायः नीरोग हो गया है जिससे लोगों की चबूतरे में श्रद्धाभक्ति और भी बढ़ गई है और लोग गोसाईं जी की मूर्त्ति संस्थापित करने के यत्न में हैं।

रघुनाथ सिंह के कुल में अब कोई नहीं है। किन्तु उन का टूटा फूटा गढ़ अभीतक दृश्यमान है।

गोविन्द मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र रामभद्रजी के वंश में हरिदत्त मिश्र, महेश्वर मिश्र, जगदम्ब मिश्र तथा शिववर्ण मिश्र विद्यमान है। गोविन्द मिश्र अपने द्वितीय पुत्र निवास मिश्र को साथ लेकर धर्मोपदेश करते छपरा जिला के बी० एन० डब्ल्यू रेलवे के संठा स्टेशन के समीपस्थ झउसा ग्राम चले गये और वहां से कहीं तपस्या को निकल गये। किसी को कुछ पता न लगा। किन्तु उक्त पुत्र के वंशधर कृष्ण कमल उस गांव में वर्त्तमान हैं।

कदाचित् सम्वत् १६४३-४४ में गोसाईं जी बेलापतौत आये थे। क्योंकि पूर्वोक्त मिश्रों के ठकुर प्रबन्ध पुस्तक से जाना जाता है कि उन के आगमन के थोड़े ही दिन बाद १६४५ में गोविन्द मिश्र घर से निकल गये।

रघुनाथपुर के निकटस्थ कैथी गाँव में भी वहां के मालिक जोरावर सिंह ने गोसाईं जी का सादर आतिथ्य किया था। उनके वंश में इस समय गोविन्द सिंह जी हैं।[१]

'आरा पुरातत्त्व' में लिखा है कि "रघुनाथपुर से पूरब बिहिया स्टेशन के समीप कटेयां गांव में भी गोसाईं जी गये थे। वहां इनके उपदेश पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। अतएव इन्हों ने कहा कि 'यह गाँव कांटों से ही भरा हुआ है।' तभी से यह गाँव कटेयां कहलाने लगा। पहले उस का कुछ और ही नाम था। जिला सारन में मैरवा के हरिराम ब्रह्म बड़े प्रसिद्ध हैं। कनकशाही विसेन के अत्याचार से आप प्राण त्याग कर आप ब्रह्म हुये हैं। वहां प्रतिवर्ष रामनवमी को धूम धाम से मेला लगा करता है। गोरखपुर सारन आदि आस पास के जिलों में यह बात प्रसिद्ध है कि हरिराम जी के यज्ञोपवीत के समय गोस्वामी जी का वहां जाना हुआ था। मैरवा बी० एन० डब्ल्यू० रेलवे लाइन का एक ख्यात स्टेशन है और छपरा शहर से पश्चिम है।

एक समय गोसाईं जी देवदर्शन और देशाटन के निमित्त मिथिला गये थे। कहते हैं कि वहां के ब्राह्मणों को हालापुर आदि जो १२ गांव श्री रामचन्द्र के विवाह के समय कर रहित दान दिये गये थे उन्हें पटना के सूबेदार ने छीन लिया था। गोसाईं जी ने अपने उद्योग से श्री हनुमत जी की कृपा से उन सब गांवों को उन ब्राह्मणों को लौटवा दिया। विवाह के समय श्री राम की ओर से ब्राह्मणों को मिथिलाप्रदेशान्तर्गत गांव कैसे दान में मिले यह बात हमारी समझ में नहीं आती। वे सब गांव तो निश्चय महाराज जनक के अधीन होंगे, उन पर श्री दशरथ जी का स्वत्व तो कदापि नहीं होगा। हां, श्री जनक जी ने अपनी ओर से श्रीरामचन्द्र से दान कराया हो तो सम्भव हो सकता है। परन्तु सुमेरपुर निवासी पं० रघुनाथ शर्मा बम्बई के 'गुजराती' प्रेस की छपी हुई रामायण में लिखा है कि "जो दानपत्र ब्राह्मणों ने दिखलाया था उसपर श्री हनुमान जी की गवाही थी।" यह दूसरा ही गुल खिला। श्रीरामचन्द्र को श्री हनुमान जी से वनवास के समय किष्किन्धा में परिचय हुआ और पंडित जी ने गवाही करने के लिये उन्हें विवाह ही के समय बुलाया। क्या खूब! और प्राचीन दानपत्रों में हमें गवाही की बातें कहीं नहीं सुनने में आईं।

रानी कमल कुँअरी के लेख से हनुमान जी की गवाही कुछ सम्भव दीखती है। वे विवाहकाल का दान नहीं कहतीं। उन का कथन है कि एक समय जब ब्राह्मणों ने रामचन्द्र को नेवते में बुलाया था तब वे सब गांव दान दिये गये थे। सम्भव है कि बन से लौट आने पर ससुराल गये हों और उस समय हनुमान जी भी गये हों, पर इस का प्रमाण कहीं नहीं पाया जाता। वाल्मीकि जी ने तो राज्याभिषेक के अनन्तर हनुमान जी को विदा ही कर दिया है। गोसाईं जी ने उन्हें अवध ही में रघुनाथ जी के समीप रखा है सही, परन्तु न गोसाईं जी

१. इन बातों के जानने में हमें गोविन्द मिश्र के कुटुम्बी कामेश्वर नामक एक युवक से सहायता मिली है।

और न वाल्मीकि जी रामचन्द्र के फिर जनकपुर जाने और गांव दान करने की बातें कहते हैं। और यदि गये भी हों तो उस प्रान्त में इन के गांव दान करने का अधिकार सिद्ध नहीं होता। उधर इन का इलाका था ही नहीं। और न इन से जनक जी का गांव दान कराना सुना गया। यदि इस की कहीं भनक भी मिलती तो गोसाईं जी इसे लिखे बिना नहीं रहते जबकि इन्हों ने रामचन्द्र के विवाह का वृत्तान्त तथा दान दहेज का हाल सविस्तर वर्णन किया है।

कथित है कि एक बार चित्रकूट यात्रा के समय चुनार या विन्ध के राजा ने आप को अपनी राजधानी में सादर ले जाकर विराजमान कराया। उसी समय सम्राट की आज्ञा से किसी कारणवश वह पकड़ा कर दिल्ली भेजा गया। मुसल्मानी शासनकाल में ऐसी धड़ पकड़ प्रायः हुआ करती थी। गोसाईं जी ने यह समाचार पाकर ईश्वर कृपा से उस राजा को शीघ्र ही बन्धन से मुक्त कराया। सम्राट से अपमानित होने के बदले बहुत सम्मानित हो कर वह अपने देश में लौट आया और गोसाईं जी को कुछ काल साग्रह अपने स्थान पर रख कर सत्संग का आनंद लेता रहा। लोगों का कथन है कि उसी राजा के धर्म्म के सूक्ष्म तत्त्व का उपदेश करने की प्रार्थना पर गोसाईं जी ने यह कविता कही थी :—

"पंडित वेद पुरानन को अपनो अपनो मत भापत हैं।
बुधि के बल ते छल छिद्र करैं बहु अक्षर भेद बखानत हैं॥
चित्त वृत्त की डोलत घातन में इन बातन में हरि मानत हैं।
तुलसी मुख से किन लाख कहो मन की रघुनन्दन जानत हैं॥"

हम इस में धर्म्म के सूक्ष्म तत्त्व का कोई विशेष उपदेश नहीं देखते। इस से बढ़कर उत्तम २ उपदेश इनके अन्य कवित्तों तथा पदों में भरा हुआ है।

कहते हैं कि विन्ध की तराई में दो और राजे रहते थे। उन लोगों में बड़ी मित्रता थी। एक बार दोनों ने आपस में यह सम्मति तथा प्रतिज्ञा की, कि "यदि हमलोगों को पुत्र पुत्री हों तो दोनों का आपस में विवाह कर दें।" दोनों को पुत्री ही पैदा हुई। परन्तु एक ने कन्या को पुत्र प्रसिद्ध करके पुत्र के समान उसे रखा। यहां तक कि उस का विवाह भी दूसरे राजा की कन्या से कर दिया। गौना के पश्चात् यह बात प्रकट होने पर वह राजा जो ठगा गया था महाक्रुद्ध हुआ और कपटी राजा पर आक्रमण कर उस ने उसे जीत लिया। वह राजा पराजित हो भाग निकला और गोसाईं जी का शरणापन्न हुआ। विजयी राजा भी ससैन वहां आ धमका। भगवान की कृपा से तब तक वह कन्या स्वामी जी का चरणामृत पान कर पुरुषत्व को प्राप्त हो गई। इसके प्रमाण में लोग दोहावली के ये दोहे बताते हैं :—

"कबहुक दरसन संत के पारस मनी अतीत।
नारि पलट सो नर भयो लेत प्रसादी सीत॥
तुलसी रघुवर सेवतहिं मिट गो कालोकाल।
नारि पलट सो नर भयो ऐसो दीनदयाल॥"

कोई २ इस घटना का सम्बन्ध काशीराज से जोड़ते हैं।[1] बाबू श्यामसुन्दर दास ने हमारे एक पत्र के उत्तर में, इस ग्रंथ के छपने के समय, लिखा है कि "उस घटना से काशी के आधुनिक राजवंश का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। मेरी समझ में यह गप्प है। पृथ्वीराज रासों में भी ऐसी ही एक गप्प का उल्लेख है तथा जहां तक मुझे स्मरण पड़ता है बुद्ध के समय की भी किसी ऐसी घटना का मैंने कहीं उल्लेख पढ़ा है।"

हमें भी पहले इस अनैसर्गिक घटना का विश्वास नहीं होता था और हम इसे कोरी गप्प ही समझे हुये थे। परन्तु नीचे के अंगरेजी लेख से ऐसी घटना सम्भव दीखती है। इस में लिखा है कि एक व्यक्ति के विवाह के २० वर्ष पीछे यह ज्ञात हुआ कि वह पुरुष है और इतने समय तक उस के संग स्त्रीवत् सब बातें होती रहीं। एल० ए० वाडेल् (L. A. Waddell) साहब द्वारा सम्पादित लियन साहब कृत 'मेडिकल जुरिज़प्रूडेंस' (Lyon's Medical jurisprudence) के तीसरे संस्करण के पृष्ठ २८ में यह लेख देखा जाता है और उस में यह घटना अन्य[2] पुस्तक से उल्लिखित हुई है।

"A person affected with hypospadias was married for 20 years, and during all that time was treated as a female. Sexual intercourse was regularly effected by the canal of the wrethra, nor was it until the period just mentioned had elapsed that it was discovered that the individual was a man."

अब रही यह बात कि वह प्राणी चरणामृतपान अथवा रामायण श्रवण से या किसी रीति से पुरुषत्व को प्राप्त हुआ या नहीं। यथार्थ बात तो यह है कि उपयुक्त समय आने पर ईश्वर कृपा से उसकी अवस्था परिवर्तित हो गई और चरणामृत वा रामायण तो निमित्त कारण हुआ होगा, चाहे कोई इसे स्वीकार करे या नहीं।

कलकत्ता के 'हिन्दूपञ्च' भाग २ सन् १९२७ ई० के किसी अङ्क में गाजीपुर जिला के किसी गांव में एक नारी के पुरुष हो जाने का समाचार छपा था। उस में उस प्राणी का नाम ग्राम नहीं दिया हुआ था। किन्तु टर्की की राजधानी कुस्तुन्तुनिया में १३ जुलाई १९२५ ई० को मेडिकल कमीशन द्वारा पूरी जाँच के बाद 'सेम इनूम' नाम की एक २१ वर्षीया युवती को मर्द करार दिये जाने का संवाद 'बाम्बे क्रानिकल' के संवाददाता ने उस पत्र को उसी स्थान

१. बहुत से लोगों ने इस कथा को रामायण माहात्म्य के प्रसंग में लिखा है और कहा है कि द्राविड़ देशाधिपति तथा काशीराज ने परस्पर ऐसी प्रतिज्ञा की थी। द्राविड़ का राजा अपनी स्त्री के प्रपंच से सुता ही को सुत जानकर विवाह करने काशी आया। वहां पर बात प्रगट होने से उधर तो वह महालज्जित हुआ और इधर काशीराज उस का गला काटने पर उद्यत हुए। वह विचारा भयभीत हो गोसाईं जी की शरण आया। आपने काशीराज को बुलाकर समझाया बुझाया और द्राविड़ की राजकन्या को नव दिन रामायण का पारायण सुनाकर पुरुष बना दिया।

२. A. Geston Med. Juris Lect. p. 52.

कुस्तुन्तुनिया से दिया था और वह समाचार अन्य पत्रों में भी छपा था। उस संवाददाता ने लिखा था कि "पुराने काल में कभी २ ऐसे लोगों का भी पता लगा है जिनमें नरनारी दोनों के चिह्न और लक्षण पाये जाते थे। उन्हें लोग 'मुखन्नस' (खोजवा) कहा करते थे। ऐसे लोगों में कुछ लोग समय पाकर साफ नर या नारी बन जाते थे। पर ऐसी बात अब तक मुझे साफ समझ में नहीं आई थी, परन्तु कल की विचित्र (उपर्युक्त) घटना से पुराने लोगों की खोज और जाँच की सत्यता का प्रमाण भी मिलता है।"

ऐसी घटनाओं की कथाएँ हमारे पुराणों में भी पाई जाती हैं। भागवत देखिये। श्राध्यदेव की कन्या ईला वशिष्ठजी के उद्योग से सुद्युम्न नाम का पुत्र हो गई। पुनः स्त्री हो जाने पर उन्हीं की प्रार्थना से उसे एक मास स्त्री तथा एक मास पुरुष होकर रहने का वर शंकर जी से प्राप्त हुआ था।

द्रुपद की कन्या शिखण्डिनी किसी दानव के वर से शिखंडी पुरुष होकर भीष्मपितामह की मृत्यु का कारण हुई।

उत्पल नाम की एक भिक्षुकी महात्मा बुद्धदेव की कृपा से कुछ काल के लिये पुरुषत्व को प्राप्त हो गई थी।

ऐसी पोथी पुराण-वर्णित घटनाओं में यज्ञ, तपस्या, शाप, वर, आशीर्वाद आदि बातों के कारण चाहे उन्हें कोई गप्प बताये, परन्तु ईश्वरीय सृष्टि में कोई अघटनीया नहीं कही जा सकती और सब घटनाओं में मुख्यतः उन्हीं की कृपा की प्रधानता रहती है। उन का निमित्त कारण चाहे कुछ और भले ही हो। किन्तु ऐसी घटनाएँ नित्य प्रति नहीं हुआ करतीं।

रूस में एक डाक्टर के एक नारी को नर बना देने की भी बात कही जाती है। तब हम वशिष्ठ जी तथा वरदायक दानव प्रभृति को इस विद्या में परम निपुण इसके आदि आचार्य और उक्त डाक्टर का दादा गुरु कहें, एवम् यह कहें कि पुरातन काल में भारत में इस विद्या का भी व्यवहार हुआ करता था, तो कुछ आपत्ति न होनी चाहिये। वे भारतीय धार्मिक महात्मा थे। अपने अद्भुत कार्य्यों को ईश्वर की कृपा की ओट में कर दिखलाते थे और प्रभु के ही वर प्रसाद को प्रधानता देते थे।

जो हो प्रागुक्त जुरिस प्रूडेन्स का वर्णन और २० वीं सदी का टर्की वाला प्रत्यक्ष प्रमाण प्रमाणित कर रहे हैं कि ऐसी घटना का घटित होना असम्भव नहीं।

विन्ध्याचल में कुछ दिन रह कर आप प्रयाग गये। बैजनाथ दास के लेखानुसार वहां गोसाईं जी को श्यामानन्द[1] के चेले मुरारी देव (रसिक मुरारी) से भेंट हुई, जो बड़े गुरु-भक्त थे और एक बार भोजन करते समय गुरु का पत्र पा भोजन परित्याग कर विना हाथ मुंह धोये १२ कोस चले आये थे।

---

१. रानी कमल कुँअरी ने रामानन्द लिखा है। ये कौन रामानन्द थे सो ज्ञात नहीं। रामानन्दीय सम्प्रदाय के संस्थायक श्री रामानन्द जी तो गोसाईं जी के बहुत काल पहले थे।

बादशाह ने उन के गुरु की कुछ भूमि छीन ली थी। गुरु ने उसी के लिये आप को बुला भेजा था। जिस समय वे बादशाह के पास गये थे उसी काल में एक बिगड़ैल हाथी के मारने के लिये बादशाह का लड़का नगर के बाहर एक ऊँचे मचान पर बैठा था। इधर से रसिकमुरारी जी पहुँचे। राज्यपुत्र के सङ्ग उन का वार्तालाप आरम्भ ही हुआ था कि वह उन्मत्त मातंग वहां आ पहुँचा। उसे देख मुरारी जी ने कहा। "ऐसा डीलडौल बिना हरिभजन के व्यर्थ है।"[१] कहते हैं कि यह बात कान में पड़ते ही वह शान्त भाव से बैठ गया; उस के नेत्रों से जल बहने लगा। आप ने कमल की माला उस के गले में डाल दी। उस समय से वह हाथी साधुमंडली में रहने लगा। पादशाह पुत्र यह लीला देख महा चकित हो गया और आप के गुरु का छीना गया गांव लौटवा दिया।

वहीं गोसाईं जी को मलूकदास[२] से भेंट का भी आनन्द हुआ था। वे श्री मुरारी दास जी के चेले तथा गंगाजी के बड़े भक्त थे। कभी गंगाजी में स्नान नहीं करते थे। भाव यह था कि जिसे माता समझते हैं उसे पांव से कैसे स्पर्श करें। भाव उत्तम था, परन्तु उन के सहवासी साधुओं ने इसे गंगा जी का अपमान समझ उन के गुरु के पास इस की निन्दा की। गुरुजी ने परीक्षार्थ एक बार गंगास्नान करते समय उन से गमछा मांगा। कथित है कि उस समय जल तल पर कमल के पत्र निकल आये और उन्हीं पर चलकर वे गुरुजी को गमछा दे आये।

श्री जगन्नाथ क्षेत्र में समुद्र के तट पर मलूकदास के नाम का एक क्षुद्र मन्दिर है। वहां दर्शकों को मलूकदास का टुकड़ा प्रसाद मिलता है।

बहुत दिन अवध में वास करने के अनन्तर गोसाईं जी ने तीर्थाटन की मनसा से एक बार नैमिषारण्य की ओर यात्रा की। पहले दिन रुनाई में ठहरे; फिर सूकर क्षेत्र का दर्शन करते कुछ दिन पसका में विराजमान रहे। इसी पसका के रहनेवाले वेणीमाधव दास जी ने 'श्री गोसाईं चरित्र' नामक इन का जीवन वृत्तान्त लिखा है जो अभी तक अप्राप्त है और जिसके प्राप्त और पाठ के लिये गोसाईं जी के अनुरागी लोग बड़े ही लालायित हैं।[३] वहाँ से श्री सीता जी के स्थान पर सियावर गाँव में पहुँचे जहां सीता कुंड अभीतक वर्तमान है। फिर कुछ दिन लक्ष्मणपुर (लखनऊ) में रहे। वहाँ आप की कृपा से एक विद्याहीन जाट अच्छा कवि बनकर सुखपूर्वक अपनी जीविका प्राप्त करने लगा।

वहां से थोड़ी दूर पर मड़िआंव गांव में एक भक्त भीष्म सिंह नामक कायस्थ कानूनगोय रहते थे। उन्होंने भी रामचन्द्र जी के नखसिखवर्णन में कविता की थी। उन से भेंट की लालसा

---

१. यह कथा कुछ भिन्न ढंग से श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद कृत 'भक्त-माल की टीका' पृष्ठ ६११—१४ में वर्णित हुई है। परन्तु आशय दोनों के एक ही हैं।

२. M. Mucauliff (एम० मुक़ालिफ़ साहब) के लेखानुसार श्री गुरु तेग बहादुर जी की मलूक दास से भेंट हुई थी। गुरुसाहब ४३ वर्ष की अवस्था में सं० १७२१ में गुरुगद्दी पर विराजमान होने पर भ्रमण को निकले थे और गोसाईं जी का सं० १६८० में शरीरत्याग हुआ। इस से प्रतीत होता है कि मलूकदास भी दीर्घजीवी थे।

३. वह ग्रंथ तो नहीं, किन्तु उसी का सार 'मूल गोसाईं चरित्र' प्राप्त हुआ है। उस का हाल इस पुस्तक के शेष में लिखा जायगा।

से आप मड़िआव की ओर चले। तीन कोस चलकर चनहट गांव में जाने पर आपने एक कूआं पर बैठ उस का जलपान किया। वह पवित्र कूआं शेख सराय के पास अभी तक वर्तमान है। चनहट में आप को ज्ञात हुआ कि वहां की चौधराई ब्राह्मणों की है और उन लोगों से कानूनगोय की अनमनी चली आती है। इससे यह सोचकर कि कदाचित् भीष्म सिंह का गर्वित स्वभाव हो आप उन से मिलने नहीं गये। परन्तु उन का गर्वित स्वभाव होना नहीं पाया जाता है; क्योंकि पीछे इस घटना का समाचार मिलने पर वे स्वयम् काशी में आकर गोसाईं जी के दर्शन से कृतार्थ हुये हैं। स्वरचित श्री गंगा स्तुति गोसाईं जी को सुनाई है और उन का रचा 'नखसिख' भी देखकर गोस्वामी जी बहुत प्रसन्न हुये हैं।

गोस्वामी जी चनहट से मलीहाबाद गये। वहा इन्होंने एक भक्त भाट को निज प्रेम सूचक प्रसादी स्वरूप एक प्रति अपनी रामायण दी थी। उस का अभी तक वहां के महंथ जनार्दन जी के पास रहना कहा जाता है।

वहां से प्रभावती स्नान की इच्छा से, जहां वाल्मीकि जी का आश्रम है, प्रस्थान कर आप रसूलाबाद के समीप कोटरा गांव में गये एवम् अनन्य माधव से मिले जो कि बड़े भक्त तथा अच्छे कवि थे। माधवदासजी कोटरा गांव अपने ननिहाल आये। मामा ने उन्हें खलिहान अगोरने को भेजा। अन्नदान महादान समझ अपने खलिहान का सब धान सन्तों तथा दरिद्रों को दे दिया और आप कहीं जाकर छिप रहे। जब और लोगों के संग खोजते २ उन की माता उन के पास पहुंची तो उन्होंने कहा संसार में कोई किसी का नहीं है, परम सुखदायक श्री भगवान ही हैं और आप ने उस समय माता को वह पद सुनाया :—

"ऐसो सोच न करिए माता।

देव लोक-सुर देह धरी जिन किन पाई कुसलाता।
प्राकरमी भीषम सों को भा दानि करन सों दाता।
जिन के चक्र चलत हैं अजहूं घरि नहिं भई बिलाता॥
मृत्यु बांधि रावन बस राखी भरो गरब उर माथा।
तेऊ उड़ि २ भये कालबस ज्यों तरुवर के पाता॥
सुन जननी अब सावधान ह्वै परम पुरातन वाता॥
मनिमाधव माधव के सेवक कौन काहि सों नाता॥"

भेंट होने पर गोसाईं जी ने अनन्य माधव को यह पद सुनाया था :—

"मैं हरि पतित पावन सुने।
हौं पतित तुम पतित पावन दोऊ बानक बने॥
ब्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमागम भने॥
और पतित अनेक तारे जात सो का पै गने।

जानि नाम अजान लहियो नरक जमपुर मने।
दास तुलसी सरन आयो राख लिए अपने ॥"

इस के उत्तर में अनन्य माधवदास ने नीचे लिखे पद की रचना की :—

"तब ते कहां पतित नर रह्यो।
जब ते गुरु उपदेश दीन्यो नाम नौका गह्यो ॥
लोह जैसे परसि पारस नाम कञ्चन लह्यो।
कस न कसि कसि लेहु स्वामी अजन चाहन चह्यो ॥
उभरि आयो बिरह बानी मोल महंगे कह्यो।
खीर नीर तें भयो न्यारो नरक तें निर्बह्यो ॥
मूल माखन हाथ आयो त्यागि सरवर मह्यो।
अनन्य माधव दास तुलसी भवजलधि निर्बह्यो ॥"

वहां से विदा होकर ब्रह्मावर्त्त (बिठूर)[1] में कुछ दिन गंगा तट पर ठहरे और श्री वालमीकि जी के स्थान एवम् अन्यान्य पवित्र स्थलों का दर्शन कर वहां से संडीला आये।

संडीले में एक ब्राह्मण के द्वार पर जाकर आप ने साष्टांग दंडवत किया। ब्राह्मण विचारे घर नहीं थे। उन की स्त्री मारमार कर दौड़ी कि 'यहाँ ठहरने का स्थान नहीं।' आप

१. बैजनाथ दास ने ब्रह्मावर्त में बालमीकि जी का स्थान लिखा है। गोसाईं जी की कविता नं० १३२ (कवितावली उ० का०) से यह स्थान बारिपुर और दिगपुर के बीच प्रतीत होता है। काशी कमक्ष्या स्थान निवासी श्री बावा टीकम दासजी ने बाबू रामदीन सिंह जी से कहा था कि मिरजापुर से गोपीगंज जाकर वहां से दो कोस पच्छिम दक्षिण वह स्थान है। और काशी के सुप्रसिद्ध ज्योतिषी पं० श्यामाचरण जी के अनुसार मिरजापुर स्टेशन से आगे गैपुरा स्टेशन है वहां से आगे नहवाई (?) स्टेशन से दो कोस उत्तर सीताबट तथा बालमीकि जी का स्थान है। इसकी पुष्टि गोसाईं जी की कविता से होती है। सीताबट एक सतबरोह का पेड़ है। वहां सन्तान प्राप्ति तथा सन्तान जीवित रहने के लिये लोग मनता मानते हैं। श्रीमान् महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह जी काशी नरेश ने वहां जानकी जी की मूर्त्ति स्थापित कर ३० बिगहा भूमि पूजा के लिये पण्डों को दी है। 'खड्गविलास' प्रेस द्वारा प्रकाशित रामायण के गोसाईं चरित्र का पृष्ठ ९६ देखिये।

परन्तु वनगमन के समय तो लोग गंगा और यमुना पार होकर चित्रकूट में बालमीकि आश्रम में पहुँचे थे (जो पूर्वोक्त स्थान और बिठुर से भी बहुत दूर है) सीता निर्वासन के समय लक्ष्मण जी केवल गंगा पार ही उतार कर सीताजी को वाल्मीकि आश्रम में पहुंचा आये हैं। क्या उस समय बाल्मीकि जी चित्रकूट से उत्तर-पूर्व मिरजापुर जिले में चले आये थे?

हंसते हुये वहां से चले आये और रामबाग में जाकर अपने डेरा जमाया। ब्राह्मण देवता घर आने पर यह सब समाचार सुनकर दौड़े हुये आप की सेवा में पहुंचे और आप के चरणों में गिर कर उन्हों ने अपने घर चलने के लिये इन से बहुत आग्रह किया। इन्हों ने कहा कि "मैं आपसे बहुत सन्तुष्ट हूँ, मुझे केवल आप के घर की पवित्र भूमि के दर्शन की लालसा थी क्योंकि आप के घर श्री कृष्ण जी का सखा मनसुखा जन्म लेकर आप का कुल पवित्र करेगा।"

कुछ काल विगत होने पर ब्राह्मण देवता को एक पुत्र प्राप्त हुआ। उस का नाम वंशीधर रखा गया। वह बालक बड़ा ही कृष्णभक्त और कवि हुआ। कहते हैं कि स्वप्न में श्री जगन्नाथ जी की आज्ञा पाकर एक कोढ़ी उस बालक का जूठा बतासा प्रसाद पा अपने रोग से मुक्त हुआ था। वे रासधारियों के संग रहकर सर्वदा लीलानन्द में मग्न रहते थे। एक समय रासलीला में नृत्य करते २ यह पद श्रवण कर "सुधि करत कमल-दल-नैन की। वै दिन विसरि गये मनमोहन बांह उसीरे सैन की।" आप आत्मविस्मृत हो भूतल में गिर पड़े और गोलोक सिधारे।

'शिवसिंह सरोज' में लिखा है कि वंशीधर संवत १६७२ में हुये और आप शान्तरस के चोखे कवि थे। पाठक वृन्द! आप लोग भी इन का एक कविता देख लीजिये।—

कवित्त—"जिन्है तूं मगन ते न तेरे तिन्हैं ताकि देख,
नगन निकारि कै चढ़ाइबे को चीता है।
सपने की संपदा सुलभ साथ सबहीं के,
सोई हित लाग्यो हरिनाम अनहीता है।
कहैं मिश्र वंशीधर ऐसी कबहूं न आई,
मति जैसी चहुं कछु ठहराय गीता है।
चेतो नाहि परैंगो या तारि ताकि चलो अब,
सीताराम भजिलै जनम जात बीता है॥"

संडीले से जब गोसाईं जी चले तो रास्ते में एक गांव में वहां का मालिक गर्व से चूर अपने समाज के साथ बैठा था। वह श्री ठाकुर जी की पवित्र मूर्त्ति एवं महात्माओं को देखकर सम्मानार्थ उठ खड़ा भी नहीं हुआ, जिस से उसे क्लेशग्रसित होना पड़ा। आगे बढ़ने पर एक गांव में कायस्थों ने इनका बहुत सेवा-सम्मान किया और वे इन के अलभ आशीर्वाद के भागी हुये।

आगे बढ़कर आपने एक गांव में एक ब्राह्मण के द्वार पर ठहरना चाहा। विप्र ने कहा कि "हम तो स्वयम् कष्ट में हैं आप कहां चले आते हैं।" जो कोई कष्ट नहीं होने पर भी ईश्वर का असीम उपकार भुलाकर अपने को कष्टभोगी बनावेगा उसे निश्चय कष्टभोगी होना ही पड़ेगा। यही दशा उस विप्र महाराज की हुई।

ब्राह्मण की तो यह दशा, परन्तु वहां कोई जोलाहा 'पाई' कर रहा था। वह स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हो अपने योग्य सेवा की प्रार्थना की। गोसाईं जी ने इस से हर्षमान उसे आशीर्वाद दे विदा किया।

इसी प्रकार रास्ते में लोगों से मिलते-जुलते उन्हें आनन्द देते, नैमिषारण्य में पहुंच कर अपने तीर्थ दर्शन तथा सत्संगति का सुख लाभ किया। वहां पर उन्हें चिहानी के एक शुक्ल भक्त से भेंट का आनन्द प्राप्त हुआ।

वहां कुछ काल वास करने के अनन्तर आप मिसरिख[1] होते खैराबाद आये। वहां एक हरिभक्त साधा हलवाई ने आप का बहुत आदर सत्कार किया और बहुत सी खाने पीने की वस्तुएँ आप को भेंट की। उन्हें दो नावों में रखवाकर और एक नउका पर अपने समाज के साथ चढ़कर आप वहां से विदा हुये।

जब वे नावें रामपुर में जगंतिया (महसूल) के लिए रोकी गईं तब इन्होंने वहीं पर अपने पास के सब पदार्थों को दीन दुखियों को लुटा दिया जिस का समाचार पाकर वहां का प्रधान रामसिंह तुरत इन की सेवा में उपस्थित हो इन के चरणों में गिरा और इन्हें ससमाज घर ले जाकर इन का बहुत आदर सत्कार किया। इन्हों ने उस ज़मींदार को एक प्रति रामायणदी। कोई २ कहते हैं कि गोसाईंजी का चरणपादुका लेकर वह इष्टदेव के समान उन्हें पूजने लगा

1. इस ग्रंथ की पृ० सं० ५७ पारा ४ देखिये।

षोडश परिच्छेद

स्वभाव

गोस्वामी जी एक सच्चरित्र सन्तगुणसम्पन्न महान् महात्मा थे। आप का स्वभाव सरल तथा निष्कपट था। इसी सीधेपने के कारण आप ने अपने बालपने की दुरावस्थाओं को जहां तहां वर्णन किया है।

आप में सहज नम्रता बहुत थी। यह बात रामायण की वन्दना ही से स्पष्ट विदित होती है। ऐसा उद्दण्ड कवि होने पर भी इन्होंने वहां कितनी नम्रता दिखलाई है। यदि ऐसा न करके ये मुख्य विषय के लिखने में ही प्रवृत्त हो जाते तो इन का कोई हाथ नहीं रोकता और न वह ऐसे अद्भुत ग्रंथ के प्रचार ही में बाधक होता।

परन्तु इन का ऐसा नम्रस्वभाव होने पर भी एवम् सज्जनों तथा असज्जनों की इतनी वन्दना करने पर भी जो लोग 'बिनुकाज दाहिने बाएं' रहा करते हैं ईर्षावश इन से अकारण द्वेष रखने, इन की प्रतिष्ठा भङ्ग करने एवम् इन्हें कुढ़ाने में पहले कसर नहीं करते थे। बात ठीक ऐसी ही थी 'न ख़ाहम आं कि बे आज़ारम् अन्दरून् कसे। हसूदरा चे कुनम् कज़् खुद बरंज दरस्त' अर्थात् मेरी तो इच्छा नहीं कि किसी के दिल को दुखाउँ, परन्तु ईर्षा से जर्जरित लोगों को क्या कहूं जो आप ही आप रंज रहा करते हैं। आप सरलचित तथा जगतहितकारी संत थे। आप का हित अनहित कौन था? आप अँजुली में लिये हुये सुमन के समान, जो दाहिनी बायीं का विचार न करके दोनों तलहथियों को सुगन्धित करता है, हित अनहित सबों के हित ही चाहनेवाले थे। इसी से अपनी सहिष्णुता के कारण किसी से बदला चुकाने पर उद्यत नहीं होते थे। हां! उन लोगों के कुव्यवहार से दुखित होकर कभी २ इस सम्बन्ध में कविता अवश्य कर देते थे। यथा:—

"मेरी जाति पांति न चहौं काहु की जाति पांति, मेरे कोऊ काम को न हौं काहु के काम को। लोक परलोक रघुनाथ हीं के हाथ सब, भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को॥ अतिहीं अयाने उपखानो नहिं बूझै लोग, साहब को गोत गोत होत है गुलाम को। साधु कै असाधु कै भले कै पोच सोच कहा, काहू के द्वार पर्यो जो हौं सो हौं राम को॥

"कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो, कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है। साधु जानैं महा साधु खल जानैं महा खल, बानी झूठी साँची कोटि उठत

हबूब है ।। चहत न काहु सो कहत ना काहु को कछु, सब की सहत उर अन्तर न ऊब है । तुलसि को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के राम की भगति भमि मेरी मति दूब है ।।"

और इसी से जब एक बार बनारस के कई एक कुचाली मनुष्यों ने आप से कहा था कि आप नगर छोड़ कर कहीं दूसरे स्थान में चले जाइये तो ये विश्वनाथ को अपना डेरा-डंडा उठाने का हाल निवेदन कर चुपचाप काशी से चल खड़े हुये थे ।

उपर्युक्त द्वितीय कविता से यह स्पष्ट विदित होता है कि सब लोग इन से द्वेष ही ही नहीं रखते थे । बहुत से लोग इन के गुणगायक भी थे । और पीछे अपने सरल स्वभाव तथा सच्चरित्र के कारण वे लोगों के बड़े स्नेहभाजन और आदर सत्कार के पात्र हो गये थे । सर्वसाधारण को कौन कहे, बड़े २ प्रतिष्ठित, धीर, वीर—विजयी विद्वान् आप से स्नेह करते और आप के दर्शनार्थ आया करते थे (जैसा कि १३वें परिच्छेद के विवरणपाठ से भान होता है), और आप के सुन्दर सदुपदेशों से संतुष्टि लाभ करते थे । इन के पास ऐसे महानुभावों को आते जाते देख एक बार किसी व्यक्ति ने आप से पूछा भी था कि 'महाराज ! पहले तो आप के समीप कोई नहीं आता था, अब ऐसे बड़े आदमी लोग कैसे आया करते हैं ?' उस पर गोस्वामी जी ये दोहे कहे थे :—

"लहै न फूटि कौड़िहूँ, को चाहे केहि काज ।
सो तुलसी महँगे कियो, राम गरीबनेवाज ।।
घर घर मांगे टूक पुनि, भूपति पूजै पाय ।
ते तुलसी तव राम बिनु, ते अब राम सहाय ।।"

सच है, सब से नेह नाता तोड़ जब केवल राम ही के हो गये एवम् निष्कपट भाव से उन्हीं की सेवा में लग गये, तब बड़े लोगों का आप के चरणों में नमित होना कौन आश्चर्य की बात है । एक मुसलमान सज्जन ने कहा है :—

"ख़्वाही कि हमा कस जे तो पैवन्द वो ख़्वाहन्द ।
तू रिश्तये पैवन्द नखुस्त अज़ हमा बोगुसल ।।"

अर्थात् यदि चाहता है कि सब लोग तुझ से मिलें और तुझे चाहें तो तू पहले सम्बन्ध के धागे को सब से तोड़ डाल । गोसाईं जी ने संसार से सम्मानित होने के अभिप्राय से तो सब से नेह नाता तोड़ कर वैराग्य नहीं लिया था, पर उस का सहज गुण कैसे जाय । सम्मान की इच्छा नहीं रहने पर भी लोग आप ही आप आप का आदर-सम्मान करने लगे ।

इतने प्रतिष्ठित तथा सर्वमान्य पुरुषों से भेंट और भिन्नता होने पर भी इन्हों ने कभी किसी के सम्बन्ध वा प्रशंसा में कुछ कविता नहीं की । सर्वदा अपनी जिह्वा से रामयशकीर्तन करते तथा अपनी प्रबल लेखनी को उन्हीं के गुण वर्णन में प्रचालित करते रहे, और अपने इस कथन का "कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना । सिर धुनि गिरा लागि पछताना ।।" जीवनपर्यन्त

निर्वाह किया। मनुष्य के सम्बन्ध में जो कोई कविता हुई तो वही टोडर की मृत्यु पर कई एक दोहे बनाये गये। परन्तु टोडर रामभक्त थे। इस नाते उन के विषय में कविता की गई, नहीं तो वह भी कदापि नहीं होती।

पादड़ी एड्विन ग्रीव्स ने लिखा है कि "स्वामी तुलसी दास जी लालची होकर दोहे-चौपाई के व्यापारी नहीं हुये। बहुत कवि राजाओं की डेवढ़ी पर अपनी गद्दी बिछा के अपने प्रतिपालकों का झूठा गुणानुवाद झनकाते हुये सुख आनन्द में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। परन्तु तुलसी दास ऐसे नहीं थे। वे किसी राजा वा धनी के अवलम्बी न रहे, पर अपनी झोंपड़ी में बैठ के राजाराम की सेवा में छन्द बनाते हुये अपने दिनों को काटते रहे।"

जो ईश्वर के रंग में रँग जाते हैं, उन का मन प्राकृत जनों के गुणानुवाद में क्या कभी लग सकता है? श्री गोस्वामी जी, सूरदास तथा श्रीपति आदि कई जन इस के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

सप्तदश परिच्छेद

स्वर्गप्रयान

यह बात तो सर्वसम्मत है कि गोस्वामी जी का संवत् १६८० (१६२३ ई०) में स्वर्ग-पयान हुआ। इस के प्रमाण में यह दोहा प्रचलित है—

"संवत सोरह सै असी असी गंग के तीर।
सावन सुकला सप्तमी तुलसी तज्यो सरीर॥"[1]

परन्तु किस प्रकार से आप का शरीर त्याग हुआ इस विषय में लोगों का मतभेद है। पूर्ववर्त्ती लेखकों ने इन की मृत्यु पिरकी रोग से माना है ऐसा अनुमान करने का कारण 'हनुमान बाहुक' के ४१ वें कवित्त का चौथा चरण है—"ताते तन पोषियत घोर बरतोर मिसि फूटि फूटि निकसत लोन राम राय को।"

जब सन् १८६८ ई० में भारतवर्ष में प्लेग (गिल्टी वाली महामारी) का प्रकोप हुआ एवम् लाखों मनुष्य विकराल काल के गाल में प्रवेश करने लगे तब ग्रियर्सन साहब ने सन् १८६८ ई० के मार्च महीने के 'बंगाल एशियाटिक सोसाइटी' की प्रोसीडिङ्ग में कवित्त

---

१. ग्रियर्सन साहब ने गणना करा के श्रावण सप्तमी शुक्ल १६८० संवत् को २४ जुलाई १६२३ ई० बृहस्पतिवार होना बताया है। (Notes on Tulsi Das, Indian Antiquary 1893 A. D. P. 10.)

किन्तु वेणीमाधव दास कृत 'मूल गोसाईं चरित' में जो हाल ही में प्राप्त हुआ है, इस दोहे का पिछला अर्धांश इस प्रकार लिखा हुआ है :—

'श्रावण श्यामा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥'

इस से इन की निधनतिथि श्रावण कृष्णा तीज शनिवार होता है। बाबू श्यामसुन्दर दास ने उक्त ग्रंथ में दी हुई घटना तिथियों की जाँच कराई है और उन्हों ने 'मनोरमा' वर्ष ३, खंड २ के पृ० ४७५ में लिखा है कि 'ज्योतिषिक' गणना करने पर सं० १६८० की श्रावण तीज को शनिवार नहीं, वरन सोमवार था।......दोहा में शुद्ध पाठ 'शशि' रहा होगा, लेखक के भ्रम से 'शशि' का 'शनि' हो गया होगा।"

फिर उन्हों ने उसी पत्रिका के पृ० ६५४ में प्रकाशित 'भ्रम संशोधन' शीर्षक टिप्पणी में लिखा है कि "श्रावण कृष्णा तीज को 'शनिवार' नहीं, 'शुक्रवार' था। दोहा में कदाचित् शुद्ध पाठ 'भृगु' रहा होगा, 'शनि' न होगा।"

रामायण के प्रणयनकाल के विषय में एक लेख मुद्रित कराया और उस के कई एक कवित्तों का सम्बन्ध प्लेग से दिखलाया।

जहांगीर पादशाह के शासनकाल में भारतवर्ष में महामारी के प्रकोप का वर्णन उन के स्वलिखित 'तुजुक जहांगीरी' में देखा जाता है। उन के जलूस के ग्यारहवां क्या, वरन् दसवें साल के मध्य, (अर्थात् १६१५-१६) में पंजाब में महामारी का प्रकोप हो कर दिल्ली तक पहुँच गया था। और जलूस के तेरहवें साल (१६१७ ई०) में आगरा में प्लेग का प्रकोप हुआ। परन्तु वह गिलटी वाली महामारी नहीं थी। उस पुस्तक में लिखा हुआ है कि "पहले दिन रोगी को ज्वर तथा सिर पीड़ा होती थी एवम् नाक से बहुत रुधिर गिरता था और दूसरे दिन उस का प्राणवायु निकल जाता था।"[2] हां! जलूस के तेरहवें वर्ष (=१६१८ई०) में गिलटीवाली महामारी का प्रकोप हुआ था। क्योंकि उस पुस्तक में लिखा है कि "काँख, रान वा गरदन में गिलटी होने से प्रति दिन न्यूनाधिक एक सौ मनुष्य मरते हैं। यह तीसरा वर्ष है कि जाड़े में यह रोग जोर पकड़ता है एवम् ग्रीष्म के आरम्भ होने से यह नेस्त नाबूद हो जाता है।" इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में पादशाह ने लिखा है कि "आसिफ़ खां की स्त्री से ज्ञात हुआ कि एक दिन आंगन में एक चूहा मतवाले की नाईं गिरता पड़ता इधर उधर नजर आया।...... एक दाई ने पकड़ कर उसे एक बिल्ली के आगे फेंक दिया। बिल्ली ने उछल कर चूहे को पकड़ा तो सही परन्तु उसने तुरत ही उसे परित्याग कर घृणा प्रगट की। फिर बीमार होकर वह बिल्ली दूसरे दिन मरने २ हो गई। तीन दिन तक उस की बुरी दशा रही, चौथे दिन चंगी हुई। फिर उस घर की एक दाई को बीमारी हुई। उसे गिलटी निकल आई। और उस घर के १७ प्राणी ८-६ दिन में प्लेग के शिकार बन गये। कोई किसी के पास नहीं जाता।"[3] इत्यादि।

ग्रियर्सन साहब लिखते हैं कि कवित्तरामायण के उत्तर काण्ड में १६३ से १६६ कवित्त पर्यन्त में गोस्वामी जी ने शिव जी से काशीवासियों की ओर से उस भयानक रोगरूपी आपत्ति

लेखक के प्रमाद वा भ्रम से 'शशि' का 'शनि' होना सम्भव है, पर 'भृगु' का 'शनि' कैसे हो जायगा, यह बात हमारी समझ में नहीं आती। सम्भवतः लेखक पर विजिया का गाढ़ा रंग जमा होगा।

बाबू साहब यह भी कहते हैं कि कृष्णा तीज ही को प्रागुक्त टोडर के वंशधर गोसाईं जी के नाम पर अभी तक सीधा दान करते हैं। जो हो, अब तक गोसाईं जी की निधन तिथि को लोग निश्चित समझे हुए थे। अब जन्म तिथि की नाईं यह भी सन्दिग्ध हो गई।

२. अलीगढ़निवासी सय्यद अहमद सम्पादित 'तुजुक जहांगीरी' पृ० २१६ देखिये :—

ब ईं तरीका कि रोज अव्वल दर्दसर वक्त बहम रसद खूं बिसियार अजबीनी मी आयद रोज दोयम जान ब हक तस्लीम मीकुनद।

३. उपर्युक्त पुस्तक का पृ० २५६ देखिये।

से रक्षा के निमित्त प्रार्थना की है, जिस रोग से लोग विषपान किये हुये के समान मर रहे थे। १७३वें कवित्त में उस पवित्र स्थान में भयानक महामारी के प्रकोप का वर्णन है, १७५वें कवित्त में महामारी से नगर की रक्षा के लिये हनुमान तथा रामचन्द्र की प्रार्थना है एवम् १७६वें कवित्त में इसी हेतु श्री राम से प्रार्थना की गई है।

पूर्वोक्त कवित्तों में साहब बहादुर को प्लेग का आभास दृष्टिगोचर हुआ हो। पर हमारी समझ में उन कवित्तों को प्लेग से कुछ सम्बन्ध नहीं हो सकता। यदि गुप्त सम्बन्ध हो भी, तो सर्वसाधारण को नहीं दीखता। हां! आपने जो कवित्त नम्बर १६७, १६८, १६९ और १७० में महामारी के प्रकोप का वर्णन होना एवम् श्री राम से उस के शमन की प्रार्थना लिखी है सो प्रत्यक्ष ही है और यह सिद्ध करता है कि उन कवित्तों की रचना के समय काशी में भी प्लेग का कोप था। परन्तु इन कवित्तों से यह ज्ञात नहीं होता कि बनारस में महामारी का कब कोप हुआ था, जब आगरा में इस का प्राबल्य था उसी समय या उसके पीछे?

'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है कि "कवित्त रामायण की रचना सं० १६६९-१६७१ (१६१२-१४ ई०) निश्चय किया गया है[1] और आगरा के प्लेग की घटना १६१८ ई० की है।.........इसलिये बहुत से विद्वान् लोग सन्देह करते हैं कि गोसाईं जी का आशय प्लेग से न था। परन्तु जो लक्षण गोसाईं जी ने अपने दूसरे कवित्तों में लिखा है उस से यह महामारी प्लेग ही जान पड़ती है। इस से यह सम्भव है कि काशी में आगरा से चार वर्ष पूर्व ही प्लेग का कोप हुआ हो।"

इस से १६१४ ई० से काशी में प्लेग का होना अनुमान किया जा सकता है। यदि यह अनुमान सत्य है तो उस प्लेग से गोसाईं जी का परलोक नहीं हुआ, क्यों कि आप ने १६८० (१६२३ ई०) में शरीर त्याग किया। इस बात की पुष्टि ग्रियर्सन साहब के इस कथन से भी होती है कि १७७ न० के कवित्त में लिखा है कि किस प्रकार लोगों को कुकर्म का दंड महामारी के द्वारा दिया गया और कैसे श्री रामचन्द्र ने कवि की प्रार्थना पर दया कर नगर की रक्षा की। कवित्त यह है:—

"आश्रम वरन कलि बिबस विकल भये निज-निज मरजाद मोटरी सी डार दी।
सङ्कर सरोष महामारी ही तें जानियत साहब सरोष दुनी दिन-दिन दार दी॥
नारी नर आरत पुकारत न सुनै कोऊ काहू देवतनि मिली मोटी मूठि मार दी।
तुलसी सभीत पाल सुमिरे कृपाल राम समय सुकरुना सराहि सनकार दी॥"

किन्तु साहब ने मई मास के 'बंगला एसियाटिक सोसाइटी' की प्रोसिडिंग में लिखा है कि "हम ने कवित्त रामायण के प्रणयन काल के सम्बन्ध में मार्च महीने की प्रोसिडिंग में जो नोट छपवाया था उस की एक प्रति हमने महामहोपाध्याय श्री सुधाकर जी के पास भेजी थी, जिन्हों ने लिखा है कि बहुत सम्भव है कि गोसाईं जी स्वयम् प्लेग ही से स्वर्ग-गामी हुये हों और उन्हों ने रोग ग्रस्त होने पर ही हनुमान बाहुक की रचना की।' पंडित जी ने

---

१. उस समूचे ग्रंथ की रचना १६११-१४ ई० में कदापि नहीं मानी जा सकती। कवित्त रामायण की समालोचना देखिये।

यह भी लिखा था कि उन्हें अपने पिता जी तथा प्रसिद्ध रामायणी बन्दन पाठक जी से ज्ञात हुआ था कि गोसाईं जी ने 'बाहुक' की रचना चार दिनों में की थी। इस से ग्रियर्सन साहब अनुमान करते हैं कि गोस्वामी जी ने खटपड़ू होने पर खाट पर पड़े २ 'हनुमान बाहुक' के कवित्तों की रचना की है।

पंडित जी के पत्र से सजग होकर साहब बहादुर ने लिखा है कि "गोसाईं जी १६२३ ई० में परलोक सिधारे, प्लेग १६१६ ई० से भारतवर्ष में आरम्भ होकर ८ वर्षों तक फैला रहा, उसका गोस्वामी जी पर चोट करना असम्भव नहीं है।" आप ने यह भी लिखा है कि 'बाहुक' के २५वें कवित्त में कवि कहते हैं कि "बाहुतरु मूल (कांख) में पीड़ा है, ३७वें में कहते हैं कि उसी हाथ में पीड़ा है जिसे हनुमान जी ने पकड़ा था, अर्थात् दाहिने हाथ में, ३५वें के अन्त के चरण में पीड़ा घटने से हनुमान का धन्यवाद देते हैं, ३६वें से अन्त तक अर्थात् ४४ वें कवित्त तक की भाषा गड़बड़ हो गई है; पीड़ा बढ़ती जाती है; हनुमान ही से नहीं, अन्य देवताओं से भी निवेदन करते हैं और ४१वें में कवि ने कहा है कि सर्वत्र शरीर में पीड़ा है।"

ये सब लिखकर आप कहते हैं कि "इस की दूसरी व्याख्या वही दन्त कथा हो सकती है कि इन्हें घिरकी का रोग हुआ था। परन्तु गोसाईं जी के दिल दिमाग का आदमी ऐसी बीमारी के लिये ऐसी ललित भाषा में इस जोर शोर से प्रार्थना करे यह युक्ति संगत नहीं दीखता; और यदि घिरकी से वे नीरोगता लाभ करते तो जिस देवता की उन्हों ने ऐसी वन्दना की थी उसे धन्यवाद अवश्य देते। धन्यवाद न देने से तो और भी प्रतीत होता है कि वे नीरोग नहीं हुये और प्लेग से स्वर्ग सिधारे और उस समय बनारस में प्लेग का प्रकोप था।"

बांह में पीड़ा तो अवश्य थी; परन्तु वह प्लेगजनित पीड़ा थी वा कोई अन्यरोग जनित, यह बात विचारणीया है। ग्रियर्सन साहब कहते हैं कि "३६वें से ४४वें कवित्त तक की भाषा गड़बड़ (Confused) हो गई है।" परन्तु हमारी समझ में इनकी वे सब कविताएं भी इन के अन्य कवित्तों के समान ही सुन्दर हैं। इस का निर्णय पाठकगण उन कवित्तों को पढ़कर स्वयम् कर सकते हैं। हां! उन में प्रार्थना केवल हनुमान ही का नहीं है, वरन् रामचन्द्र, शिवजी की भी प्रार्थना है। और साहब महोदय ने स्वयम् भी कवित्तों की भाषा को ललित होना लिखा है।

मनुष्य चाहे साध्य वा असाध्य रोग से व्यथित हो, पीड़ा शमन के हेतु ज़ोर-शोर से प्रार्थना करेगा। धन्यवाद देने के विषय में हम यही कहेंगे कि साहब ने कवित्त रामायण के सम्बन्ध में स्वयम् लिखा है कि "संग्रहकर्त्ता ने, चाहे स्वयम् गोसाईं जी हों चाहे कोई अन्य व्यक्ति हो, प्रकरण पर बहुत ध्यान नहीं दिया है। खेमकरी वाला कवित्त प्लेग के प्रसंग में रख दिया गया है।" 'क्या यह बात बाहुक' के कवित्तों के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती? क्या यह सम्भव नहीं कि 'बाहुक' के ३५वें कवित्त को, जो पीड़ा घटने पर हनुमान जी के धन्यवाद में रचा जाना कहा जाता है, संग्रहकर्त्ता ने बेजगह रख दिया हो? क्या उस को

अन्त में रख देने से पीड़ा छुटने पर धन्यवाद देना नहीं कहा जायगा ?[१] वह कविता यह है :—

"घेरि लियो रोगनी कुरोगिनी कुजोगिनी ज्यों बासर सजल घन घटा धुकि धाई है।
बरषत वारि पीर जारिये जवासे ज्यों सरोष बिनु दोष धूम मूल मलिनाई है।।
करुनानिधान हनुमान महाबलवान हेरि हंसि हांकि फूंकि फौजें ते उड़ाई है।
पाये हुते तुलसी कुरोग रांड राकसिनीं केसरी किसोर राषे बीर बरियाई है।।"

इस कविता से वेदना की क्षणिक निवृत्ति क्या, सर्वथा निवृत्ति पाई जाती है। कुछ हो हमें एक बात के विचारने से उस के प्लेग रोग होने में बड़ा सन्देह होता है। प्लेग की बीमारी में जहां तक देखा जाता है और जहां तक हमें डॉक्टरों से ज्ञात हुआ है रोग के आक्रमण के साथ या थोड़े ही काल पीछे हृदय तथा मस्तिष्क दुर्बल होने लगता है। बुरे प्रकार का प्लेग होने से रोगी शीघ्र ही संज्ञा शून्य भी हो जाता है। साधारण बुखार का वेग होने से मनुष्य का कोई कार्य्य करने का मन नहीं चाहता; और यहां गोसाईं जी प्लेग के चंगुल में फंसे खाट पर पड़े २ चार दिन तक ऐसी ललित भावपूर्ण तथा उत्कृष्ट कविता करते रहे यहां तक कि एक ग्रंथ ही बन जाय और इन का होश और हवाश ज्यों का त्यों बना रहे, यह बड़े आश्चर्य की बात है। मरने के समय भी एक खेमकरी को देखकर नीचे लिखी हुई कविता कहैं—

"कुंम कुंम रंग सुअंग जितो मुख चन्द सों चन्दन होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्ध चवै अवलोकत सोच विषाद हरी है।।
गौरि कि गंग विहंगनि बेष कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेषु सप्रेम पयान समय सब सोच विमोचन क्षेम करी है।।"

कहिये पाठक वृन्द ! प्लेग के चंगुल में पड़े हुये रोगी के मुख से अन्त काल में ऐसी कविता स्फुरित हो सकती है ?

यदि गोसाईं जी चार ही दिन रोगग्रस्त होकर प्लेग ही से परलोकगामी हुये तो यह अनुमान असंगत नहीं होगा कि उन पर बुरे प्रकार के प्लेग ने आक्रमण किया था, जिस में रोगी होश हवास सर्वथा खो बैठता है। हाँ, पिरकी का होना बहुत ही संभव है। 'बांह तरु मूल' से काँख की अपेक्षा पंखुरा से तात्पर्य होने की अधिकतर संभावना है और पिरकी भी प्रायः पीठ पर होती है।

---

१. 'खड्गविलास' द्वारा मुद्रित महात्मा हरिहर प्रसाद जी कृत कवित्त रामायण की टीका के पृ० २६० में स्पष्ट लिखा है कि संग्रह में शीघ्रता के कारण ३५वां कवित्त जो बाहुपीड़ा छूटने पर बना था अन्त में न रखा गया वरन् दूसरा ही कवित्त अंत में रखा गया। उस टीका का पृ० २८० भी देखिये।

गोसाईं जी को यह रोग होने का कारण भी बताया जाता है। पिरकी विशेषतः प्रमेह वालों को होती है। और प्रमेह उसी वर्ग के लोगों को अधिकतर होता है जो मस्तिष्क को अधिक प्रचालन कर लिखने-पढ़ने का काम किया करते हैं। गोसाईं जी सदैव मस्तिष्क से विशेष काम लेते रहे, इस में यह सन्देह नहीं। यदि यह बात नहीं होती तो ऐसे २ अपूर्व ग्रंथ ही कैसे रचे जाते? परन्तु प्रमेहग्रस्त मनुष्य का मस्तिष्क शक्तिहीन नहीं हो जाता। यह रोग होने पर भी लोग लिखने-पढ़ने का काम भलिभांति से करते ही जाते हैं। और पिरकी में पीड़ा भी तो होती है, परन्तु होश हवास ऐसा बना रहता है कि मनुष्य मस्तिष्क से काम ले सके। हम दृढ़तापूर्वक यह नहीं कह सकते कि गोस्वामी जी को प्रमेह रोग था, परन्तु बाहु में पीड़ा वा पिरकी ही होने पर 'बाहुक' की रचना हुई और इन की मृत्यु की प्राचीन आख्यायिका ही अर्थात् पिरकी रोग से स्वर्गवास होना ही अधिकतर प्रामाणिक दीखता है, चाहे वह घटना इसी बाहुक की रचना के समय हुई हो चाहे पीछे। स्वर्गवासी पं० वर श्यामाचरण ज्योतिषी (नई बस्ती काशी) ने म० कु० रामदीन सिंह जी से कहा था कि 'गोसाईं जी' की बाहुक की पीड़ा से हाथ सूख गया था, पर 'हनुमान बाहुक' के प्रताप से फिर ज्यों का त्यों हो गया। प्रह्लाद घाट पर जो गोसाईं जी का चित्र है उसमें एक बांह पतला है, वह इसी रोग के प्रभाव से हुआ है और कदाचित बांहु ज्यों की त्यों होने के पूर्व वह चित्र बना था।" इससे जाना जाता है कि 'बाहुक' के समय की बाहुपीड़ा से इन का स्वर्गवास नहीं हुआ।

इतना लिखने के अनन्तर हमें ग्रियर्सन साहब का तुलसीदास जी के सम्बन्ध का लेख, जो जुलाई १९०३ ई० के 'रायल एशियाटिक सोसायटी' के जरनल में छपा है, देखने में आया। उस से बोध होता है कि उन को भी पीछे सोचने विचारने से गोसाईं जी के प्लेग से परलोक गमन की बात प्रामाणिक प्रतीत नहीं हुई है और आपने स्पष्ट लिखा है कि "१६२३ ई० में उस नगर 'बनारस' में इन पर 'गोसाईं जी पर' प्लेग का आक्रमण हुआ था और इसी साल इनकी मृत्यु हुई, यद्यपि यह स्पष्ट है कि उस बीमारी से नहीं मरे।"[१] कौन जाने फिर सोचने विचारने से कुछ दिन पीछे इन के प्लेग ग्रस्त होने की बात भी साहब को निर्मूल भान हो।

चाहे किसी रोग से क्यों न हो; काशी के अस्सी घाट पर सं० १६८० (१६२३ ई०) में ९१ वर्ष[२] की अवस्था में, पूर्णायु भोग कर, चिरकाल हरियश कीर्त्तन कर एवम् सियाराम गुणगन सलिल पूर्ण कविता की कई एक मनोहर सुखद तथा कल्याणप्रद पवित्र सर सरितायें निर्माण कर यह दोहा पढ़ते हुये—

---

१. He was attacked by Plague in that city in 1623, and died the same year, though apparently not from the desease. Tulsi das, poet and religious reformer.—Journal of the Royal Asiatic Society, July 1903, P. 450.

२. जो लोग सं० १५८३ में जन्म मानते हैं उन के अनुसार ९७ वर्ष और जो १५५४ में मानते हैं उनके हिसाब से १२६ वर्ष।

"रामनाम यश बरनि कै, भयहुँ चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अबही तुलसी सोन॥"

आप ने सर्वदा के लिये मौन साधन किया। उन पावन सरिताओं में मज्जन कर आज कितने जन कलि कलुष नसाय कृतार्थ हो रहे हैं, आज कितने उस के पान से परमानन्द लाभ कर रहे हैं एवं कितने उस के तट के निकट बैठने ही से असीम सुख पा रहे हैं।

गोसाईं जी अब इस संसार में विद्यमान नहीं हैं परन्तु आप की सुकीर्ति आज भी देदीप्यमान है एवम् इसी प्रकार प्रलय पर्यन्त इस संसार में अपनी प्रभा प्रसारित करती रहेगी।

जिस काल ने गोसाईं जी जैसे अमल रत्न को भारतभूमि से उठा लिया, जिस काल कराल के सामने प्रबल प्रतापी जगद्विजयी महिपालों को मस्तक अवनत करना पड़ता है, जिस के निकट अतुल्य बलशाली वीरवरों को भी किसी प्रकार बल-पौरुष प्रकाश करने का साहस नहीं होता, जिस के सम्मुख जगद्विख्यात धर्मप्रचारकों तथा वक्ताओं का मुख बन्द हो जाता है, जिस के आगे चतुर चूड़ामणियों की भी चौकड़ी भूल जाती है, जिस के समस्त सर्वपूज्य कवि कोविदों का भी कलाकौशल कुछ काम नहीं आता, जिस के समीपस्थ होने ही से ऋषि मुनियों को भी मौन ही साधन करना होता है और जो काल रोग रूपी भांति २ के हँसुओं के द्वारा संसार के चराचर जीवों को घास के समान सर्वदा काटता रहता है, उसी सर्वोपरि बलिष्ठ कालदेव को हम बारम्बार प्रणाम करते हैं और अपने पाठकों से सविनय निवेदन करते हैं कि आपलोग मृत्यु को सदा स्मरण करते हुये, संसार में कमल पत्र की नाईं रहते, परोपकार, देशोपकार, सदाचार, शिष्ट व्यवहार में चित्त लगाएं, भगवद्भजन का आनन्द उठाया करें और जिस महापुरुष की इतनी लम्बी-चौड़ी जीवनी पढ़ने में आपने उत्साह दिखलाया है तथा आगे दिखलावेंगे उस की सब बातों पर नहीं, तो इस बात पर तो अवश्य ध्यान रखें—

"तन से काम करौ विधि नाना। मन राखो जहँ कृपानिधाना॥"

क्यों कि इसी से उस कृपाधाम की कृपा के भागी हो उभय लोक का सच्चा सुख लाभ करने की सम्भावना है, अन्यथा नहीं।

द्वितीय खण्ड

प्रथम परिच्छेद

कविताशक्ति तथा काव्यभाषा

गोस्वामी तुलसी दासजी हिन्दी साहित्याकाश के सर्वोत्कृष्ट नक्षत्र हुये हैं, यह बात सब लोग स्वीकार करते हैं। इस नक्षत्र को अस्त हुये आज, ३०६ वर्ष हो गये, परन्तु इस की स्वच्छ सुखद कौमुदी आज भी इस जगत् में चतुर्दिक् फैल रही है एवम् नित्य २ उत्तरोत्तर आनन्ददायिनी हो रही है। इस अलौकिक चन्द्र के अस्त होने पर भी केवल इस की सुकीर्ति चन्द्रिका की ओर दृष्टिपात करने से हरिजनों तथा काव्यानुरागियों का गम्भीर हृदय तरङ्गित होने लगता है एवम् रसिक चकोर उसी की ओर टकटकी बांध देते हैं और कर्म्मजनित त्रयतापों से सन्तप्त कितने ही व्यक्ति इसका आश्रय ग्रहण कर सुख पाते तथा असाध्य मानसिक रोगों से मुक्ति लाभ करते हैं। इस अलौकिक कलाधर के प्रताप से श्रीरामयशगर्भित महा मनो हारिणी कविता कुमुदिनियों ने अपने विकास से ग्रंथ सरोवरों को ऐसा आच्छादित कर रखा है कि उधर एक बार देखने ही से मन मुग्ध हो जाता है। उन कुमुदों की मधुर सहज सरस सुगन्ध भारतवर्ष में ही नहीं फैल रही है वरन् सुख्याति पवन के पंखों पर चढ़ कर अन्य देशों में भी पहुँच वहाँ के निवासियों को मोहित तथा आह्लादित करती है।

तीव्र समालोचना का प्रचण्ड मार्तण्ड इन कुमोदनियों को शुष्क तथा नीरस करने की सामर्थ नहीं रखता; कुतर्कों की कुज्झटिका भी इन्हें छिन्न-भिन्न नहीं कर सकती; द्वेष का तुषार भी इन्हें नष्ट नहीं कर सकता। जब तक हिन्दी साहित्य का गौरव बना रहेगा, जब तक हिन्दुओं की हिन्दीभाषा में ममता रहेगी, इन की सहज छटा की नित्य प्रति वृद्धि होती रहेगी।

गोसाईंजी के हिन्दी साहित्यव्योम का अलौकिक शशांक कहलाने तथा साहित्य, संसार में ऐसा उच्च स्थान प्राप्त करने का कारण यह है कि इन में गम्भीर अनुभव तथा अनुशीलन का अच्छा संयोग हुआ था। ये पदार्थों को वास्तविक रूपों में देखते एवम् कल्पनाशक्ति के सहारे समयानुसार उन्हें रूपान्तर कर सकते थे। इन के हृदय में मनोवृत्तियाँ भी पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित होती थीं; इन्हें देशकाल का पूरा ज्ञान था एवम् साथ ही साथ नम्रता तथा सहृदयता भी पराकाष्ठा की थीं।

"नानक नन्हा हो रहो, जैसी नन्ही दूब।
सबी घास जल जायंगे, दूब खूब के खूब॥"

देखिये ऐसा महान गुणवान कवि होने पर भी एवम् अपनी कविता कामिनी को सर्वालङ्करों से अलंकृत करने की योग्यता रखने पर भी ये अपने को इस कार्य में सर्वथा असमर्थ ही समझते रहे और इन्होंने इस बात को कई स्थानों में निःसंकोच भाव से स्पष्ट कहा भी है। यथा—

"कविन होउं नहि चतुर प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू।
कवित-विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहों लिखि कागद कोरे॥"

टीकाकार लोग चाहे इस का जैसा अर्थ करें, रामायणी लोग अपना पक्ष समर्थन के के लिये चाहे इसपर डंटा लेकर तैयार हो जायं, परन्तु गोस्वामीजी को अपने विषय में अपना जैसा विश्वास था उसे उन्हों ने निष्कपट भाव से विना संकोच कह दिया है।

इन्हें अपने विषय में स्वयम् जैसा विश्वास और विचार हो, परन्तु कविता मर्मज्ञ इन्हें एक महान प्रतिभावान सत्कवि देखते हैं, क्योंकि जिस की रचना में भाव की गम्भीरता, भाषा की सरलता, पदलालित्य, माधुर्य्य इत्यादि गुण हों एवम् जिसकी कविता के पढ़ने तथा श्रवणमात्र से मनोवृत्तियां विकशित होकर अलौकिक आनन्द अनुभव करने लगें और जिसकी कविता का रस अन्तष्करण में सहज ही प्रवेश कर जाय वही प्रकृत कवि कहलाने का अधिकारी है। अंग्रेजी कवि मिल्टन का कथन है कि "कविता सरस, सरस, मर्मस्पर्शिनी, मत्तकारिणी एवम् भावपूर्ण होनी चाहिये, क्योंकि थोड़े शब्दों में अधिक भाव दरसाना ही प्रकृत कवि का प्रधान लक्षण है।" निस्सन्देह गोसाईंजी की कविता पूर्वोक्त सब गुणों से भूषित है; और इन्हों ने कवि वर्ड्सवर्थ के समान प्रकृतिपुस्तक के पृष्ठों से पाठ ग्रहण किया है। आप सुप्रसिद्ध अंग्रेजी कवि शेक्सपियर के समकालीन थे और उन्हीं के सदृश बड़े तत्वज्ञ तथा प्रकृति एवम् मानवी स्वभाव के अच्छे ज्ञाता थे, ऐसा इन के 'रामचरित मानस' के अंग्रेजी अनुवादक एफ० एस० ग्राउस साहब ने निर्णय किया है; और इसी से इन की रचनाएँ ऐसी उत्कृष्ट हुई हैं। क्योंकि वर्णनीय विषय का अनुभव नहीं होने से उस का वर्णन कदापि सरल तथा मर्मवेधी नहीं हो सकता। गोस्वामी जी को प्रकृति तथा मानवी स्वभाव समझने-बूझने का सुअवसर भी पूरा मिला था। बालकाल ही में इन्हें 'यंगमतीर्थराज' सन्तों के समाज का सङ्ग हुआ था। एवम् इन्हें गृहस्थी का भी सुखानन्द प्राप्त हुआ था। फिर गृहत्यागी होने पर भिन्न २ प्रकार और प्रयोजन वाले जनसमुदाय से भी समागम हुआ ही करता था। इस के अतिरिक्त ये रघुनाथ जी के परम कृपापात्र तथा सरस्वती के प्रिय पुत्रों में से थे। इसी से प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक सकल पदार्थों, विविध रूपों और अवस्थाओं में ध्यान करते ही क्षणमात्र में इन के नेत्रों के सामने उपस्थित हो जाया करते थे और ये कविता 'कामेरा' में चट उन का चित्र खींच लेते थे। या यों कहिये कि इन की विचक्षण बुद्धि कभी नदियों तथा सरोवरों के तटों पर विचरण कर, कभी पर्वतों पर चढ़कर, कभी वनों में प्रवेश कर, कभी आकाश में उड़कर, कभी समुद्र में धस कर, और कभी पुरातन संस्कृत-साहित्य-वाटिकाओं में भ्रमण कर सब स्थानों से सुन्दर उपयुक्त सामग्रियां एकत्रित करती गयी है और इन्हों ने उन के सहारे अपनी कविता-वनिता को सुन्दर संवार-सिंगार कर सुसज्जित किया है। विलक्षण ललित उपमाओं की माला

गूंथ कर विविध अनुप्रासों की तीलड़ी जोड़-जोड़ कर उस के गले की शोभा बढ़ाई है; ध्वनि और व्यङ्ग की करधनी तथा कड़े-छड़े भी डाल दिये हैं। शब्दालङ्कार, भावालङ्कार, अर्थालंकार किसी अलंकार की कमी नहीं रखी है। चरणों में विचित्र ललित गति भी दिखलाई है; हास की हासकिरण भी छिटकाई है; रौद्र तथा वीर का भ्रूवंक भी लखाया है; अद्भुत रूपकों का अद्भुत अम्बर भी पहना कर उसकी विश्वमोहिनी मूर्ति खड़ी की है।

बहुत-से लोगों का यह विचार है कि केवल रमणीय अर्थ प्रकट करनेवाला शब्द काव्य कहलाता है और सत्काव्य के लिये पदलालित्य, यमक, अनुप्रास, श्लेष, वर्णमधुरता अर्थात् शब्दालंकार इत्यादि की विशेष आवश्यकता नहीं, क्योंकि वाह्य चमक-दमक पर यथार्थ रसिक लुब्ध नहीं होता; और पद लालित्य, मृदुलता, मधुरता, सरलता, व्याकरण की शुद्धता, छन्दों की निर्दोष व्यवस्था इत्यादि सब प्रकार से गौण ही हैं। ये सब काव्य की शोभा बढ़ाती हैं पर ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि काव्य की शोभा इन्हीं पर निर्भर है।

काव्य की शोभा इन्हीं पर निर्भर हो या न हो, परन्तु मनुष्य का चित्त पहले बाहरी चमक दमक ही को देख कर आकर्षित होता है और पीछे उस पदार्थ का वास्तविक गुण स्वभाव जानने का उसे अवसर मिलता है। और रसिक अनेक प्रकार के होते हैं। किसी को वाह्य चमक-दमक ही उन्मत्त बनाये रहता है, कोई भाव और स्वभाव ही पर मुग्ध हो जाता है, कोई मधुर मृदुल स्वर ही पर सर्वस्व निछावर करने को उद्यत होता है। अतएव हमारी समझ में जो सर्वगुण सम्पन्न एवम् सर्व-जन-आनन्द-दायिनी कविता हो वही स्वाभाविक तथा सत्काव्य है और प्रतिभावान कवि ही ऐसी कविता करने को समर्थ होता है। उस के बाहरी सजावट को ओर विशेष ध्यान नहीं रखने पर भी उस की कविता स्वयम् सब भूषणों से सुसज्जित हो जाती है एवम् पूर्वोक्त गुण उसमें सहज ही आ जाते हैं। इसी से यद्यपि वह नित्य की घटनाओं का ही वर्णन करता है तो भी, उसकी कविता सर्वसुख दायिनी तथा हृदय ग्राहिणी हो जाती है।

यदि गोसाईं जी में केवल सहृदयता ही होती, यदि इनकी कविता केवल रमणीय अर्थ प्रगट करनेवाली ही होती और माघ[1] के समान इनकी कविता उपमा, अर्थ गौरव तथा पद लालित्य आदि से सर्वाङ्ग भूषित नहीं होती तो वह सर्व-जन-प्रिय कदापि नहीं हो सकती, केवल यथार्थ रसज्ञ ही उस से आनन्द लाभ करते। परन्तु यहां तो—

"जहां देखता हूं जिधर देखता हूं। ये सनअत का जिलवा वहां देखता हूँ॥"

गोसाईं जी ने यह निश्चय लिखा है कि "सरस कवित कीरति विमल, सोई आदरहिं सुजान" परन्तु भूषणविहीन कविता आदरणीय होने का इन्होंने कहीं संकेत भी नहीं किया है। वरन इसकी आवश्यकता की झलक आप ने इन वाक्यों में दिखलाई है:—"आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक विधाना॥ भाव-भेद रसभेद अपारा। कवित दोषगुन

---

१. उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

विविध प्रकारा ।।'' और नम्र भाव से अपने में इन बातों का अभाव दिखलाते हुये कहा है कि "मुझे कवित्त का विवेक एक भी नहीं है, परन्तु मेरी कविता में रघुवर के उदारनाम का वर्णन है इसी का मुझे भरोसा है कि लोग इसे अपनावेंगे क्योंकि सर्वगुण भूषित कविता भी रामयश विहीन होने से बुधजनों में आदर नहीं पाती ।" तथापि कविता के गुणों पर दृष्टि रखना भी इन्हीं के वाक्यों से प्रज्वलित होता है; क्योंकि "रामचरित मानस" का रूपक बाँधने में आप कहते हैं—"अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोई पराग मकरंद सुबासा ।। धुनि अवरेव कवित्त गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भांती ।।" हां! ये अन्य कवियों के समान अपनी निपुणता प्रदर्शन करना नहीं चाहते थे। ये स्वप्न में भी नहीं समझते थे कि कथा प्रसंग सूत है जिस में इन की कविता कौशल रूपी मोती पिरोई जाकर अपनी छवि बरसावे। इन्होंने अपनी कविता कौशल को रंग विरंगी रेशम एवम् रामयश को मोती मान उस के मध्य में उस रेशम को छिपाये रखने का विचार किया है; परन्तु उस अद्भुत मोती की अतुल्य प्रभा का योग पाकर वह रेशम आप-ही-आप और भी अधिक अपूर्व छटा सम्पन्न हो गया है।

और भूषण विहीन कविता के विषय में गोसाईं जी के समकालीन एवम् उच्च कोटि के एक कवि सेनापति[1] जी कहते हैं "दोष सों मलीन गुनहीन कविताई है तौ किने अरबीन परबीन कोउ सुनि है।..........दूषन को करि कै कवित्त बिनु भूषन को कर जो प्रसिद्ध ऐसो कौन सुरमुनि है ।।" पुनः..............."राखति दोषै पोषै पिंगल के लच्छन को बुद्धि कवि की जो उपकंठहि बसति है। जो पै पद मन कौ हरष उपजावत हैं तजै को कुनर जौन छन्द सरसति है। अच्छर हैं बिसद करत ऊषै आपस में जाते जगती की जड़ताऊ बिनसति है। मानो छबि ताकी उदवति सबिता की सेनापति कविता की कविताई बिलसति हैं ।।"

भूषण कविता का हृदय है।[2] हृदयशून्य शरीर भी क्या किसी काम का हो सकता है? जो हो अब इसे छोड़िये। रस की ओर ध्यान दीजिये।

---

१. इन का जन्म लगभग १५९० में हुआ था। ये दीक्षित कान्यकुब्ज ब्राह्मण गंगा तट के रहनेवाले थे। ये सूरदास तथा तुलसीदास ही के सरीखे ईश्वर भक्त थे; परन्तु धार्मिक विचार में कुछ स्वतन्त्र पाये जाते हैं। ये उच्च श्रेणी के कवि थे, कविता अच्छी करते थे। इन की रचना में अनुप्रास, यमक, श्लेष, रूपक का आधिक्य देखा जाता है। इन की उपमाएँ तथा प्राकृतिक वर्णन बहुत मनोहर हुए हैं। इन के भाव सब भी इन के अपने और उत्तम हैं। इन्होंने काव्य-कल्पद्रुम तथा कबित्त रत्नाकर की रचना की है जिसका एक तरंग षटऋतु भी है। मिश्रबन्धु लिखित इन का वृत्तान्त सरस्वती भाग ११ पृष्ठ १२२-२७ में पाठ कीजिये।

२. "छन्द चरन भूषन हृदय, कर मुख भावऽनुभाव।
चख थायी, श्रुति संचरी, काव्य सुअङ्ग सुभाव ।।"

—भानुकविकृत 'काव्य प्रभाकर'।

गोसाईं जी की रचनाओं में शान्त, करुण आदि की प्रधानता होते हुये भी अन्य रसों का अभाव नहीं है और जहां जिस रस की कविता का समावेश हुआ है वहां पर वह पाठकों के हृदय पर अपना पूर्ण प्रभाव जमाने की प्रबल शक्ति रखती है। कवि का हृदय निर्मल और स्वभावसरल होने के कारण जिस प्रसंग की कविता देखिये उस से वही रस टपक रहा है। क्या इन की करुण रस की कविता पाठ से नेत्रों से सचमुच अश्रुधारा प्रवाहित नहीं होने लगती? क्या वीरात्मक कविता के पढ़ने से भुजाएँ नहीं फड़कने लगतीं और मन में वीरता का संचार नहीं होता? क्या वीभत्स से चित्त में घृणा नहीं उत्पन्न होती? क्या हास हमें हँसाकर लोट पोट नहीं कर देता? क्या शान्त से मन शान्ति लाभ नहीं करता और चित्त की एकाग्रता तथा संसार से विरक्तता का उद्भव नहीं होता? और क्या भिन्न २ ऋतुओं की काव्याङ्कित छवि अवलोकन से मन में आनन्द की लहरें नहीं उठने लगतीं? ये सब बातें प्रत्यक्ष ही होने लगती हैं क्योंकि शृंगार, वीर, करुण इत्यादि जो भिन्न २ मनोवृत्तियां हैं वे इन्हें अत्यन्त सूक्ष्म और स्पष्ट रूप से अनुभूत थीं और ये उन के चित्रांकन में बड़े ही प्रवीण चित्रकार थे। कहते हैं कि गिरगिट जिस रंग के वृक्ष पर चढ़ता है उस का रंग भी उसी ढंग का हो जाता है। इसी प्रकार गोसाईं जी की लेखनी जिस रस की ओर झुकती थी उसी रस के रंग में रंग जाती थी और काव्यचित्र में उसी रस का सुन्दर रंग चढ़ाने लग जाती थी।

गोस्वामी जी की रचनाओं में शृंगार रस का भी अभाव नहीं है। शोभानिधान सौन्दर्य्यखान श्री भगवान रामचन्द्र की माधुरी मूर्ति के अनुरागी हो कर ये सौन्दर्य तथा शृंगार का अनादर कैसे करते? इन का अनादर करने से इन की कविता कामिनी एक मुख्य अङ्गविहीना हो कर लालित्यशून्य हो जाती। इसी से इन्हों ने शृंगार की भी छटा छिटकाने में त्रुटि नहीं की है। परन्तु उसे स्वच्छ पवित्र रूप में पाठकों के नेत्रपथ में खड़ा किया है जिस की ओर दृष्टिपात से मन में पवित्रता का संचार होता है, कलुषित भाव सर्वथा नष्ट हो जाता है। वह शृंगार भी शान्तिरस का काम करता है। यह इन की कविता-चित्रकारी की निपुणता का फल है एवम् प्रकृत कवि होने का एक प्रमाण है।

इसी बात को ध्यान में रखकर इन्हों ने रामायण में कहा है:—

"अति बल जे विषयी बक कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा॥
संबू भेक सिवार समाना। इहां न विषय कथा रस नाना॥
तेहि कारण आवत हिय हारे। कामी काक वलाक विचारे॥"

—कुछ शृंगाररस के अनादर में नहीं क्योंकि विषय और शृंगार में प्रभेद है। यह आवश्यक नहीं कि जो सौन्दर्य्योपासक हो वह विषयी तथा लम्पट हो, या जो विषयी हो वह यथार्थ सौन्दर्य-प्रेमी तथा शृंगार-प्रेमी हो। यह अति सूक्ष्म विचार है। विना इस पर ध्यान रखे गोसाईं जी के शृंगार को समझना सहज नहीं है।

अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ के समान गोसाईं जी प्राकृतिक सौन्दर्य्योपासक थे एवम् स्वच्छता तथा सत्यता को उस का प्रधान अङ्ग मानते थे। ये अपने सौन्दर्य्य देव को विषय के

गदले जल से स्नान नहीं कराते थे। पवित्रता के स्वच्छ गंगा जल से स्नान कराकर उसे रचना मन्दिर में स्थापित करते थे।

प्राकृतिक छवि चित्रण में इन की लेखनी प्रभाव शालिनी तो है ही परन्तु घटना वर्णन भी इन्हों ने इस ढंग से किया है मानों वे घटनायें अभी हम लोगों के नेत्रों के सामने हो रही हों। यदि किसी से वार्तालाप हुआ है, कहीं किसी विषय में परामर्श के निमित्त कोई सभा हुई है, या जो युद्ध हुआ है उस के विवरण पाठ से यह नहीं ज्ञात होता कि वे बातें हम लोग किसी अन्य व्यक्ति के मुख से सुन रहे हैं वरन् कवि की लेखन-शैली के प्रभाव से ऐसा प्रतीत होने लगता है कि पाठक उस स्थान पर पहुँच कर उन बातों को स्वयम् सुन रहे हैं और उन घटनाओं को देख रहे हैं। क्या राजाओं के तमक तमक कर धनुष तोड़ने के लिये उठने, दोनों भाइयों का सीता के संग वन में चलने, एवम् ग्रामीण स्त्रियों के तत्कालीन कथोपकथन का प्रकरण पाठ से ऐसा नहीं ज्ञात होता कि वे बातें हमलोगों की आंखों के आगे हो रही हैं? क्या लङ्काकाण्ड पढ़ने से शस्त्रों की झंकार, धनुषों की टंकार, धरमार की ललकार, वीरों का परस्पर प्रहार, उभय दिशि 'जय-जय' का उच्चार, रथों की घरघराहट, शरों की सनसनाहट, गदाओं की तड़तड़ाहट, मुंडों की भड़भड़ाहट, धड़ों की धड़धड़ाहट हमलोगों के कानों में नहीं प्रवेश करने लगतीं?

उत्कृष्ट तथा निकृष्ट पात्रों का इन्होंने ऐसा सच्चा चित्र खींचा है कि कदाचित् कोई विरला ही कवि इस बात में इनकी समता कर सकता है। इनके पात्रगण कहते, करते, सोचते, विचारते, मानो हमलोगों के नेत्रों के सामने उपस्थित किये जाते हैं। रामायण पाठ से वस्तुतः ऐसा ही प्रतीत होता है कि नाटक के पात्रगण नेपथ्य से निकल-निकलकर रङ्गभूमि में आते और बातचीत करते हैं। पात्रों की परस्पर बातचीत बहुत उत्तम, उचित तथा सहज रीति से कराई गई है। कुपात्रों का भी चित्र इन्हों ने एक दम काला ही नहीं खींचा है। उन के चित्राङ्कन में भी ये यथायोग्य सु-रङ्ग का छींटा देते गये हैं।

ग्रियर्सन साहब कहते हैं कि "इन के काव्यपात्र पूर्ण वीररस से भरे हैं.......... इन के पात्र वर्ग मेरी आँखों के सामने ऐसे नाच रहे हैं जैसे प्रसिद्ध अंगरेजी महाकाव्य के पात्रगण।" केवल इन्हीं कई शब्दों के द्वारा उन्हों ने हमारे चरित्रनायक को सुविख्यात विलायती कवि शेक्सपियर, मिल्टन इत्यादि के साथ कुरसी प्रदान की है। सचमुच गोसाईं जी शेक्सपियर से कम नहीं हैं, वरन् उन से ये कई बातों में बढ़े हुये हैं। विचार करने से पाठक वृन्द स्वयम् यह बात जान सकते हैं और हम भी यह बात कहीं जनाने की चेष्टा करेंगे।

सूरदास प्रभृति कवियों के आदर देने से गोस्वामी जी के समय में व्रजभाषा का बड़ा ही प्राबल्य था। कविता उसी भाषा में की जाती थी। व्रजभाषा में गद्य का भी लिखना आरम्भ हो गया था। परन्तु गोसाईं जी ने अपनी रचना में किसी विशेष भाषा का नियम नहीं रखा है। भारतवर्षीय विविध भाषाओं का सहारा लेकर जब और जहां जिस भाषा के शब्दों को उपयुक्त समझा है, उन्हीं को काम में लाया है। हां, ग्रंथों को रुचिकर तथा उत्तम बनाने एवम् भावों को सहज रीति से प्रकट करने का ध्यान इन्हें सदैव बना रहा है। इसी से इन की रचनाओं में व्रजभाषा, बैसवाड़ी, अवधी, ग्राम्य तथा प्राकृत भाषादि के शब्द पाये जाते हैं।

और फ़ारसी, अरबी के शब्द भी बहुत आये हैं, यथा—रहम, ख़लक़, ख़लल, ज़ानू, पायमाल, ताज, कुलाह, दाद, काहिल, ग़नी, नेयाज़, फराक़ (फ़ाख़), फहम, एतायत, इत्यादि। यही नहीं, फारसी लेखों के भाव भी कहीं-कहीं इन की रचना में उल्लेखित पाये जाते हैं।

गँवारू शब्दों की भी कमी नहीं है, यथा—ग्रेहड़, माहुर, कठौता, रँगाई, मुठभेरी, ठाहरठाटू, बारहबाट, पनही, बूता इत्यादि।

और इन्होंने अपने भिन्न २ ग्रंथों को भिन्न-भिन्न भाषा में तथा भिन्न २ ढङ्ग से भी लिखा है। रामायण की भाषा विशेषतः बैसवाड़ी और अवधी है यद्यपि उस में अन्य भाषाओं के शब्द भी आये हैं और कुछ संस्कृत के भी श्लोक हैं। इन की छोटी पुस्तकों की भी यही भाषा पाई जाती है। गीतावली तथा कृष्ण गीतावली शुद्ध व्रजभाषा में बनी हैं। कवितावली और बाहुक की भाषा बैसवाड़ी मिश्रित व्रजभाषा है। विनयपत्रिका में पूर्वोक्त सब भाषाएँ पाई जाती हैं एवम् बहुत से विनय के पदों में संस्कृत का अनुकरण देखा जाता है।

वैसे ही इन्होंने सरल रुचिकर छन्दों में भी रचना की है और इनकी कविता गूढ़ भावपूर्ण भी हुई है। कविता किसी ढंग से की गयी हो, कवि का आत्मीयत्व सबों ही में वर्त्तमान है।

गोस्वामी जी की केवल काल्पनिक शक्ति ही बलवती नहीं थी; परन्तु आपकी श्रुति भी विलक्षण गुण धारण करती थीं। शब्द तथा वाक्य-विन्यास में आप भाव और स्वर का खूब ही मिलान करते गये हैं—यथा, "बिकसे सरनि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा"; इसमें इन्होंने शब्दों ही में भ्रमरों का गुंजार करा दिया है। इनकी रचना से जान पड़ता है, जैसे किसी निपुण चित्रकार ने चित्रांकन में सुन्दर रङ्ग चढ़ाया हो या रंग-रंग के रंग ही सुन्दर स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किये जाने के लिये स्वयम् प्रगट होते गये हों। अर्थात् जहां जैसा भाव प्रगट करना है वहां वैसे ही शब्द और वाक्य रखे गये हैं। कल्पना में जितनी ही उत्तेजना हुई है, वाक्य उतना ही प्रबल होता गया है, और वाक्य ऐसा धाराप्रवाहवत् देखा जाता है मानो उसके गढ़ने में कवि को कोई परिश्रम ही नहीं हुआ है—सरस्वती कहती गई हों और वे लिखते गये हों। पाठक को यही प्रतीत होता है कि वह अरोक, सदाप्रवाहित वाग्धारा में प्रवेश कर बिना हाथ पैर हिलाये सानन्द बहा जा रहा है और अपूर्व आनन्द अनुभव कर रहा है अर्थात् इनकी रचना धारा-प्रवाहवत् हुई है।

इन्होंने सर्वदा भाव के उपयुक्त शब्दों का प्रयोग किया है।

जब तक मंथरा की कुमंत्रणा से कैकेयी की मति नहीं फिरी थी तब तक उनके सम्बन्ध में ये भरतमातु आदि शब्द रखते आये हैं, यथा—

"भरत मातु पहं गइ बिलपानी",
"हंसि कह रानि गाल बड़ तोरे",

—परन्तु जब चेरी की कुटिल कपटमयी बातों को सुन कर वे बुद्धिभ्रष्टा हो गई, तब गोसाईं जी ने दशरथ-वंश से उनका सम्बन्ध तोड़ उन्हें 'केकयसुता' आदि कहना आरम्भ किया है।

फिर—जब भरत जी से युद्ध करने की तैयारी से निषाद चला है तो उस समय कवि कहते हैं—"चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रव रूचइ रारी। सुमिरि राम-पद-

-पनही । भाथा बांधि चढ़ाइन्हि धनही ।।" यहां रामचन्द्र की पनही का सुमिरन कराया, के युद्ध क्षेत्र में जाने के समय कोमल पदों का कैसे ध्यान करावें ।

और यहां निषाद की बातों में गंवारू शब्दों को रखकर उन्हें स्वाभाविक बना दिया है— ासहु बोरहु तरनि कीजै घाटारोह" ; बेगहि भाइहु सजहु संजोऊ" इत्यादि । इस प्रसंग के ो यही प्रतीत होता है कि मानो सचमुच उसी श्रेणी का कोई प्राणी बोल रहा है ।

और देखिये, रावण सर्वदा राम लक्ष्मण के सम्बन्ध में 'तपसी' आदि शब्द प्रयोग था । परन्तु जब वह युद्ध करने को चला है तव "कहेउ दसानन सुनहु सुभट्टा । मर्दहु कपिन्ह कर टट्टा ।। हौं मारिहों भूप दोउ भाई । अस कहि सन्मुख फौज रंगाई ।।" रावण के समान प्रतापी राजा क्या तपस्वियों के सङ्ग युद्ध करेगा ? यह उसके गौरव के और उसका अपमान-सूचक होगा । अतएव यहां 'भूप' शब्द का प्रयोग किया गया ।

गोसाईं जी अपनी रचनाओं में पूर्वापर का भी विशेष ध्यान रखते थे । इसका दो दाहरण देखिये । प्रथम सोपान के ४६ दोहे के उपरान्त वाली २ अंक की चौपाई में है कि "भरि लोचन छबि सिन्धु निहारी, कुसमय जान न कीन्ह चिन्हारी ।" इस का भाव लंकाकाण्ड के ११४ दोहा में निकाला है कि "देख सुअवसर राम पहिं, आये न" । ५ सोपान के १ ले दोहा में "राम काज कीन्हे बिना, मोहि कहां बिश्राम" कह के ा में विश्राम कराया है "पूंछ बुझाई खोइ श्रम" । फिर दूसरे सोपान के ८६ दोहे में रस हित नेमव्रत करन लगे नर-नारि, मनहु कोक कोकी सकल दीन बिहीन तमारि ।" र उसकी समाप्ति सातवें सोपान के ३ दोहे के बाद वाली प्रथम चौपाई में की है, यथा ानु कुल कमल दिवाकर । कपिन दिखावत नगर मनोहर ।"

लोग कहते हैं कि इतना पूर्वापर का विचार रखने पर भी गोसाईं जी ने शिवजी से ी के प्रश्नों के उत्तर दिलाने में पहले यह कहलवाकर "राम कृपा तें पारवती, ब मन माहिं । सोक मोह सन्देह भ्रम, मम विचार कछु नाहिं ।।" फिर कहलवाया है त नहिं मोहि सुहानी । यदपि मोह बस कहेउ भवानी ।।" जब शिवजी के विचार में ी के मन में स्वप्न में भी मोह भ्रमादि नहीं, तब वे मोह बस कोई बात फिर क्यों गीं ? बोध होता है कि अपने इष्टदेव के सम्बन्ध में ऐसी शंका सुनकर श्री शिव जी को ाया था, इसी से मोह वश पूछना कहा, परन्तु फिर सम्हल कर कहा कि मुझे ोता है कि तुम मोह रहित हो कर ऐसा प्रश्न करती हो, ऐसा प्रश्न तो मोह पिशाच म नर करते हैं । "तुम जो कहा राम कोउ आना । जेहि स्रुति गाव धरहिं मुनि कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिसाच । पाखंडी हरि पद विमुख, ठ न साच ।"

! इस सम्बन्ध में और इस स्थान में हम इतना और कहने का साहस करेंगे कि की सब रचनाएँ एक ही सी नहीं हैं । रामायण, गीतावली, कृष्ण गीतावली, विनयपत्रिका के दर्जे को इन के और ग्रंथ नहीं पा सकते । इस का कारण यह है का उतम होना वा न होना समय तथा योग विशेष पर निर्भर है । मिल्टन का

कथन है कि 'मेरी प्रतिभा वर्ष के कुछ महीनों में अधिक समुज्ज्वल रहा करती थी।' इसी से मिल्टन कृत 'पैरेडाइज़ रीगेन्ड' (Paradise Regained) उतना उत्तम नहीं है, जितना कि 'पैरेडाइज लास्ट' (Paradise Last) पाया जाता है। पोप ने २० वर्ष की अवस्था में जैसी कविता की वैसी कविता वह फिर करने को समर्थ नहीं हुआ। वंगदेशीय सुविख्यात बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय की भी यही दशा देखी जाती है। उन का अन्तिम उपन्यास 'सीताराम' उन के पूर्व रचित उपन्यास 'देवीचौधरानी' आदि से टक्कर नहीं लगा सकता। किसी कवि की सब रचनाएँ एक-सी हों यह सम्भव भी नहीं है। शेक्सपियर ने नाटकों के अतिरिक्त और भी कई एक छोटे-छोटे ग्रन्थों की रचना की है जिन के विषय में हालम साहब का कथन है कि 'ये ग्रन्थ इस कवि-चूड़ामणि की स्वच्छ कीर्ति में धब्बा लगाते हैं; यदि कवि इन ग्रन्थों की रचना नहीं करता तभी अच्छा था। यही क्या ? इस प्रतिभावान् कवि के सब नाटक भी तो एक समान ही उत्तम नहीं हैं।'

हमारे चरित्रनायक का तो ग्रन्थ वा किसी ग्रन्थ का कोई अंश सर्वथा निकृष्ट भी नहीं है और पूर्वोक्त ग्रन्थों के समान जो अन्य ग्रन्थ सुन्दर नहीं देखे जाते, उनमें से कई एक को बहुत-से लोग गोसाईं जी विरचित होना मानने ही को तैयार नहीं हैं।

सारांश यह कि हमलोग गोसाईं जी की कविता को जिस प्रकार से देखते हैं, उसे सर्वगुणसम्पन्न पाते हैं जिस से इन का प्रतिभावान्, प्राकृतिक तथा उत्कृष्ट कवि होना निर्विवाद प्रतिपादित होता है।

द्वितीय परिच्छेद

गोस्वामी तुलसीदास कृत ग्रन्थावली

गोस्वामी जी ने कितने और किन किन ग्रंथों की रचना की है, इस में बहुत मतभेद देखा जाता है। मिरज़ापुर-निवासी पं० रामगुलाम द्विवेदी रामायण की शिष्य-परम्परा में स्वयम् गोसाईं जी से सम्बन्ध रखते थे। उन्हों ने एक स्थान में लिखा है—

"रामललानहछू, त्यों बिराग-संदीपिनिहुं, बरवै बनाइ बिरमाई मतिसाईं की। पारवती, जानकी के मंगल ललित गाय, रम्य राम—आज्ञा रची कामधेनु नाईं की॥ दोहा औ कवित्त, गीत बंध, कृष्णकथा कही, रामायन, बिनै माहिं बात सब ठाईं की। जग में सोहानी जगदीस हूँ के मन मानी, संत सुखदानी बानी तुलसी गोसाईं की॥"

इस के अनुसार गोसाईं जी कृत १२ ग्रंथ होते हैं जिनमें रामायण, कवितावली, गीतावली, दोहावली, विनय पत्रिका तथा रामाज्ञा, ये छः बड़े ग्रंथ हैं और रामललानहछू, वैराग्य-संदीपिनी, जानकी-मङ्गल, पार्वती-मङ्गल, कृष्ण गीतावली तथा बरवै रामायण, ये छः छोटे ग्रंथ हैं। इस से राम सतसई वा सतसई गोसाईं जी कृत होना विदित नहीं होता। परन्तु पं० शेषदत्त जी ने—जो भी शिष्य-परम्परा में गोस्वामी जी से सम्बन्ध रखते थे—'सतसई' को गोस्वामी जी कृत होना मान कर उसकी टीका भी लिखी है और उन के पुत्र के शिष्य कोदोराम ने गोसाईं जी के ग्रंथों की नामावली वर्णन में एक कवित्त कहा है। इस में 'दोहावली' का नाम न देकर 'सतसई' का नाम दिया हुआ है और 'नाम-कला-कोषमणि' एक अन्य ग्रंथ का नाम है जिस से कोदो राम के अनुसार गोसाईं जी रचित १३ ग्रंथ होते हैं।

किसी-किसी का कथन है कि गोसाईं जी ने १६ ग्रंथों की रचना की है। 'शिवसिंह-सरोज' के अनुसार पूर्वोक्त १२ ग्रंथों के सिवाय गोसाईं जी ने १० अन्य ग्रंथों की रचना की थी। अर्थात् रामसतसई, संकट मोचन, हनुमानबाहुक[1], राम सलाका, छन्दावली, कुंडलिया रामायण, कड़खा रामायण, टोला रामायण, फूलन रामायण और छप्पै रामायण।

जगोपकारी गोसाईं जी निश्चय भूल गये। उन्हें विरहा रामायण, आल्हा रामायण, लोरिक रामायणादि भी लिख देना चाहता था। इनसे कई एक विशेष जातियों का भारी उपकार होता और कौन जाने उन्होंने लिखा भी हो और कोई चतुरचूड़ामणि रामायण-प्रकाशक उन्हें रामायण के साथ-साथ कभी प्रकाशित कर दें।

'भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका' तथा 'भक्तकल्पद्रुम' में शिवसिंहसरोज वर्णित रामाज्ञा, सतसई, छन्दावली तथा कुण्डलिया रामायण के नाम नहीं दिये गये हैं। परन्तु उनमें हनुमानचालीसा और कलिधर्मनिरूपण दो नवीन ग्रंथों के नाम पाये जाते हैं।

---

१. इसको कोई २ कवितावली का अंश मानते हैं। कवितावली की समालोचना देखिये

ग्रियर्सन साहब ने 'इन्डियन एन्टीकुयेरी' पृ० ११ में २१ ग्रंथों का नाम गिनाया है, अर्थात् 'शिवसिंह सरोज' कवित छन्दावली का नाम छोड़ कर आपने अन्य सब ग्रंथों का नाम दिया है। और बांकीपुर के 'खड्गविलास' प्रेस द्वारा प्रकाशित 'रामचरितमानस' में जो आप की लिखी गोसाईं जी की जीवनी छपी है उसमें आप रामायण के सिवाय १६ सोलह अन्य ग्रंथों का, अर्थात् कुल १७ ग्रंथों का, नाम बताया है और एक ग्रंथ का नाम पञ्चरत्न रख कर आप ने उस में जानकी मङ्गल, पार्वती मङ्गल, वैराग्यसन्दीपिनी, रामललानहछू तथा बरवै रामायण सम्मिलित किया है। 'पञ्चरत्न' नाम तो भला एक ठिकाने का भी है, परन्तु 'श्री वेङ्कटेश्वर' प्रेस के अध्यक्ष ने एक ग्रन्थ का नाम 'षोडशरामायण' रखा है और उस के भीतर पार्वती मङ्गल, कृष्णगीतावली तथा कलिधर्मनिरूपण पुस्तकें भी घुसा दी हैं। यह विचित्र नामकरण है। क्या इन तीनों पुस्तकों की भी गणना रामायण में ही होगी? या गोसाईं जी की लेखनी से निर्गत सब वस्तुएँ रामायण ही कहलाएँगी?

पंडित रामेश्वर भट्ट ने २२ ग्रंथों में से छन्दावली तथा छप्पै रामायण का नाम नहीं देकर 'रामलता' नाम की एक नवीन पुस्तक बनाई है।

सुनते हैं कि काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज में ज्ञानकोप परिकरण, मङ्गल रामायण, गीताभाष्य, राममुक्तावली, तथा ज्ञानदीपिका ये पांच ग्रन्थ और मिले हैं। एक सुप्रसिद्ध प्रकाशक ने अपनी ग्रन्थसूची में गोस्वामीकृत 'बारहमासा' लिख मारा है।

आगे मतभेद प्रदर्शक एक चक्र दे दिया गया है जिस से पाठकों को सहज ही विदित हो जायगी कि कौन २ महाशय कौन २ ग्रंथ गोस्वामी जी कृत होना मानते हैं और कौन २ ग्रंथ नहीं मानते।

उस के देखने से यह भी ज्ञात होगा कि पूर्वार्द्ध सूची के १२ ग्रंथों का गोसाईं जी कृत होना प्रायः सबलोग स्वीकार करते हैं, किन्तु शेष ग्रंथों के सम्बन्ध में अधिकांश की यही सम्मति है कि वे सब गोसाईं जी के बनाये नहीं है, तुलसी नामक किसी अन्य कवि के बनाये हुये हैं। निस्सन्देह बात भी ऐसी ही प्रतीत होती है। एक तो इस नाम के और भी कई कवि हुये हैं। दूसरे, गोसाईं जी के शिष्यपरम्परा के लोग तो चिर काल से १२-१३ ग्रंथ मानते आते हैं और अन्य महाशयों ने इन के ग्रंथों की संख्या अब ३२ [२] तक पहुँचा दी है। पूर्वोक्त १२ ग्रंथों में से भी कई एक गोसाईं जी कृत होने में लोगों को सन्देह है। इस का हाल पुस्तकों की समालोचना से विदित होगा।

---

२. राम चरितमानस, कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका, दोहावली, रामाज्ञा (रामशकुनावली), रामललानहछू, वैराग्यसंदीपिनी, जानकीमङ्गल, पार्वतीमङ्गल, कृष्णगीतावली, बरवैरामायण, सतसई, (रामसतसई), संकटमोचन, हनुमानबाहुक, रामसलाका, छन्दावली, छप्पै रामायण, कड़खा रामायण, रोला रामायण, झूलना रामायण कुंडलिया रामायण, हनुमानचालीसा, कलिधर्मनिरूपण, रामलता, नामकला कोपमणि, मङ्गलावली, मंगल रामायण, गीताभाष्य, ज्ञानकोप परिकरण, राममुक्तावली और ज्ञानदीपिका। (मङ्गलावली और मङ्गलरामायण सम्भवतः एक ही पुस्तक के दो नाम हैं।)

तृतीय परिच्छेद

रामायण की सृष्टि

ऐसा उद्दंड, उत्कट तथा बुद्धिविलक्षण कवि होने पर भी गोस्वामी जी ने फ़ारसी भाषा के सुप्रसिद्ध कवि शेखसादी के समान ऐसा कहना कि—"शायरां बिस्यार गुफ़तन्द शेरहाए पुरनमक। कस न गुफ़्त: शेर हम चूं सीख ऐन वोद्राल ये।"[1] अर्थात्—बहुत से कवियों ने मजेदार कविताएँ कीं, परन्तु सादी के समान किसी ने पदरचना नहीं की,[2] उचित नहीं समझा। वरन् सरल-चित्त तथा नम्रस्वभाव होने के कारण इस ग्रन्थ के निर्माण में अपनी अयोग्यता अनुभव कर इन्हों ने स्वच्छ हृदय से कहा है कि :—

करन चहऊँ रघुपति गुन गाहा। लघुमति मोर चरित अवगाहा॥
सूझ न एकहु अंग उपाऊ। मन अति रंक मनोरथ राऊ॥

परन्तु हमलोग देखते हैं कि 'संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी' के प्रभाव से ही क्यों न हो, जैसे विलायती कवि अपने नियुज़ को जगाकर कवितागान आरम्भ कर देते हैं, गोसाईं जी ने श्री गुरुदेव तथा देव अदेव सब की बन्दना कर एवम् सज्जन असज्जन सकल जन की विनय पूर्वक प्रार्थना कर ग्रन्थ लिखना आरम्भ कर दिया है और इस की रचना में इन्होंने ऐसी विलक्षणता तथा विचक्षणता दिखलाई है कि बुद्धि चकित हो जाती है।

कवि ने इसकी रचना विशेषतः चौपाई में की है। इसी से कोई-कोई चौपाई रामायण भी कहते हैं। परन्तु दोहा, सोरठा, हरिगीतिका, चौपैया, त्रिभंगी, तोटक, तोमर, (माधुर्य) भुअंगप्रयात, अनुष्टुप, शार्दूल विक्रीड़ित, बसंततिलक, नागस्वरूपिणी (प्रमाणिका) आदि अनेक भांति के छन्द इस के संस्कृत श्लोकों में तथा इस के भाषाभाग में देखे जाते हैं। फिर प्रस्तार विचार से उन छन्दों में भी जिन्हें सर्वसाधारण चौपाई जानते हैं, पादाकुल, अलिनी प्रभृति कई एक भेद के छन्द हैं; तथा दोहे भी लघु-गुरु वर्णों के विचार से कई प्रकार के पाये जाते हैं।

कई एक चौपाइयों के बाद ये यथारुचि केवल एक या अधिक दोहा, या केवल सोरठा अथवा दोहा सोरठा दोनों देते गये हैं। कहीं-कहीं चौपाइयों के अनन्तर, हरिगीतिका, चौपैया

---

१. शायरी = सीन + ऐन + रे + या।

२. मिलटन कृत 'पैरेडाइज़ लास्ट' के नीचे लिखे हुए पदांश से भी यही ध्वनि निकलती है :—"Unattempted yet in prose or rhyme."

अथवा त्रिभंगी देकर इन्हों ने दोहा या सोरठा रखा है। हरिगीतिकादि का प्रयोग प्रायः युद्ध, आनन्दोल्लास, उमङ्ग, विनय इत्यादि के समय देखा जाता है। निस्सन्देह मन में महानन्द तथा प्रबल उमङ्ग के आवेश ही से कवि ने उन स्थानों में इन छन्दों का प्रयोग किया है। उन विशेष स्थानों में उन, छन्दों के पाठ से पाठकों के मन में भी उमङ्ग तथा हर्ष जागृत हो जाता है।

प्रत्येक सोपान (काण्ड) के आदि में संस्कृत के श्लोक हैं। उत्तर काण्ड के अन्त में भी संस्कृत के दो श्लोक हैं। काण्डों के मध्य में भी कई एक स्थानों में संस्कृत में स्तुतियाँ दी गई हैं।

यद्यपि आपने इस ग्रंथ की रचना विशेषतः चौपाई तथा दोहा आदि साधारण छन्दों में की है, तथापि अपनी कविता-शक्ति से आपने इसे ऐसा रोचक तथा मनोरञ्जक बना दिया है कि इसके पाठ से पढ़नेवाले का मन नहीं उचटता, वरन् इसके पढ़ने ही की इच्छा बढ़ती जाती है।

प्रत्येक काण्ड के अन्त में ये उसके पाठ का फल भी कहते गये हैं। काण्डों के मध्य में भी इन्होंने विशेष-विशेष कथाओं का फल प्रायः कह दिया है। परन्तु कथावर्णन में निष्प्रयोजन बातें कह कर आपने पाठकों का समय नष्ट नहीं किया है।

आपने अपने इस महाकाव्य को ग्रन्थ ही के रूप में नहीं, वरन् मानसरोवर रूप में भी हम लोगों के दृष्टिपथ में उपस्थित किया है।

पाठक वृन्द! इस मनोरम मानसरोवर की छवि की ओर दृष्टि कीजिये। पहले इस सरोवर के घाटों को निहारिये कि वे क्या हैं और कैसे हैं। "सुठि सुन्दर सम्वाद वर, विरचेऊ बुद्धि बिचारि। तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहरि चारि॥" और इस सरोवर में सात सीढ़ियां हैं।[1] 'सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना'—जो अब काण्ड के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह सरोवर सुधा समान श्री सीताराम यश सलिल से परिपूर्ण है; इस में उपमा की तरंगें उठ रही हैं सुन्दर युक्तियों के मणि इस में वर्तमान हैं। चौपाई, दोहा, सोरठा तथा अन्यान्य छन्द सघन पुरइन और भांति २ के कमलों के समान शोभायमान हैं। एवम् अनुपम अर्थ, सुन्दर भाव तथा सरल भाषा उन कमलों के पराग, मकरन्द और सुगन्ध के सदृश हैं। उनपर सुकृति रूपी भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। ज्ञान और विराग विचार के दो मराल इस सरोवर के दोनों किनारे विराज रहे हैं। कविता के भिन्न २ गुण इसमें भांति २ के सुन्दर मीन हैं। जप तप आदि जलचर इसमें कल्लोल कर रहे हैं। सन्त सभा इसकी चारों ओर वाटिका स्वरूप है जहां श्रद्धारूपी ऋतुराज सर्वदा राज कर रहा है, और क्षमा, दया, सुन्दर तरुवर और लता वितान उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। संयम नियम उसके फूल एवम् ज्ञान उसका फल और हरिपद में रति

---

१. 'रामायण परिचर्या परिशिष्टप्रकाश' (अर्थात् महात्मा हरिहर प्रसाद कृत टीका) पृ० ४३-४४ बा० कां० एवम् 'मानसतत्वबोधिनी' (किष्किन्धा कां०) पृ० ५२-५४ में बालकांड में सीताराम संयोग, सांख्यशास्त्र; अयोध्या—वैराग्य; आरण्य—मीमांसा, किष्किन्धा—योग; सुन्दर—न्याय; लङ्का—वेदान्त; उत्तर—साम्राज्य-शास्त्र; ये सीढ़ियाँ इस प्रकार से दिखलाई गई हैं।

होना ही फल का रस है और अनेक कथाप्रसंग उस वाटिका में शुक-पिक के सदृश कलरव कर रहे हैं और "पुलक वाटिका बाग बन, सुख सुविहंग विहारु। माली सुमन सनेह-जल सींचत लोचन चारु ॥" एवम् "जे गावहिं यह चरित संभारे। तेई एहि ताल चतुर रखवारे" और इसके अधिकारी हैं। बेचारे कामी काक और बलाक इस सर के निकट नहीं आते, क्योंकि शम्बुक, भेक और सेवार के समान इसमें विषय-कथा नहीं है। मदमोह मत्सरादि रूप कानन इस तड़ाग को घेरे हुए हैं जिसमें कुसंगति आदि सर्प, व्याघ्र, जन्तु सब घूम रहे हैं, सांसारिक बखेड़े पहाड़ हैं और उससे कुतर्क रूपिनी भयावनी नदी प्रवाहित हैं। अतएव श्रद्धा रहित लोग इस सरोवर के निकट नहीं जा सकते और जो श्रद्धावान पुरुष इस तड़ाग में मज्जन करता है; वह अपने अन्तःकरण के मल को दूर कर अकथनीय सुख लाभ करता है।

सचमुच इस सरोवर का दृश्य अद्भुत शोभा-सम्पन्न महा-मनोहर और अकथनीय आनन्द-प्रद है। इसकी अपूर्व छटा देखते मन मुग्ध हो जाता है और चित्त यही चाहता है कि इसे निरन्तर निहारते ही रहें, इसके निर्माण कर्त्ता को सदैव धन्यवाद देते ही रहें, उनके पवित्र चरणों में सर्वदा नमस्कार करते ही रहें। परन्तु हाय! उन चरणों का दर्शन अब किसी के भाग्य में कहां बदा है?

पाठकवृन्द यह तो जान गये हैं कि सुन्दर सम्वाद इस सरोवर के घाट हैं। परन्तु वे सम्वाद कौन हैं यह भी उन्हें जना देना आवश्यक है। ग्रन्थवर्णित कथा—शिव और पार्वती सम्वाद, याज्ञवल्क्य और भरद्वाज सम्वाद तथा कागभुसुंडी और गरुड़सम्वाद—गोसाईं जी ने हमलोगों को सुनाई है।[1] ये ही सब सम्बाद इस मानसरोवर रामायण के सुभग पावन घाट कहे गये हैं। ये तीनों सम्वाद तो तीन घाट हुये। चौथे घाट के सम्बन्ध में कोई गोसाईं जी के गुरु और गोसाईं जी का सम्वाद, कोई गोस्वामी जी और उनके मन का सम्वाद एवम् कोई गोसाईं और भक्तों का सम्वाद बताते हैं। यह अन्तिम कथन गोस्वामी जी के स्पष्ट लेख से प्रतिपादित होता है: "कहिहऊँ सोई सम्वाद बखानी। सुनहु सकल सज्जन सुख मानी।" अर्थात् याज्ञवल्क्य और भरद्वाज वाला सम्वाद हम कहेंगे, आप सज्जन लोग सुखपूर्वक इसे सुनते जाइये। वह कौन सम्वाद है इसे भी आपने रामायण में कह दिया है।

महात्मा हरिहरप्रसादजीने इन घाटों का ऐसा भी निर्देश किया है:—शिवपार्वती का 'ज्ञानघाट'—"रजत सीप महं भास जिमि, यथा भानुकर वारि। जदपि मृषा तिहुँ काल सोई, भ्रम न सकै कोउ टारि ॥" याज्ञवल्क्य और भरद्वाज का 'कर्मकाण्ड घाट'—

"भरद्वाज सुन जाहि जब, होत विधाता बाम। धूरि मेरु सम, जनक जम ताहि व्याल समदाम ॥" काग भुसुंडी और गरुड़ का 'उपासना घाट'—"सेवक सेव्य भावबिनु भव न

---

१. यह ध्यान देने योग्य बात है कि बालकाण्ड के स्वयम्बर से भरत के प्रेम वर्णन तक कहीं इन लोगों के सम्वाद का संकेत नहीं पाया जाता जैसा कि बाल के पूर्वार्द्ध में तथा अरण्य से उत्तरकाण्ड तक देखा जाता है। इससे बहुत से लोगों का अनुमान है कि पहले स्वयम्बर और भरत प्रेम ही की रचना हुई थी, पीछे समूची रामायण लिखने का विचार होने से ये सब बातें उनमें जोड़ दी गईं।

तरिये उरगारि ।' गोसाईं जी और मन का सम्वाद 'दैन्य घाट—"अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरि। सुनि अघनरकहु नाकसिकोरी ॥" यह घाटों का नाम करण हुआ।

और 'मानस मयंक' में भक्ति काण्ड 'का' पूर्वघाट, कर्म काण्ड का दक्षिण घाट, ज्ञान काण्ड का पश्चिम घाट, तथा शुद्ध उपासना काण्ड का उत्तर घाट। यह घाटों का दिशानिरूपण हुआ।

परन्तु उपासना तो भक्ति ही के अन्तर्गत है और उसी की एक अवस्था है ।

'सेवक' तथा 'दैन्य' भावों में भी तो कुछ इतना ही भेद नहीं हैं। सेवक (उपासक) तो सर्वदा दीन हई है। फिर काकभुसुंडी तथा गोस्वामी जी की भावनाओं में भी तो अन्तर नहीं देखा जाता। जब कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, उपासना (भक्ति) काण्ड हुआ, तो टीकाकारों को योगकाण्ड भी दिखलाना चाहता था, विशेषतः जबकि गोसाईं जी ने योग की बातें भी अपने ग्रन्थ में अवश्य कही है।

कोई टीकाकार मरदाना, जनाना, पशु तथा पक्षी घाट भी स्थिर कर देते तो अच्छी बात होती; यथा ज्ञानकाण्ड मरदाना घाट, भक्तिकाण्ड जनाना घाट, अथवा साधारण स्पष्ट उपदेश मरदानाघाट, गुह्य रहस्य (गूढ़तत्व जो परदे में होना कहा जाता है) जनानाघाट, पशु सरीखे लोगों को जहांतहां फटकार पशुघाट और पक्षीघाट तो प्रत्यक्ष ही है।

घाटों का नामादि तो टीकाकारों की कृपा से विदित हो गये, अब सोपानों की बनावट भी देख लीजिये। गोसाईं जीने कहा है 'सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना।' उसी कोलेकर मुं० सुखदेव लाल ने सीढ़ियों की बनावट अपने पाठकों को दिखलाई है और लिखा है कि सीढ़ियाँ ऊपर से नीचे की ओर छोटी होती जाती हैं, अतएव बाल सबसे बड़ा, अयोध्या उससे छोटा, अरण्य उससे छोटा, और किष्किन्धा काण्ड सबसे छोटा, फिर सुन्दर उससे बड़ा, लंका सुन्दर से तथा उत्तर लंका से बड़ा है। अब प्रत्येक घाट की सीढ़ियों की ओर दृष्टि कीजिये —

एक घाट की सीढ़ियाँ—	प्रथम सीढ़ी,	बालकाण्ड के पूर्वार्द्ध	की	१७५	चौपाइयाँ
	दूसरी सीढ़ी,	अयोध्या ,,	,,	१२५	,,
	तीसरी सीढ़ी,	आरण्य ,,	,,	२५	,,
उसके सामने के दूसरे— घाट की सीढ़ियाँ	पहली सीढ़ी,	उत्तरकाण्ड	,,	७०	,,
	दूसरी सीढ़ी	लंका	,,	६०	,,
	तीसरी सीढ़ी	सुन्दर	,,	३०	,,
तीसरे घाट की सीढ़ियां—	पहली सीढ़ी	बालकाण्ड	,,	१७५	,,
	दूसरी सीढ़ी	अयोध्या	,,	२००	,,
	तीसरी सीढ़ी	आरराय	,,	२५	,,
इसके सामने के चौथे— की सीढ़ी	पहली सीढ़ी	उत्तर	,,	७०	,,
	दूसरी सीढ़ी	लंका	,,	६०	,,
	तीसरी सीढ़ी	सुन्दर		३५	

और चारो ओर की चौथी सीढ़ी बनाने में किष्किन्धा काण्ड को विभक्त कर के आपने दस २ चौपाइयां चारों ओर बिठा दी हैं।

परन्तु इस कांट छांट में तो सात सीढ़ियों के बदले प्रत्येक ओर चार ही चार सीढ़ियाँ हो गईं। रूपक सर्वत्र सर्वाङ्गी नहीं होता। खींच खांच कर उसे सब ठौर सर्वाङ्गी दिखलाने की चेष्टा करने से उसकी ऐसी ही दुर्दशा हो जाती है। सरोवर में सीढ़ियाँ भी होती हैं, इससे गोसाईं जी ने साधारण रीति से कह दिया 'सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना।' यहां तक रूपक की छटा सोहावनी रही; जब उसकी लम्बाई चौड़ाई, सुरखी, चूना, गच इत्यादि की विवेचना होने लगी, उसी दम उसकी मिट्टी खराब हो गई।

आप का यह कथन है कि "बाल कांड का सीता स्वयम्बर तथा अयोध्या काण्ड देखने से भान होता है कि पहले गोस्वामी जी की इच्छा समस्त रामायण लिखने की नहीं थी। किसी का बनाया रुक्मिनी मङ्गल देख कर इन्हें सीतास्वयम्बर लिखने की अभिलाषा हुई और उसी का अनुकरण करके इन्हों ने रामचन्द्र तथा जानकी जी का बाटिका में परस्पर दर्शन कराया है, एवम् शिशुपालादि के समान धनुषभंग द्वारा दुष्टराजों का गर्व-चूर्ण कराया है। इसी प्रकार आपने सातो काण्डों के रचे जाने का कारण कहा है।

परन्तु कोई कहते हैं कि संवत् १६३१ चैत्र शुक्ल सप्तमी को इन्होंने संस्कृत भाषा में रामायण लिखने के विचार से बालकाण्ड के आदि के अन्तिम श्लोक को छोड़ कर बाकी ७ श्लोकों की रचना की। उसी तिथि की रात्रि में आपने स्वप्न में देखा कि एक वृद्ध ब्राह्मण उन श्लोकों को चुरा ले गया। दूसरे दिन इनके अनशन रह जाने से अष्टमी की रात्रि को फिर स्वप्न में दर्शन दे उस ब्राह्मण ने इन्हें भाषा में 'रामचरित मानस' रचने की सम्मति दी और शिवरूप से दर्शन दिया। इसके प्रमाण में यह दोहा कहा जाता है—"सपनेहुं सांचहु मोहि पर जौं हरि गौरि पसाउ। तो फुर होउ जो कहहुं सब, भाषा भनित प्रभाउ।।" और तब पूर्वोक्त श्लोकों के नीचे "नानापुराण निगमागम सम्मतं यत्" वाले श्लोक की रचना कर ये भाषा अनुबन्ध करने लगे। यह भी कहा जाता है कि 'लोगों का नाना पुराण' वाले श्लोक के आधार पर यह कहना कि इन्होंने अन्य रामायणों और पुराणों के संग्रह से रामायण की रचना की है, महाभूल है, क्योंकि कोई भी आप्त पुरुष अपने एक प्रवाह में दो प्रकार की बातें नहीं कह सकता और यदि इन्होंने इसको अन्य ग्रन्थों से संग्रह किया तो इसी मानस में इन्होंने 'शंभु कीन्ह यह चरित सुहावा' और 'रचि महेश निज मानस राखा' इत्यादि इन चौपाइयों को क्यों लिखा? इन प्रमाणों से यह निर्भ्रान्त सिद्ध है कि इन्होंने संग्रह द्वारा नहीं बनाया किन्तु शिवरचित मानस को भाषाबद्ध किया है।"

यदि एक प्रवाह में दो प्रकार की बातें कोई आप्त पुरुष नहीं करता और गोसाईं जी ने नानापुराणों की बातें इसमें समावेशित नहीं की तो आपने वह श्लोक ही लिख कर एक प्रवाह में दो बातें क्यों की? और उसके लिखने की क्या आवश्यकता थी? सच यह है कि गोसाईं जी ने दोनों बातें ठीक ही लिखी हैं। इन्होंने शिवरचित मानस को भाषा-बद्ध किया है

करते गये हैं। इन्होंने ऐसा नहीं करने की कहीं शपथ नहीं खाई है वरन् उस श्लोक का रामायण में रहना इस बात को सिद्ध करता है कि इन की ऐसा करने की इच्छा तथा प्रतिज्ञा थी और इन्होंने ऐसा किया है।

और 'सपनेहुं साँचहु' से यदि कहनेवाले का यह आशय हो कि अगर सचमुच स्वप्न में हरगौरी हमपर प्रसन्न हुए हैं।" तो एक तो टीकाकारों ने इसका यह भाव नहीं दिखलाया है दूसरे स्वप्न में तो केवल शिवजी ने दर्शन दिया था, गौरी का दर्शन हुआ ही नहीं? उनकी प्रसन्नता का भरोसा क्यों?

और 'नानापुराण' वाला अन्तिम श्लोक छोड़कर ८वीं कौन ७ श्लोक रचे गये थे? रामायण के सब संस्करणों में तो यह श्लोक मिलाकर ७ श्लोक देखे जाते हैं। कोई-कोई रामचन्द्र का स्वप्न प्रकट होकर रामायण रचने का आदेश करना बताते हैं। स्वप्न में राम या शिवजी की आज्ञाई हो या नहीं, बिना ईश्वर की प्रेरणा तथा कृपा के क्या किसी से ऐसा उत्तम कार्य्य सम्पन्न होना कभी सम्भव है?

चतुर्थ परिच्छेद

रामायण का रचनाकाल

निश्चय जिस समय गोसाईं जी ने रामायण की रचना के लिए अपनी प्रभावशालिनी लेखनी उठाई होगी बागेश्वरी अपने कमलासन को परित्याग कर इनके सम्मुखस्थ विशद बिछावन रूपी समुज्ज्वल कागज पर सहर्ष नृत्य करने लगी होंगी; कविताकामिनी अपूर्व अमूल्य अलंकारों से अलंकृत किये जाने की उमङ्ग में अङ्ग-अङ्ग फूली नहीं समाती होंगीं; लेखनी भविष्यत् में अक्षय कीर्त्ति लाभ की आशा से इनके हाथ को बारम्बार सानन्द चूमती होगी एवम् इनकी आज्ञानुवर्त्तिनी हो हुलासपूर्वक मधुर २, चुर-चुर शब्द करती इनके इच्छानुसार पत्रों के उद्यान में विचरण करने लगी होंगी, स्वर्गीय कवीश्वरों की आत्मा आनन्द से उछलने लगी होंगी। साहित्यसरोवर एक अद्भुत अम्बुज सद्यहि विकशित होने की आशा से तरङ्गित होने लगा होगा। सुरसमूह भी इस सुअवसर में सुमन की वृष्टि करने में नहीं चूके होंगे। अहा! हिन्दी साहित्य, हिन्दू समाज तथा हिन्दू धर्म्म के लिये वह कैसा सौभाग्य का दिन था जब इस अद्वितीय महाकाव्य की रचना आरम्भ हुई।

गोसाईं जी ने अपने इस प्रौढ़ ग्रन्थ की रचना प्रौढ़ावस्था ही में की है। परन्तु नीचे लिखे हुये दोहों को उद्धृत करके 'काशीनागरीप्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण के सम्पादकों ने लिखा है कि 'इस (रामायण) को कवि ने छोटी ही अवस्था में बनाया।'—

"संत सरल चित जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु।
बालविनय सुनि करि कृपा, राम चरन रति देहु॥
कवि कोविद रघुवर चरित, मानस मंजु मराल।
बाल विनय सुनि सुरुचि लखि, मो पर होहु कृपाल॥"

हम नहीं समझते कि 'रामचरितमानस' की समालोचना के आदि ही में ऐसा लिख कर भी कि 'इस अद्भुत ग्रन्थ को गोसाईं जी ने सम्वत् १६३१ चैत्र शुक्ल ६ (रामनवमी) मंगलवार को आरम्भ किया' सम्पादक महाशयों ने गुसाईं जी के छोटी ही अवस्था में इस ग्रंथ के रचने का अनुमान करने का कैसे साहस किया। जो हो गोसाईं जी के कथनानुसार इस ग्रंथ का प्रणयन चैत्र रामनवमी मंगलवार संवत् १६३१ (१५७४ ई०) में हुआ जब कि गोसाईं जी की अवस्था ४२ वर्ष से कम नहीं थी। 'बालविनय' केवल नम्रता से कहा गया है और कुछ नहीं। कोई बालकवि ऐसा प्रौढ़ ग्रंथ कदापि नहीं लिख सकता।

प्रोफेसर जेकोबी (Jacobi) कृत—'हिन्दू तिथि गणनाचक्र' के प्रकाशित होने पर ग्रियर्सन साहब ने रामायण की रचना तिथि की शुद्धता की स्वयम् जाँच की थी और उसे प्रोफेसर साहब से भी जँचवाया था। एक गणना से नवमी तिथि बुध को होती थी और एक गणना से रविवार को वह तिथि पड़ती थी। उक्त प्रोफेसर ने उन्हें लिख भेजा था कि "सब सिद्धान्तों के अनुसार बनारस (अवध) में ३१ मार्च १५७४ ई० बुधवार को कुछ दिन चढ़े नवमी तिथि समाप्त हुई थी अतएव उसी दिन 'नवमी सुदि' थी, परन्तु जिस दिन तिथि बीतती हो उसी दिन शुभ कार्य्य किया जाता है। इससे यह अनुमान हो सकता है कि तुलसीदास ने मंगल को अपना ग्रन्थ बनाना आरम्भ किया। अतएव उपर्युक्त चौपाई क्षेपक नहीं है।" और पं० सुधाकर जी ने लिखा था कि 'तुलसीदास अयोध्या में स्मार्त वैष्णव थे जो महादेव के भी बड़े भक्त होते हैं और इससे अनुमान करते हैं कि उन्होंने रामनवमी का मंगलवार को होना शैवगणना के अनुसार कहा।'[1]

ज्योतिषगणना में जिस दिन जो तिथि समाप्त होती हो उसी दिन वह तिथि मानी जाती हो, परन्तु स्मार्त वैष्णवों ही को कौन कहे, सर्वसाधारण भी जिस दिन जो तिथि विशेष भोगती है उसी दिन वह तिथि मानते हैं।

कवि के कथनानुसार इस ग्रन्थ की रचना अवधपुरी में आरम्भ हुई। परन्तु इसकी समाप्ति कहां हुई इस विषय में कवि ने कुछ नहीं कहा है। लोग अनुमान करते हैं कि आरण्यकाण्ड[2] तक तो अयोध्या में लिखा गया और शेष काण्ड काशी में। इस अनुमान का कारण यह है कि गोसाईं जी ने आरण्यकाण्ड के बाद किष्किन्धा ही में काशी के विषय में कहा है :—

"मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान पानि अघहानिकर।
जहां बस संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न॥"

---

१. Notes on Tulsi Das—Indian Autiquary, 1893, P. 5–6.

२. पंडित ज्वाला प्रसाद तथा अन्यान्य कई एक महाशय बालकाण्ड ही तक अवध में लिखा जाना बताते हैं। कोई-कोई शेष काण्डों को राजापुर में लिखा जाना मानते हैं।

पञ्चम परिच्छेद

रामायण का मूलाधार

गत तीसरे परिच्छेद के अन्त में इस ग्रन्थ के मूलाधार की कुछ झलक दीख पड़ी है। वही यहां पर स्पष्ट रूप से दिखला दिया जाता है। रामायण में गोस्वामी जी ने आनन्दकन्द श्रीरामचन्द्र के गुण, यश, लीला तथा सुकीर्ति का परम भक्ति भाव से कीर्त्तन किया है और इसमें उन्हीं की कथा सप्रेम वर्णन की गई है, क्योंकि रामकथा एक अपूर्व वस्तु है जैसा कि कवि ने स्वयम् कहा है—

"बुध विश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलिकलुष विभंजनि।
रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई॥
सोई वसुधा तल सुधा तरंगिनी। भय भंजनि-भ्रम-भेक-भुअंगिनी॥"

और—

"रामचरित चिन्तामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू॥" इत्यादि।

यह कथा यद्यपि इनके पूर्ववर्त्ती अनेक कवियों के ग्रन्थों में वर्णित हुई है, परन्तु इन्होंने निज ग्रन्थ की रचना में किसी एक ग्रन्थ को सर्वथा आधारभूत नहीं माना है। यह बात इन्होंने स्वयम् ही कही है :—

"नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति॥"

पुन :—

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं
श्रीमद्रामपदाब्ज भक्तिमनिशं प्राप्नोतु रामायणम्।
नत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमः शान्तये
भाषाबन्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥"

तौ भी इसका विशेषांश अध्यात्म रामायण से लिया गया है और इन्होंने वाल्मीकीय रामायण को भी प्रधान आश्रय रखा है। इसके सिवाय इन्होंने—रघुवंश, हनुमन्नाटक, श्रीमद्‌भागवत, श्रीमद्‌भागवत गीता, प्रसन्नराघव प्रभृति ग्रन्थों से भी यथा रुचि सहायता ली है। और भक्ति की प्रधानता पर दृष्टि रख कर इन्होंने कथा प्रसङ्ग निजेच्छानुसार लिखा है जो निस्सन्देह अपूर्व है। इसीसे इस ग्रन्थ के भिन्न-भिन्न सोपानों का कथा वर्णन

जहाँ-तहां बाल्मीकीय तथा अध्यात्म रामायण से सर्वाङ्ग नहीं मिलता। अतएव इन्हें न किसी ग्रन्थ का अनुवादक ही कह सकते और न किसी का अनुगामी ही बता सकते। वरन् ये इसके स्वतंत्र सृष्टिकर्त्ता कहे जायेंगे।

इस ग्रन्थ के किस-किस कथा प्रकरण में—वाल्मीकीय तथा अध्यात्म रामायण वर्णित कथाओं से प्रभेद है, यद बात वाल्मीकी रामायण का परिच्छेद देखने से ज्ञात होगी।

जो लोग अन्य शास्त्रादि की बातों के इसमें समावेशित होने की बात को अप्रमाणिक और भूल बताते हैं, उनके कथन का उत्तर अभी दिया जा चुका है।

षष्ठ परिच्छेद

रामायण का वास्तविक नाम

यद्यपि यह अमूल्य ग्रन्थ 'तुलसीकृत रामायण', 'रामायण' तथा चौपाई के नाम से प्रसिद्ध है, परन्तु इसका यथार्थ नाम 'रामचरित मानस' है। जी ने स्वयम् ही कहा है :—

"रामचरित मानस यह नामा। सुनत स्रवन पाइय विस्रामा॥
रामचरित मानस मुनि भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥
त्रिविध दोष दुख दारिद दावन। कलिकुचाल कुलिकलुषनसावन॥
रचि महेश निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवासन भाषा॥
तातें 'रामचरितमानस' वर। धरेउ नाम हिय हेरि हरष हर॥"

रन्तु यह पूछा जा सकता है कि जब श्री महेश जी ने इस कथा को रचकर इसे अपने रखा और सुअवसर पाकर यह कथा उन्होंने श्री पार्वती जी से कही तब गोसाईं जी को कारी कैसे हुई। इसका उत्तर आगे की चौपाइयों में वर्त्तमान है :—

मु कीन्ह यह चरित सोहावा। बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा॥
ई शिव काग भुसुंडिहि दीन्हा। रामभगति अधिकारी चीन्हा॥
सन जागबलिक मुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥
मैं पुनि निज गुरु सन सुनि, कथा सो सूकर षेत।
समुझि नहिं तस बालपन, तब अति रहेउ अचेंत॥
कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा॥"

जी ने उसी कथा को अपने मन के प्रबोध के हेतु भाषाबद्ध करके अपने ामचरित मानस' रखा है। अपने मन के प्रबोध के ही हेतु क्यों? संसार के लिये इसकी अवतारणा हुई इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं।

गोसाईं जी कृत रामायण की कथा में पुराण तथा अन्य ग्रन्थ कथित कथाओं से जो कहीं भेद पाया जाता है उसका समाधान गोसाईं जी ने इन चौपाइयों में स्पष्ट कर दिया है :—

"नाना भांति राम अवतारा। रामायण सतकोटि अपारा ॥
कल्पभेद हरि चरित सोहाए। भांति अनेक मुनीसन्ह गाए ॥
करिय न संसय अस उर आनी। सुनिय कथा सादर रतिमानी ॥"

हम भी पाठकों से यही निवेदन करते हैं कि आप लोग अब रामायण वर्णित कथा का सारांश सादर सुनिये कि कवि ने प्रत्येक काण्ड में क्या-क्या कहा है।

सप्तम परिच्छेद

रामायण का विषय

बालकाण्ड

पहले सात श्लोकों में कवि ने वाणी, विनायक, भवानी, शंकर, गुरु, कवीश्वर (वाल्मीकि जी), कपीश्वर, सीता तथा रामचन्द्र की बन्दना करके ग्रंथ के आधार एवम् रचना का कारण कहा है। फिर पांच सोरठों में श्रीगणेश, विष्णुभगवान, कमलापति तथा शिवजी की बन्दना की गई है। तदनन्तर "बँदउ गुरुपद कंज, कृपासिंधु नररूपहरि। महामोह तमपुंज जासु बचन रवि कर निकर॥" यह सोरठा दिया हुआ है। पं० ज्वाला प्रसाद, पं० रामेश्वर भट्ट, महात्मा हरिहर प्रसाद जी, महात्मा सन्तसिंह प्रभृति टीकाकारों ने तथा ग्रउस साहब ने इस सोरठे के द्वारा 'गुरु की' बन्दना बताई है और सर्वसाधारण भी ऐसा ही समझते हैं। 'मानस मयंक' की टीका में इसके द्वारा गुरु की सूर्यवत् बन्दना और इन पांच सोरठों में पञ्चदेव की बन्दना लिखी है। 'मानस मयंक' के रचयिता पण्डित शिवलाल पाटक ने 'मानस अभिप्राय दीपक' में यह दोहा दिया है :—

प्रथम राम है विष्णुयुग, तीजै कमलाकान्त।
वन्दि तुरीय उमेश युत, गुरु रवि पद नत अन्त॥

इसके आधार पर उपर्युक्त सोरठा के द्वारा सूर्य की बन्दना मानी जाती है। सूर्यवत् गुरु की बन्दना में तो उतना हर्ज नहीं, परन्तु इससे गुरु की बन्दना सर्वथा उड़ा देना योग्य नहीं। महात्मा रामचरण दास जी ने भी इसमें गुरु की बन्दना मानी है और लिखा भी है कि हरि (सूर्य) अपनी किरणों से रात्रि को दूर करता है और गुरु अपने वचन किरणों से शिष्य का अज्ञानतम नाश करता है।

दूसरे सोरठों में भी कोई २ सूर्य्य की बन्दना बताते हैं कि बालक मूक तथा पंगु रहता है सूर्य्य अपने दिनों से उसका दोनों दोष दूर करते हैं। ग्रउस साहब ने इसके द्वारा सरस्वती की बन्दना बताई है।

फिर सज्जन असज्जन, देव दानव, इत्यादि की बन्दना कई पृष्ठों में होती चली गई है। इस बन्दना में दुरात्माओं पर व्यंग भी होता गया है। इस काण्ड की बन्दना बड़ी ही विशद तथा जगद्विख्यात है। इतनी लम्बी चौड़ी बन्दना अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं देखी जाती

इसके अनन्तर ग्रंथरचना का कारण, नाम माहात्म्य, ग्रंथरचना का समय कह के कवि ने रामायण रूपी मानसरोवर की अपूर्व छटा दिखलाई है जिसका वर्णन पूर्व ही हो चुका है। फिर रामायण की कथा की मानों सूची सी दी गई है और उसमें यह बात भी कही गई है कि रामायण में षट्ऋतुओं की बहार विद्यमान है :—

"हिम हिमसैल सुता-सिव-ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभुजन्म-उछाहू॥
बरनत रामबिबाह समाजू। सो मुदमंगलमय रितुराजू॥
ग्रीषम दुसह राम बन गमनू। पंथकथा पट आतप बरनू॥
बर्षा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमंगलकारी॥
रामराज सुख बिनय बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई॥"

इसके बाद श्रीयाज्ञवल्क्य और भरद्वाज का सम्वाद आरम्भ होता है और जो रामकथा महादेव जी ने पार्वती जी से कही थी, वही कथा याज्ञवल्क्य मुनि भरद्वाज जी को सुनाते हैं।

रामचन्द्र को प्रियवियोग में व्यथित-चित्त देख कर सती को ऐसा प्रबल मोह उत्पन्न हुआ था कि महादेव जी की बात पर भी विश्वास नहीं करके सीता जी का रूप धारण कर वे रामचन्द्र की परीक्षा करने गई थीं।

रामचन्द्र का प्रभाव [१] देखकर वह ऐसी सशंकित हुईं कि परीक्षा का यथार्थ हाल महादेव जी से कहने का उन्हें साहस नहीं हुआ। परन्तु महादेव जी ध्यान द्वारा सब हाल जान गये और उन्होंने मन ही मन यह प्रतिज्ञा की—'यह तन सती भेंट अब नाहीं' सती को इस प्रतिज्ञा का हाल 'जय महेश भलि भगति दृढ़ाई' इस गगन गिरा से विदित हो गया। रामायण में जो बात गोसाईं जी को किसी के मुख से कहलवाना अच्छा नहीं लगा है या जिसके कहलवाने की इन्हें सुविधा नहीं हुई है, वह बात आकाशवाणी द्वारा कहलवाई गई है, जैसे नाटकों में नेपथ्य की ओट में किया करते हैं। इसके कई एक उदाहरण रामायण में वर्तमान हैं।

महादेव जी सती को बहुत प्यार करते थे। इसी से उन के सती होकर पति की बातों में विश्वास नहीं करने और परीक्षा की बात छिपाने पर भी उन्हें प्रकट रूप से यह कहने का

१. प्रथम तो रामचन्द्र उन्हें पहचान गये, फिर लौटती समय उन्होंने रास्ते में चतुर्दिक ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि वन्दित रामचन्द्र को देखा। सब तो भिन्न-भिन्न रूप से दीख पड़े, परन्तु राम, सीता तथा लक्ष्मण का एक ही अपरिवर्तित रूप देखने में आया। इसमें कवि ने निस्सन्देह लक्ष्मण जी को भी अन्य देवताओं से श्रेष्ठ दिखलाया है। इसका आधार विष्णु पुराण तथा अध्यात्म के ये श्लोक प्रतीत होते हैं :—"सौमित्रो लक्ष्मणश्चैव सृष्टिसंहारकारकः। त्वमेव जलरूपेण सन्निधत्से जगद्धितम्॥ पञ्चभूतस्त्वमेवासि अग्नि स्त्वं च प्रजापतिः। शिवरूपेण संहर्त्ता विष्णुरूपेण पालकः। मम रूपेण संस्रष्टा एवं लोक स्थितिर्भवेत्।" —विष्णुपुराण।

चतुर्धात्मानमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक्। योगमायोऽपि सीतेति जनकस्य गृहे तदा। उत्पत्स्यते तया सार्द्धं सर्वं सम्पादयाम्यहम्। —अध्यात्म रामायण।

साहस नहीं हुआ कि 'मैंने तुम्हें परित्याग किया' और मन ही मन परित्याग करने पर भी खेद ही रहा। सती के सच्ची बात कह देने पर ये उन्हें इस तरह त्याग करते या नहीं, यह बात दृढ़ता पूर्वक नहीं कही जा सकती। और सती के मोह के प्राबल्य ही के कारण रामचन्द्र ने उन्हें प्रगट प्रभाव भी दिखलाया, परन्तु उस पर भी कदाचित उन्हें पूर्णतया प्रबोध नहीं हुआ और इसीसे दूसरे जन्म में भी नम्र ही भाव से क्यों न हो, उन्होंने उसी सम्बन्ध में शिवजी से फिर प्रश्न उठाया।

शिवजी की प्रतिज्ञा के कुछ काल पीछे अपने पिता के घर यज्ञशाला में शिवजी का भाग न देख और उनका अपमान समझ सती ने योगाग्नि में शरीर त्याग कर हिमाचल के घर पुनः पार्वती नाम से जन्म धारण किया, और नारद के उपदेश से तप करके विवाह द्वारा अपने पूर्व पति महादेव जी को फिर प्राप्त हुईं। इसी के मध्य में देवतों के विनय से कन्दर्प महादेव जी का अविचल ध्यान भङ्ग करने गया है जिसमें कि वे पार्वती से विवाह कर सकें, और परहित-साधन में शिवजी की कोपाग्नि में भस्म हुआ है।

कवि ने महादेव जी की विचित्र बरात का अच्छा चित्र खींचा है। यह बरात देखकर बालकवृन्द तो पहले ही प्राण लेकर पलायमान हुए थे, परिछन के समय स्त्रियां भी विकट भेषधारी महादेव को देख जान लेकर भागीं और मैना पार्वती को गोद में लेकर नाना प्रकार से विलाप कलाप करने लगीं।

मैना का विलाप स्त्री-स्वभाव-सुलभ था। वह कितनी ही दृढ़ चित्त क्यों न हों, थीं आखिर स्त्री ही। अपनी सुकुमार सुन्दर सुता का ऐसा वर देख उनका दुखित होना स्वाभाविक था, विशेषतः जब कि उन्होंने पहले ही अपने पति से कह दिया था कि "मुनि की बातें मेरी समझ में नहीं आईं; अच्छा घर, वर, कुल देख कर कन्या का विवाह कीजिये जिसमें आगे उर में दाह न हो।" और उन्होंने पार्वती को तप करने की सम्मति हिमाचल के यह कहने पर ही दी थी कि 'सुन्दर सब गुननिधि वृषकेतू।।'

अंगरेजी भाषा के आदि कवि चौसर (Chaucer)[1] के समकालीन मैथिल कवि विद्यापति ने भी, जिन्हें बहुत से लोग शिवभक्त मानते हैं, एक पद में मैना से ऐसा ही विलाप कराया है :—

"हम नहिं आजु रहब यहि आंगन, जो बुढ़ होयत जमाइ गे माई। एकत वइरि भेला विहि विधाता, दोसरे धिआकर बाप ॥ तीसरे वइरि भेला नारद बाभन, जे बुढ़ आनल जमाई गे माई॥ पहिलुक बाजन डामरू तोरब, दोसरे तोरब रून्डमाला। वरद हांकि बरिआत बेलाइब, धिआ ले जाइब पराई गे माई॥ धोती लोटा-पतरा-पोथी, एहो सब लेवन्हि छिनाय। जौ किछु बजता नारद बाभन, दाढ़ी धै घिसिआइब गे माई।।"

---

१. समय १३२८—१४०० ईस्वी।

गोसाईं जी ने परिछन होने नहीं दिया है, विद्यापति ने चौका पर बैठा कर महादेव जी का अपूर्व रङ्ग दिखलाया है—

"बैसल महादेव चौका चढ़ि। जटा छिरिआओल माडव भरि॥ विधि करु बिधि करु विधि करु विधि करु। विधि न करै से हर हो हठ धरु॥ विधिए करेते हर हो घुमि खंसु। संसरि खसल फनि श्री गौरी हँसु॥"

बिहार के ग्रामीण गीतों में भी ऐसा ही देखा जाता है :—

डिमिर डिमिर डमरू वाजे सिवजी भइले असवार।
कहवां के ए दइआ उम्मत आईल, आइल तजलो न जाई।
परिछे वहर भइली सासु मदागिनी सरपे छोड़ेला फुफुकार।
वसतर तजि के पराइल मदागिनी ना भेल देह के सम्हार॥
धिआले मैं उड़व धिआलैं मैं बूड़व धिया लैं मैं खिलवों पतार।
अइसन तपसिआ के धिआ ना मैं देवों वरु गौरा रहि हैं कुआंर॥
कलसा फोरव मांडो तोरव चउमुख देवहूँ बुताइ॥

इससे विदित होता है कि शिवपुराण, कुमार संभव आदि ग्रन्थों में महादेव जी का विवाह सुन्दर रीति से वर्णन होने पर भी गोसाईं जी के वहुत काल पूर्व से महादेव जी के विवाह-सम्बन्ध में ऐसा वर्णन होता आता है और गोसाईं जी ने उसी का अनुकरण किया है। जो हो, पाठकों को जो आनन्द महादेव जी का विवाह-विवरण पाठ में मिलता है वह रामचन्द्र के विवाह-वर्णन में नहीं मिलता।

अब देखिये, उधर तो महादेव जी की बरात उस प्रकार से आई और इधर सब पहाड़, सागर, वन, नदी, तालाब इत्यादि सुन्दररूप धारण कर हिंमाचल के घर नेवता पुराने आये। यहां निश्चय गोसाईं जी का अभिप्राय पर्वतादि के अधिष्ठाता देवतों ही से है, नहीं तो नदी, पहाड़ क्या शरीर धारण करेंगे?[१]

---

१. संस्कृत दार्शनिकों के विचार में प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ के अधिष्ठाता देवता हैं इसीसे निर्जीव पदार्थों का भी इस प्रकार से वर्णन किया जाता है जैसे उनमें सजीव पदार्थों के गुण वर्तमान हों। वेदान्त के अनुसार यह संसार जो केवल परमात्मा का प्रकाश स्वरूप है निश्चय सजीव है एवम् चैतन्य प्राणी के गुणों से सम्पन्न है। तमस् के आधिक्य से कितने पदार्थ निर्जीव तथा चेतना रहित बोध होते हैं। परन्तु सच्ची बात यह है कि उन में चैतन्यता का सर्वथा अभाव नहीं होता। किन्तु यह गुण उनमें अदृश्य तथा गुप्त रूप से वर्तमान रहता है। युनानी भाषा में Nymphs, Fairies, Naird, Elves, Muses आदि भिन्न भिन्न विषय के अधिष्ठात्री देवता माने जाते हैं। पाठक वृन्द इस अधिष्ठात्री देवता की बात को आगस्ट कामते (August Compte) के दार्शनिक सिद्धान्त (Metaphysical Theory) से मिलान करेंगे। डाक्टर जे० सी० बोस ने भी पूर्णतया सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक अणु परमाणु में भी चैतन्य वर्तमान है।

विवाह के पीछे शिवजी का पुनः साथ होने पर पार्वती जी ने रामचरित्र सम्बन्धी कई एक प्रश्न किया है जिन प्रश्नों में कवि ने रामायण-वर्णित विषयों की एक प्रकार से सूची दी है। उन प्रश्नों के उत्तर में शिवजी ने काग भुसुंडी और गरुड़ के सम्वाद द्वारा रामचरित्र वर्णन किया है। इसी स्थान से वस्तुतः गोसाईं जी की रामायण आरम्भ होती है।

याज्ञवल्क्य ने पहले महादेव जी की कथा विस्तार पूर्वक कह कर जांच लिया है कि श्रोता को रामकथा में सच्चा प्रेम है या नहीं, एवम् वे इसके सुनने के अधिकारी हैं या नहीं' क्योंकि-"बिनु छल विश्वनाथ पद नेहू। रामभगत कर लच्छन एहू॥" भरद्वाज मुनि परीक्षा में अव्वल दर्जे में पासकर गये है। उनका योग्यता-पत्र देख लीजिये—

"सम्भुचरित सुन सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुखपावा॥
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयननीर रोमावलि ठाढ़ी॥"
और "प्रेम बिबस मुख आव न बानी।"

यह देख याज्ञवल्क्य जी को महानन्द हुआ है कि श्रोता अच्छे मिले और पार्वती जी के प्रति शिवजीकथित-कथा वे भरद्वाज जी को सुनाने लगे हैं।

रामकथा

पहले शिवजी ने हरि अवतार का साधारण कारण कहा कि :—

"जब जब होई धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहीं बरनी। सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब धरि प्रभु विविध शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥"[१]

फिर दो चार बार के रामावतार का विशेष कारण कहा गया है। यथा, जय विजय का शाप, निज पातिव्रत भंग होने से जालन्धर की स्त्री का शाप देना, नारदमोह, स्वायम्भुवमुनि और शतरूपा का वरदान तथा राजा भानुप्रताप का बिप्रशाप।

काल पाकर भानुप्रताप तथा उसका भाई अरिमर्दन रावण और कुम्भकर्ण, उसका सचिव धर्म्म रुचि विभीषण एवं उसके परिवार के अन्य लोग तथा नौकर चाकर रावण के पुत्र पौत्र आदि होते गये। रावण सपरिवार बड़ा पराक्रमी हुआ, यहाँ तक कि "भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न स्वतंन्त्र।" और तब उसकी आज्ञा पाकर उसके वंशधर तथा अनुचर घोर उपद्रव मचाने लगे और धर्म्मकार्यों में बाधक हो ब्राह्मणों को बेतरह सता कर मानों शाप का बदला चुकाने लगे; क्योंकि ब्राह्मणों ही ने बिना विचारे निरपराधी भानुप्रताप को शाप दिया था। गोसाईं जी ने उस प्रकरण में निशिचर की अच्छी परिभाषा दी है :—

"मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
जिनके यह आचरण भवानी। ते जानहु निसिचर सम प्राणी॥"

---

१. श्रीमद्भागवतगीता, अध्याय ४, श्लोक ७-८ देखिये।

इन निशिचरों का उत्पात इस सीमा को पहुँचा कि धरणी व्याकुल हो धेनु रूप धारण कर देवतों के पास जाकर [1] अपना दुःख रोने लगी और ब्रह्मा के देवतों के संग स्तुति करने पर यह आकाशवाणी हुई कि "तुमलोग डरो मत, कश्यप अदिति को हमने पहले ही बर दिया है और वे लोग दशरथ तथा कौशल्या होकर अवध में हैं, हम अंशों के सहित उनके घर मनुज शरीर धारण कर नारद की सब बातें सत्य करेंगे।" अर्थात् नारी-वियोग दुख सहन कर निशिचरों का नाश करेंगे।

इस आकाशवाणी से स्पष्ट ध्वनित होती है कि गोस्वामी जी ने इस रामायण में कई कल्पों के रामावतारों की कथाएँ यथारुचि सम्मिलित की हैं, क्योंकि वहां तो श्री महादेव जी ने स्वायम्भुवमनु तथा शतरूपा के समय की कथा आरम्भ की हैं, इधर भानुप्रताप के रावण होकर उत्पात मचाने पर ब्रह्मा ने स्तुति की है और कश्यप तथा अदिति के घर जन्म ग्रहणकरी नारद का वचन सत्य करने की आकाशवाणी होती है। इसीसे गोसाईंजी ने स्वयम् कल्पभेद की चर्चा की है।

गगन गिरा के अनन्तर अवधपति दशरथ ने वयोवृद्धकाल में गुरुवशिष्ठ की सम्मति से श्रृंगी ऋषि द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराया है। चरु लिये स्वयम् प्रकट होकर अग्नि ने उसे यथायोग्य रानियों को बाट देने की आज्ञा की है। दशरथ जी ने आधा कौशल्या जी तथा चौथाई कैकेय को स्वयम् दिया और फिर शेष का दो भाग करके एक एक भाग पूर्वोक्त दोनों रानियों के द्वारा सुमित्रा को दिलवाया।

कालिदासकृत रघुवंश [2] में भी कौशल्या तथा कैकेयी के ही द्वारा सुमित्रा को चरु का भाग दिलाया गया है। परन्तु वाल्मीकिजी ने तीनों रानियों को स्वयम् दशरथ ही के हाथ से चरु दिलाया है—

"कौशल्यायै नरपतिः पायसार्द्धं ददौ तदा। अर्द्धादर्द्धं ददौ चापि सुमित्राय नराधिपः॥ कैकेय्यै चावशिष्टार्द्धं ददौ पुत्रार्थकारणात्। प्रददौ चावशिष्टार्द्धं पायसस्यामृतोपमम्। अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुनरेव महामतिः॥"

इस श्लोक से यह भी देखा जाता है कि रामचन्द्र जी चरु के आधे अंश से, लक्ष्मण जी उसके चौथाई अंश से, एवम् भरत तथा शत्रुघ्नजी प्रत्येक उसके आठवें अंश से हुए।

परन्तु रामायण-तिलक ग्रंथ में चरुविभाग सम्बन्धी श्लोक इस प्रकार से लिखा हुआ है और इससे गोस्वामी-लिखित विभाग ठीक मिल जाता है—

"इत्युक्त्वा प्रददौ तस्यै हविषोऽर्द्धं नराधिपः। स्वयमेव समं कृत्वा भागं भागवतां वरः॥ अर्द्धादर्द्धं ददौ चापि कैकेय्यै स नराधिपः। चतुर्भागं द्विधा कृत्वा सुमित्रायै ददौ तदा॥"

---

१. भागवत में भी लिखा है कि धरणी धेनुरूप धारण कर देवतों के पास दुःख रोने गई थी; और सबों ने ईश्वर की स्तुति की थी —इत्यादि।

२. सर्ग १०, श्लोक ५४, ५५ और ५६।

अनन्तर इस प्रकार रानियों की गर्भस्थिति होने पर[१] यथा समय श्री राम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न चारों भाइयों का प्रादुर्भाव हुआ है। श्री रामचन्द्र के प्रादुर्भाव का समय जान ब्रह्मादि देवों ने आकर स्तुति की है और रामचन्द्र ने चतुर्भुज रूप से माता को दर्शन दिया है।[२]

कवि ने चारों भाइयों की बाललीलादि की सुन्दर छवि दर्शाई है। इसी लीला के मध्य में रामचन्द्र ने मुस्कुराकर अपने में अखण्ड अद्भुत रूप दिखलाया है।[३] कुछ काल बीतने पर विश्वामित्र जी राम लक्ष्मण को दशरथजी से अपने यज्ञ की रक्षा के लिये मांगने आये हैं। दशरथ जी ने रामचन्द्र को देने में पहले कुछ इधर उधर किया है,[४] परन्तु वशिष्ठजी के समझाने से निज सन्देह दूर होने पर उन्होंने दोनों भाइयों को मुनि के संग कर दिया है।"

ताड़का तथा सुबाहु को ससैन्य बध करके यज्ञ रक्षा के अनन्तर विश्वामित्र एवं अन्य मुनियों के संग रवाने होकर गंगा के दक्षिण तट पर अहिल्या[५] का उद्धार करते हुए रामचन्द्र

---

१. रघुवंश के अनुसार गर्भस्थिति होने पर ये रानियां स्वप्न देखा करती थीं कि शंख, चक्र गदा, पद्म धारण किये ह्रस्वकाय पुरुषगण उनकी रक्षा कर रहे हैं, गरुड़ उन्हें आकाश में ले जाते हैं, लक्ष्मी उनकी सेवा करती हैं, ऋषि समूह वेदमन्त्र पाठ द्वारा उनकी पूजा करते हैं।

२. श्रीकृष्ण के प्रगट होने के समय भी देवतों ने आकर स्तुति की है। और उन्होंने भी चतुर्भुज रूप से शंखचक्रादि धारण किये दर्शन दिया है। १० स्कन्ध, अ० २/३।

३. श्रीकृष्ण ने भी एक बार ऐसा ही किया है। १० स्कन्ध, अ० ७।

४. बाल्मीकीय रामायण में तो मुनि का रामचन्द्र को मांगना सुन कर दशरथ जी मूर्च्छित हो गये हैं और रामचन्द्र के देने में सम्मत नहीं हुये हैं। इस पर मुनि ने ऐसा कोप किया है कि पृथ्वी कांपने लगी है। तब वशिष्ट जी समझा बुझाकर राजा को राह पर लाये हैं।

भट्टी में भी ऐसा ही लिखा हुआ है—"स शुश्रुवांस्तद्वचनं मुमोह राजा सहिष्णुः सुतविप्रयोगम्। अहंयुनाथ क्षितिपः शुभंयुरूचे वचस्तापसकुञ्जरेण॥"

किन्तु रघुवंश में दशरथ ने बिना कुछ कहे राम लक्ष्मण को मुनि के साथ कर दिया है—"कृच्छ्रलब्धमपि लब्धवर्णभाक् तं दिदेश मुनये सलक्ष्मणम्। अप्यसुप्रणयिनां रघोःकुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता।" सं०११, श्लोक २।

५. बहुत से लोग कहते हैं कि अहिल्या बगसर में तारी गई। बगसर के पश्चिम अहिरौली गांव में अहिल्या के नाम पर एक मन्दिर भी बना हुआ है। यह बात रामचरितमानस या बाल्मीकीय से सिद्ध नहीं होती। बाल्मीकि ने लिखा है कि लोग सिद्धाश्रम से उत्तराभिमुख चलकर पहले दिन सायंकाल में सोन किनारे ठहरे और दूसरे दिन मध्यान्ह में गंगातट पर पहुँच कर वहीं विराजमान हुये। अर्थात् सिद्धाश्रम से डेढ़ दिन में गंगा के कूल पर पहुँचे। जब बगसर को विश्वामित्र का स्थान होना बताते हैं, तो वहां से अहिरौली आते न डेढ़ दिन ही लगेगा और न सोन ही पार होना होगा; और अहिरौली सिद्धाश्रम का ही भाग होगा।

सब के सहित जनकपुर पहुंचे हैं और वहां की शोभा देख दोनों भाइयों को बहुत आनन्द हुआ है।

कवि ने जनकपुर की छवि विस्तार पूर्वक वर्णन की है :—

"वापी कूप सरित सर नाना। सलिल सुधासम मनि सोपाना॥
गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा। कूंजत कल बहु बरन बिहंगा॥
बरन बरन बिकसे बन जाता। त्रिविध समीर सदा सुख दाता॥

सुमन-बाटिका बाग बन, बिपुल बिहंग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवित, सोहत पुर चहुँपास॥

बनइ न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहंइ लोभाई॥
चारु बजार विचित्र अँबारी। मनिमय विधि जनु स्वकर संवारी॥
धनिक बनिक वर धनद समाना। बैठे सकल वस्तु लै नाना॥
चौहट सुन्दर गली सुहाई। संतत रहहिं सुगंध सिंचाई॥
मंगलमय मन्दिर सब केरे। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे॥
पुर नर नारि सुभग सुचि संता। धरमसील ज्ञानी गुनवंता॥
अति अनुपम जहं जनक निवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू॥
होत चकित चित कोट बिलोकी। सकल भुवन सोभा जनु रोकी॥

धवल धाम मनि पुरट पट, सुघटित नाना भाँति।
सिय निवास सुन्दर सदन, सोभा किमि कहि जात॥

गोस्वामी जी ने अध्यात्म के अनुसार गंगा के दक्षिण तट पर अहिल्या का उद्धार कराया है। सूरदास ने शृंगवेरपुर में बन जाते समय यह कार्य्य होना कहा है : "गंगातट आए श्रीराम। तहां पषान रूप पग परसी गौतम ऋषि की बाम॥" इत्यादि (बाबू राधाकृष्णदास सम्पादित 'सूरसागर', पृ० ७३ देखिये।)

बाल्मीकि जी ने गंगा पार होने पर तिहुंत में अहिल्या का उद्धार कराया है। लोग उस स्थान का नाम अहियारी बताते हैं। छपरा के गोदना में गौतम का तपस्थान मानते हैं। और वहीं अहिल्या का तरना कहते हैं।

जबतक गंगा सरयू तथा गंगा सोन का तत्कालीन संगम स्थल एवं उन नदियों की उस समय की प्रवाहगति दृढ़रूप से प्रमाणित न हो यह बात निश्चय नहीं कही जा सकती कि अहिल्या का कौन स्थान था, परन्तु वह था गंगा पार ही, इसमें सन्देह नहीं।

बाल्मीकीय तथा अध्यात्म में अहिल्या के शिला होने, रामचन्द्र का उन्हें पैर से स्पर्श करने तथा उनके पतिलोक जाने की बातें नहीं है। इसका विवरण बाल्मीकीय रामायण के प्रकरण में त्रिंशत परिच्छेद खंड २ देखिये।

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा।।
बनी बिसाल बाजि गज साला। हय गय रथ संकुल सब काला॥
सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृप गृह सरिस सदन सब केरे।।
पुर बाहिर सर सरित समीपा। उतरे जहं तहं विपुल महीपा।।
देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भांति सुहाई॥
कौसिक कहा मोर मन माना। यहां रहिय रघुवीर सुजाना।।"

विश्वामित्र के आगमन का समाचार पाने पर जनक जी आकर उनसे सप्रेम मिले हैं, दोनों भाइयों की अलौकिक शोभा देख अति आह्लादित तथा मोहित हुये हैं और इन लोगों का मुनि के साथ एक सुन्दर सदन में डेरा दिलवाया है। नगरवासी नर-नारियां भी इनका सहज सौन्दर्य्य देख चकित-चित्त हो गईं हैं। बाल्मीकीय रामायण, भट्टिकाव्य तथा रघुवंश सबों ने जनसमुदाय के मोहित होने की बात कही है।

"इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ। अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ। यदृच्छयैव गां प्राप्तौ देवलोकादिवापरौ।। भूपयन्ताविमं देशं चन्द्रसूर्य्यौ विवाम्बरम्" ।—(रामायण)

"इतःस्म मित्रावरुणौ किमेतौ किमश्विनौ सोमरसं पिपासू। जनं समस्तं जनकाश्रमस्थं रूपेण तावौजिहतां नृसिंहौ ।।"—भट्टी।

"तौ विदेहनगरीनिवासिनां गां गताविव दिवः पुनर्वसू। मन्यते स्म पिबतां विलोचनैः पक्ष्मपातमपि वञ्चनां मनः ।।"—रघुवंश।

जिस शोभा पर महायोगेश्वर महादेव मोहित रहते थे उसपर राजर्षि तथा जनसमुदाय का मुग्ध होना कौन आश्चर्य्य की बात है!

उस दिन दोनों भाई नगर तथा धनुष-यज्ञशाला देखने गये और दूसरे दिन भोर में विश्वामित्र की पूजा के लिये फूल लाने के समय जनकजी की फुलवारी में रामचन्द्र और सीताजी का दूर ही से परस्पर संदर्शन हुआ है।

भावना के अनुसार इनकी मूर्त्ति दीख पड़ी[1] और सब राजों का मानमर्दन-पूर्वक धनुष तोड़कर रामचन्द्रने सीताजी से जयमाल पाई है। इस समुच्चय प्रकरण के वर्णन में कवि ने प्रबल कविता शक्ति दिखलाई है। रघुवर बालपतङ्ग के उदयगिरि-मञ्च पर उदय होने से कैसा स्वाभाविक दृश्य दीख पड़ा है और जहाज डूबने का रूपक एवम् सीता शोभा वर्णन भी क्या ही मनोहर है।

धनुष-भङ्ग होने पर परशुरामजी वहां सक्रोध पहुंचे हैं जिनको देखते ही सब वीर राजों का प्राण-पखेरू कायापिंजड़े में छटपटाने लगा है। लक्ष्मण जी ने उन्हें बेतरह फटकारा है। अन्त में वे रामचन्द्र को परब्रह्मावतार जानकर उन्हें अपना धनुहा दे बिदा हो गये हैं।

लक्ष्मणजी में वीरता तथा बाल-स्वभाव-सुलभ चञ्चलता भी थी। इसीसे इन्हें किसी का आंख दिखाना और अनौचित्य (विशेषतः जब वह रामचन्द्र के सम्बन्ध में हो) सहन नहीं हो सकता था। इसीसे इन्होंने परशुराम जी को बेतरह फटकारा और जब परशुराम जी क्रोध के आवेश में जनक से कह रहे थे कि 'धनुष तोड़ने वाले को तुरत दिखाओ, नहीं तो तुम्हारा राज उलट देंगे और सब राजे एक ओर से मारे जायंगे', एवम् जब उनकी अवस्था देख तथा करणी स्मरण कर सब क्षत्रिय महिपालों का हृदपिंड कांप रहा था तब कवि यदि लक्ष्मण जी को नहीं खड़ा करते तो न जाने उनकी रोषाग्नि में कितने निरपराधी राजों को तत्काल ही भस्म होना पड़ता, क्योंकि उनके भय तथा रामचन्द्र के स्नेह से जनक को यह कहने का साहस नहीं होता कि रामचन्द्र ने धनुष तोड़ा है और दूसरे लोगों का भय से आप ही प्राण सूख रहा था।

और इस अवसर में लक्ष्मण जी की उद्दण्डता तथा निरंकुशता का विशेष कारण यह है कि परशुराम जी ने पहले तो जगद् गुरु जनक राजा को कुवाक्य कहा और धमकी दी। फिर रामचन्द्र से उन्होंने यह कहा—"सुनहु राम जिनसिव धनु तोरा। सहस बाहुं सम सो रिपु मोरा।। सो बिलगाउ बिहाइ समाजा।" ऐसी कठोर बानी रामचन्द्र के प्रति, जिसे वे अपना सर्वस्व समझते थे, उन्हें कब सह्य होती?

ऐसी अवस्था में रामचन्द्र का अपमान देख इनके हृदय का क्या भाव हुआ होगा वह वर्णनातीत है। जो राम का शत्रु वह इनका कोटि गुण अधिक शत्रु। रामचन्द्र से सामना होने के पूर्व वह एक हाथ इनसे बल का परिचय कर ले। इसीसे ये 'बोले परसु धरहिं अपमाने।' अपमान का उत्तर अपमान। इनकी धृष्टता तथा बीरतासनी बाणी सुनकर पुरजन वा जनक जी भयवश भले ही अनुचित और खोटा कहें पर इनको डर किस बात का:—"क्षत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुलकलंक तेहि पावर जाना।। कहौं सुभाव न कुल प्रसंसी। कालहु

---

१. मथुरा में कंस की सभा में कृष्णचन्द्र को भी लोगों ने अपनी-अपनी भावना के अनुसार देखा था, अर्थात् श्रीकृष्ण मल्लों को वज्र के समान, मनुष्यों को मनुष्य श्रेष्ठ, नारियों को मूर्त्तिमान कामदेव, गोपों को स्वजन, दुष्ट राजों को शासनकर्त्ता, माता-पिता को पुत्र, कंस को मृत्यु, गंवारों को गंवार, योगियों को परमतत्व, वृष्णीगण को परम देवता स्वरूप जान पड़े थे।

"पूछे

जहं न

और फिर उनके

से भिन्न २ धर्म्मकार्य्यों

हृदय में आप निवास की

वहीं पर्णकुटी बनाकर तीन

बालमीकि जी

कौशल्या, सीता, राम,

मार्गस्थ गांवों के

हुआ है, इन लोगों के

में वे परस्पर कैसी

सम्भाषण किया है इन

उसका वर्णन नहीं हो सक

पूज्य पति और

शोभा हो रही है—'जनु

और 'ब्रह्म जीव बिच मा

उधर रामचन्द्र ने

पर दशरथ ने रामवियोग

तथा रामबनगमन का

मंथरा को देखते ही आ

करत पुकारा ॥" जिससे

से रुधिर बहने लगा है तो

लगे हैं और उसे अपनी क

फिर भरतजी कौश

हुये। तदनन्तर सपरिवार

बेरपुर से पांवप्यादे चल

"झलका झलकत पायन

जनकजी भी सपरिवार

उन्होंने अपना खड़ाऊं देकर

"प्रभु करि कृपा

चरनपीठ क

संपुट भरत

का पक्ष करके कहा है :—"वेष बिलोकि कहेसि

ठार बान धनुधारी। भइ लरिकहिं रिसि बीर

वंस स्वभाव उतर तेहि दीन्हा ॥" इत्यादि।

ाईं जी ने मूर्त्तिमान बीररस के समान चित्रित

हनुमन्नाटक के समान परसुराम को सभा ही में

बखेड़ा मिट गया; दूसरे डींग लेनेवाले राजे भी

ाद के समय रामचन्द्र का गम्भीर नम्रस्वभाव भी

नुष तोड़ने ही में देख चुके थे और दोनों भाइयों

ा लट्टू हो रहे थे।

नन्दन से खूब बात चीत की है परन्तु गोसाईं जी ने

से उन्हें नहीं खड़ा कराया है।

भी जनकपुर ले गये हैं और उन्होंने बाल्मीकीय

वहां ले जाकर धनुष उठवाया है एवम् परशुराम

साईं जी ने ऐसा नहीं कराया है। बाण जानकी

हो धनुष है, सीता मेरी माइ।'[१] अतएव उसे

जिस रावण को ऐसा बलिष्ट और पराक्रमी

॥' और जिसके वशवर्ती ब्रह्मसृष्टि के सकल

भा में परशुराम द्वारा भयभीत तथा किसी अन्य

चारा होगा और उसके साथ किसी के अटपटी

थी।

न्द्र का जानकी से विवाह हुआ है। कवि ने

की बातों को विस्तारपूर्वक सुन्दर रीति से वर्णन

:—

ससिहि भूप अहि लोभ अमी के ॥"

:—

ा। ससिहि सभीत देत जयमाला ॥"

वहीं विवाह हुआ है और सब के अवध लौट

ार हुआ है। परिछन के समय के आमोद की

, धनुष भङ्ग तथा कई एक स्तुतियों की रचना

[१] २६।

भवभूति जी ने महावीर चरित्र में धनुष-यज्ञ ही से कथा आरम्भ की है और इनका कथा-वर्णन बड़ा ही विलक्षण है। अतएव उसे भी पाठकों को यहीं संक्षेपत: सुना देना हम अनुचित नहीं समझते।

उस ग्रन्थ के अनुसार जनकपुरी ही में ताड़का, मारीच और सुबाहु की घटना हुई है; परशुराम जी भी रावण के मंत्री माल्यवान ही के उद्योग से वहां आकर अन्त:पुर में जहाँ राम और सीता बैठी थीं पहुँच गये हैं। उस समय दशरथादि भी जनकपुरी में थे। परशुरामजी से एवम् राम, जनक, सतानन्द तथा वशिष्ठ प्रभृति सबसे खूब चखचुख हुआ है। सतानन्द परशुराम को शाप देने पर और जनक जी उन्हें बध करने पर उद्यत हुये हैं। अन्त में परशुराम ने रामचन्द्र द्वारा अपनी पराजय प्रसिद्ध की है।

माल्यवान की सम्मति से सूर्पनखा ने मंथरा में प्रवेश किया है। मंथरा कैकयी की चिट्ठी बर मांगने के लिये जनकपुर ही में दशरथ के पास लाई है। वहीं से लोग बन गये हैं। भरत को चरण पादुका भी वहीं मिली है।

सूर्पनखा की नाक, कान और ओठ भी काटा गया है। खरदूषणादि के बध के अनन्तर कबंध ने कहा है कि 'हमको रावण ही ने भेजा है और उस ने बालि को भी आपके विरुद्ध भेजा है।' इसी अवसर में सरमा नामनी एक तपस्विनी एक चिट्ठी लाई है कि बिभीषण सुग्रीव के यहाँ आये हैं और वहाँ सीता का कुछ आभूषणादि भी है।

बालि और राम ही से खुले मैदान युद्ध हुआ है और मरती समय उसी ने सुग्रीव को राम को सौंपा है।

अयोध्याकाण्ड

आदि में तीन संस्कृत श्लोकों में श्रीशिव तथा रामचन्द्र की वन्दना और एक दोहा में गुरु की बन्दना है। तब कथा आरम्भ होती है। दशरथ जी ने रामचन्द्र को युवराज पद देने के लिये सब तैयारियां की हैं। परन्तु अपनी दासी मंथरा की कुमंत्रणा से उनकी तीसरी रानी कैकयी ने रामचन्द्र के लिये चौदह वर्ष बनवास तथा भरत जी के युवराज-पद पाने के लिये राजा से बर प्राप्त कर लिया है। सीता और लक्ष्मण के विनयप्रेम के वश हो रामचन्द्र उन्हें भी साथ लेते गये हैं। श्रृंगबेरपुर[१] तक सुमंत राजमन्त्री भी साथ गया है। वहां से दोनों भाई मुनि-भेष धारण कर केवट के रामचन्द्र का पैर धो लेने के अनन्तर[२] निषाद और सीतासमेत गंगा पार हो प्रयाग में भरद्वाज मुनि का दर्शन एवं त्रिवेणी स्नान करते यमुना किनारे विराजमान हुए हैं। वहां से निषाद लौट आया है और ये लोग बाल्मीकि जी के आश्रम पर पहुँचे हैं।

रामचन्द्र के उनसे अपने रहने के निमित्त एक ऐसा स्थान बताने के लिये जहां उनके निवास से किसी जीव को कोई क्लेश न हो निवेदन करने पर मुनि ने कहा है :—

१. वर्तमान 'सिंगरामउ'।

२. 'अध्यात्म' में जनकपुर जाते समय केवट ने पैर धोया है।

"पूछेहु मोहिकि रहउं कहँ, मैं पूछत सकुचाउं।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहिं देखावउं ठाउँ॥"

और फिर उनके रहने का स्थान बताने लगे हैं। कवि ने बड़ी चतुराई से मुनि के मुख से भिन्न २ धर्म्मकार्य्यों का वर्णन कराते उनसे कहलवाया है कि ऐसे ही धर्मपरायण लोगों के हृदय में आप निवास कीजिये और फिर समयानुकूल वासस्थान चित्रकूट बताया गया है और वहीं पर्णकुटी बनाकर तीनों प्राणी रहने लगे हैं।

बाल्मीकि जी का यह निवास-निकेत-वर्णन बहुत उत्तम और उपदेश-गर्भित है। कौशल्या, सीता, राम, लक्ष्मण का वार्तालाप भी बड़ा ही शिक्षाप्रद है।

मार्गस्थ गांवों के नरनारियों को इनलोगों का पांवपयादे जाना देखकर कैसा आश्चर्य हुआ है, इन लोगों के प्रति उन सबों को कैसा सहज स्नेह जन्मा है और इन लोगों के विषय में वे परस्पर कैसी बातचीत करती गयी हैं एवं इनलोगों के संग भी उन्होंने कैसा सप्रेम सम्भाषण किया है इन बातों को कवि ने ऐसी सहज तथा सुन्दर रीति से वर्णन किया है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता।

पूज्य पति और प्रिय देवर के मध्य सीता जा रही हैं। अहा! उसकी कैसी अलौकिक शोभा हो रही है—'जनु मधु मदन मध्य रति लसई।' 'जनु बुध बिधु बिच रोहनि सोही।'; और 'ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।' वाह! क्या ही ललित उपमाएं हैं।

उधर रामचन्द्र ने चित्रकूट में आसन जमाया है, इधर सुमंत के अकेले लौट आने पर दशरथ नें रामवियोग में प्राण विसर्जन किया है। ननिहाल से बुलाये जाने पर पितु मरण तथा रामबनगमन का कारण सुनकर भरतजीने कैकेयी को बहुत धिक्कारा है और शत्रुघ्न ने मंथरा को देखते ही आगभभूका हो "हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुंह भरि महि करत पुकारा॥" जिससे उसका कूबर टूट गया, कपार फूट गया, दाँतें झड़ गये और मुंह से रुधिर बहने लगा है तौ भी आप उसे नखशिख खोटी समझ उसकी झोंटी पकड़ उसे घसीटने लगे हैं और उसे अपनी करनी का फल खूब ही चखाया है।

फिर भरतजी कौशल्या का सप्रेम आश्वासन कर पिता की अन्त्येष्टि क्रिया में प्रवृत्त हुये। तदनन्तर सपरिवार और ससैन्य रामचन्द्र को बन से लौटाने गये हैं। भरतजी शृंगबेरपुर से पांवप्यादे चलपड़े थे जिससे उनके पैरों में छाले पड़ गये थे। कवि कहते हैं:—"झलका झलकत पायन कैसे। पंकजकोस ओसकन जैसे॥" वाह! क्या ही सुन्दर उपमा है। जनकजी भी सपरिवार चित्रकूट पहुंचे हैं। रामचन्द्र लौट आने पर सम्मत नहीं हुये हैं और उन्होंने अपना खड़ांऊ देकर भरतजी को वहाँ से विदा किया है। गोस्वामीजी कहते हैं:—

"प्रभु करि कृपा पांवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥
चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजाप्रान के॥
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के॥

कुलकपाट कर कुसल करम के। विमल नयन सेवा सुधरम के ॥
भरत मुदित अवलंब लहेतें। अस सुख जस सियराम रहेतें ॥"

धन्य गोसाईं जी! धन्य! सुन्दर उपमाओं का मोती पिरोना आप ही का काम है; और यहाँ अनुप्रास की बहार क्या कुछ कम है?

इस काण्ड की कविता आद्योपान्त एक समान सुन्दर, मधुर, मर्मभेदी, मनोहारिणी तथा उत्कृष्ट हैं। यह काण्ड वैसे ही शिक्षाप्रद भी है। इससे मनुष्य बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकता है। इसकी रचना में गोसाईं जी ने पराकाष्टा की कवित्त्व-शक्ति दिखलाई है। रामायण में यह काण्ड सर्वश्रेष्ठ और प्रथम स्थान पाने के योग्य है। केवल इसी काण्ड को लेकर यह कहा जा सकता है कि देशीय या विदेशीय बहुत कम कवि इनसे टक्कर लगाने को समर्थ हो सकेंगे।

इस काण्ड को गोसाईं जी ने करुणारस से प्लावित कर दिया है। इसके पाठ के समय ऐसा ही कोई पाषाणहृदय मनुष्य होगा जिसके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित न होता हो, और जो प्रेमाश्रु का कवि को उपहार न देता हो। केवल दो स्थानों में वीररस की झलक देखी जाती है—एक तो जहाँ निषाद भरतजी को राह ही में रोकने और उनके सङ्ग युद्ध करने को कटिबद्ध हुआ है और दूसरे जहाँ लक्ष्मण जी ने भरत का वन में ससैन्य आना सुन कर उन से युद्ध करने की मनसा की है। यहाँ तो कवि ने सोते हुये वीररस को जगा दिया है :—

"उठि कर जोर रजायसु मांगा। मनहुं वीररस सोवत जागा ॥
वांधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासन सायक हाथा ॥
आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ ॥
राम निरादर कर फल पाई। सोवहु समर सेज दोउ भाई ॥
जिमि करिनिकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥
तैसेहि भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातऊँ खेता ॥
जौं सहाय कर संकर आई। तौं मारउ रन राम दोहाई ॥"

यही करुणारस पूर्ण अयोध्याकाण्ड राजभक्ति, पितृभक्ति जननी आदर, सुतस्नेह, भ्रातृप्रेम, पत्नीप्रीति आदिकी हम लोगों को सदा शिक्षा प्रदान करता आ रहा है।

इस काण्ड में कवि ने मंथरा तथा ग्रामीण स्त्रियों के मुँह में भी कविता रखी है। मंथरा—यथा, "भानु कमलकुल पोषणहारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा ॥", "जर तुम्हार चह सवति उषारी। रुँधहू करि उपाय बर बारी ॥"

ग्रामीण स्त्रियाँ—यथा, "राज कुअँर दोउ सहज सलोने। इन्हतें लहि दुति मरकत सोने ॥ स्यामल गौर किशोर बर, सुन्दर सुखमा ऐन। सरद सरवरी नाथ मुख सरद सरोरुह नैन ॥ कोटि-मनोज-लजावन हारे। सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे ॥"

मंथरा की जिह्वा पर तो सरस्वती विराजमान थीं, इस से उस के मुख से कविता निर्गत हुई। परन्तु ग्रामीण स्त्रियों के मुख से कविता कैसे स्फुरित हुई?

वार्तालाप के समय कवि ने भरत और रामचन्द्र से बारम्बार शपथ कराया है। शपथ की कोई आवश्यकता नहीं थी। इस के बिना भी उन लोगों की बातों पर निश्चय विश्वास हो सकता था। आज का समय नहीं था कि हाथ में हलफ़ लेकर ईमान धर्म्म से कहने पर भी कहनेवालों की बातों पर एतमाद नहीं किया जाता क्योंकि हलफ़ लेकर भी बहुत से लोग झूठ बोलने में लज्जित नहीं होते।

इस में कवि ने देवतों को बहुत स्वार्थी बताया है और देवराज के सम्बन्ध में तो यहाँ तक कहा है :—

"कपट कुचाल सीव सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू॥"

ऐसा कहने का कारण यह है कि देवतों ही ने अवधवासियों का चित्त चित्रकूट से उचाट दिया था। परन्तु जब गोसाईं जी ने आगे चलकर ऐसा कहा है :—

"सो कुचाल सब कहँ भइ नीकी। अवधि आस सम जीवन जी की॥
नतरु लषन सिय राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा॥"

तब बिचारे सुरगण और सुरराज पर इतना कुपित होना नहीं चाहता था।

इस काण्ड में पांच सात स्थानों को छोड़कर प्रायः आठ २ चौपाइयों पर एक दोहा और २४ दोहों के बाद प्रत्येक २५वें दोहे के स्थान में एक हरिगीतिका तथा एक सोरठा देखा जाता है। हरिगीतिका और सोरठा का नियम केवल एक जगह, पांचवां पचीसी में, भङ्ग हुआ है—अर्थात् १२५वें के बदले १२६वें दोहे के स्थान में हरिगीतिका और सोरठा आया है। और इसी पचीसी में अर्थात् ११०वें और १११वें दोहों की कुछ चौपाइयों में रामचन्द्रादि के यमुना पार होने पर तपसी के आगमन की कथा बेजोड़ घुस पड़ी है। बात यह प्रतीत होती है कि गोसाईं जी ने यह काण्ड ३२५ दोहों में, अर्थात् पूरे तेरह पचीसियों में रचा था, पीछे किसी ने अपनी ओर से तापस की कथा जोड़कर ११०वें दोहे का दो-दो दोहा बना लिया। मु० सुखदेव लाल ने तो इस तापस की कथा को अपनी टीका की पुस्तक से निकाल ही दिया है। परन्तु 'खङ्गविलासप्रेस' तथा 'काशीनागरीप्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायणों में यह कथा देखी जाती है जिस से राजापुरवाली रामायण में भी इस का होना सिद्ध होता है। परन्तु इस कथा के उस में रहने से तथा एक और कारण से जो पाठक 'रामचरितमानस के संस्करण' वाले परिच्छेद में देखेंगे, उसके स्वामी जी लिखित होने में सन्देह होता है, क्योंकि गोस्वामी जी ने इस कुढंगी रीति से कहीं कोई कथा नहीं घुसाई है।

रामचन्द्र निषादादी के साथ यमुना पार उतरे हैं। तीर वासी नर नारियां इन लोगों को देख और बन यात्रा की कथा सुन पछता रही हैं :—

"सुनी सविपाद सकल पछताहीं। रानीराय कीन्ह भल नाहीं॥
तेहि अवसर एक तापस आवा। तेज पुंज लघु बयस सुहावा॥"

और वह सब किसी को दंड प्रणाम कर :—

"पियत नयन पुट रूप पियूषा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूपा ॥"

इसके अनन्तर लिखा है :—

"ते पितु मातु कहहु सखी कैसे। जिन्ह पठये वन बालक ऐसे ।;"

इस प्रकरण के देखने ही से भान होता है कि 'मुनि सविषाद' इत्यादि—इस चौपाई को 'ते पितुमातु' वाली चौपाई से सहज सम्पर्क है और दोनों के साथ साथ होने से विषय सम्बन्ध मिलता है। इन दोनों के मध्य में ८ चौपाइयों और एक दोहा में एक अन्य कथा घुसा देना सर्वथा अनुपयुक्त है। गोसाईं जी ऐसा कदापि नहीं किये होंगे।

और उस तपसी ने सिवाय दंड प्रणाम के कुछ किया भी नहीं है। उस तापस के सम्बन्ध में टीकाकारों की विचित्र कल्पनाएँ देखिये। (१) स्वयं गोसाईं जी नगर निवासियों का दौड़े आना लिखकर ध्यान में डूबे यमुना किनारे पहुँच दंड प्रणाम कर आये और जो प्रसंग लिखकर ध्यान में डूबे थे उस के आगे हनुमान जी ने उन के दंड प्रणाम का हाल लिख दिया। और गोसाईं जी उसे मिटा न सके। (२) रामचन्द्र का रावणवध का संकल्प शरीर धारण कर उन्हें याद दिलाने आया। (३) चित्रकूट ही शरीर धारण कर अगुवानी करने आया। (४) तेजपुंज और भूषा होने के कारण लोग इसे तपसी तनधारी अग्नि बताते हैं। यह इस वास्ते आ धमका कि अब निषाद को रामचन्द्र फेर देंगे, मार्ग में तीन का जाना अशुभ है, हम अब साथ साथ जायंगे। और बराबर साथ रहा, इसी से सीताजी इसे सौंपी गईं (तुम पावक मंह करहु निवासा), सुग्रीव के साथ मित्रता के समय साक्षी हुआ और लंका में सीता अग्नि में शोधी गईं। (५) यमुना किनारे अगस्त्य का एक शिष्य रहता था वह दर्शन करने आया।

किसी २ संस्करण में तपसी की कथा के बाद यह चौपाई है—"उर धरि धीर रजायसु पाई। चले मुदित मन अति हरसाई ॥" इससे तो तपसी के साथ जाने की बात स्वयं रद होती है। और 'मानस मयंक' भी इसकी पुष्टी करता है। उस के अनुसार गालव का पुत्र आया था और दंड प्रणाम कर निषाद के साथ ही लौट गया। परन्तु पूर्वोक्त दोनों संस्करणों में (अतएव राजापुरवाली रामायण में) यह चौपाई नहीं है, अतः टीकाकारों का कथन विचारणीय है।

गोसाईं जी के ध्यान की बात से और इस से कुछ सम्बन्ध नहीं। यह घटना उस समय की कही गई है जब गोसाईं जी के इस संसार में रहने का कोई पता भी नहीं बता सकता। यदि इनके ध्यान ही की बात है तब यह निश्चय हनुमान जी कृत छेपक ही है। इस से तो हमारे कथन का पूरा समर्थन होता है।

दूसरी व्याख्या बालकों की गप है। रामचन्द्र भुलक्कड़ थोड़े थे। आकाशवाणीवाली बात याद रही कि मनुजशरीर धारण किया और अब स्मरण कराने की आवश्यकता हुई। और फिर इस शरीर में तो अभी उन्होंने प्रतिज्ञा भी नहीं की थी, आगे करेंगे।

चित्रकूट अगुआनी करने आया; पंचवटी क्यों नहीं आई ? कामदनाथ आये, अम्बकनाथ क्यों नहीं आये ? क्या पंचवटी तथा अम्बकनाथ इन्हें परब्रह्म परमेश्वर नहीं जानते थे ।

यदि पथ में तीन पथिकों के साथ चलने का दोष निवारण करने के हेतु अग्नि शरीर धारण कर यहां से साथ हुआ तो सीता अपहरण के अनन्तर ऋषमूकपर्वत पर्य्यन्त जाने तक तीन का दोष कैसे निवारण हुआ ? और सीताहरण इन्हीं महात्मा के साथ रहने के समय हुआ। उसे क्या शुभकार्य्य, कहियेगा ? लंका में सीताजी के परीक्षार्थ लक्ष्मणजी ने अग्नि प्रगट किया था । साक्षी के लिये अग्नि वा किसी देवता को शरीर धारण कर रामचन्द्र के साथ वर्षों बन बन घूमने की आवश्यकता नहीं थी।[1] समय पर मंत्र द्वारा उनका आवाहन हो सकता था और ऐसाही आज भी विवाहादि के समय हुआ करता है और 'तुम पावक मंह करहु निवासा' के 'मंह' शब्द से यह प्रतिपादित नहीं होता कि वे किसी शरीरधारी व्यक्ति के चार्य में दी गईं । अग्नि में प्रवेश के लिये तो लंका के समान वहां भी अग्नि प्रगट किया जा सकता था और सौंपने के लिये भी समय पर मंत्र द्वारा अग्नि का आवाहन हो सकता था । रही अगस्त्य के शिष्य की बात, सो स्वाभाविक तथा साम्भाविक है । परन्तु तौभी इसका उत्तर नहीं मिलता कि यह कथा बेजोड़ कैसे घुसी । गोसाईंजी को तो किसी पात्र को इस कुढंगपने से अपनी रचना में प्रवेश कराते कहीं नहीं देखते ।

इस काण्ड को किसी २ रामायण प्रकाशक ने 'अवधकाण्ड' तथा 'आरण्य' को 'बनकाण्ड' लिखा है । काण्डों के नाम बदलने की कोई आवश्यकता नहीं, वरन् यह भ्रान्तिजनक है ।

आरण्यकाण्ड

आदि में दो श्लोकों में श्री शिवजी तथा श्री रामचन्द्रजी की बन्दना है । पहले इन्द्र का पुत्र जयंत काग बन कर सीताजी के चरण में चोंच मारने के कारण काना किया गया है । फिर रामचन्द्र चित्रकूट से प्रस्थान कर अत्रिमुनि से मिले हैं । उनकी वृद्धा स्त्री अनसूया ने सीता जी को पातिव्रतधर्म का उपदेश दिया है । इस उपदेश पाठ से महिलागण महान लाभ उठा सकती हैं । इसके पाठ का उन लोगों में अवश्य प्रचार करना चाहिये । फिर विराध को बध करते एवम् शरभङ्गमुनि, सुतीक्ष्ण, अगस्त[2] प्रभृति ऋषियों के दर्शन का आनन्द लेते,

---

१. बाल्मीकिजी के अनुसार उस समय हनुमान जी ने दो लकड़ियों को रगड़कर अग्नि प्रगट किया था ।

२. अगस्त्य जी विन्ध्याचल से दक्षिण गिर कुंजर पर रहते थे । ये उस प्रान्त के प्रधान ऋषि थे । आदि द्राविड़ जातियों के यही साहित्य तथा विज्ञान के शिक्षक माने जाते हैं । काड्वेल (Dr. Caldwell) साहब के अनुसार इनका सम्वत् ईसा के पूर्व ६वीं या ७वीं शताब्दी में आरम्भ हुआ है ।

दण्डकारण्य में पहुँच कर लोगों ने पञ्चवटी[1] में डेरा जमाया है। वहीं पर रामचन्द्र ने लक्ष्मण को भक्तिज्ञानादि का उपदेश दिया है।

कुछ दिन बाद रावण की बहन सूपनखा रुचिरभेष बनाकर रामचन्द्र के पास आ उन से प्रेमप्रार्थना की है और उसके कान नाक काटे गये हैं। और इसी कारण खरदूषण ससैन्य रामचन्द्र के हाथ से युद्ध में निहत हुये हैं। उधर सूपनखा रावण के पास पुकार करने गई है, इधर सीताजी ने अपना प्रतिविम्ब छोड़ कर अग्नि में प्रवेश किया है।

बाल्मीकि जी ने न तो सीता को अग्नि ही को सौंपा है और न सूपनखा ही को रुचिर भेष में उपस्थित किया है। उनकी सूपनखा को देखिये।

"सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी ॥६॥
विशालाक्षं विरूपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्धजा।
प्रियरूपं विरूपा सा, सुस्वरं भैरवस्वना ॥१०॥
तरुणं दारुणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी।
न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता, प्रियमप्रियदर्शना ॥११॥"

(आरण्यकाण्ड सर्ग १७)

सूर्पनखा बड़ी ही छँटी हुई चालाक स्त्री थी। रामचन्द्र के प्रति रावण को उत्तेजित तथा क्रोधित करने के अभिप्राय से यह जाते ही अपना असल हाल न कह कर नीति को झाड़ने लगी, क्योंकि रावण बड़ा नीतिज्ञ कहलाता था। तब सभा में भूमि पर गिर कर रोने लगी और कहने लगी "तोहि जियत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ।" और रावण के झिड़क

---

१. यह दंडक वन का एक भाग है जहां से गोदावरी प्रवाहित हुई है। और नासिक से दो मील पर है। पञ्चवटी के वर्णन में गोसाईं जी ने तो रामायण में कुछ नहीं लिखा है किन्तु रामचन्द्रिका में उसकी महिमा यों वर्णित है :—

"सब जात फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीच घटी हूं घटी जगजीव जतीन की छूटी तटी॥
अघ ओघ की बेरी कटी बिकटी निकटी प्रगटी गुरुज्ञान गटी।
चहुँओरन नाचत मुक्ति नटी गुन धूर जटी बनपंचवटी॥"

और एक अन्य कवि ने कहा है :—

"सुचि सौरभ संयुत वायु छुटी मधुरे मकरन्दन से लपटी।
कपि कोकिल कीर कपोतछटी चटकालि चकोर फिरैं अलटी॥
अति निर्मल नीर प्रवाह तटी महिमा जिहि वेद न जात रटी।
रघुनाथ उटी जहँ पर्नकुटी धनधन्य तिहूँपुर पंचवटी॥"

कर हाल पूछने पर रामचन्द्र का बल पराक्रम वर्णन करती एवम् उन के संग एक परम सुन्दरी नारी होने की सूचना देती हुई इस ने कहा कि 'वही पुरुषसिंह रामचन्द्र ने मेरी यह दशा की है—' अर्थात् नाक कान काटा है; और इस ने झूठमूठ यह भी जोड़ दिया कि 'सुनि तब भगिनि करी परिहाँसा।' फिर इस ने खरदूषण के मारे जाने का हाल कहा। अपनी करतूति इस ने कुछ भी नहीं कही। ये सब इस की मक्कारियां थीं। कवि ने इस के मक्कारपने का अच्छा चित्र खींचा है।

इस के अनन्तर मारीच गया है तथा सीताहरण हुआ है। वे अशोकवाटिका में रखी गई हैं। रामचन्द्र प्रियवियोग में व्याकुल उन्हें इधर उधर खोजते, जटायू से रावण द्वारा उन के हरे जाने का समाचार पाते तथा उन के शरीर का स्वयम् अन्तिम सत्कार करते, मार्ग में शवरी का जूठ फल खाते भाई के संग पम्पासर पर विराजमान हुये हैं।

वर्तमान पेनायर को पुरातन काल का पम्पा बताते हैं और कहते हैं कि माइसूर उन बानर प्रधानों का प्रसिद्ध स्थान था जिन्होंने रामचन्द्र की सहायता की थी।

पम्पासर के सुन्दर दृश्यों का संस्कृत कवियों ने बहुत मनोहर वर्णन किया है। कादम्बरी में बाणभट्ट ने उस का बड़ा सुखद चित्र खींचा है। बाल्मीकि जी ने भी आरण्य काण्ड के अन्तिम अध्याय तथा किष्किन्धा के प्रथम अध्याय में उस सरोवर की अच्छी छवि दरसाई है। भवभूति जी लिखते हैं :—

"एतस्मिन् मदकलमल्लिकाक्षपक्षव्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः।
बाष्पाम्भः परिपतनोद्गमान्तराले संदृष्टाः कुवलयिनो भुवो विभागाः॥"

और गोसाईं जी ने उस की छटा यों दिखलाई है :—

"संत हृदय जस निर्मल वारी। बांधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पियहिं बिबिध मृगनीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा॥
पुरइन सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म
मायाछन्न न देखिय, जैसे निर्गुन ब्रह्म॥
सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल माहिं।
जथा धर्म सीलन्ह के, दिन सुख संजुत जाहिं।
बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गूंजत बहु रंगा॥
बोलत जल कुक्कुट कल हंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा॥
चक्रवाक[१] बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई॥
सुंदर षग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई॥
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाये। चहुं दिसि कानन बिटप सुहाये॥

---

१. अंगरेजी कविता में जैसे कपोत, पंडुक (Dove, turtle) दृढ़प्रेम का आदर्श माना जाता है वैसे संस्कृत कविता में चक्रवाक माना जाता है।

चंपक बकुल कदम्ब तमाला। पाटल पनस परास रसाला ॥
नव पल्लव कुसमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना ॥
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत वहइ मनोहर बाऊ ॥
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव,सरस ध्यान मुनि टरहीं ॥
फल भर नम्र विटप सब, रहे भूमि नियराइ।[1]
पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसंपति पाइ ॥

कवि ने रामचन्द्र के मुख से जटायू की यथोचित प्रशंसा कराई है और कहलवाया है कि "तुम अपने कर्म से सद्गति के अधिकारी हुये हो":—

"जल भरि नयन करहिं रघुराई। तात कर्म निज तें गति पाई ॥
परहित बस जिनके मन माहीं। तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरन कामा ॥"

इतना ही नहीं, वरन् रामचन्द्र के हाथ से कवि ने जटायू की अन्त्येष्टि क्रिया भी कराई है। और आगे जो कवि ने लिखा है :—

"कोमल चित अति दीन दयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ॥
गीध अधम खग आमिषभोगी। गति दिन्हीं जो जाचत योगी ॥"

तो न गीध के आमिषभोगी ही होने में सन्देह है और न उस के उत्तम गति ही पाने में। परन्तु रही दयालुता, तो निस्सन्देह यह दयालु और समझदार मालिक का ही काम है कि योग्य अधिकारी पुरुष को उस के सुकार्य का उचित पारितोषिक दे।

जिस समय श्री रामचन्द्र भाई सहित पम्पासर पर विराजमान थे नारद जी भी घूमते २ वहां पहुंच गये हैं और शिष्टाचार के अनन्तर उन्हों ने रामचन्द्र से पूछा है कि उस समय आप मेरे विवाह में क्यों बाधक हुये थे ? रामचन्द्र ने उसका कारण बताया है। कारण वर्णन करने के पूर्व हम यह कहेंगे कि इस समय नारद ने जिस भाव से प्रश्न किया हो, किन्तु उस काल में ये मोह में सचमुच पागल हो रहे थे कि भगवान के यह स्पष्ट कहने पर भी कि :—

"जेहि बिधि होइहिं परम हित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ करब न आन कछु, वचन न मृषा हमार ॥
कुपथ मांग रुज व्याकुल रोगी, वैद न देइ सुनहु मुनि योगी ॥"

इन्हें यह नहीं ज्ञात हुआ कि दाल में अवश्य कुछ काला है; भगवान हमें अपना रूप नहीं देंगे। कवि ने उन के मोह का प्राबल्य खूब देखलाया है।

---

१. इसके भाव को इस फारसी की कविता से मिलाइये :—
'साख़ पर मेवा सरबर जमीन।'

अब रामचन्द्र कथित कारण सुनिये :—

"सुन मुनि कह पुरान स्रुति संता। मोह विपिन कह नारि वसंता॥
जप तप नेम जलासय झारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका। इनहिं हरषप्रद बरषा एका॥
दुर्वासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ सदा सरद सुखदाई॥
धर्म्म सकल सरसीरुह बृन्दा। होइ हिय तिन्हहि दहइ सुख मंदा॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहै नारि सिसिर रितु पाई॥
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निविड़ रजनी अँधिआरी॥
बुद्धि बल सील सत्य सब मीना। बंसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना॥
अवगुन मूल सूल प्रद, प्रमदा सब दुष षानि।
तातें कीन्ह निवारत, मुनि मैं यह जिय जानि॥"

कवि ने नारी से ऋतुओं की तुलना तो अच्छी की, परन्तु रामचन्द्र से स्त्रियों को अच्छी सार्टिफिकेट नहीं दिलवाई। स्त्री गुणगायक कविश्वर तथा स्त्रीभक्त पुरुष गण इससे कितना सन्तुष्ट होंगे सो नहीं कह सकते। गोसाईं जी प्रमदा से ऐसे चिढ़े क्यों थे? कोई कहते हैं कि गोसाईं जी को मातृ वियोग शैशवावस्था ही में हो गया था, स्त्री का सङ्ग चिर काल तक रहा नहीं, गृहत्यागी हो जाने के कारण इन्हें उच्च श्रेणी की महिलाओं से संसर्ग नहीं हुआ। इसी से इन्हें स्त्रियों के सद्गुणों की जांच का सुअवसर नहीं मिला और इसी से इन्हों ने स्त्रियों की स्वयं निन्दा की है और रामचन्द्र से भी कराई है। सच पूछिये तो यह समस्या बड़ी ही कठिन है। इस सम्बन्ध में जिस का जैसा स्वयम् अनुभव है वैसा ही कहेगा। परन्तु 'प्रमदा सब दुष षानि' होने पर भी हमारी अर्द्धाङ्गिनी तथा सहधर्म्मिणी ही कहलाती हैं, स्त्री जीवित रहने पर हमारे पार्श्व में उस के आसीन हुये बिना हमारा यज्ञव्रत सम्पन्न नहीं हो सकता। रामचन्द्र को भी अश्वमेध यज्ञ के समय सीता जी के बाल्मीकि जी के आश्रम में रहने से उन की स्वर्ण की प्रतिमूर्ति[1] बनवानी पड़ी थी। शास्त्रानुसार हिन्दू महिलाओं को ऐसा उच्च आसन प्राप्त है। और नारी त्रिदेवों की शक्ति रूपिणी हैं। रामचन्द्र उस समय नारि-विरह से दुखित थे अतएव वे उन्हें दुखदायिनी कह सकते थे। परन्तु गोसाईं जी को तो उन की स्त्री ही उनके ईश्वर के सम्मुख होने का कारण हुई, उन्हें नारियों से ऐसा नाराज़ होना नहीं चाहता था।

रामचन्द्र से सन्तों का लक्षण कहलवाने में गोसाईं जी ने यहाँ तक कहलवा दिया है—

"सुन मुनि साधुन के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद स्रुति तेते॥"[2]

यह साधु का लक्षण वर्णन अच्छा हुआ है।

---

१. बाल्मीकीय रामायण उत्तर काण्ड, सर्ग ९१, श्लोक २५, तथा सर्ग ९९ श्लोक ७ देखिये।

२. "साधु की महिमा वेद न जानहिं"—श्री गुरु नानक।

कोई तो इस काण्ड के आठवें सोरठा 'कठिन काल मल कोस' पर अयोध्या काण्ड की समाप्ति करते हैं; और मुन्शी सुखदेव लाल ने 'जात हीन अघ जन्म महि' इसी दोहा से यह काण्ड समाप्त करके इस के शेष भाग को किष्किन्धा काण्ड में रख दिया है, इसी काण्ड में उन्हों ने बहुत काट छांट भी किया है और इसी में पाठान्तर का भी बाहुल्य है।

किष्किन्धाकाण्ड

आदि में दो श्लोकों में श्रीरामचन्द्र की बन्दना तथा राम नाम माहात्म्य है और एक सोरठे में श्री काशी जी का वर्णन है।

हनुमान जी के द्वारा श्रीरामचन्द्र और सुग्रीव में मिताई हुई है और तब रामचन्द्र ने बालि को मार कर सुग्रीव को बानरों का राजा और बालि के पुत्र अङ्गद को युवराज बनाया है। वर्षा ऋतु के आगमन के कारण रामचन्द्र और लक्ष्मण जी ने प्रवर्षन पर्वत पर निवास किया है और सुग्रीव राज पाकर भोग विलास में प्रवृत्त हुये हैं। वर्षाकाल विगत होने पर भी सुग्रीव के रामकाज साधन में ध्यान नहीं देने से रामचन्द्र को कोप हुआ है। अन्ततः सीता जी की खोज में बानर समूह चारों ओर भेजे गये हैं। राह में प्यास से व्यथित होकर हनुमानादि के एक बिल में प्रवेश करने पर एक तपस्विनी की सहायता से वे लोग समुद्र किनारे पहुँचे हैं और वहीं उनलोगों को जटायू के भाई सम्पाति से भेंट हुई है और उसी ने ठीक २ बताया है कि रावण ने सीताजी को लङ्का की अशोकवाटिका में रखा है जिसे बल हो वह समुद्र पार जा कर उन का समाचार लावे।

इस काण्ड की कविता बहुत ही सुन्दर और सराहनीय हुई है। इसमें कवि ने वर्षा और शरद ऋतु के वर्णन में सदुपदेशमयी उपमाओं की लड़ी बांध दी है। उस का कुछ अंश यहाँ पर उद्धृत कर देना अनुपयुक्त नहीं होगा।

"दामिनि दमकि रहे घन माहीं। पल कै प्रीति यथा थिर नाहीं॥
बुंद अघात सहहिं गिरि कैसे। पल के वचन संत सह जैसे॥
सिमिट २ जल भरहि तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा॥
हरित भूमि तृन संकुल, समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाषंड बिवाद तें, गुप्त होहिं सद ग्रन्थ॥
महा वृष्टि चलि फुटि कियारी। जिमि सुतंत्र भये बिगरहिं नारी॥
देखियत चक्रवाक खग नाहीं। कलिहिं पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
कबहुं प्रवल चल मारुत, जहं तहं मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के ऊपजें, कुल सद्धर्म नसाहिं॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥
विनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकहु बाधा।।"

इस काण्ड में मित्रता का भी बहुत उत्तम वर्णन हुआ है—

"जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिनहि बिलोकत पातक भारी।।
निज दुख गिरि सम रज कर जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना।।
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटइ अवगुनहि दुरावा।।
विपतिकाल कर सत गुन नेहा। स्रुति कह संत मित्र गुन एहा।।
आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई।।
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई।
सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी।।"

इस प्रकरण के आदि और अन्त की चौपाइयों के अतिरिक्त अन्य सब चौपाइयों को मु० सुखदेवलाल ने गोसाईं जी कृत होना नहीं माना है। कोई उन्हें गोसाईं जी कृत माने या नहीं, परन्तु उन में मित्र का यथार्थ लक्षण वर्णन किया गया है।

लोगों का कथन है कि इसी काण्ड से गोसाईं जी ने रामायण की रचना काशी में की है क्योंकि इसी में पहले-पहल काशी का वर्णन हुआ है।

वाल्मीकीय रामायण में सीता जी के खोजने के लिये बानरों के सर्वत्र भेजे जाने का हाल विस्तार पूर्वक लिखा हुआ है। उसके पढ़ने से पहले हमें अचम्भा हुआ था कि जब यह बात मालूम हो गई थी कि रावण सीता को हर ले गया था तब सर्वत्र बानर क्यों भेजे गये। पीछे सोचा कि चतुर चोर चोरी का माल अपने घर ही नहीं रखता। अतएव यह विचार कर कि कदाचित् रावण सीता जी को कहीं अन्यत्र रख दिया हो, चारो ओर बन्दर भेजे गये और रावण के चोराने का हाल जानने ही से दक्षिण दिशा की ओर युवराज के सङ्ग बड़े-बड़े सुभट भेजे गये और उन्हीं में से एक को रामचन्द्र ने अपनी मुद्रिका भी दी।

सुन्दरकाण्ड

आदि में दो श्लोकों में श्रीरामचन्द्र और एक में हनुमान जी की स्तुति है। हनुमानजी इस किनारे से तड़पकर रास्ते में सुरसा की परीक्षा में पास होते, छायाग्राही राक्षस को समुद्र में वध करते उस पार पहुँच कर गिरि पर चढ़ के लङ्का की शोभा देखने लगे हैं। क़िला बड़ा ही ऊँचा है। सागर मानो उसे चारो ओर से दबाये गोद में लिये बैठा है और कनककोटि की प्रभा चकाचौंध किये देती है। लंका का वर्णन उत्तम हुआ है। देखिये :—

"कनक कोटि विचित्र मनिकृत सुंदरायत अति घना।
चहु हट्ट हाट सुघट्ट बीथी चारुपुर बहु बिधि बना।।
गज बाज खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनइ।
बहु रूप निसिचर जूथ अति बलि सैन बरनत नहिं बनइ।।

बन बाग उपबन बाटिका सर कूप वापी सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥
कहुं मल्ल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारन्ह भिरहिं बहु विधि एक एकन्हि तर्जहीं॥
करि जतन भट कोटिन्हि विकटतन नगर चहुं दिस रच्छहीं।
बहु महिष मानुष धेनु पर अज पल निसाचर भच्छहीं॥"

फिर मसक समान रूप बनाकर लंकनी की मुष्टिका द्वारा पूजा करते घर-घर सीताजी को खोजते, विभीषण की भेंट का आनन्द पाते हनुमान जी अशोकबाटिका में पहुँचे हैं। उसी समय मन्दोदरी आदि के सङ्ग वहां रावण भी सीता जी को फुसलाने और डराने गया है। इससे रावण के प्रति सीता जी का भाव और व्यवहार हनुमान जी पर पूरी रीति से विदित हो गया है। उन्होंने अपनी आंखों से देख लिया है कि रावण सीता जी को कितना सताता है; वे स्वामीविरह के ताप से कैसा सन्तप्त हो रही हैं। मन्दोदरी आदि पर भी सीता का स्वच्छ भाव प्रगट हो गया है।

एक महीने की अवधि देकर और निशाचरियों को सीता को त्रास दिखाने की आज्ञा दे रावण चला गया है। सीता जी ने विलाप करना आरम्भ किया है और वे जलने के लिये अशोक वृक्ष से आग मांगने लगी हैं। उसी समय हनुमान जी ने रामचन्द्र की अंगूठी गिरा दी है और फिर प्रगट होकर अपना परिचय दे सीता जी का प्रबोध किया है। वाटिका विध्वंस करने और रावण के पुत्र अक्षयकुमार का वध करने पर मेघनाद द्वारा पकड़ा कर हनुमान जी रावण के पास लाये गये हैं। इनकी पूछ में आग लगाई गई है और ये लंका दहन कर तथा सीता जी से विदा हो रामचन्द्र के पास आये हैं और इन्हों ने उनसे सीता जी का यह सन्देश कहा है:—"प्रभो! आपने मुझे क्यों भुला दिया? यह तो ठीक है कि आप से बिछोह होते ही हमने शरीर त्याग नहीं किया, पर करें क्या? इन नेत्रों से बेवश हैं। क्योंकि—

"विरह अग्नि तन तूल समीरा। स्वास जरै छन माँह सरीरा॥
नयन स्रवहिं जल निज हित लागी। जरै न पाव देह बिरहागी॥"

और प्राण भी निकले तो कैसे निकले?

"नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रिका, जाहिं प्रान केहि बाट॥"

धन्य गोसाईंजी! धन्य! बहुत अच्छा किया कि इस ढंग से आपने सीता जी के शरीर और प्राण की रक्षा कराई।

फिर भालु, बन्दरों की सेना के सहित रामचन्द्र समुद्र किनारे पहुँचे हैं। उधर मन्दोदरी रावण को सीता जी के लौटा देने के लिये समझाने बुझाने लगी है, और इसी समझाने के कारण विभीषण रावण से लात खाकर बड़े आनन्द से रामचन्द्र के चरणदर्शन का मनोरथ करते रामचन्द्र के पास आये हैं और लंकेश बनाये गये हैं।

विभीषण के समुद्र से रास्ता मांगने की सम्मति देने पर रामचन्द्र का यह कहना कि 'उपाय तो अच्छा है, यदि ईश्वर सहाय करें' लक्ष्मण जी को बहुत बुरा लगा है और रामचन्द्र के परम भक्त होने पर भी उन्होंने छूटते ही कहा है—

"नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिय सिन्धु करिय मन रोषा ॥
कादर मन कंह एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा ॥

निस्सन्देह निज पौरुष और उद्योग पर भरोसा करना बहुत उचित है। ईश्वर भी ऐसे ही लोगों की सहायता करता है।

अयोग्य कार्य तथा वाक्य लक्ष्मण जी को सदा असहनीय होता था। रामचन्द्र को भी इन्हें कायर और आलसी कहते देर न लगी। कवि ने इन्हीं के मुख से कर्मवीर और सदा उद्योगी होने का उपदेश दिया है। और कवि ने कहीं कहीं जो भाग्य और कर्मलेख की बातें कहीं है तो वे केवल आपत्ति पीड़ित लोगों के संतोष प्रदान ही के लिये कही गई हैं। क्योंकि जब यत्न करते हुए भी कार्य्य की सफलता न हो, तो सिवाय भाग्य और प्रारब्ध के दूसरा क्या कहा जायगा ? और ईश्वरकृपा से इन्हों ने प्रारब्ध का मिटना भी कहा है:—"भाविहु मेटि सकै त्रिपुरारी।"

अन्ततः सागर की जड़ता से रामचन्द्र को उस के सोखने ही की तैयारी करनी पड़ी है। और तब वह विप्र रूप धारण कर रामचन्द्र से क्षमाप्रार्थी हुआ है और समुद्र में पुल बांधने का उद्योग बताया है।

फिर रावण के कई एक गुप्तचर पकड़े और सताये गये हैं जिन्हें लक्ष्मण जी ने कृपापूर्वक छोड़ा दिया है और उन्हीं के हाथ रावण के पास एक पत्र भेजा है। रावण के मंत्री शुक उसे उत्तम उपदेश देने के कारण उस के चरणों से प्रहारित होकर रामचन्द्र का दर्शन करते अपने पूर्वाश्रम को चला गया है।

गुप्तचरों के आने का और शुक मंत्री का प्रकरण रामायण के किसी-किसी संस्करण में नहीं है। केवल समुद्र के रामचन्द्र के सम्मुख आने ही तक की कथा देखी जाती है।

यह सुन्दरकाण्ड, सुन्दर फलदायक माना जाता है और बहुत से लोग इसका नित्य पाठ करते हैं।

लङ्काकाण्ड

आदि में एक श्लोक में रामचन्द्र की और दो श्लोकों में शिव जी की बन्दना है, फिर एक सोरठे में रामचन्द्र की स्तुति है।

सेतुबन्धन के अनन्तर रामेश्वरनाथ महादेव की स्थापना हुई है। मुं० सुखदेवलाल ने इस स्थापना के प्रकरण को सर्वथा उठा दिया है। मुकालिफ़ साहब ने स्वरचित "The sikh Gurus

and their teachings" नामक ग्रंथ में लिखा है कि प्राचीन काल में रोमदेश में भी शिव की पूजा होती थी।[१]

समुद्र में पुल बनने के पीछे एवम् और भी कई बार मन्दोदरी ने रावण को समझाया है। उस का पुत्र प्रहस्त, कुम्भकरण, माल्यवान कई लोगों ने उसे रामचन्द्र से सन्धि करने के लिये उपदेश दिया है। परन्तु सब उपदेश-दायकों में से केवल प्रहस्त ही का उपदेश वीरोचित और नीतिनिपुण मंत्री के योग्य पाया जाता है। क्योंकि उस ने कहा है कि पहले दूत भेजिये, फिर सीता जी को देकर उन से मेल कीजिये। यदि स्त्री पाकर वे फिर जायं तो अच्छी बात है नहीं तो उन से सम्मुख युद्ध कीजिये। अन्य लोगों के उपदेश का सार यह है कि रामचन्द्र परमेश्वर हैं, उन से वैर करने में तुम पार नहीं पाओगे। परन्तु रामचन्द्र क्या थे, यह बात रावण स्वयम् ही भली भांति जानता था और यह जान कर ही उस ने रामचन्द्र से बैर भी ठाना था। उस को यह बात समझाने की कोई आवश्यकता नहीं थी और वह किसी का उपदेश सुन भी नहीं सकता था।

रामचन्द्र की सेना समुद्र पार उतर गई हैं, अभी युद्ध आरम्भ नहीं हुआ है। शीघ्र ही घनघोर संग्राम उपस्थित होगा, लंका में रुधिर की धारा बहेगी, मुर्दों के पुल बनेंगे; परन्तु "ब्रह्म सृष्टि जहं लगि तनुधारी। दसमुख बस बर्ती नर नारी" ऐसा पराक्रमी रावण और जिसकी बीस भुजाएँ "बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पावै पारा" ऐसा बलिष्ठ राक्षसपति अभी से भालु बानरों को देख कर कादर क्यों होने लगा? इस समय भी उसने नाच-रङ्ग की ठान ही तो दी। इधर सुवेल पर्वत पर रामचन्द्र सुग्रीव की गोद में सिर रखे सोये हुये हैं। एका एक पूर्व दिशा की ओर दृष्टि गई है। चन्द्रमा को देख लोगों से कहने लगे कि गजराज के समान निःशंक चन्द्रमा को देखते जाव :—

"पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी॥
मत्त नाग तम कुम्भ विदारी। ससि केसरी गगन बनचारी॥
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुन्दरी केर सिंगारा॥"

परन्तु चन्द्रमा में कालापन कैसा? उस कालिमा को देख कर लोगों को अपने २ सिर की बीती बातें याद आ गई हैं। राज पाये हुये सुग्रीव को उसमें भूमि की छाया ही नजर आई, पितृराज एवं पिता को खोये हुये अङ्गद को चन्द्रमा का सार भाग अपहृत होना ही झलका, रावण की लात खाये विभीषण को चन्द्रमा के राहु से प्रहारित होने का ध्यान आया, विरहवंत रामचन्द्र को यही प्रतीत हुआ कि गरलबंधु को गोद में लिये चन्द्रमा विषप्रेरित किरणों से नर-

---

१. The *Lingam* sacred to Shiva is the symbol of procreation. It was worshipped in ancient time in Rome as it is now in India. The author saw a *Lingam* in the temple of venus in Pompeii, and was informed by his Italian guide that it was a stone on which barren women used to sit in the hope of off-spring.

नारी को जार रहा है और श्यामता देखने ही से हनुमान जी ने रामचन्द्र की मूर्ति का उस में आभास देखा। इसी प्रकार दक्खिन का दृश्य देख कर रामचन्द्र विभीषण से कहने लगे कि 'देखो दक्खिन की ओर आकाश मेघ मंडित हो रहा है, चपला भी चमक जाती है और मधुर-मधुर गरज भी हो रहा है।' विभीषण कहते हैं कि नहीं कृपानिधान !

"तड़ित न होइ न बारिद माला ॥
लंका सिखर उपर आगारा। तहँ दसकंधर केर अखारा ॥
छत्र मेघ डंमर सिर धारी। सोइ जनु जलदघटा अति कारी ॥
मंदोदरी स्रवन ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका ॥
बाजहिं तालमृदंग अनूपा। सोइ रव सरिस सुनहु सुरभूपा ॥"

यह सुन रामचन्द्र ने एक वाण चलाया और छत्र, मुकुट तथा ताटंक सब भूमि पर लोगों के देखते गिर पड़ा। सब सभासद के हृदय में आतंक समा गया कि बड़ा भारी भयंकर अशकुन हुआ। परन्तु रावण को भय कहां ? जैसे रामचन्द्र ने मुस्कुरा कर वाण चलाया था, उसने भी विहंस कर कहा :—

"सिरो गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट खसे कस असगुन ताही ॥"

पाठकवृन्द ! कवि में शकुन, अशकुन, तथा स्वप्न का भी बहुत विचार रहता था। ये यथोचित समय पर सर्वदा शकुन, अशकुन कराते गये हैं। लंका काण्ड में तो कई वार अशकुन हुआ है। रामचन्द्र की बारात जाने के समय और उनकी बनयात्रा के समय भी सुशकुन हुआ है। परन्तु यात्रा समय सुशकुन क्यों ? वाह क्या खूब ! इसी यात्रा में तो देव कार्यसाधन हुआ, पृथ्वी का भार दूर हुआ जिस के निमित्त इन्हों ने मनुष्य शरीर धारण किया था। तब शकुन क्यों न हो ?

और भविष्य दुर्घटना सूचक दुःस्वप्न कैकेयी, भरत जी और त्रिजटा ने देखा ही था।

ताटंक गिरने पर मंदोदरी ने राम का विराट स्वरूप वर्णन कर के रावण को फिर समझाया है। पर वहां कौन सुनता है। यह विराट का ध्यान अच्छा दिखाया गया है।

प्रातःकाल अंगद जी रामचन्द्र की ओर से बसीठी गये हैं और रावण के सङ्ग उनका बहुत वार्तालाप हुआ है। अंगद-रावण सम्बाद बड़ा ही मज़ेदार, आनन्दप्रद और चित्ताकर्षक है। परन्तु किसी-किसी के मत में प्राकृतिक नहीं है। क्योंकि महाराजाओं की सभा में दूत इस तरह की अयोग्य बातें नहीं कर सकता। हम राजसभा का नियम नहीं जानते। इस से कुछ नहीं कह सकते। परन्तु जिन्हें अङ्गद के पैर नहीं उठने के सम्बन्ध में सन्देह होता है वे प्रोफेसर राममूर्ति के बल को स्मरण करें। आज भी भारतवर्ष में एक ऐसा व्यक्ति है जिसे १२ घोड़ों की शक्ति की दी मोटरें दोनों ओर से जोर करने पर अपने स्थान से नहीं डिगा सकतीं।

अब युद्ध आरम्भ हुआ है। पहिले दिन हनुमान और अङ्गद ने जयपताका उड़ाई है। दूसरे दिन की लड़ाई में मेघनाद के हाथ से लक्ष्मण जी घायल होकर अचेत हुये हैं और

लंका के वैद्य, सुषेन के आदेश से हनुमान जी रास्ते में मुनि भेषधारी कालनेमि राक्षस का वध करते, रात ही को संजीवन पर्वत लाये हैं और औषधि प्रयोग से लक्ष्मण जी फिर स्वस्थ हुये हैं। यही पर्वत लाते समय अनजानते भरतजी के एक वाण मारने से हनुमानजी भूतल में गिर पड़े हैं और भरतजी ने सब वृत्तान्त सुनने पर महाखेद प्रकाश किया है और कहा है कि :—

"तात गहरु होइहि तोहि जाता। काज नसाइहि होत प्रभाता॥
चढ़ु मम सायक सैल समेता। पठवहुं तहं जहं कृपानिकेता॥"

लक्ष्मणजी के घायल होने पर गोसाईं जी ने रामविलाप अच्छा वर्णन किया है, इस प्रकरण की कईएक चौपाइयों को लेकर रामायणी लोग अपनी बुद्धि प्रचालित कर अपूर्व अपूर्व अर्थ करने लगते हैं। केवल इतने ही पर संतोष नहीं करते कि उन चौपाइयों के द्वारा कवि ने मानवी प्रकृति का सच्चा चित्र खींचा है। तीसरे दिन विपुल बलधारी महा पराक्रमी योद्धा कुम्भकर्ण अकेले ही रामचन्द्र की सेना से लड़ने को युद्धक्षेत्र में उपस्थित हुआ है और अकेले ही सब वानरी सेना को जर्जरित, मूर्छित और पराजित कर दिया है। आज का युद्ध बड़ा ही भयंकर हुआ है और आज ही पहिले पहल रामचन्द्र को घोर युद्ध करना पड़ा है। अन्ततः कुम्भकर्ण निहत हुआ है। जब सब को मूर्छित कर वह सुग्रीव को कांख में दाबकर ले चला था तो सचेत होने पर सुग्रीव ने उस की कांख से छिटक कर उसकी नाक काट ली थी।

चौथे दिन मेघनाद ने घोर संग्राम करके सब कपि दल ही को व्यथित नहीं किया है; वरन् लक्ष्मण को मोहित कर रामचन्द्र को भी नाग फांस में बांध लिया है। तब जामवन्त ने उसे मुष्टिका मार और उसका पैर पकड़ उसे घुमाकर लंका पर फेंक दिया है। वहाँ चेत होने पर मेघनाद ने यज्ञ आरम्भ किया है और यह समाचार मिलने से लक्ष्मण जी रामचन्द्र की आज्ञा से अङ्गदादि को साथ लेकर यह कह कर चले हैं :—

"जौं तोहि आज वधे विनु आवउं। तौ रघुपति सेवक न कहावउं॥
जौं सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतउं रघुवीर दोहाई॥"

यज्ञ विध्वंश के अनन्तर वीरतापूर्वक भारी युद्ध करके मेघनाद वीरगति को प्राप्त हुआ।

आज पांचवें दिन जगद्विजयी अतुल्यपराक्रमी रावण स्वयम् संग्रामक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ है। उसे देखते ही विभीषण भयभीत हो रामचन्द्र से कहने लगे :—

"नाथ न रथ नहिं तनु पदत्राना। केहि विधि जीतब रिपु वलवाना।"

उसके उत्तर में रामचन्द्र ने कहा है :—

"जेहि जय होय सो स्यंदन आना।"

और उस स्यंदन का आप वर्णन करने लगे हैं :—

"सौरज धीरज जेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ध्वजा पताका॥
वल विवेक दम परहित घोरे। क्षमा कृपा समता रजु जोरे॥

ईसभजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर विज्ञान कठिन कोदंडा ॥
अभय अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा ॥
सषा धर्ममय अस रथ जाके। जीत न कह न कतहुं रिपु ताके ॥
महा अजय संसार रिपु, जीत सकै सो बीर।
जाके अस रथ होई दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर ॥"

हमारे सब पाठकों को अजय-संसार-रिपु पर जयलाभ करने के लिये ऐसा रथ प्रस्तुत करने का उद्योग करना चाहिये।

अब रावण का युद्ध आरम्भ हुआ है। वह प्रचंडवाणों से बेध बेध कर कपि दल को जर-जर करने लगा है। बानरी सेना भाग चली है। तब लक्ष्मण जी उसके सम्मुख जाकर घोर युद्ध करने लगे हैं। इन्हें भी शक्ति प्रहार से रावण ने भूशायी बना दिया है और हनुमान जी इन्हें उठाकर रामचन्द्र के पास लाये हैं। मूर्छा विगत होने पर ये फिर युद्ध करने लगे हैं और रावण के रथ सारथी को नाश कर उसे भी बाण प्रहार से इन्होंने अचेत कर दिया है। और दूसरा सारथी रथ पर बिठाकर उसे घर ले गया है।

दूसरे दिन यज्ञ विध्वंश किये जाने पर रावण सक्रोध युद्ध करने को उपस्थित हुआ है। इसी दिन पहिले पहल राम-रावण का विकट संग्राम हुआ है। इन्द्र ने यह विचार कर कि बिना रथ रावण के साथ काम नहीं चलेगा, अपना रथ भेजा है। आज का युद्ध बड़ा घनघोर और भयकंर हुआ है। रावण ने एक बार रामचन्द्र के सारथी को, दूसरी बार घोड़ों को घायल किया है। बाणों से रामचन्द्र को तोप दिया और उन्हें मूर्च्छित भी कर दिया है। यह देख विभीषण ने दौड़कर उस पर गदा प्रहार किया है; हनुमान भी उस से जा भिड़े हैं; देवता भी भयभीत हो भाग चले हैं, अङ्गद ने भी पराक्रम प्रकाश किया है। परन्तु रावण ने हनुमानादि सब भालु बानरों को मूर्च्छित कर दिया है। अन्त में जामवन्त के लात से रावण घायल हुआ है और सारथी उसे रथ में चढ़ा कर कोट के भीतर ले गया है।

सातवें दिन भी पूर्व दो दिनों के समान विकट युद्ध हुआ है,—रावण भारी भयंकर युद्ध करता और सबों को जर्जरित करता अन्त में रामचन्द्र के हाथ बध हो, यह कहता हुआ 'कहां राम रन हतौं प्रचारी' प्रशंसनीय बीर गति को प्राप्त हुआ है। इस युद्ध का प्रकरण गोसाईं जी ने ऐसी प्रभावोत्पादिनी भाषा में वर्णन किया है कि पढ़ते समय रोयें खड़े हो जाते हैं और भुजायें फड़कने लगती हैं। युद्ध वर्णन में बराबर हरिगीतिका का लाना इसे और भी जोरदार बना दिया है। युद्ध समय विभत्स दृश्य भी अच्छा दिखलाया गया है।

अनन्तर मंदोदरी का बिलाप, रावण का शरीरसंस्कार, विभीषण का राज्याभिषेक सीताजी का अग्निप्रवेश, देवताओं की स्तुति और पुष्पकविमान पर सबों के सङ्ग रामचन्द्र का अवध की ओर प्रस्थान करना वर्णन किया गया है।

इस काण्ड में गोसाईं जी ने युद्ध वर्णन बहुत ही उत्तम और विशद किया है। नित्यप्रति युद्ध की भीषणता उत्कर्ष कर के उसे महारोचक तथा प्रभावोत्पादक बनाया है और इसमें इन्होंने अच्छी कवित्वशक्ति दिखलाई है। इस विषय में वाल्मीकि जी भी इनकी समता नहीं कर सके हैं, क्योंकि उनके युद्ध वर्णन में प्रतिदिन उत्कर्ष-वृद्धि नहीं होती गयी है।

उत्तरकाण्ड

दो संस्कृत श्लोकों में श्री रामचन्द्र तथा एक में शिवजी की वन्दना के बाद कथा आरम्भ होती है। उधर अयोध्या में रामगमन-सूचक नाना प्रकार का शकुन हो रहा है, इधर भरतजी रामविरहसागर में निरावलम्ब डूबने लगे हैं, उसी समय हनुमानजी जहाज के समान राम-शुभागमन समाचाररूपी अमूल्य रत्न लिये उनके पासही पहुंच गये हैं। फिर क्या था सोच के बदले सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा गया। अब देर क्यों हो? भरत जी माता आदि के समेत श्रीरामचन्द्र से मिलने को आगे चले हैं और भरतमिलाप होने के पश्चात रामचन्द्र ने सबके सङ्ग नगर में प्रवेश किया है। फिर उनका राज्याभिषेक हुआ है। देवताओं ने पृथक २ स्तुति की है, बानरों की बिदाई हुई है, परन्तु हनुमान जी वहीं रह गये हैं। फिर रामराज्य वर्णन और चारों भाइयों के दो २ पुत्र[1] होने का हाल है। फिर सनकादि आये हैं। भरतजी के प्रश्न पर रामचन्द्र ने सन्त और असन्त का लक्षण वर्णन किया है। रामचन्द्र ने भक्तिमहिमा कथन द्वारा प्रजा को उपदेश दिया है। फिर वशिष्ठजी और नारदजी ने पृथक २ स्तुति की है। कागभुसुंडी की कथा, राम-कथा-माहात्म्य कथन, संक्षिप्त रामकथावर्णन, कागभुसुंडीकथा अन्तर्गत गुरु-माहात्म्य निरूपण और कलिदोष वर्णन किया गया है। फिर ज्ञानदीपक का बड़ा लम्बा चौड़ा रूपक है। जैसे बालकाण्ड में मानस सरोवर का रूपक प्रसिद्ध है वैसे ही इस काण्ड में यह रूपक विख्यात है। इसमें ज्ञान भक्ति की विवेचना कराकर भक्ति की प्रधानता दिखलाई गई है। इसी काण्ड में कवि ने अपना मत प्रतिपादन किया है।

इस काण्ड के अन्त में एक श्लोक में ग्रन्थ रचना का कारण और दूसरे में रामायण पाठ का फल बताया गया है। इसमें कागभुसुंडी की पूर्वजन्म कथा वर्णन में संस्कृत का एक रुद्राष्टक भी है। कवि ने इस काण्ड में तथा लङ्का आदि काण्डों में अनेक पुरुषों और देवताओं से रामचन्द्र की विशद स्तुतियाँ कराई हैं और उनमें अपने पाण्डित्य और कवित्व शक्ति का पूरा परिचय दिया है और प्रत्येक स्तुतिपाठ में विलक्षण आनन्द प्राप्त होता है। रामचन्द्र का नख-शिख सौन्दर्य भी अनेक स्थानों में वर्णित हुआ है। उसमें भी उन्होंने अपनी विलक्षण बुद्धि की बड़ी चमत्कारी दिखलाई है।

---

१. रामचन्द्र के लव और कुश, भरत जी के तक्षक और पुष्कल, लक्ष्मण के अंगद और चित्रकेतु एवम् शत्रुघ्न के सुबाहु और शत्रुघाती।

इस परिच्छेद में हमलोगों ने सीतास्वयम्बर का दृश्य देखा है, रामचन्द्रकी पितृभक्ति का पूर्ण परिचय पाया है। परन्तु शेक्सपियर कृत Merchant of Venice (दुर्लभ बन्धु) [१] में पोर्शिया के स्वयम्बर वर्णन में बसेनियो के सन्दूक खोलने के समय तथा उस के पूर्व पोर्शिया के चित के भावादि को तथा सीता के स्वयम्बर में रामचन्द्र के धनुष तोड़ने के समय सीता के चित्त के भावों तथा उन की माता के विचारों को तुलना की तुला पर चढ़ाने से शेक्सपियर का पल्ला बहुत ऊँचा उठ जाता है। एवं 'किंगलियर' में राम की पितृभक्ति के सामने कार्डीलिया का पितृप्रेम छाया में जा बैठता है। उन के अन्य नाटकों के विशेष विशेष वर्णनों का भी इस रामायण के तादृश्य प्रकरणों से तुलना करने पर गोस्वामी जी की लेखनी की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता।

हमारे अंगरेजी जाननेवाले पाठक दोनों कवियों के ग्रन्थों का स्वयम् पाठकर उस की विवेचना कर सकते हैं और केवल हिन्दी भाषा के जाननेवाले प्रेमी लोग भी "खड्गविलास" प्रेस से प्रकाशित 'दुर्लभ बन्धु' तथा पुरोहित गोपीनाथ कृत शेक्सपियर के नाटकों के अनुवादों को देख कर अपना सिद्धान्त स्थिर कर सकते हैं।

सुप्रसिद्ध साधु प्रोफेसर टी० एल० वास्वानी ने साधारण रीति से गोसाईं जी तथा शेक्सपियर की तुलना करते हुये कहा है कि ये काव्यकला में शेक्सपियर से कम नहीं हैं और उस अलख ब्रह्म के लखने में जो राम कृष्णादि नामों से ख्यात हैं, आप ने उन से बाजी मार ली है। इस विवेचना में ये उन से बढ़े चढ़े हैं। वे जनता के जीवन के एक अंश हो रहे हैं। कवि की सजीवता के प्रमाण में यह एक उच्चकोटि की पूजा-भेंट कही जायगी। शेक्सपियर पंडितवर्ग के कवि हैं, परिश्रमी, दुख-पीड़ित और अभिलाषा पूर्ण उत्साही जनता के नहीं। अपने निजी जीवन व्यवहार में वा काव्य विचार में वह प्रजा पक्षपाती नहीं है। तुलसी दास ने अपने जीवन और भजन में दीन दुखियों और गये गुजरों की आध्यात्मिक उन्नति में सहानुभूति दिखलाई है।"

हम कहेंगे कि उपर्युक्त गुणों के साथ गोस्वामी जी पंडित-मंडली के भी महामान्य कवि तथा महात्मा हैं। इसी जीवनी के पाठ में पाठकवृन्द इस का पूरा प्रमाण पावेंगे।

उपर्युक्त लमगोड़ा जी कहते हैं 'कि इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि काव्य-जगत में सादी, फ़िरदोसी, ग़ालिब, मिल्टन शेक्सपियर इत्यादि जगत-प्रसिद्ध महाकवियों की तुलना में हमारे प्रिय महाकवि तुलसीदास जी का पद भी इक्कीस ही रहेगा, उन्नीस नहीं।'

यह सविस्तर विषय विवरण देखने से यह भी भान होता है कि इस ग्रन्थ में कवि ने मिल्टन के समान धर्म्म और अधर्म्म में युद्ध कराकर धर्म्म की विजय कराई है; क्योंकि उत्तम कुल में जन्म लेकर एवम् विद्या, [२] बल, तप और पुरुषार्थ में आर्यों से किसी प्रकार कम न होकर

१. भारत के स्वयम्बर वाले विवाह किसी न किसी शर्त पर निर्भर रहते थे। इस अंगरेजी नाटक में भी वैसे ही एक शर्त या स्वयम्बर का आदर्श बांधा गया है।

२. सुनते हैं कि अपनी विद्वत्ता तथा तपोबल के प्रभाव से रावण ही ने वेदों का पदच्छेद किया था। कोई २ उसे वेदों का भाष्यकार भी कहते हैं

रावण सदा पाप ही में रत रहा, एवम् अपने सद्गुणों का सर्वदा दुष्प्रयोग करता रहा और उसकी प्रजा भी प्रायः उसी का अनुकरण करती रही, अतएव जगत के कल्याण के लिये उसे यथोचित दण्ड दिलाना बहुत उपयुक्त हुआ। सुपात्रों में भी कोई अधर्म्म का लेश होने से कवि ने दंड द्वारा उस का भी परिशोधन कराया है।

किन्तु जबकि 'पैरेडाइज लास्ट'[1] में छन्द की प्रौढ़ता, भाषा की गम्भीरता, तथा रस की पूर्णता होने पर भी वह ग्रंथ केवल पुस्तकालयों की शोभा बढ़ा रहा है और देश का धन नहीं है, यह 'रामचरित्रमानस' की पुस्तक हिन्दू समाज के घर घर विराज रही है एवम् राजा रंक सभी इसे अपनी सम्पत्ति मान रहे हैं।

जैसे बहुत से समालोचक होमरकृत 'इलियड' वर्णित ट्राय के युद्ध को रूपक मानते हैं।[2] वैसे ही कोई २ रामकथा को भी रूपक मानने को उद्यत होते हैं। कोई कहते हैं कि राम में 'रम' धातु तथा सीता में 'सी' धातु होने से रामायण कृषिकार्य्य का रूपक है। लासेन साहब इसे आर्य्यों के भारतवर्ष के दक्षिणप्रान्त में आक्रमण का रूपक मानते हैं। वीवर साहब को इस में भारतवर्ष के दक्षिणप्रान्त तथा लङ्का में आर्य्यसभ्यता के प्रचार तथा प्रसार का रूपक दीखता है। परन्तु रामायण से ये बातें सिद्ध नहीं होतीं। उस में हमलोग यह कहीं नहीं पाते कि रामचन्द्र ने दक्षिण वा लङ्काविजय करके वहाँ कोई आर्य्यनगर बसाया था—वहां की सभ्यता में कोई परिवर्त्तन वा वृद्धि की थी। और रामचन्द्र द्वारा लंकाविजय के अनन्तर सुसमय पाकर आर्य्य-आदर्शों तथा ऋषिगण उपदेशित सद्धर्म्म तथा सदाचारों का दक्षिण में जो प्रचार हुआ तो हम नहीं समझते कि इसमें रूपक कहां से घुस पड़ा। सचमुच देहधारी रामचन्द्र इन सब कार्य्यों का साधन होना स्वीकार करने में क्या अपत्ति है। जो हो हमलोग हिन्दू इसे रूपक की दृष्टि से नहीं देखते। यदि ऐसे विचार वाले होंगे भी तो सहस्रों में एक। हम तो ऐसे रूपक-निरूपण करनेवालों की केवल वुद्धि की प्रशंसा करते हैं।

इसी सम्बन्ध में सुविख्यात बंकिमचन्द्र चटोपाध्याय ने स्वरचित 'कृष्णचरित्र' नामक ग्रंथ में लिखा है कि 'हम समझते हैं कि चेष्टा करने से भूमंडल में जो कुछ है वह सब इस ढङ्ग से उड़ा दिया जा सकता है।' उन्हों ने यह भी कहा है कि 'एक बार हँसी में हमलोगों ने विख्यात नवद्वीपाधिप कृष्णचन्द्र को रूपक कहकर उड़ा दिया था, एवम् एक बालक ने इतिहासवर्णित प्लासी के युद्ध के सम्बन्ध में यह रूपक बांधा था कि पल मात्र उद्भासित जो असि, वह क्लीव गुणयुत (वल़ाइव) के द्वारा प्रयुक्त होने से सूरजा अर्थात् उत्तम राजा पराभूत हुआ।'[3]

---

१. मिल्टन कृत एक ग्रंथ।

२. The siege of troy is but a repetition of the daily siege of the east by the solar poweres that every evening are robbed of their brightest treasures in the west. Maxmular; Cox's Tale of Ancient Greece.

३. कृष्ण चरित्र, प्रथम खण्ड, परिच्छेद ६ देखिये।

सब साहब लोग भी इस में सहमत नहीं हैं। आर्थर मेकडानेल साहब रामायण को रूपक नहीं मानते। उन का कथन है कि "यदि भरत के ननिहाल से आने ही तक रामायण की कथा समाप्त हो जाती तब तो यह खासा ऐतिहासिक विवरण हो जाता क्योंकि ग्रंथ के उतने अंश में शुद्ध मानवी तथा स्वाभाविक बातें वर्णित हुई हैं एवम् इक्ष्वाकु, दशरथ, रामादि सुप्रसिद्ध तथा पराक्रमी राजों के नाम हैं और वे नाम वेदों में भी पाये जाते हैं।"[१] प्रोफेसर जेकोबी भी इसमें रूपक का आभास नहीं पाते। गुरुकुल कांगड़ी के प्रोफेसर बालकृष्ण जी० एम० ए० कहते हैं कि रामचन्द्र कोई कल्पित पुरुष नहीं हैं; किसी समय निश्चय वे भारतवर्ष में विराजमान थे और निज सुकार्य्यों से उन्होंने हमलोगों का कल्याण किया है।

वस्तुतः रामचन्द्र की सृष्टि कवि की कल्पना से नहीं हुई है। आप ऐतिहासिक पुरुष हैं। सूर्यवंशीय इक्ष्वाकुकुल में, सकल क्षत्रिय-गुणयुत एक समय जन्म धारणकर, आपने पृथ्वी का पालन, प्रजा का संरक्षण और सुशासन एवम् जगत का हितसाधन किया है। आप आदर्श बालक, आदर्श युवक, आदर्श पुत्र, पति, भ्राता, राजा थे। आपके स्वकार्य द्वारा प्रदत्त शिष्ट शिक्षाओं का प्रभाव आज भी हिन्दू समाज में व्याप्त है। आप प्रत्येक हिन्दू के हृदय में, चाहे किसी रीति से हो विराजमान हैं। आप गृहस्थ के घर-घर के आदर्श देवता हैं। जिस घर में आप के आदर्श की जितनी ही पूजा होती है, जितना ही आदर और अनुकरण होता है वहां उतना ही शान्ति-सुख राज्य करता है। भारतवर्ष में आप के करोड़ों स्मारक चिन्ह हैं। आप के गुणगान के सहस्रों ग्रंथ वर्तमान हैं। यही क्यों? मेक्सिको (Mexico) में भी राम-सीता का उत्सव होता है। दक्षिण अमेरिका (South America) के पेरू के कोनकह राजा भी इन्हीं के वंश से अपना सम्बन्ध जोड़ता है और आप की याद में दशहरे की नाईं एक उत्सव मनाता है।

रोमनगर यद्यपि रामुलस का बसाया कहा जाता है, तथापि कितनों का विचार है कि किसी रामभक्त भारतीय आर्य ने उस नगर को बसाया है, जैसा कि पूर्वोक्त बालकृष्ण जी ने भारतवर्ष के संक्षिप्त इतिहास (पृ० ८०) में लिखा है। कौन जाने रामुलस ही कोई रामदास हो वा वह नाम ही रामहुलास आदि का अपभ्रंश हो?

यही नहीं, वरन् कई विदेशीय पण्डित महात्मा यह भी कहने को तैयार हैं कि रामायण केवल होमर-काव्य का अनुकरण है। परन्तु इलियड वर्णित कथा में तथा रामकथा में यदि समता है तो केवल यही कि युद्ध दोनों ग्रंथों में स्त्री अपहरण के कारण ही हुआ है, एवम् इलियड में जुपिटर ने अखिलीज् के लिये अस्त्रशस्त्र कवच भेजा है और रामायण में देवराज ने अपना रथ (एवम् वाल्मीकीय के अनुसार शस्त्र भी) रामचन्द्र की सेवा में पिठाया है।

परन्तु वहां हेलेन अपने नवीन प्रेमी के अङ्क में लगी सुखदानन्द से समय बिता रही है और यहां सीताजी पतिवियोग ताप से सन्तप्त अशोकवाटिका में बैठी अहर्निश नेत्रों से सशोक अश्रुमोचन कर रही हैं। बाल काण्ड तथा अयोध्या काण्ड वर्णित घटनाओं का एवम् अन्य

---

१. A History of Sanskrit Literature. by Arther A. Macdonell. P. 311.

कारडों की उपयोगी बातें और शिक्षाओं का उस में लेशमात्र भी वर्णन नहीं है। उस में केवल युद्ध ही युद्ध है। भूतल ही में नहीं, वरन् देवलोक में भी उस युद्ध का प्रबन्ध होता रहा है। ट्राय के पक्ष पर देवराज (Jupitor) तथा ग्रीस के पक्ष पर देवरानी (जूनो Juno) हैं।

यदि दो ग्रंथों में दो एक बातों के मिलने से एक दूसरे का अनुकरण कहा जाय, तो हम समझते हैं कि मौलिकता का नाम ही संसार से विलुप्त हो जाय। आर्थर मैक्डानेल साहब भी यह स्वीकार करने को उद्यत नहीं हैं कि रामकथा-वर्णन में यूनानी लेखों का ,प्रभाव पड़ा है। साहब का लेख नीचे उद्धृत कर दिया जाता है :—

Professor Weber's assumption of Greek influence in the Story of the Ramayan seems to back foundation. For the tale of abduction of Sita and the expedition to Lanka for her recovery has no real correspondence with that of rape of Helen and of the Trojan war, nor is there any sufficient reason to suppose that the account of Ram bending a powerful bow in order to win Sita was borrowed from the adventures of Ulyses. Stories of similar feats of strength for a like of ject are to be found in the poetry of other nations besides the Greek, and could easily have arisen independently.— A History of Sanskrit literature by *Arthar A. Macdonell, M.A.* Pp.307-8.

अष्टम परिच्छेद

रामायण में त्रुटियों का आभास

सुनते हैं कि इस का युद्धवर्णन बहुत से विलायती पाठकों को रुचिकर प्रतीत नहीं होता। परन्तु इलियड के प्रेमियों को यह युद्धवर्णन अरोचक क्यों लगता है। यह बात हमारी समझ में नहीं आती। उसमें भी तो अनैसर्गिक घटनाओं की भरमार है। उसमें देवियों तथा देवगण रणक्षेत्र में आकर बदली और कुहेसा की ओटों में उभय दल की सहायता करते गये हैं; निहत योद्धाओं को रणभूमि से उठा कर आकाशमार्ग से ले ले जाकर उन के प्राणों की रक्षा तथा शस्त्राघातजनित क्षतों की चिकित्सा कर उन्हें हृष्ट-पुष्ट करते गये हैं। देवरानी और देवराज भी घड़घड़ाते हुए रथों पर, जिन के घोड़े सारी पृथ्वी को एक डेग कर लेते थे, स्वर्ग से उतर दो एक बार रणांगन में पहुँचे हैं, या ईडा पर्वत पर बैठकर रणक्रीड़ा की बहार देखते गये हैं। देवराज ने भ्रान्तिकारक स्वप्न को भेजकर अगमेम्नन को युद्ध में प्रवृत्त कराया है और मिनर्वादेवी को पिठाकर शान्तिभंग भी कराया है, एवम् अचिलीज़ के लिये शस्त्र भी पिठाया है। भूकम्प, वज्रप्रहार, विद्युत्पात तथा केतुउदय द्वारा लोगों को भयभीत करते गये हैं। योद्धागण अस्त्रशस्त्र के सिवाय बड़े २ प्रस्तरखण्ड फेंक २ कर प्रतिद्वन्दियों का माथा तोड़ते और अङ्ग फोड़ते गये हैं। बलिप्रदान तथा हवन आदि की भी कमी नहीं हुई है। मनिलास के घायल होने पर यूनानी राजा ने विलाप कलाप भी किया है एवम् वैद्य बुलाकर चिकित्सा भी कराई गई है। ये सब बातें तो साधारण मनुष्यों के युद्ध में होती गई हैं और यहां तो गोसाईं जी के योद्धे ही अनैसर्गिक थे। तब युद्ध भी कुछ अनैसर्गिक रीति से वर्णन करना उचित ही था। और यदि मेघनादादि के आकाश में जाकर वहां से अस्त्रशस्त्र बरसाने की बात अनैसर्गिक जान अरुचि होती हो, तो इस की आलोचना के समय वे लोग आधुनिक आकाशयान (Aero-plane) को नेत्रों के सामने खड़ा कर देखें कि आज कल्ह के बीरपुंगव योद्धागण उस से क्या २ पदार्थ, और कैसे, अपने शत्रुओं पर बरसाते हैं। सम्भवतः उस समय भी कोई ऐसा ही यान काम में लाया जाता होगा।

कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि रावण का उत्कर्ष कम कर देने से युद्धवर्णन फीका हो गया है। उत्कर्ष कैसे कम हुआ है, यह तो वे ही लोग जानें या विज्ञ पाठक स्वयम् विचार करें। हम तो यही कहेंगे कि ग्रंथ का विषय गोसाईं जी का मनोकल्पित नहीं है। प्राचीन ग्रंथ कथित कथा के आधार पर ही इन्हों ने इस की रचना की है :—

"मुनिहिं प्रथम हरिकीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई ॥"

केवल रचना स्वतंत्र ढंग से हुई है। अतएव घटनाक्रम में प्रभेद हो, वर्णनशैली में विभिन्नता हो, परन्तु मुख्य विषय में कैसे भेद हो सकता था। और वाल्मीकीय से जो इस

युद्धवर्णन में भिन्नता पाई जाती है, तो इस का कारण ऊपर ही कहा जा चुका है कि इन्हों ने उत्तरोत्तर युद्धोत्कर्षवृद्धि का लक्ष्य रखा है और यह ग्रंथ उस का अनुवाद भी नहीं है।

गोसाईं जी किसी अन्य स्थान में अपने नायकों का गुणोत्कर्ष दिखलाने के लिये उपनायकों को नीचा दिखलाये हों परन्तु इस युद्धप्रकरण में यह बात कदापि नहीं कही जा सकती।

पाठकवृन्द! होमरकृत परम प्रशंसनीय 'इलियड' की ओर तनिक दृष्टि कीजिये। उसमें भी नित्यप्रति युद्ध की उत्कर्षता होती गई है। उस का नायक यूनानदेशीय बीरवर अचिलीज है। उस के विपक्षी दल का प्रधान योद्धा ट्रायनगर-निवासी प्रायम का पुत्र महापराक्रमी हेक्टर है। वह युद्ध भी एक परम सुन्दरी हेलना के हरलाने के ही कारण उठ खड़ा हुआ है। उस काव्य में जब अचिलीज देवप्रदत्त शस्त्रों से सज्जित हो रणक्षेत्र में आहूत हुआ है, उस समय अपने ग्रंथ के नायक का उत्कर्ष बढ़ाने के लिये हेक्टर ऐसे वीर को जो कभी युद्धक्षेत्र में साहसहीन नहीं देखा जाता था, जिसे रणक्रीड़ा ही आनन्दप्रद प्रतीत होती थी और जिस की यही अभिलाषा थी कि प्राणविसर्जन हो तो देशहित साधन करते रणभूमि में ही हो, होमर ने एक महाकायर के समान रण से विमुख करा कर भगा दिया है। हा! कवि ने उसकी वीर प्रकृति में कैसा धब्बा लगाया है! प्राकर के बाहर खड़ा हेक्टर विचार कर रहा है कि हम युद्ध में पीठ तो नहीं दिखला सकते, परन्तु अब देशहित साधन किस प्रकार से होगा? युद्ध करने से या संधि करने से? इतने में अचिलीज निकट आ पहुँचता है। उसे देखते ही हेक्टर को होमर कैसे भगाते हैं और अचिलीज को उस के पीछे कैसे दौड़ाते हैं; आप लोग स्वयम् देख लीजिये।

"Thus pondering, like a god the Greek drew nigh,
His dreadful plumage nodded from on high;
The Pelian Javelin in his better hand.
Shot trembling rays that glitter'd o'er the land;
And on his breast the heavy splendours shone,
Like Jovee's own lightning or the rising sun.
As Hecter sees, unusual terrors rise,
Struck by some god, he fears, recedes, and flies;
He leaves the gates, he leaves the walls behind;
Achiles follows like a winged wind.
Thus at the panting dove a falcon flies.
(The swiftest racer of the liquid skies).

❀ ❀ ❀

With open beak and shrilling cries he sprnigs.
And aims his claws and sports upon his wings

No less fore-sight the rapid Chase they held,
One urg'd by fury, one by fear impell'd;
Now circling round the walls their course maintain
Where the high watch tower overlooks the plain;

\+ × × × ×

By these they pass'd, one chasing, one in flight
(The mighty fled, pursued by stronger might)
Swift was the course no vulgar prize they play,
No vulgar victim must reward the day.

× × × ×

The prize contended was great Hector's life.
Thus three times round the Trojan wall they fly;
The gazing gods lean forward form the sky"

कहिये ऐसे प्रसिद्ध महाकाव्य में अपने नायक की उत्कर्षता प्रदर्शन के लिये हेक्टर के सदृश वीर की कैसी दुर्गति कराई गई है, युद्ध के समय में उससे दो ही चार वार कराया गया है और वह भी सर्वथा निष्फल। रणस्थल में भूशायी होने पर जो उस की दुर्दशा कराई गई है उस की बात तो न्यारी है।

और यहाँ गोसाईं जी ने रावण के गले में विजय की माला न पहनाई है सही; परन्तु उसे सर्वत्र वीररसपूर्ण, रण-मद-मत्त, युद्धकुशल और दृढ़प्रतिज्ञ देखलाया है; उसे संग्राम क्षेत्र से कभी पराङ्मुख नहीं कराया है; उसका बल विक्रम तथा युद्ध-कौशल प्रगट कराने में कहीं त्रुटि नहीं की है। उसके हाथ से बड़े-बड़े योद्धाओं को, धरणीधर को एवं अपने प्रभु-ग्रन्थ नायक को भी मूर्छित कराया है; मरते समय भी उससे कटक का संहार कराया है और उसके मुख से यही कहलवाया है "कहाँ राम रन हतौं प्रचारी।" उसी को कौन कहै उस के पुत्र के हाथ से भी अनन्त-बलशाली श्रीलक्ष्मण जी को, जिन्हों ने धनुषयज्ञ में अपना पराक्रम यों वर्णन किया था कि—

"जौं तुम्हार अनुसासन पावउं। कंदुक इव ब्रह्मागड उठावउं॥
कांचे घट जिमि डारउं फोरी। सकउं मेरु मूलक इव तोरी॥"

मूर्छित कराकर श्री रामचन्द्र से भारी विलाप कलाप भी कराया है। तब रावण का उत्कर्ष कम करने की लाञ्छना इन पर कैसे हो सकती है और युद्ध शिथिलता का दोष तो इन पर आरोपण हो ही नहीं सकता।

ग्राउस साहब ने लिखा है कि जैसे—'फेरी डी कुएन्सी' नामक ग्रंथ में स्पेन्सर के विषय में कहा जाता है, तुलसीदास ने भी तुकान्त मिलाने के लिये शब्दों में काट-छांट और उनका रूपान्तर करने तथा उनके अपभ्रंश उच्चारण में कभी संकोच नहीं किया है; कभी किसी

अभागे शब्द का माथा ही मरोड़ दिया है, कभी किसी की पूंछ ही ऐंठ दी है और कभी किसी को अन्य स्थान से तोड़ मोड़ डाला है।

सामवेलर तथा मिस्टरेस गैम्प की गंवारी बोलचाल की भाषा 'डिकेन्स कृत ग्रंथ के' अंगरेजी पाठकों को जितना चकित करती है उस से कहीं अधिक हिन्दू-पाठक-वृन्द भाषा के ऐसे विचक्षण ज्ञाता के ऐसे मनमोजी काम से चकित होते हैं।[१]

इन के शब्दों के तोड़ मरोड़ और काँट छाँट से हिन्दू पाठकों को कहाँ तक आश्चर्य होता है इस की हमें खबर नहीं। और हमें ऐसे अभागे शब्द भी कम मिलते हैं जिन की ऐसी दुर्दशा हुई हो। हाँ! ये तुकान्त मिलाने के लिये लघु को गुरु एवम् गुरु को लघु अवश्य करते गये हैं। परन्तु जहाँ इन्हों ने ऐसा किया है वहाँ सर्वसाधारण को उस के अर्थ समझने में कठिनाई नहीं होती। भारतीय अन्य कवि भी आवश्यकतानुकूल ऐसा काट-छांट किया करते हैं, जिसे वे लोग 'कवि-स्वातंत्र्य' कहते हैं। जब तक ऐसा करने से कविता का अर्थ समझने में बाधा तथा कठिनता न हो, अथवा उस का सौंदर्य नष्ट न हो, तब तक इस स्वतंत्रता से लाभ उठाने में कोई हानि नहीं है। और साहब ही के कथनानुसार इस रीति के तोड़ मरोड़ की प्रथा अंगरेजी लेखकों में भी प्रचलित है।

साहब बहादुर यह भी लिखते हैं कि "कई पुराने प्रचलित शब्दों का बारम्बार प्रयोग करना यथा, चरणकमल, पदपंकज आदि आधुनिक योरुपदेशीय लोगों की रुचि के विरुद्ध है, परन्तु 'होमर' के काव्य में तथा 'क्लोपस्टाक' कृत 'मसीहा' में भी इसी प्रकार के विशेषणों का बारम्बार प्रयोग पाया जाता है।"[२]

---

१. As has been said of Spencer's in 'Faries D'Oniney' Tulsidass never scruples on his own authority to cut down or alter a word or to adopt a mere corrupt pronunciation to suit a place in his metre or because he wants a rhyme......... Sometimes he twists off the head or the tail of the unfortunate vocable altogether. Such vageries being unconciously requoted by the genius of the language are no more puzzling to a Hindu than the colloquialism of Sam Weller or Mrs. Gamp are is Dicken's work, to an English reader.,,—Grorss Introduction to the Translation of Ramayan; P. XVIII, published by Ram Narayan Lal.

२. the constans repetition of a few stereotyped phrases—Such as lotus-feel, streaming-eyes, quiveing frame—are irritating to modern European taste, though they find a parallel in the Stock epithess of the Homeric poem and still more striking one in Klopstock's Messiah, where sinilar expressions are for ever recurring in wearisome re-iteration. F. S. Growse's Introduction to the Translation of Ramayan; P. XIX, published by Ram Narayan Lal, Ibid P. XX.

साहब बहादुर को "कमल, कुमोदिनी, शालि, जवास, चक, चकोर, चातक, हंस आदि की उपमाएँ भी फीकी प्रतीत हुई हैं और वे कहते हैं कि इन उपमाओं को सुनकर देशीय महाशय आनन्द से उछल पड़ते हैं, परन्तु विदेशियों के कर्णकुहुर में ऐसी उपमायें नीरस और फीकी लगती हैं" ऐसा होना सम्भव है। परन्तु सब देश के कवि अपनी कवितारचना में स्वदेशियों की रुचि एवम् स्वदेश रीति के अनुसार ही उपमादि का प्रयोग करते हैं और उसी में अपनी योग्यता और निपुणता प्रदर्शित करते हैं। इस से उनकी कविता में किसी प्रकार का दूषण नहीं आता। भारतीयों को भी golden hair, flaxen hair, swan neck, azure eyes इत्यादि की उपमाएँ सोहावनी और मनभावनी नहीं लगती; तो इससे क्या वर्डस्वर्थ, मिल्टन आदि की रचना अप्रशंसनीय हो सकती हैं। अतएव पूर्वोक्त उपमाओं के प्रयोग से चाहे वे विदेशियों को रुचिकर हों वा नहीं—इन की प्रतिभा में धब्बा नहीं लग सकता।

और रेवरेन्ड एड्विनग्रीव्स साहब लिखते हैं कि "कभी गोसाईं उपमाओं के वन में घूमते २ गुम हो जाते हैं और बहुत दूर तक निकल जाते हैं, पर क्या चन्द्रमा में कलंक नहीं है ?" हां ! निष्कलंक तो केवल ईश्वर ही है, परन्तु यहां चन्द्रमा के निरीक्षक में कुछ चक्षुदोष भी है। क्योंकि निशिनाथ को कभी उज्ज्वल बादलों की ओट में धीमे-धीमे जाते देखकर और पुनः गगनांगन में पूर्ण प्रभा प्रकाश करते हुये शोभायमान पाकर जैसे चित्त आह्लादित होता है, वैसे ही गोसाईं जी को अलौकिक विशद उपमाओं के वन ही में सही, घूमते और फिर बाहर आते देखकर मन मुग्ध और आनन्दित हो जाता है। परन्तु न सबको चन्द्रमा की वह छटा ही अवलोकन करने का सौभाग्य होता है और न सब कोई गोसाईं जी के उपमाविपिन में भ्रमण की बहार ही का यथार्थ आनन्द अनुभव कर सकता है।

और जब हमारे रेवरेंड साहब को गोसाईं जी का उपमावन में घूमना ही सोहावन नहीं लगता तो 'स्वर्ग से सुमन बरसना' कैसे रोचक हो सकता है ? परन्तु जिस सुयोग्य रेवरेन्ड साहब को गोसाईंजी का स्वभाव एवम् रचनादि की अधिकांश बातें उत्तम और सुन्दर प्रतीत हुई हैं, यदि उन्हें 'उपमा के वन में घूमना' और 'सुमन बरसना' रोचक नहीं हुआ तो इससे उन में दूषण आरोपण करना उचित नहीं और यदि कोई दूषण लगावे भी तो उन्हीं के कथनानुसार "क्या चन्द्रमा में कलंक नहीं है" ? हम तो गोसाईं जी के नाते उन की सर्वदा प्रशंसा ही करेंगे।

बहुत-से लोगों का यह भी कथन है कि इस ग्रन्थ में अन्यान्य कथाओं का बीच २ में आना और उनका खूब लम्बा चौड़ा विवरण पाश्चात्य देशियों को अरोचक प्रतीत होता है। यदि इस का लक्ष्य क्षेपक उपाख्यानों पर है; तब तो अरोचक होना ठीक ही है। परन्तु ऐसे उपाख्यानों का रामायण में घुसाने का दोष गोसाईं जी के माथे नहीं मढ़ा जा सकता। हां, मदन दहन तथा प्रतापभानु आदि का जो कई एक उपाख्यान गोस्वामी जी ने स्वयम् रामायण में लिखा है, विदेशियों को रोचक हो वा न हो, परन्तु हमारे देशीय बन्धुवर्ग उनके पाठ में कम आनन्द नहीं पाते और वे सचमुच उत्कृष्ट तथा आनन्दप्रद भी हैं। इसके सिवाय सब महाकाव्यों में न्यूनाधिक इस प्रकार की उपकथाएँ पाई जाती हैं। इलियड भी

इससे खाली नहीं है। उपाख्यानों की बात कौन कहे, वह ग्रंथ कथावर्णन, परस्पर वार्त्तालाप, छन्दों के समुच्चय चरण वा चरणांश तथा वाक्यों की असहनीय पुनरुक्तियों से परिपूर्ण है।

रामायण में भी कहीं २ भावों की पुनरुक्ति पाई जाती है और किसी २ छन्द का सर्वांश वा अल्पांश दोबारा आ गया है। यथाः—

(१) सफल पूंग फल कदलि रसाला ॥ ३४४ ॥ बा०[1]
सफल रसाल पूंग फल केरा ॥ ६ ॥ अ०

(२) सो सब जनु पहिलेहि करि रहेउ ॥ १८३ ॥ बा०
सो तेहिकाज प्रथम जनु कीन्हा ॥ ७ ॥ अ०

(३) जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ॥ १७५ ॥
जेहि पितु देइ राज सो लहई ॥ १०७ ॥ } अ०

(४) भूप न बासर नींद न जामिनि ॥ २१ ॥
भूप न बासर नींद न राती ॥ २१२ ॥ } अ०

(५) मांजहि खाइ मीन जनु मापी ॥ ५४ ॥
मांजा मनहुं मीन कहँ ब्यापा ॥ १५३ ॥ } अ०

(६) परेउ धरनितल ब्याकुल भारी ॥ १४२ ॥
परे भूमितल ब्याकुल भारी ॥ १६० ॥ } अ०

(७) निज हित अनहित पसु पहिचाना ॥१६ ॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना ॥ २६४ ॥ } अ०

परन्तु इतने बड़े ग्रंथ में इतनी अल्प पुनरुक्तियां नहीं के बराबर समझनी चाहिये।

और रामायण में जो रामकथा कई एक स्थानों में संक्षेपतः वर्णित हुई है। उसका कारण तो वहीं स्पष्ट विदित होता गया है।

कई चौपाइयों में १५ मात्रा होने का भी लोग दूषण दिखलाते हैं, यथा :—

(१) सस्त्री मर्मी प्रभु स० धनी। बैद्य बंदि कवि मानसगुनी ॥ २८ ॥ अ०
(२) नाथ भगति अति सुखदायिनी। देहु कृपाकरि अनपायनी ॥ ३४ ॥ सु०
(३) अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदासिव मन भावनी ॥ ४६ ॥ सु०
(४) उदर उदधि अधगोयातना ॥ जगमय प्रभुका बहुकलपना ॥ १५ ॥ लं०
(५) सिर अरु सैल कथा चित रही। तातें बार बीस तैं कही ॥ २१ ॥ लं०
(६) एही बीच निसाचर अनी। कसमसात आई अति घनी ॥ ८७ ॥ लं०

१. इन अंकों को तथा आगे के प्रकरण के अङ्कों को दोहों का अङ्क समझिये और उन्हीं के ऊपर की चौपाइयों को 'काशी नागरी प्रचारिणी' सभा द्वारा प्रकाशित रामायण में देखिये।

चौपाई का प्रतिचरण १६ मात्रा का होता है सही, परन्तु कोई २ कभी १५ मात्रा ही पर समाप्त कर देते हैं। केशवदास कृत रामचन्द्रिका[1] में प्रायः यही बात देखी जाती है। और पटियालानिवासी श्रीशबा रामदासकृत 'गण प्रस्तारक प्रकाश भाषा'[2] में १५ कला के छन्दों के वर्णन में लिखा है :—

"तिथिकल अंतम जतरस होय। यहि बिधि कह चौपाई कोय॥"

और एक अन्य कवि ने कहा है—

"पंदरह कै सोलह कल राखु। तासु नाम चौपाई भाखु॥"

तब गोसाईं जी कहीं १५ ही मात्राएँ रखीं तो क्या चिन्ता ?

रामायण तथा अन्य ग्रंथों में गोसाईं जी व्यक्तिवाचक नामों का भी कहीं २ अनुवाद करते गये हैं, जैसे हाटक लोचन (हिरणाक्ष) इत्यादि। परन्तु यह बात अन्य कवियों की रचना में भी देखी जाती है। और डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने 'इन्डो एरियन' नामक ग्रंथ में बंगाल के पालवंशीय राजाओं के विषय में जो निबन्ध लिखा है, उस में उस वंश के आदि संस्थापक 'गोपाल' को 'लोकपाल' का नामान्तर बताते हुये उन्होंने कहा है कि "मध्य युग में योरुप में लोग अंगरेजी नामों का लैटिन भाषा में अनुवाद कर दिया करते थे और आज भी कविलोग पद मिलान के लिये व्यक्ति-वाचक नामों को प्रायः बदल दिया करते हैं।"[3]

रामायण में कहीं २ दोहों में भी मात्रा की न्यूनता दिखाई जाती है :—

वा०—प्रेम मगन कौसल्या, निसदिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता, बाल चरित कर गान॥२००॥
रोम रोम प्रति लागै, कोटि कोटि ब्रह्माण्ड।॥२०१॥
देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह अज्ञान॥
धर्म सुजस प्रभु तुम कौं, इन्ह कहँ अति कल्यान॥२०७॥
आ०—करि उपाय रिपु मारे, छन महँ कृपानिधान॥२२॥
सभा मांझ परि व्याकुल, बहु प्रकार कह रोइ।

---

१. चौपाई संख्या २६२, ३०२, ३०६, ३०७, ३०९, ३४१, ३५०।

२. यह ग्रंथ पटियालानरेश की आज्ञा से मुद्रित हुआ है।

३. It might apprear repulsive to an Englishman that Mr. Black should change into Mr. Melanos to suit the convenience of a poet, but in the Middle Ages it was not uncommon in Europe to translate English names into Latin even in prose Epitaphs and in the present day poets not unfrequently change the quantity or proper names to suit their rhyme. In Sanskrit the practice of using synonyms either for the sake of metre or that of rhetoric was at one time not unknown.—Indo—Aryan Vol.II. pp.227-28

तोहि जियत दसकंधर, मोरि कि अस गति होइ ॥२३॥
क्रोधवन्त तब रावन, लीन्हेसि रथ बैठाइ ।
चला गगनपथ आतुर, भय रथ हांकि न जाइ ॥३०॥
कि०—जिमि पाषंड बादते, गुप्त होहिं सद्ग्रंथ ॥१५॥
बचन सुनत सब बानर, जहँ तहँ चले तुरंत ।
तब सुग्रीव बोलाये, अंगद नल हनुमन्त ॥२३॥
बचन सहाय करत्रि मैं, पैहहु पोजहु जाय ॥२८॥
सु०—रामकाज कीन्हे विनु, मोहि कहां बिस्राम ॥१॥
अति लघुरूप धरउं निसि, नगर करउं पइसार । ३॥

प्रथम तो ऐसी त्रुटियां अयोध्या काण्ड में नहीं देखी जातीं । अन्य काण्डों में होने से लेखकों की भूल का सन्देह हो सकता हैं, चाहे वह किसी काल में हुई हो । दूसरे ऐसी २ तुच्छ बातें ध्यान देने योग्य नहीं । गोसाईंजी लेखनी का चाक घुमा कर अपनी धुन में लगे हुये छन्दों और पदों की नाना प्रकार की वस्तुएँ बनाते गये हैं, यदि उन में किसी का आकारादि कुछ टेढ़ा मेढ़ा हो गया तो इस के लिये आपत्ति क्या ? आकारादि में किञ्चित कसर ही सही, कविता का चटक रंग चढ़ाकर आपने उन्हें चटकदार तो बना दिया है न ? उस के चमक दमक के सामने किसी की दृष्टि ही भला उधर कब जा सकती है और इन पर दृष्टि करना ही अल्पज्ञता है ।

और किसी सुन्दर सोहावनी पुष्पवाटिका में किसी पेड़ पौधे की कोई शाषा वा पत्ती, स्वभावतः या किसी की असावधानी से टेढ़ी, कुबड़ी या कहीं कुछ भङ्ग होने पर भी यदि सुन्दर फूलों से लहलहा रही हो और उस की सुगन्ध चारों ओर फैल रही हो तो क्या कोई आमोदप्रद छटा से आह्लादित न हो कर उसकी शाषा और पत्ती को निहारने लगेगा ? इसी से कहते हैं कि इस मात्रा तुकादि की बात छोड़ गोसाईं जी के रचनासौन्दर्य्य को निहार कर निहाल होना होगा । देखिये, आगे परिच्छेदों में वैसा ही दृश्य दिखलाया जाता है ।

और आप स्वयम् इन के इस 'मानसरोवर' का तथा इन के समुच्चय काव्योद्यान का सुखद वायु सेवन कर सुख उठाइये । तब आप कहेंगे कि इसके निर्माणकर्त्ता कैसे प्रतिभाशाली महापुरुष थे । नहीं तो बेवरिज साहब के समान कदाचित आप भी कहने लगेंगे कि यद्यपि ग्रउस साहब अथवा अन्य व्यक्तियों ने इस ग्रन्थ की बड़ी प्रशंसा की है; परन्तु मुझे इस में कुछ विशेष गुण नहीं दीखता । उन्हों ने पटना के विवरण में ऐसा ही लिखा है । हम कहते हैं कि दीखे कैसे ? जब वे स्वयम् पढ़ सकें और समझ सकें तब तो ।

नवम परिच्छेद

रामायण में नवों रस

"बीर भयानक हासयुत, अद्भुत करुना चारु।
सान्त विभत्सयरु रौद्र ये, रसपति रस शृंगार॥"—भाषाभूषणे।

कविता इन्हीं नव रसों में विभक्त है। यदि यह पूछा जाय कि रामायण की गणना किस रस के काव्य में होगी; तो यही कहना उचित और यथार्थ होगा कि यह ग्रन्थ नवो रस-पूर्ण है। कविता प्रेमी इस के पाठ में सब रसों का स्वाद पाते हैं। स्वाद वस्तुतः निज अनुभव की वस्तु है। कहने का नहीं। अतएव पाठकों को यथार्थ स्वाद अनुभव के लिये स्वयम् पुस्तक पाठ करना श्रेयस्कर होगा। तथापि इस परिच्छेद में उदाहरणस्वरूप कुछ उस की छवि दिखलाने की चेष्टा की जायगी।

शृंगार—ग्रियर्सन साहब का यह कथन सच है कि गोसाईं जी ने अपनी कविता कामिनी को 'अश्लील शृंगार' (अर्थात् नायिका भेदादि वर्णन) से भूषित नहीं किया है। परन्तु इन की रचनाओं में शृंगार रस प्रचुर पाया जाता है, क्योंकि केवल नायिकाभेदादि वर्णन ही शृंगार नहीं कहलाता। नायक तथा नायिका का सौन्दर्य्य, गुण, परस्पर प्रीति-रीति उन का हाव-भाव,, संयोग-वियोग ये सभी शृंगार रस में सम्मिलित हैं। और ये सब बातें इन की रचनाओं में इस रीति से दिखलाई गई हैं कि शृंगार रस वर्णन करनेवाले बड़े २ उद्दण्ड कवि इस चित्र के अंकन में भी इन की समता नहीं कर सकते। शान्त, करुण तथा वीररस की प्रधानता होते हुये भी रामायण में इन्हों ने शृंगार की सुन्दर छटा दिखलाई है। रामचन्द्र तथा जानकी जी का सौन्दर्य्य इन्हों ने पचासो जगह निराला एक से एक आला और मनोहर ढङ्ग से वर्णन किया है।

पाठकवृन्द! तनिक हमारे साथ जनकपुर की फुलवारी में चलिये। देखिये अतुल्य शोभाधाम श्री राम :—

"जिन निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्ववस नगर-नर-नारी॥"

अपने परम रूपवान भ्राता के संग गुरु के निमित्त फूल लाने गये हैं और उधर लावण्यमयी श्री जानकी जी, जिनके रूप वर्णन में गोसाईं जी ने कहा है कि :—

"जो छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई॥
सोभा रज्जु मन्दर शृंगारू। मथै पानिपकंज निज मारू॥

इहि विधि उपजै लच्छि तव, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय समतूल ॥"

गिरजा पूजने आयी हैं। इतने में :—

"कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लषनसन राम हृदय गुनि ॥
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा विश्वविजय कहं कीन्ही ॥
असकहि फिर चितये तिहि ओरा। सियमुप ससि भये नयन चकोरा ॥
भये विलोचन चारु अचंचल। मनहु सकुचि निमि तजै दृगंचल ॥
देखि सीयसोभा सुख पावा। हृदय सराहत वचन न आवा ॥
तात जनकतनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारन होई ॥
पूजन गौरी सखी लै आई। करत प्रकास फिरइ फुलवाई ॥
जासु विलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा ॥"

अब आप ही लोग कहिये कि यह शृंगार रस में परिगणित नहीं होगा तो किस रस में इसकी गणना होगी। हां गोसाईं जी ने अपनी काव्य चातुरी से इसे पवित्र शृंगार बनाया है, इस में सन्देह नहीं; क्योंकि आप आगे कहते हैं :—

"रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पगु धरै न काऊ ॥
मोहि अतिसय प्रतीत मन फेरी। जेहि सपनेहु परनारि न हेरी ॥"

अतएव यह सहज प्रेम है और स्वच्छ शृंगार है। दोनों ओर सहज ही प्रेम है। इसी से उधर जानकी जी :—

"लोचन मग रामहिं उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी ॥"

और तदनन्तर भवानी के मन्दिर में निज मनोरथ सफल होने के निमित्त प्रार्थना करने लगी हैं; और इधर श्रीरामचन्द्र

"परम-प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीति लिख लीन्ही ॥"

और सरल स्वभाव के कारण श्री विश्वामित्र के पास आकर सब कथा सुनाने लगे हैं। सहज प्रेमचक्षु, व्यभिचारी नहीं होता। दोनों दिशि रूप लावण्य ही ऐसा था कि दर्शनमात्र से ही प्रेम उत्पन्न हो; क्योंकि सौन्दर्य्य प्रेमजनक है। कवि ने फुलवारी वर्णन में ऐसा सुन्दर भाव दिखलाया है कि उसके पढ़ने और समझने से महानन्द मिलता है।[१]

---

१. राज बहादुर लमगोड़ा एम० ए० ने 'माधुरी' के कई संख्याओं में इस प्रकरण की विशद व्याख्या कर के गोसाईं जी का काव्य कला-कौशल बड़ी उतम रीति से प्रदर्शित और प्रतिपादित किया है।

। मानस" में इस प्रकार का शृंगार वर्णन बहुतायत से पाया जाता है।
ां भी शृंगार की छटा झलक रही है। शान्त रस के प्रधान ग्रंथ 'विनय
ने एक स्थान में इस की छबि दिखलाई है।[१]

[—से तो सारा अयोध्या कांड ही प्लावित हो रहा है। कौन ऐसा वज्रहृदय
प्र के पाठ से अश्रुपूर्ण न होता हो।

ग्रा जी ने रामचन्द्र के मुख से उनके वनवास पाने की बात सुनी है, उस
वस्था विचारिये :—

व सुनि सीतल बानी। जिमि जवास परे पावस पानी॥
ाइ कछु हृदय बिखादू। मनहु मृगि सुनि केहरि-नाइ॥
ल तन थरथर कांपी। माँजहि खाइ मीन जनु मापी॥"

सुन्दर भाव है?

ाय पत्नी तथा परमस्नेही बन्धु के संग श्रीरामचन्द्र वन जा रहे हैं। उस
बात कौन चलावे, नागरनिवासियों की दशा देखिये :—

म लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥"

में :—

अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अंधिआरी॥
न्तुसम पुरनरनारी। डरपहिं एकहिं एक निपारी॥
परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहु जमदूता॥
ःप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥

ाकूट पहुँचा कर निषाद के शृंगवेरपुर लौट आने पर सुमंत :—

सिय लषन पुकारी। परेउ धरनि तल व्याकुल भारी॥"

ग्रन दिस हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहंग अकुलाहीं॥"

चरहिं न पियहिं जल, मोचहिं लोचन बारि।"

शा देख कर रामचन्द्र के परिवार के दुःख की थाह लगा लीजिये।
यकता नहीं।

ा की समालोचना देखिये।

फिर श्रीसीताहरण प्रकरण भी करुणा रस पूर्ण है।

(३) वीर—लङ्काकाण्ड इस रस का भण्डार है। जितनी इच्छा हो वीररस की कविता वहां देख लीजिये।

(४) भयानक—अब देखिये, देव, दनुज, गन्धर्व, मनुज, सबों का मानमर्दक शिवधनुभङ्ग होता है। उसके टूटने से कैसी भयावनी घटना होती है :—

"भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम, तुलसी जयति बचन उचारहीं॥"

(५) विभत्स्य—अब विभत्स्य का दृश्य देखियेगा? राम रावण के युद्ध में रुधिर की नदी बह चली है :—

और—"कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खप्पर संचहीं।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनी नंचहीं॥
अंतावरी गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं।
संग्राम पुरवासिन मनहु बहु बाल गुड्डी उड़ावहीं॥"

यह मज़ा और देखिये :—

उसी नदी में—

"जलजंतु गज पदचर तुरग खर बिबिध बाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने॥"
"मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रथम महा झोटिंग कराला॥
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। इक ते छीन एक लेइ खाहीं॥
खींचहिं गीध आंत तट भये। जनु बंसी खेलहिं चित दये॥
बहु भट बहहिं चढे खग जाहीं। जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं॥"

(६) रौद्र—"तेहि अवसर सुनि शिवधनु भंगा। आये भृगुकुल कमल पतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौर सरीर भूत भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुण्ड बिराजा॥
सीस जटा ससि बदन सोहावा। रिसि बस कछुक अरुण ह्वै आवा॥

भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहु चितवत मनहुं रिसाते ॥
कटि मुनि बसन तून दुइ कांधे। धनु सर कर कुठार कल कांधे ॥"

(७) अद्भुत—"सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित सिय भ्राता ॥
फिर चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर वेषा ॥
जहँ चितहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना ॥
देखे शिव विधि विष्णु अनेका। अमित प्रभाउ एकतें एका ॥
बंदत चरण करत प्रभु सेवा। बिबिध वेष देखे सब देवा ॥" इत्यादि ॥

पुन :—"करि पूजा नैवेद चढ़ावा। आपु गई जहं पाक बनावा ॥
बहुरि मातु तहवां चलि आई। भोजन करत देखि सुत जाई ॥
गइ जननी सुत पहं भयभीता। देखा बाल तहां पुनि सूता ॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदय कंप मन धीर न होई ॥
इहां उहां दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आम बिसेषा ॥
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसकानी ॥
देखरावा मातहिं निज, अद्‌भुत रूप अखगड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मागड ॥"

(८) हास्य—अब श्री शिव जी की बारात देखकर हास्यरस का आनन्द लीजिये। गोसाईं जी कहते हैं कि अपना समाज देखकर स्वयम् शिव जी को हँसी आ गई थी—

"कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहुपद बाहू ॥
विपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन खीना।
तन खीन कोउ अति पीन, पावन कोउ अपावन गति धरे ॥
भूषण कराल कपाल कर सब, सद्य सोनित तन भरे ॥
खर स्वान सुअर सृगाल मुख, गन-वेष अगनित को गनै।
बहु जिनिस प्रेत पिसाच जोगी, जमात बरनत नहिं बने।
नाचहिं गावहिं गीत, परम तरंगी भूत सब।
देखत अति बिपरीत, बोलहिं बचन बिचित्र बिधि ॥"

बारात ऐसी, तो दुलहा कैसा ? अच्छा उन्हें भी देख लीजिये।

" ... ...। जटा मुकुट अहि मौर सँवारा ॥
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरिछाला ॥
ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीन उपवीत भुजंगा ॥
गरल कंठ उर नर-सिर-माला। असिव भेष सिव धाम कृपाला ॥

कर त्रिसूल अरु डमरु विराजा। चले वसह चढ़ि बाजहिं बाजा॥"

और..."तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा॥"

तभी तो बेचारे बालकगण प्राण लेकर भाग के माताओं की गोदों में लुके थे। ऐसी बारात के वर्णन से हमारे किसीर पाठक को हँसी नहीं आवे, परन्तु ऐसा समाज देखने से तो निश्चय सब किसी का हँसते हँसते पेट फूल जायगा। और सूर्पनखा की इस बात पर भी अवश्य हँसी आवेगी :—

"तुम्ह सम पुरुष न मोसम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी॥
मम अनुरूप पुरुष जगमाहीं। देखिउँ खोजि लोक तिहुँनाहीं॥
ताते अब लगि रहिउँ कुमारी। मन माना कछु तुम्हहिँ निहारी॥"

"ऐसी स्त्री हमारे किसी पाठक को देखने सुनने में नहीं आई होगी। इस ने बाज़ारियों की भी नाक काट ली थी। अच्छा हुआ कि इस की भी नाक काटी गई।

इस की दशा देख लक्ष्मणजी को भी भाई से हँसी करने का उमंग आ गया था –

"प्रभु समरथ कोसलपुर राजा। जो कुछ करहिं उनहिं सब छाजा॥"

रामचन्द्र ने भी नारद से हँसी की है :—

"जेहि बिधि होइहिं परम हित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार॥"

अच्छा हित किया कि मुनि को बन्दर बनाया और हँसी का फल भी खूब ही भोगा। हरगणों ने तो हँसी का ऐसा फल पाया कि उन्हें राक्षस बनना पड़ा।

सप्तर्षि ने पार्वतीजी से कहा था कि शिव से विवाह कर के क्या करोगी? उन्हों ने तो काम ही को भस्म कर दिया।

ये सब ही हास्यरस के उदाहरण हैं।

(९) शान्त—पाठकवृन्द! अब इतना ही पर शान्तिधारण कीजिये। शान्तरस का उदाहरण हम से न माँगिये। क्योंकि शान्तरसप्रधान तो यह ग्रंथ ही है। बालकाण्ड का आद्यांश पढ़िये। आरण्यकाण्ड में मुनियों का दर्शन कीजिये, उत्तरकाण्ड पाठ कीजिये और ईश्वरप्रेम में निमग्न रहिये।

शेक्सपियर की रचनाओं में शान्तादि कई रसों का अभाव-सा दीख पड़ता है। गोसाईंजी ने मानवी प्रकृति का वर्णन करते हुए उस में ईश्वरीय प्रकृति अर्थात् शान्तरस की महामधुर धारा प्रवाहित की है जिस रस के पान के सामने सांसारिक सकल रस अत्यन्त ही

नीरस बोध होता है।[1] शेक्सपियर ने मानवी प्रकृति का चाहे जैसा अच्छा चित्र खींचा हो, परन्तु यह रस प्रस्तुत करना उन के बांटे में नहीं पड़ा है। ईश्वरभक्ति उपजाने वाली शक्ति उन की रचनाओं में नहीं है।

---

१. पुष्पवाटिका की कुछ चौपाइयों की व्याख्या में उक्त राजबहादुर लमगोड़ा एम० ए० ने भी अन्य रीति से इस कथन का समर्थन किया है। वह कहते हैं कि 'प्रारंभिक नाटकों के लिखते समय शेक्सपियर को इसका ध्यान भी नहीं था कि यह समस्त जगत नितान्त स्वप्नवत है।' रूबसन्ती के दिनों में इधर उनका ध्यान गया और उन्हें अपने दोषों का अनुभव हुआ। उस समय उन्हें मानवीयता एवं आध्यात्मिकता का निस्सन्देह पूर्ण विश्वास हो गया था।

"हमारा कवि तुलसी प्रारंभ से ही इसी विश्वासानुसार कार्य करता रहा है और इसी कारण हमें स्थान-स्थान पर मानवीयता तथा आध्यात्मिकता का सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है।"

"हमारा कवि कुतुबनुमा (दिशा सूचक यन्त्र) की सूई और आध्यात्मिक व्यक्तियाँ (शिव पार्वती इत्यादि) ध्रुवनचत्र की भांति इस संसार के संकटाकीर्ण पथ में हमारे पथ-प्रदर्शक के समान मौजूद हैं।"

दशम परिच्छेद

रामायण में रूपकादि की बहार

गोसाईं जी की रचनाएँ सर्वालंकार-भूषित हैं, तौ भी रूपकालंकार का उस में बाहुल्य है। इस के रचने में ये बड़े निपुण देखे जाते हैं। आप ने अनूठी उपमाओं से भूषित रूपकालंकार द्वारा विविध वस्तुओं का सुन्दर चित्र खींचा है। पाठकवृन्द! रचनाप्रदर्शनी के इस विभाग की ओर भी दृष्टि डालकर आनन्द लाभ कीजिये। आदि ही से मुख्य मुख्य पदार्थों को देखते चलिये।

'रामचरितमानस' कैसा सुन्दर सरोवर है, इसे तो आप लोग पहिले ही देख चुके हैं। अब 'सन्तसमाज प्रयाग' का दर्शन कीजिये :—

"राम भगति जँह सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा॥
विधि-निषेध-मय कलिमल हरनी। करम कथा रविनन्दिनि बरनी॥
हरिहर कथा विराजति बेनी। सुनत सकल मुदमङ्गल देनी॥
बटु विश्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा॥"

यह तीर्थ राज :—"सबहिं सुलभ सबदिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥"

अतएव निस्सन्देह 'अकथ अलौकिक' है और इसी कारण से शरीर रहते ही मनुष्यों को चारों फल देनेवाला है।

श्रीरामचन्द्रादि का रविकुल में आविर्भाव होने पर गोसाईं जी अवध की छवि वर्णन करने में कहते हैं :—

"अवधपुरी सोहइ यहि भांति। प्रभुहिं मिलन आई जनु राती॥
देख भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी सन्ध्या अनुमानी॥
अगर धूप जनु बहु अंधियारी। उड़इ अबीर मनहु अरुनाई॥
मन्दिर मनि समूह जनु तारा। नृप गृहि कलस सो इन्दु उदारा॥
भवन वेदधुनि अति मृदुबानी। जनुरव मुखर समय जनुसानी॥
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइ जात न जाना॥"

वाह गोसाईं जी! आप धन्य हैं। सूर्य तो ऐसे भुलाये कि एक महीने का एक दिन हो गया। परन्तु आप ने अपनी कविताशक्ति से इतने बड़े दिन में भी सन्ध्या की बहार दिखला ही दी।

जनकपुर पहुँचने के अनन्तर पुष्पबाटिका में श्री सीता जी के दर्शन के दूसरे दिन सूर्योदय देख कर जब रामचन्द्र लक्ष्मण जी से कहते हैं :—

"अरून उदय अवलोकहु ताता। पंकज लोक कोक सुख दाता॥"

उस समय लक्ष्मण जी उसी सूर्योदय के मिस रामचन्द्र का प्रभाव वर्णन करते हैं :—

"अरुन उदय सकुचे कुमुद, उड़गन जोति मलीन॥
तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बल हीन॥"

"नृप सब नखत करहिं उजियारी। टारि न सकहिं चाप तम भारी॥
कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना॥
ऐसहि प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहिं टूटे धनुष सुखारे॥
रबि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रताप सब नृपहि देखाया॥"

श्री लक्ष्मण जी का यह वाक्य सिद्ध करने के लिये गोसाईं जी भी यज्ञस्थल में गिरिमंच पर रविकुलरवि श्रीरामचन्द्र का उदय कराते हैं। अब उस की छटा अवलोकन कीजिये :—

"उदित उदय-गिरि मंच पर, रघुबर बालपतंग।
बिकसे सन्त सरोज सब, हरषे लोचन भृंग॥"

"नृपन्ह केर आसानिसि नासी। बचन नषत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने॥
भये बिसोक कोक मुनि देवा।"

ऐसे रवि के उदय होने ही से लोगों ने प्रत्यक्ष देखा कि रघुबर बाहु-बल-सागर में शंकर-चाप-जहाज़ बलरूपी पर्वत से टकरा कर दो खण्ड हो गया और भिन्न भिन्न लोगों की भिन्न-भिन्न वस्तुएं उस के साथ ही जाती रहीं।

यह चाप जहाज़ डूबने का समाचार सुन कर परशुराम जी आते हैं और अपना पराक्रम सकोप वर्णन करते हैं—

"चाप स्त्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू॥
समधि सेन चतुरंग सुहाई। महामहीप भये पसु आई॥
मैं यह पसु काटि बल दीन्हा। समरयज्ञ जग कोटिक कीन्हा॥"

परन्तु इस अलौकिक भानु के सामने उन का तेज भी दीपक के समान मलीन हो गया।

विवाह के बाद अवध में लौट आने पर परिछन के समय गोसाईं जी ने पौष मास में वर्षा की बहार दिखलाई है—

"धूप धूम नभ मेचक भयऊ। सावन घन घमंड जनु ठयऊ॥
सुर-तरु-सुमन-माल सुर वर्षहिं। मनहु बलाक अवलि मनु कर्षहिं॥

मञ्जुल मनिमय बन्दनिवारे। मनहु पाकरिपु चाप सँवारे ॥
प्रगटहिं दुरहिं अटनि पर भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि ॥
दुँदुभि धुनि गरजनि घन घोरा। जाचक चातक दादुर मोरा ॥
सुर सुगंध सुचि बरषहिं वारी। सुखी सकल सस पुर-नर-नारी ॥"

अब देखिये अवध में विपत्ति का बीज बोया जाता है—

"बिपति बीज बरषारितु चेरी। भुइं भइ कुमति कैकयी केरी ॥
पाइ कपटु जल अंकुर जामा। वर दोउ दल दुखफल परिनामा ॥"

जब वर मांग कर कैकेयी सरोष उठ खड़ी हुई हैं उस समय का रूपक देखिये—

"अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहु रोष तरंगिनि वाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
दोउ वर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी वचन-प्रचारा ॥
ढाहत भूप रूप तरुमूला। चली विपति वारिध अनुकूला ॥"

यहीं पर नदी का एक और रूपक देख लीजिये। चित्रकूट में जनकादि श्रीराम के संग उन के आश्रम पर जा रहे हैं—

"आश्रम सागर सांतरस, पूरन पावन पाथ ॥
सेन मनहुँ करुना सरित, लिये जाहि रघुनाथ ॥
बोरति ज्ञान विराग करारे। वचन ससोक मिलत नद नारे।
सोच उसांस समीर तरंगा। धीरज तट-तरुवर कर भंगा ॥
विषम विषाद तोरावति धारा। भयभ्रम भंवर अवर्त्त अपारा ॥
केवट बुध विद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ एक नहिं आवा ॥
बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हिय हारे ॥
आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुं उठेउ अँबुधि अधिकाई ॥"

अब आगे चलिये। श्री रामचन्द्र प्रियाविरह से बिकल विपिन में उन्हें खोज रहे हैं। बन वसन्त की शोभा से लहलहा रहा है, पर क्या कैसा हूँ भी सुखद पदार्थ किसी वियोगी को सुखप्रद हो सकता है ? वसंत की बहार निहार रामचन्द्र अनुज से कह रहे हैं :—

"देखहु तात बसन्त सोहावा। प्रियाहीन मोहि भय उपजावा ॥"

यह वसंत नहीं है, वरन्—

"बिरह विकल बलहीन मोहि, जानेसि निपट अकेल।
सहित विपिन मधुकर खग, मदन कीन्ह वगमेल ॥

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिये जनु तानी ॥
कदलि तालबर ध्वजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका ॥
बिबिध भांति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना ॥
कहुँ कहुँ सुन्दर बिटप सुहाये। जनु भट बिलग बिलग होइ छाये ॥
कूंजत पिक मानहुं गज माते। टेक महीष ऊंट बिसराते ॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी ॥
तीतर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाय मनोज बरूथा ॥
रथ गिरिसिला दुंदुभी झरना। चातक बंदी गुन गन बरना ॥
मधुकर-मुखर भेरि सहनाई। त्रिबिध बयारि बसीठी आई ॥
चतुरंगिनी सेन संग लीन्हें। बिचरत सबहि चुनौति दीन्हे ॥"

इसी विरहावस्था में विचरण करते दोनों भाई पंपासर पर पहुँचे हैं। वह सर कैसा है—

"सन्त हृदय जस निर्मल बारी। बांधे घाट मनोहर चारी ॥
जंह तंह पियहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥"

किष्किन्धा काण्ड में बरसात तथा शरदऋतु की शोभा वर्णन भी उत्तम और आनन्दप्रद है। उस की क्षुद्र घटनाओं की उपमाओं में शिक्षा और सदुपदेश भरा हुआ है। उस का कुछ अंश अन्यत्र उद्धृत हुआ है एवम् कई एक रूपकों का सौंदर्य्य अन्यान्य स्थानों में दिखलाया गया है। अतएव पाठकों को इधर ही बझा रखना अच्छा न होगा। रूपकों में ललित उपमाओं की बहार देखी ही गई है। अब उस की अधिक छबि दिखलाने की भी आवश्यकता नहीं। हाँ! इतना कह देना अनुपयुक्त नहीं होगा कि रामायण तथा गोसाईं जी कृत अन्य ग्रन्थों के पद पद में उपमाओं की छटा छलक रही है और वे उपमाएँ बहुत ही मनोहारिणी; अनूठी और आनन्ददायिनी हैं।

गोसाईं जी ने यमक की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। परन्तु रामायण में अनुप्रास की कमी नहीं देखी जाती। उस का कुछ उदाहरण देखिये :—

"सोहत मौर मनोहर माथे। मंगलमय मुकुतामनि गांथे ॥
बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू ॥
सील संकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुष सुलोचन सरल सुभाऊ ॥
समुझत सुनत सुपद सब काहूं। सुचिसुरसरि रुचि निदरि सुधाहूं ॥"

मघवा महामलीन, मुए मारि मंगल चहत।
निपट निरंकुस, निठुर निसंकू।
देषि दशा दुष दारुन भयऊ।
क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकू ॥"

जो लोग 'Full fathom five thy father lies' जैसे अंगरेजी अनुप्रासों (alliteration) पर मुग्ध रहते हैं वे गोसाईं के अनुप्रासों को देख अधिक आनन्द पावेंगे। और हम उन से यह भी कह देते हैं कि संस्कृत भाषा के कवियों को कौन कहे, हिन्दी भाषा के साधारण कवि भी इस विषय में उन्हें बहुत आनन्द अनुभव करा सकते हैं।

गोसाईं जी के ग्रंथों से सब प्रकार से अलंकारों का एक २ उदाहरण दिखलाने के लिये भी एक विलग पुस्तक की आवश्यकता होगी। अतएव सब का उदाहरण दिखलाने की यहाँ पर चेष्टा नहीं की गई। कई एक टीकाकार रामायण की टीकाओं में जहाँ तहाँ अलंकार भी दिखलाते गये हैं। उन ग्रंथों से बहुत कुछ ज्ञात हो सकता है।

एकादश परिच्छेद

रामायण में राजनैतिक विचार

ध्यानपूर्वक 'रामचरित मानस' पढ़ने से देखा जाता है कि गोसाईं जी ने इस ग्रंथ को राजनैतिक विचारों से भी भूषित किया है, जिस से स्पष्ट बोध होता है कि तत्कालीन राजव्यवस्था पर भी इन की दृष्टि पहुँची थी। राजनैतिक विचार की झलक तो इस के पात्रों के कार्य्यव्यवहार ही में देखी जाती है और अनेक स्थानों में इन्होंने राजनैतिक बातें स्पष्ट रूप में स्वयम् भी कही है और पात्रों के मुख से भी कहलवायी है। श्री रामचन्द्र आदर्श राजा थे। भला उन की कथा वर्णन में ये राजनैतिक बातों का क्यों नहीं उल्लेख करें? पाठकों के सम्मुख इस का कुछ उदाहरण उपस्थित किया जाता है।

गोसाईं जी राजाओं के छल बल को बुरा नहीं समझते थे। क्योंकि आप कहते हैं —

"वैरी पुनि क्षत्रिय पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहे निज काजा॥"

राजा को प्रजा के अहित की कोई बात नहीं करनी चाहिये इस का उपदेश इस दोहे में इन्होंने दिया है—

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥"

आद राजार्श श्रीराम के मुख से ऐसी बात कहलवा कर क्या गोसाईं जी ने अपने समय के नृपति जहांगीर के प्रजापीड़क व्यवहार की समालोचना की है? क्योंकि उस समय काशी में मन्दिर आदि तोड़ने का उत्पात हुआ था।

राजा राजमद के पंजे में पड़कर भी प्रायः कुत्सित काम कर बैठते हैं। उसी के विषय में श्री रामचन्द्र के मुख से कहलवाते हैं—

"कही तात तुम नीति सुहाई। सब से कठिन राजमद भाई॥
सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥"

प्रजा को 'सुराज्य' ही में यथार्थ सुख होता है, इसी भाव को इन्हों ने भरत जी के इस वाक्य में जनाया है :—

"भरत दीख वन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाय सुराजू॥"

और भी कहा कि :—

"ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिविध ताप पीड़ित ग्रहभारी ॥
पाय सुराज सुदेस सुखारी। भई भरत गति तिहि अनुहारी ॥"

इन्होंने सुराज्य की महिमा और भी कही है :—

"राम बास वन सम्पति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाय सुराजा ॥
विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा। बढ़ै प्रजा जिमि पाय सुराजा ॥
अर्क जवास पात विनु भयऊ। जिमि सुराज्य खल उद्यम गयऊ ॥"

नीतिज्ञ और प्रजापालक राजा ही प्रशंसा के योग्य हैं। इस बात को इन्होंने इस चौपाई में दिखलाया है :—

"सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥"

और भी देखिये—

'पंक न रेनु सोह अस धरनी। नीति निपुन नृप की जस करनी ॥"

नीति निपुण राजा न होने से क्या हानि होती है, वही बात भरत जी के मुँह से कहलवाते हैं :—

"मोहि राज हठि देइहु जबहीं। रसा रसातल जाइहिंतबही ॥
देखे विनु रघुबीर पद, जिय की जरनि न जाय।"

राजसभा में सम्मिलित होने का अधिकारी होकर केवल मुंह देखी बातें करनी योग्य नहीं, क्योंकि इस में राजा और प्रजा दोनों की हानि होती है इसी से कहते हैं कि—

"कहहिं सचिव सब ठकुर सोहाती। नाथ न भल होइहिं इहि भांती ॥"

रामायण में गीता का उपदेश भी समावेशित है। 'गोसाईं जी की संस्कृतज्ञता' का परिच्छेद देखने से यह बात विदित होगी।

द्वादश परिच्छेद

रामायण के पात्र वर्ग

रामायण की पूर्व वर्णित बातों ही पर सन्तोष करना नहीं होगा, क्योंकि यह केवल काव्य रस ही का अनुभव करानेवाला ग्रंथ नहीं है। यह सदुपदेशों के अमूल्य प्रभामय मणि माणिक की खान है। संसार में जन्म ग्रहण कर मनुष्य का किस के प्रति क्या कर्त्तव्य है और परस्पर कैसा वर्ताव रखना चाहिये, यह जाने बिना हमलोग सुखपूर्वक जीवन निर्वाह नहीं कर सकते। संसार में सानन्द जीवन व्यतीत करने एवम् परलोक में परमानन्द लाभ के लिये जितनी बातें जानने की आवश्यकता है; वे सब हम इस ग्रंथ के पात्रवर्ग से सीख सकते हैं। यदि हमलोग उनके द्वारा प्राप्त कल्याण-कारक उपदेशों को हृदयंगम करें तो हमारा निश्चय हितसाधन हो।

संसार में कार्यकुशल होने, सफलता प्राप्त करने तथा स्वर्ग लाभ के हेतु दृढ़ संकल्प, सत्य सन्धता, स्वार्थत्याग, आत्मत्याग, आत्मनिर्भरता, सहनशीलता, पुरुषार्थ आदि इन कई गुणों का होना बहुत आवश्यक है। किसी कार्य्य में प्रथम कठिनाई हो, कष्ट हो, निराशा दीख पड़े, परन्तु अपने लक्ष्य और संकल्प से कदापि विचलित नहीं होना चाहिये; यह शिक्षा तो इस ग्रंथ के सुपात्र और कुपात्र प्रायः सभी दे रहे हैं। परन्तु हमलोगों को इस के विशेष पात्र से विशेष शिक्षा ग्रहण करनी उचित है कवि ने अनेक आदर्श चित्रों को हमलोगों के सामने प्रस्तुत किया है। [1]

श्री शिवजी—सीता जी का रूप धारण कर रामचन्द्र की परीक्षा लेने और उस बात को पति से गुप्त रखने के लिये शिव जी ने "यह तन सती भेंट अब नाहीं" यह मन में संकल्प करके सती ऐसी प्यारी पत्नी को परित्याग कर दिया है। निश्चय उन्होंने सती को तिलाक देकर घर से बाहर नहीं किया है। परन्तु किसी आत्मीय से प्रीति रीति में कमी होना ही उस के त्यागने के तुल्य है। इस कार्य्य से उन्होंने दिखलाया है कि भक्ति और पत्नीस्नेह में विरोध पड़ने से किस प्रकार भक्ति का निर्वाह किया जाता है। आज कितने लोग कुल कलंक राक्षस रूपिणी कर्कशा कामिनी की प्रसन्नता के लिये कुलधर्म और ईश्वर से विमुख हो जाते हैं और अपने सकल परिवार को भी छोड़ बैठते हैं।

श्री पार्वती जी—इधर पार्वती जी—

"जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरौं संभु न तो रहौं कुआरी॥"

---

१. इस परिच्छेद में पात्रों के चरित्रों की छवि गोसाईं जी के ग्रंथ के अनुसार दिखाई गई है।

यह प्रतिज्ञा कर अपने संकल्प पर ऐसी दृढ़ रही हैं कि किसी साधारण व्यक्ति को कौन कहे सात ऋषियों के भटकाने और बहकाने पर भी वे अपनी प्रतिज्ञा से विचलित नहीं हुई हैं और उन्हों ने स्पष्ट कह दिया है कि तुम लोगों की क्या बात है—

"तजौं न नारद कर उपदेसू। आय कहहिं सत बार महेसू॥"

आज गुरु के बचन में विश्वास रखनेवाले और निज प्रतिज्ञा पर अचल रहनेवाले कितने और कैसे लोग हैं, यह तो सभी स्वयम् समझ सकते हैं। इसी से पतिव्रता स्त्रियों में इन्हें प्रथम आसन प्राप्त हुआ है; जैसा कि जानकी जी ने कहा है—

"पति देवता सुतीय महं, मातु प्रथम तव रेख।"

और इसीसे ये तीय-भूषण (महादेव) के अङ्गभूषण हुई हैं।

श्री जनक—आपने प्रतिज्ञा की थी कि जो शिवधनु भङ्ग करेगा उसी से जानकी का विवाह करेंगे। जब धनुष यज्ञ में सब राजे हार मान कर सिर नीचा कर बैठ गये और चारो ओर निराशा छा गई उस समय भी अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रह कर इन्हों ने कहा—

"सुकृत जाइ जो प्रण परिहरऊँ। कुंअरि कुंआरी रहै का करऊं॥"

परन्तु ऐसे दृढ़प्रतिज्ञ का कार्य सिद्ध न हो, यह कदापि सम्भव नहीं। ईश्वर ने उन के प्रण की आप रक्षा की।

श्री दशरथ—इन्हें हमलोग इन के पूर्वजों के समान दृढ़प्रतिज्ञ पाते हैं। यह इन्हीं का बचन है :—

"रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाय वरु बचन न जाई॥"

यही कह कर इन्हों ने कैकेयी को वर मांगने को कहा था। अपनी सब रानियों में कैकेयी को ये अधिक प्यार करते थे। यह बात हमलोगों ने कैकेयी की दासी के मुख से सुनी है।

"तुम्हहीं न सोच सोहाग वस, निज वस जानहु राउ।"

और कवि ने भी कहा है—

सूल कुलिस असि अगवनि हारे। ते रतिनाथ कुसुस सर मारे॥"

जो हो, कैकेयी ने महा कठोर, अमङ्गलकारक, हृदयविदारक, सर्वजनबज्रप्रहारक बर मांगा। ये चाहते तो प्रतिज्ञा भङ्ग कर वर से विमुख हो जाते। स्त्री पुरुष के मध्य ऐसी प्रतिज्ञा की बात को कौन कहे, बड़े सम्राट लिपिबद्ध प्रतिज्ञा का अनादर कर रणाङ्गन को रुधिर से रङ्ग देने में संकोच नहीं करते, परन्तु बचनबद्ध होकर उस से प्राङ्गमुख होना इन्होंने अपने तथा अपने कुल के महत्त्व के योग्य कार्य्य नहीं समझा। इसी से इन्हों ने कैकेयी को पहले बहुत-कुछ समझाया बुझाया कि वे बिचार कर बर मांगे, परन्तु उन का हठ प्रवल और अदमनीय देख कर अन्त में उनसे यही कहा कि अब जन्म भर तुम अपना मुंह मत दिखाओ और भावी रामवियोग—दुःख स्मरण कर ये मूर्छित हो गिर पड़े।

इन में पुत्रप्रेम का अधिक प्राबल्य था। प्यार तो ये सब पुत्रों ही को करते थे, परन्तु रामचन्द्र इन के कुछ अधिक स्नेहभाजन थे। इन्होंने विश्वामित्र से कहा था—

"सब सुत प्रिय मम प्रान की नाईं। राम देत नहीं बनै गोसाईं॥"

और इन्होंने भरत तथा रामचन्द्र के सम्बन्ध में कैकेयी से कहा है—

"मोरे भरत राम दुइ आंखी। सत्य कहों करि संकर साखी॥"

यदि भेद था तो यही कि रामचन्द्र दाहिनी आंख थे। कारण यह था कि रामचन्द्र को इन्होंने बहुत कष्ट उठाकर और भारी तपस्या कर के पाया था। जो वस्तु कठिनाई से प्राप्त होती है वह अवश्य अधिक प्यारी होती है। इसी से रामचन्द्र के साथ इन की ऐसी प्रीति थी, कि—

"जिअइ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिक जिअइ दुख दीना॥
कहउं सुभावन छल मन माहीं। जीवन मोर राम बिनु नाहीं॥"

इसी से श्री रामचन्द्र सम्बन्धी कोई बात होने ही से ये बड़े असमंजस और आपत्ति में पड़ जाते थे। विश्वामित्र के रामचन्द्र को मांगने पर भी ये घबड़ा उठे थे, किन्तु वशिष्ठ के उपदेश ने इन्हें प्रतिज्ञा पालन का साहस प्रदान किया। आज भी उसी पुत्र वात्सल्य से विह्वल होकर ये मनही मन शंकर को मनाने लगे कि राम बन गमन नहीं करें और कहने लगे—

"अयस होइ बरु सुयस नसाऊ। नरक परों बरु सुर पुर जाऊ।
सब दुख दुसह सहावह मोही। लोचन ओट राम जनि होही॥"

इस समय स्वयम् रामचन्द्र ने इन्हें प्रतिज्ञाभ्रष्ट नहीं होने दिया। किन्तु इन्होंने पुत्र-वियोग में प्राण विसर्जन ही कर दिया। यह सब हुआ सही, परन्तु कैकेयी के बार बार यह कहने पर भी कि 'यदि प्रतिज्ञा पालन न करना हो तो उसे मुकर जाइये' इन्होंने वचन नहीं फेरा और रामचन्द्र को भी अपने मुख से बन जाने को नहीं कहा, भला इस से बढ़ कर पुत्रवात्सल्य और सत्यसन्धता का कोई उदाहरण हो सकता है? इसी से भगवान ने इन्हें अपयश नहीं होने दिया, इनकी प्रतिज्ञा की भी रक्षा की और इन्हें पुत्र स्नेह का एक परमोत्कृष्ट उदाहरण बनाया।

कैकेयीजी—कवि ने कहा है कि—

"कोन कुसंगति पाई नसाई। रहै न नीच मतै चतुराई॥"

कैकेयी की कथा इस कथन को भली भांति सिद्ध कर हमलोगों को चितावनी दे रही है कि कुसंगति करने तथा नीचों की बातों पर कान करने का महा क्लेशकारक परिणाम होता है। उस से कुसंगति करनेवाला ही कष्ट नहीं पाता वरन् उस से उस के सगे सम्बन्धी, सकल परिवार दुःख भोगते हैं। कुसंगति अच्छे अच्छे विद्वानों की मति भी भ्रष्ट कर देती है। अतएव कवि के इस पात्र द्वारा शिक्षा पर ध्यान रख कर सब को कुसंगति से बचना ही चाहिये।

देखिये कैकेयी को यद्यपि क्रोध और मान करना अच्छा लगता था, जैसा कि दशरथ ने कहा है—

"तुमहि कोहाव परम प्रिय लागा।"

तथापि उन का हृदय कठोर नहीं था। वह बुद्धिमती भी थीं और रामचन्द्र को प्यार भी करती थीं, क्योंकि उन्हों ने परीक्षा करके देख लिया था कि रामचन्द्र उन से विशेष स्नेह रखते थे। इसी से उन्हों ने राम तिलक का सम्वाद सुन कर कहा था कि—

"राम तिलक जो सांचेउ काली। मांगु देउं मन भावत आली॥
प्रान ते अधिक राम प्रिय मोरे। तिन के तिलक छोभ कस तोरे?॥"

और उन्होंने पहले किसी का अनभल भी नहीं किया था। परन्तु दुष्टा दासी की बातों पर विश्वास करने और कुसंगति से वे ऐसी बज्रहृदय हो गईं, अपने कर्त्तव्य को ऐसी भूल गईं और ऐसी बुद्धिहीना हो गईं कि—

"परौं कूप तव वचन लगि, सकों पूत पति त्याग।"

ऐसी प्रतिज्ञा करने में भी उन्हें हिचक नहीं हुआ। पति को दुःख से कातर देखकर दया प्रेम के बदले —जरे पर नमक छौंटती ही गईं और अपने आचरण और वाक्यों से उन्हों ने पति को ऐसा अधीर कर दिया कि उनके समान गंभीर और स्नेहपूर्ण व्यक्ति को भी—

"फिर पछितैहै अन्त अभागी।"

कहना ही पड़ा; सखी सहेलियों ने भी सुन्दर सीख नहीं मानने के कारण इन्हें दुर्वचन कह ही डाला, पति से चिरविछोह हुआ ही, पुत्र ने भी—

"हंसवंस दशरथ जनक, राम लषन से भ्रात।
जननी तू जननी भई,"

ऐसा वाक्य कह सुनाया। इन्हों ने आप वैधव्य का दुःख भोगा और स्वपरिवारवर्ग तथा पुरजन परिजन को भी शोकसागर में डुबाया। इन्हें तो दुःख होना ही चाहता था? क्योंकि ये एक रीति से पति-प्राणघातिनी हुईं, परन्तु इनके संसर्गदोष से औरों को भी दुःख झेलना पड़ा। आशा करते हैं कि स्त्री-पुरुष सभी इस विशेष पात्र के आचरण से शिक्षा ग्रहण करेंगे।

कौशल्याजी—ये श्रीरामचन्द्र की पतिधर्म्मपरायण, शीलवती, स्नेहमती माता हैं, दशरथ जी के यह कहने पर भी कि हम बड़े छोटे के विचार से नृपनीति करते थे—

"रामसपथ सत कहउं सुभाऊ। राममातु मोहि कहा न काऊ॥"

कैकेयी कहती हैं—

"जस कौशिला मोर भल ताका। तस फल देउं उन्हैं करि साका"

और रामचन्द्र ऐसे पुत्र को—

"प्रान प्रान के जीवन जी के।"

पाषाणहृदया सौत वनवास दिलवा रही है और यह सम्वाद पुत्र के मुख से सुन कर अथाह शोकसागर में निमग्न होने पर भी कौशल्या कह रही हैं:—

"जो केवल पितुआयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ माता॥
जो पितु मातु कहेहु वन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।"

और भरत जी के नानिहाल से आने पर ऐसे ललक कर उन से मिलने को दौड़ती हैं मानों राम ही बन से फिर आये हों। धन्य कौशल्या जी! आप का आचरण अवश्य सराहनीय है और सब विमाताओं को अनुकरणीय है। आप के आचरण का अनुसरण करने से आज कितने घरों में सुख शान्ति का राज्य हो सकता है; कितने विमातृ पुत्र सानन्द कालक्षेप कर सकते हैं; इतना ही नहीं, आप के वाक्य और कार्य में सर्वथा धर्म तथा नीति भरी हुई है। आप चाहतीं तो सम्भवतः रामचन्द्र का वनगमन रुक जाता और स्वजन परिजन विरहवारिधि में नहीं डूबने पाते, परन्तु धर्म्म [1] का अवलम्बन कर आप ने समयानुकूल दूरदर्शिता दिखलाई और अपने उदाहरण से आगामी सन्तति का महोपकार किया:—

"राखों सुतही करों अनुरोधू। धर्म जाय अरु बन्धु विरोधू॥"

भला इस में नीति तथा धर्म का कितना आदर है। जब आप भरत को रामचन्द्र के तुल्य समझती थीं तब दोनों भाइयों में वैर-बीज बोने का क्यों उपाय करतीं?

रामचन्द्र को तो नीति धर्मविचार से वनगमन से नहीं रोका; और पातिव्रतधर्म्म के ध्यान से सीता जी के पति के संग जाने में बाधक नहीं हुईं। केवल यही कह कर रामचन्द्र से पूछती हैं कि "जिस जानकी को प्राण में लगाकर रखती थीं और—

जीवन मूरि जिमि जुगवत रहऊं। दीपबाति नहिं टारन कहऊं॥

वही जानकी तुम्हारे साथ जाना चाहती हैं; हे पुत्र! तुम्हारी क्या आज्ञा है? वन में रहने योग्य तो ये नहीं हैं और घर रह जाएं तो हम को बहुत अवलम्ब हो, सो सब बातों को विचार कर जैसा कहो उसके अनुसार हम इन्हें शिक्षा दें।" इन की ये सब बातें विपत्ति काल में इन के अपार धैर्य्यवती होने का परिचय दे रही हैं। दशरथ जी तो राम विरह में प्राण विसर्जन कर निश्चिन्त हो गये। किन्तु ये १४ वर्ष तक पुत्र और पुत्रवधू के वियोग की असह्य यन्त्रणा सहती रहीं। कौशल्या का एक अनुपम चित्र है। ये धैर्य्य की मूर्ति खड़ी की गई हैं।

सुमित्रा जी—राम और कौशल्या से जो कैकेयी को सम्बन्ध है वही सम्बन्ध सुमित्रा को भी है। परन्तु कैकेयी निज पुत्र को राजसिंहासन पर बैठाने के लिये राम के राज्याभिषेक में विघ्न डाल कर उन्हें १४ वर्ष के लिये बन भिजवा रही हैं और सुमित्रा स्वच्छ हृदय से अपने पुत्र को कह रही हैं:—

---

१. "पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते।
मातुर्दशगुणा मान्या विमाता धर्मभीरुणः॥"

"जो पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ॥"

और साथ ही साथ भक्तिपूर्वक सीता राम की सेवा करने का उपदेश दे रही हैं, जिस में उन लोगों को किसी प्रकार का बन में क्लेश न हो।

"उपदेश यह जेहि तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।"

अहा! यह कैसा अकारण स्वार्थत्याग है! कवि ने कैसा सहज सोहावन यह चित्र खड़ा किया है। आज कितनी माताएँ स्वार्थत्यागिनी हो अपनी सन्तति को ऐसी भ्रातृभक्ति का उपदेश देती हैं और उन्हें भ्रातृसेवा में नियुक्त करती हैं? यदि सभी माताएँ सुमित्रा के समान अपनी सन्तान को भ्रातृप्रेम और भ्रातृसेवा की शिक्षा दिया करें तो इसमें सन्देह नहीं कि सन्तति का बड़ा कल्याण हो।

सुमित्रा जी निश्चय स्नेहमयी बुद्धिमति स्त्री थीं। इन्हें अपनी दोनों सपत्नियों से तुल्य प्रेम था। कालिदास ने लिखा है :—

"साहि प्रणयवत्यासीत् सपत्न्योरुभयोरपि।
भ्रमरी वारणस्येव मदनिस्यन्दरेखयोः ॥"

अर्थात भ्रमरी जैसे हाथी के गंड की दोनों मदरेखा पर बराबर ही आसक्त रहती है वैसे ही उभय सपत्नी के प्रति ये स्नेहवती थीं। और इन के वैदग्ध तथा आत्मनिग्रह का परिचय तो रामचन्द्र के इसी बनवास के समय पा रहे हैं। इसी से कालिदास ने रघुवंश सर्ग १० श्लोक ७१ में इन्हें विद्या से उपमा दी है।

सीता—चरित्रचित्र-प्रदर्शिनी में यह पातिव्रत्य का आदर्श चित्र है। पिता की फुलवाड़ी में सखियों के अनुरोध से रामचन्द्र को देख ये उन के रूपलावण्य पर मोहित हुई हैं। परन्तु पिता का प्रण स्मरण कर और धर्म्मसङ्गत अन्य कोई उपाय नहीं देख ये भवानी के मन्दिर में जा हाथ जोड़ कर वन्दना करने लगी हैं कि 'हे माता पतिव्रताओं में आप का प्रथम स्थान है, आप की महिमा अपरम्पार है, आप वरदायिनी हैं, आप अन्तरयामिनी हैं, हमारे मनोर्थ को अच्छी तरह जानती हैं' और यही कह कर भगवती के श्रीचरणों में लिपट गई हैं। भवानी ने उन की मनोकामना को सफल किया है।

जब एक पुरुष को देख उस के लिये मन में सहज पवित्र स्नेह का उद्भव हुआ, तो फिर संसार में दूसरा कौन? वही परम पूजनीय देवता हुआ। यही पातिव्रत धर्म्म है और इस सद्गुण से आर्य्य महिलागण सुशोभित हैं। इसी से वे संसार भर की स्त्रियों की शिरोमणि समझी जाती हैं।

पातिव्रत-धर्म्मभूषिता सीता पति को वन में भेज आप कब सांसारिक विभवसुख में लिप्त रह सकती थीं? सदा लाड़प्यार से लालित पालित एवम् कोमल सुकुमार कलेवर होने पर भी राजसुख और राजविभव से घृणायुत मुंह मोड़ कर पति की दुःखावस्था में उनकी सहवर्तिनी

होने को उठ खड़ी हुईं। परन्तु सास का निरादर नहीं किया। उनसे आज्ञा मांगने के लिये उनके समीप जा कर लज्जायुत चुप चाप बैठ रहीं। स्वयम् धर्मपरायणा स्नेहमयी सास इस सुकार्य में कब बाधा दे सकती थीं! रामचन्द्र ने देशकाल विचार कर इन्हें घर रखना चाहा जिसमें ये सासादि की सेवा कर उन्हें कुछ सुख पहुँचा सकें और सहज स्नेह से बन की विपत्तियों का भी वर्णन किया। परन्तु पतिसेवा मुख्य जानकर इन्हों ने सविनय कहा।—

"जहं लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहिं तरनिहुं ते ताते॥
तन धन धाम धरनि अरु राजू। पति बिहीन सब सोक समाजू॥"

पतिवियोग दुःख के सामने पतिव्रता को किसी अन्य दुःख का कब ध्यान हो सकता है? इन्हों ने बहुत ही ठीक कहा—

"नाथ साथ सुर सदन सम, परनसाल सुखमूल।" [१]

और अधिक क्या कहें—

"राखिय अबध जो अवध लगि, रहत जानिये प्रान।"

और वन में मुझे दुःख होगा, हाय!—

"मैं सुकुमार नाथ बनजोगू। तुमहिं उचित तप मोकहँ भोगू॥"

अहा! कैसा मधुरभाषण है? कितना सहजस्नेह टपक रहा है!

सीता जी आप धन्य हैं, और आपका अनुकरण कर के जो स्त्रियां पातिव्रत धर्म्म में लगी रहती हैं और लगी रहें एवम् आपही के प्रति अनसूया का यह वाक्य—

"अमितदान भर्त्ता वैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥"

स्मरण रख कर कार्य्यवर्त्तिनी हों, वे भी धन्य हैं; और धन्य हैं आपके सच्चरित्र के चित्रकार गोसाईं जी जिन्हों ने एक विदेशीय पादड़ी रेवरेन्ड एडविन ग्रीव्स से भी यह कहला दिया कि "क्यों नहीं? ऐसी पतिव्रता स्त्री दुःख और सुख में अपने नाथ के साथ क्यों नहीं रहे? मेरी समझ में सम्पूर्ण रामायण में ऐसी सुन्दरता और रोचकता कहीं नहीं मिलती जैसी इस स्थान में दिखलाई देती है।"

सीता जी ने कई कठिन परीक्षाएँ पास कर ऐसा उच्चस्थान प्राप्त किया है। राजभवन में अनन्त सुख भोगते हुए इन्हों ने सहजस्नेह और सेवा से पति को प्रसन्न रखा है। बाल्मीकि जी कहते हैं कि दशरथ ने कौशल्या के सम्बन्ध में कहा था कि "वह दासी, सखी, भगिनी, और माता की तरह हमारी सेवा करती है।" सीताजी में भी निस्सन्देह ये गुण वर्त्तमान थे। आज भी अधिकांश हिन्दू महिलायें इन इन शुभ गुणों से वञ्चित नहीं हैं और किसी प्रकार से पति की सेवा करने में लज्जा नहीं करती। समाज संशोधक महाशय चाहें उनकी हवाई दुर्दशा वर्णन

१. एक अन्य कवि ने भी कहा है:—
"टूट ठाट घर टपकत खटियोटूट। पिय की बांह उसिरवां सुख को लूट॥"

कर जितना आंसू बहाया करें और उनके पति को उन्हें केवल बाल-प्रसविनी यन्त्र ही मानने का गौरव प्रदान किया करें परन्तु वे पतिसेवा को अपना मुख्य धर्म्म समझती हैं और पति उन्हें सहधर्म्मिणी तथा गृहलक्ष्मी मानते हैं। फिर सब सुख को तिलाञ्जलि दे, बनवासिनी हो, पति के संग बन बन घूम कर इन्हों ने अपने प्रेम, धर्म्म तथा सेवा से पति को संतुष्ट रखा है। और इस पद के अनुसार—"है खरा खोटा मुहब्बत में ये कैसा 'होशियार'। आतिशे हिजरां में खूब इसको तपा कर देख लो ।।"

अशोक बाटिका में पतिवियोग के धधकते हुए ज्वाले को चिरकाल सहन कर इन्हों ने अपने निश्चल पातिव्रत धर्म्म पालन का परिचय दिया है। रावण का प्रबल प्रताप, मधुर प्रणय, भयानक ताड़ना, भयावनी राक्षसियों की भीषण यन्त्रणा एवम् स्वर्ग तुल्य लंका का विभव इन के मन को किञ्चित्मात्र भी चलायमान नहीं किया। और ये श्री रामचन्द्र के प्रति अटल प्रेम से तनिक भी विचलित नहीं हुईं। यह इन के पातिव्रत का ही बल था कि त्रयलोक-विजयी महाबली रावण को भी जिस के नाम से देवलोक भी थर्रा उठता था, ये सर्बदा धिक्कार देने को समर्थ हुईं। नहीं तो सीता के समान भीरु ललना को उस के सामने चूं करने का भी कब साहस होता ? [१] इन्हों ने विरहानल में दग्ध हो कर अपने प्रखर प्रेम का सिक्का नहीं ढाला है वरन् सचमुच लहकती हुई आग में सहर्ष प्रवेश कर इन्होंने अपने प्रेम तथा पातिव्रत का प्राबल्य जगत पर प्रकट कर दिया है। इसके अनन्तर गोसाईं जी ने बाल्मीकि के आश्रम में रख कर इन की पुनः परीक्षा की आवश्यकता नहीं देखी है।

इस चित्र से यह भी शिक्षा मिलती है कि कैसी ही पतिपरायणा स्त्री क्यों न हो, पति की रुचि के विरुद्ध एक भी कार्य्य करने से चाहे वह विशुद्ध प्रेम के ही आवेग के कारण हो, उसे अवश्य दुःख झेलना पड़ता है। तब जो स्त्री अपनी कुचालों से सुखमय सदन को प्राणपीड़क श्मशान बनाये रहती है उसकी क्या गति होगी ?

रामचन्द्र—ये ग्रंथ के प्रधान नायक हैं। इनका चित्र महत्त्वपूर्ण है और कई विभागों से दर्शनीय है। महत्त्वपूर्ण, इसी कारण से नहीं कि ये ब्रह्म के अवतार माने जाते हैं, किन्तु विशेषतः इस कारण से कि एक राजवंश में जन्म ग्रहण कर इन्हों ने शिष्य, पुत्र, भ्राता, पति, प्रभु, मित्र, आदि अनेक रूपों से अपने महान् कार्य्यों के द्वारा गृहस्थधर्म उपयोगी ऐसी सद्शिक्षाएं प्रदान की हैं कि सहस्रों वर्ष व्यतीत होने पर आज भी आर्य्यसन्तान उन से महान लाभ उठा रही हैं। ऐसा सजीव 'शिक्षा सुहृद्' मिलना दुष्कर है। भला रामचन्द्र जैसा सुशील, गम्भीर, आत्मत्यागी, गुरुभक्त, पितुभक्त, मातुभक्त, प्रियास्नेही, भ्रातृवत्सल, दास वत्सल, स्वजन परिजन और मित्र सुखदायक एक ही पुरुष कहां पाते हैं ? संसार का कौन देश और कौन जाति ऐसा सद्गुण सम्पन्न आदर्श चित्रहमलोगों के नेत्रपथ में उपस्थित कर सकती है।

इनकी गुरुभक्ति तथा गुरुसेवा विश्वामित्र के एक तुच्छ दास के समान आज्ञावर्त्ती होने एवम् वशिष्ठादि के सम्मान में झलक रही हैं।

---

१. "कम्पते सर्वे तेजांसि दृष्ट्वा पातिव्रतं महः।"

पितृभक्ति ही तो इस अनुपम चित्र की मुकुटमणि है। जिस समय इन्हें राज्याभिषेक होने को था उसी समय इन की विमाता ने इन के पिता को पहले प्रतिज्ञाबद्ध करा के इन के बनवास का वर मांग लिया। विमाता ही से यह सम्वाद सुन कर खेद विस्मय रहित प्रसन्नचित्त आप कहने लगे—

"सुन जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥

बनगमन में हानि ही क्या है? वहां तो मुनियों के दर्शन का अधिक अवकाश और आनन्द मिलेगा, मेरा सब प्रकार से हित साधन होगा, और वनवास के लिये पिता की आज्ञा होने से और उस में हे माता! तुम्हारी सम्मति होने से यह तो और सोने में सुगन्ध मिल गया। मैं अभी बन की यात्रा करता हूँ।" बस अपनी माता का दर्शन कर और उनकी आज्ञा ले पतिपरायणा पत्नी तथा भ्राताभक्त भाई के संग बनगमन के लिये तैयार हो गये। होते क्यों नहीं? राजप्राप्ति का लोभ थोड़े ही था। वह तो पहिले ही से कह रहे थे—

"बिमलबंस यह अनुचित एकू। बंधु बिहाय बड़हिं अभिषेकू॥"

विषय में अनुरक्ति थी ही नहीं—

"नाहिन राम राज के भूखे। धर्म धुरीन विषय-रस-रूखे॥"

और भरत के राज पाने में आनन्द ही था—

"भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सन्मुख आजू॥"

वाह रे आत्मत्याग! वाह रे पितृभक्ति! केवल यही एक चरित्र इन के चित्र को अमर करता है। और चरित्रों की बात दूर रखिये। इन के इसी चरित्र से मोहित होकर एक सुविख्यात यवन सज्जन ने एक बार एक समाचार पत्र में लिखा था कि "क्या यह मनुष्य का काम है?"

इनकी मातृभक्ति भी ऊपर की घटना से प्रदर्शित होती है और मातृप्रेम के विषय में तो स्वयम् कैकेयी जी ने कहा है—

"कौसल्या सम सब महतारी। रामहिं सहज सुभाय पिआरी॥"

और—

"मो पर करहिं सनेह विसेषी।"

फिर—

"तुम अपराध जोग नहिं ताता। जननी जनक बन्धु सुखदाता॥"

उन्हीं के कारण बनवास होने पर भी उनके प्रति इस प्रेम में कुछ कमी नहीं हुई और सब माताओं पर पूर्ववत तथा तुल्य स्नेह बना रहा। इसी से बन जाते समय बार२ हाथ जोड़ कर सबों से उन्हों ने यही विनय किया:—

"मातु सकल मोरे बिरह, जेहि न होहिं दुख दीन।
सोइ उपाय तुम करब सब, पुरजन परम परबीन॥"

सीता जैसी सुशीला पतिव्रता पत्नी पा कर भी यदि इन में पत्नी प्रेम का अभाव होता तो ये आदर्श पुरुष कैसे होते ? ये उन्हें भी प्यार करते थे और उन्हें प्रसन्न तथा सन्तुष्ट रखने की सदा चेष्टा भी किया करते थे। वरन् उनके प्रसन्न करने के उद्योग ही में इन का अपहरण भी हुआ। ऐसे नारीरत्न के वियोग में इनका भारी विलाप कलाप कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। निश्चय ऐसी प्रियतमा सहधर्म्मिणी के निमित्त इन को काल से लड़ने के लिये उद्यत होना उचित ही था—

"एक बार कैसेहु सुधि जानो। कालहु जीत निमिष महँ आनो।"

और इसी प्रीति के कारण महाबली शत्रु से तुमुल युद्ध कर इन्हों ने उस का सपरिवार संहार भी किया। इन्हों ने अपनी प्रियतमा को अपने हृदय में प्रेमासन पर बिठाया था सही, परन्तु इन्हों ने अपना नकेल उन के हाथ में नहीं दे दिया था और न उन के प्रसन्नार्थ आप सब परिवार से मुंह मोड़ बैठे थे। ये भाई को स्त्री से बढ़ कर समझते थे। हा! आज कितने स्थानों में नारी के घर में प्रवेश करते ही एक उदर का वास-करने-वाला भाई एक गृह में वास नहीं करने पाता; एक स्तन से और एक गोद में पला हुआ भाई एक हांडी से एक चौका पर खाने नहीं पाता!

परन्तु रामचन्द्र के हृदय में भ्रातृप्रेम कैसा था। देखिये लंका में घनघोर युद्ध हो रहा है; लक्ष्मण घायल हो संज्ञाशून्य भूतल में पड़े हुये हैं; हनुमान सजीवन बूटी लाने गये हैं। यहां रामचन्द्र भाई की दशा देख अधीर हो फूट २ कर रो रहे हैं और कह रहे हैं:—

"मम हित तात तजेउ पितु माता। सहेउ विपिन हिम आतप वाता॥
जौं जनितो बन बन्धु बिछोहू। पिता वचन मनितों नहिं ओहू॥
सुत वित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग वारहिं वारा॥
अस विचार जिय जागहु ताता। मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता॥"

हमारे रामायणी भाई लोग इसबात पर तो अवश्य माथा खपाने को तैयार हो जाते हैं कि लक्ष्मण तो सहोदर नहीं थे, गोसाईं जी ने ऐसा क्यों लिखा वा रामचन्द्र ही ने ऐसा क्यों कहा? परन्तु इस से सद्शिक्षा ग्रहण की स्वप्न में भी चेष्टा नहीं करते। अरे भाई! रामचन्द्र 'परोदर' को 'सहोदर' मान उस के जीवन के सामने प्रिय-पत्नी तथा परिवार को तुच्छ बता रहे हैं और तुम दिन रात रामायण पाठ करने पर भी 'सहोदर' को 'परोदर' ही नहीं वरन् घोर शत्रु समझ उसके प्राण के ग्राहक बनने में भी संकोच नहीं करते।

भरत भी रामचन्द्र के 'प्राणप्रिय' थे। जिस समय चित्रकूट में भरत को ससैन आते देख लक्ष्मण जी सकोप उन से युद्ध करने को तैयार हुये हैं, उस समय भरत जी का शील, स्नेह वर्णन करते रामचन्द्र प्रेमपयोधि में मग्न हो गये हैं। ऐसा गोसाईं जी ने हमलोगों से स्वयम् कहा है। और यह भी कहा है कि—

"भरत सरिस को राम स्नेही। जग जप राम राम जप जेही॥"

ये पुरजन तथा प्रजावर्ग को इतना प्यार करते थे कि इन के बनवास होने का समाचार सुनते ही सबलोग विकल हो गये, इन के साथ चल पड़े और बड़ी कठिनाई से ये उन लोगों से अपना पिण्ड छोड़ा सके और लक्ष्मण जी को भी ये प्रजा के सुख के ध्यान ही से अवध में रखना चाहते थे। क्योंकि इन्हों ने कहा था—

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवस नरक अधिकारी ॥"

यह विचार इन का उस समय था जब ये केवल राजकुमार थे। यह वाक्य निश्चय प्रीति और नीति गर्भित है।

इन की नीति निपुणाई के विषय में यह भी कहा जा सकता है कि अवसर पड़ने पर किसी के संग प्रीति मिताई करने में ये संकोच नहीं करते थे। इन्हों ने निषाद तथा बनचरों से प्रीति की, सुग्रीव से मिताई कर भाल बानरों को भी अपना बनाया और शत्रु के बन्धु को शरण प्रदान कर इन्हों ने राज नीतिज्ञता का पूरा परिचय दिया। परन्तु जिस से मित्रता हुई वह निष्कपट मित्रता हुई; केवल स्वार्थ साधन के लिये नहीं और वह जन्म भर निवाही गई। एवम् अपना यह कथन—

"जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिनहिं विलोकत पातक भारी ॥"

सदा सार्थक किया गया।

ये सच्चे प्रेम के बड़े भूखे थे इसी से इन्हों ने शबरी का जूठ खाया और अपने हाथ से गीध का देह-संस्कार किया। और सचाई में तनिक खोटाई देखने से इन्हें कभी-कभी क्रोध भी आता था। इसी से सुग्रीव के सम्बन्ध में इन्हों ने कहा था—

"जेहि सायक मैं मारा बाली। तेहि सर हतौं मूढ़ कहँ काली ॥"

और कुछ ऐसे ही कारण से समुद्र पर भी कोप हुआ था। संसार में कार्य्य साधन के लिये नरम और गरम होना दोनों ही आवश्यक हैं। किसी एक के सर्वथा अभाव से काम नहीं चल सकता। शेख सादी ने कहा है—

"दुरश्ती ओ नर्मी बहम दर बिहस्त।"

अर्थात् गरमी और नरमी का संयोग उत्तम होता है।

दूसरों का दुःख देख के अन्तःकरण में पीड़ा होती थी। इसी से मुनियों के मुख से उन के क्लेश का हाल सुन कर इन्हों ने निश्चर विहीन पृथ्वी करने की प्रतिज्ञा की और सुग्रीव की पीड़ा ही देखकर बालि का भी बध किया। परन्तु ओट में होकर बध क्यों किया? यह कथा ले कर हम यहाँ वितण्डा वाद करना नहीं चाहते। इसका उत्तर स्वयं गोसाईं जी तथा आदि कवि ने देने की चेष्टा की है। वे चाहें सन्तोष-दायक हों, या न हों; हम यहाँ पर यही कहेंगे कि इनके चरित्र में ऐसी कोई बात नहीं रहने से ये हमलोगों से बहुत दूर ऊँचे चले जाते और आदर्श चित्र न हो कर केवल परब्रह्म ही रह जाते। ये बात इन्हें अभिप्रेत नहीं थी क्योंकि ये संसार के कल्याणार्थ संसार में विराजमान हुये थे।

भरत जी—रामायण में यह एक अलौकिक दर्शनीय चित्र है। सद्भाव, विशुद्ध भ्रातृभक्ति तथा स्वार्थत्याग एक ही कलेवर में मूर्तिमान खड़ा है। कैकेयी जी में कोटि दोष क्यों न हो

केवल भरत के समान एक सन्तान प्रसव करने से वे हमलोगों की सर्वथा पूजनीया हो गई हैं। उन की कुचाल से जो भरत जी पर कलंक की टीका लगने की सम्भावना थी उसे इन्हों ने स्वार्थ-त्याग तथा रामचन्द्र के प्रति निश्छल प्रेम प्रदर्शन कर सर्वथा निर्मूल कर दिया। इन के सद्गुणों को तो लोग पहले ही से जानते थे, परन्तु यह इन की जाँच का अवसर था और इस जाँच में भी ये पक्के निकले।

नानिहाल से आने पर अपनी माता का दर्शन पाते ही ये पूछते हैं :—

"कहु कहँ तात कहां सब माता। कहँ सिय राम लषन प्रिय भ्राता॥"

और माता के मुख से पिता की परलोक यात्रा का हाल सुन कर उस का कारण पूछते हैं उस समय राम के बनवास का वृत्तान्त श्रवण कर—

"भरतहि बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौन।"

इतना ही नहीं। पिताप्रदत्त राज को लोगों के आग्रह करने पर भी इन्हों ने स्वीकार नहीं किया और परिवार तथा पुरजन समेत रामचन्द्र की सेवा में पहुँच कर वहाँ इन्हों ने ऐसा विशुद्ध प्रेम का परिचय दिया कि भय से देवराज का भी कलेजा कांपने लगा कि कहीं ऐसा न हो कि इन के प्रेमपाश में फँसकर रामचन्द्र अवध लौट जांय और देवतों का बना बनाया काम मिट्टी में मिल जाय। अतएव वे फिर सरस्वती की शरण में दौड़े कि वे सहायता करें। शारदा ने कहा कि तुम्हें हजारों आखें रहते हुए भी नहीं सूझती? ये क्या दुर्बल चित्त दासी हैं कि इन पर हमारा दाव चलेगा? जब रामचन्द्र ने अपने लौटने या नहीं लौटने का विचार इन्हीं पर छोड़ दिया तब धर्म्मज्ञ भरत जी उन्हें संकोच में डाल कर अवध फेर लाना उचित न समझ उन की खड़ाऊँ ले कर लौट आये एवम् इन्हीं पादुकाओं को सिंहासन पर विराजमान कराया। उधर रामचन्द्र १४ वर्ष बन बन घूमते रहे इधर भरत जी जटा वल्कल धारण किये नन्दीग्राम में समय व्यतीत करने लगे। कवि ने इनके विषय में इसी वाक्य में बहुत कुछ कह दिया है—

"जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥"

संसार में ऐसा स्वार्थ त्याग अलभ्य है।

ये बलवान भी ऐसे थे कि इन का बिना फल का बाण लगने से हनुमान जी द्रोण पर्वत समेत पृथ्वी पर धम से गिर पड़े थे और उस समय इन्हों ने कहा था कि 'आप पर्वत सहित मेरे बाण पर बैठिये मैं तुरत आप को लङ्का पहुँचा देता हूँ।'

श्रीलक्ष्मण—ये मौनी भ्राताभक्त, स्नेहपूर्ण, संयमी, सन्यासी, भ्रातृस्नेह में आत्मविस्मृत और संसारविस्मृत हो रहे थे। इन का स्नेह सर्वत्र मौनरूप से प्रकट होता गया है। अपने स्नेहमय वाक्यों से इन्होंने उसे कभी प्रकट नहीं किया है। ये रामचन्द्र के छाया स्वरूप थे, राम के बिना इन्हें एक क्षण भी कल नहीं पड़ती थी। इसी से राम के बनवास का वृत्तान्त सुन कर ये व्याकुल चित्त होते हैं और अधीर हो उन का चरण पकड़ते हैं। रामचन्द्र समयानुसार उपदेश करते हुए इन्हें अवध में ठहरने की सम्मति देते हैं। परन्तु बिना राम के इन्हें चैन कहाँ? वे जङ्गल में कष्ट उठावें और ये राजप्रासाद में आनन्द करें, भला यह कब सम्भव है? अतएव लक्ष्मण जी, कहते हैं कि "आप स्वामी हैं, मैं दास हूँ; मुझे त्याग दीजिये तो मैं क्या कर सकता हूँ? परन्तु बात यह है—

"गुरु पितु मातु न जानौं काहू। कहउँ सुभाव नाथ पतिआहू॥"

क्या जो सब प्रकार से चरणों में रत हो उसे त्याग देना उचित है? इन के प्रेम के कारण रामचन्द्र को इन्हें साथ लेना ही पड़ा। किन्तु यह विकलता क्यों? ये तो सुख-दुःख में उबल नहीं पड़ते थे। ठीक है। यह विकलता उपस्थित या भावी विपत्ति के कारण नहीं, भ्रातृ-सेवा से वञ्चित होने की आशंका से थी। नहीं तो हम लोग इन्हें अधीर कब पाते हैं? विराध के चंगुल में सीताजी के फँस जाने एवम् रावण द्वारा अपहृत होने पर भी तो हम इन्हें रामचन्द्र को समझाते ही पाते हैं।

ये राम के बड़े आज्ञाकारी भ्राता थे। हम ने इन्हें उन के लिये बन में तुच्छ तुच्छ काम करते, उन के इशारे से सूर्पनखा की नाक कान काटते, उन का रूप देख लङ्का में सीता के अग्नि-प्रवेश के लिये चिता बनाते देखा है।

अपने प्रति ये किसी का अपराध सहन भले ही कर लें परन्तु राम के प्रति किसी का अपराध क्षमा करने को ये तैयार नहीं थे। इसी से सीता जी के मर्म वाक्य को तो इन्हों ने सह लिया परन्तु सुमंत से दशरथ के विषय में रूखी बातें कहते इन्हें कुछ संकोच नहीं हुआ।

ये निर्भीक तेजस्वी, धीरबीर, उत्साही, साहसी, पुरुषार्थी तथा बुद्धिमान पुरुष थे। उन की निर्भयता एवम् तेज आदि का प्रकाश धनुषयज्ञ में खूब देखने में आया है। राजाओं की खलबली देख—

"अरुन नयन भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन सकोप।
मनहु मत्त गजगन निरखि, सिंह किसोरहिं चोप॥"

और परशुराम जैसे क्षत्री-कुलघातक क्रोधी बीर पुरुष से निडर हो कह रहे हैं:—

"यहाँ कुम्हंड़ बतिया कोउ नाहीं। जो तरजनी देखि मर जाहीं॥"

इन की बीरता लङ्का में देखने में आई है। विशेषतः जब ये शपथ करके चले हैं कि आज मेघनाद का अवश्य बध करूंगा, और सच मुच उसे भू शायी बना ही दिया है।

अपने पौरुष और यत्न पर भरोसा करना भी इन में विद्यमान था। समुद्र से रास्ते मांगने के समय इन्हों ने रामचन्द्र से बेखटके कह दिया है—

"नाथ दैव कर कौन भरोसा। सोषिय सिंधु करिय मन रोषा॥
कादर मन कह एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥"

इस गिरी हुई अवस्था में अपने उचित यत्न और पौरुष पर भरोसा कर देश दशा सुधारने की शिक्षा मनुष्य इससे ग्रहण कर सकता है। इन के इस बात से यह स्पष्ट विदित होता है कि जहां इन की राय रामचन्द्र से नहीं मिलती थी वहां यह अपनी मति प्रकाश कर देने में भय नहीं करते थे, परन्तु लठ लेकर उन से विरोध करने को तैयार नहीं हो जाते थे।

ये दोनों पुरुष भ्रातृ भक्ति के आदर्श चित्र हैं। स्वार्थत्याग तथा आत्मत्याग का खूब गाढ़ा रङ्ग इन पर चढ़ा हुआ है। दोनों अपने विशेष प्रभा से देदीप्यमान हो रहे हैं। एक कोई सुन्दर अलभ्य मधुर फल के समान है और एक नित्य के पुष्टिकर खाद्य पदार्थ के तुल्य है।

जब हम एक को पिता प्रदत्त राज को परित्याग कर तपस्वीरूप धारण किये नन्दीग्राम में राम के ध्यान में मग्न देखते हैं और दूसरे को निज इच्छा से बनवास स्वीकार कर धनुष-वाण लिये योगी भेष में भ्राता के पीछे बन-बन घूमते, उन के दुःख और कष्ट के भागी होते, अपनी जान को हथेली पर रखे उन के कार्य्य साधन के लिये प्रवल शत्रुओं के संग संग्राम करते, निरीक्षण करते हैं, तो हमारी बुद्धि चकरा जाती है। हम इन दोनों महापुरुषों को सचमुच स्वर्गीय जीव एवम् आदर का धन तथा परम पूजनीय देवता मानते हैं। ऐसी उज्ज्वल तथा प्रवल भ्रातृभक्ति होने ही से कवि ने भरत के विषय में कहा है कि—

"अगम सनेह भरत रघुबर को। जहं न जात मन विधि हरिहर को।"

और रामलक्ष्मण ऐसे 'एक जान दो क़ालिब' होगये हैं कि सीता तथा भरत के बिना राम की कल्पना हो सके तो हो सके, परन्तु लक्ष्मण के बिना राम कहाँ? इसी से सीता राम से अधिक राम लक्ष्मण का इस देश में प्रचार है। ये उनके नित्य के कार्य में मिल गये हैं।

हा! जिस देश में भ्रातृभक्ति के ऐसे २ आदर्श हैं वहाँ विरोध वश एक धूरि भूमि के लिये भाई, भाई का गला घोंटने को उद्यत हो जाते हैं एवं चिर सञ्चित पैत्रिक धन तथा निजोपार्जित सम्पत्ति पर पानी फेर देते हैं। क्या उन्हें रामायण से सुन्दर शिक्षा देने वाला कोई नहीं है? क्या रामायण की कथा बांचनेवाले व्यास महाशय कभी अपने श्रोताओं का ध्यान इन बातों की ओर भी आकर्षित करते हैं? क्या रामायण-पाठीगण इन सद्-शिक्षाओं का कभी मनन करते हैं? क्या लीला-प्रेमी भक्तजन राजतिलक धनुषमख एवम् फुलवारी की झांकी ही से अपने को कृतार्थ और जगत् का कल्याण समझते हैं? इस भ्रातृस्नेह में कुछ सार नहीं पाते?

श्री राम, सीता, भरत तथा लक्ष्मण जी के सद्गुणों पर मुग्ध हो कर ग्राउस साहब ने गोसाईं जी कृत मानस रामायण के अँगरेजी अनुवाद की उपक्रमणिका में जो लिखा है, वह पाद नोट में उद्धृत कर दिया जाता है।[१] साहब के कथन का सारांश यह है कि कोई इन लोगों की पूजा न करे सही, परन्तु इन के सदगुणों की सराहना सभी करेंगे। हम कहते हैं कि इन्हें कोई ईश्वरावतार या ईश्वरांश होना स्वीकार करे या नहीं परन्तु अपने अलौकिक सद्-गुणों से ये लोग अवश्य ईश्वरत्त्व तथा देवत्त्व को प्राप्त हैं और सबसे पूजित होने के योग्य हैं।

---

१. All may admire, though they may refuse to worship the piety and unselfishness of Bharat, the enthusiasm and high courage of Lakshaman, the affectionate devotion of Sita—that paragon of all wife-like virtues—and the purity, meekness, generosity and self-sacrifice of Rama, the model son, husband and brother, the guileless king, high self-contained and passionless, the Arthur of Indian, Chivalry.—Introduction to english translation of Ramayan by Tulsidas, P. XX. published by Ram Narayan Lal.

रामायुधअङ्कित नहीं देख सक
यह कहा कि—

"सुनहु पवन सुत रह
तो इस से भी यही

को क्लेश नहीं होता और वह
राक्षसों से सदा घिरे रहने पर

रावण को तो सब लो
इन को लात मारने का
गया था कि इन्हीं ने हनुमान
हुये थे तथा राजद्रोही थे। य
तुल्य भ्राता को जिस की कृपा
कर और शत्रु के संग मिल
नहीं था। इन में जातीयता
यह कार्य्य दिनों से निन्दनीय
गोसाईं जी के समसामयिक
कराया है। गोसाईं जी को
देखा जाता है। रामायण
ले जाकर उस से इन्हें धन्य
चूर रण मदमत्त कुम्भकर्ण का
समझते हों तब तो।

इन का कार्य्य निःस
जाते ही उस की खबर श्री
लंका परित्याग कर देते। ब
पर अवश्य अधिकार कर लें
मिले, भला इन्हों ने लात म
अपनी गृहिणी क्यों बनाया
और वे बनचर थे, परन्तु ये तो
भाई रावण के समान दुराच
भक्तिभाव के विचार से इधर
यह करतूति पाप ही प्रतीत हुई

"जेहि अघ बधेउ ब्या
सोई करतूति बिभी

१. केशवदास कृत

आती है और अवश्य होनी चाहिये।
वम् इन महा पात्रों के सुकार्य्यों से सद्-
हमलोगों का उभय लोक में कल्याण हो

ठिनाई के विषय में कहा है :—"मौना-
न सहते प्रायशो नाभिजातः। धृष्टः
हनो योगिनामप्यगम्यः॥"

ानरराज सुग्रीव के मंत्री थे और इन्हीं के
ारा से इन्हें रामचन्द्र का साथ हुआ ये
'चित्त रहे। राम की सेवा किये बिना ये
ामणि तथा प्रभुभक्त थे। अकेले मार्गस्थ
ता का पता लगाना, लङ्का दग्ध करना,
ा और चातुर्य्य का पूरा परिचय दे रहे
ावण के साथ बातचीत करने में हमें इन
ही एक मुष्टि का मार रावण, कुम्भकर्ण,
नाम को सार्थक किया है। इनकी अकपट
पर अधिकार रखने को समर्थ हुए और'

ऊ सुर नर मुनि तनुधारी॥
होइ न सकत मन मोरा॥"

उन के विषय में दूसरे किसी को अधिक
वन्ह हनुमान गढ़ी आज भी श्री अवध में

त्र के भतीजे थे। अल्पावस्था ही में ये
कहा था कि यह बालक मेरे ही समान
ाई। इन्हों ने अपने शील स्वभाव और
बल पराक्रम तो इसी से प्रकट है कि
हाथ पटकने से रावणादि सभी लोग मुंह
ल भर भी हटाने को समर्थ नहीं हुआ।
कह कर 'कि मेरा पैर पकड़ने से तुम्हारा
ह अपना सा मुंह ले कर बैठ गया। यह
न्द्र ने इन्हें पूरा अधिकार दे कर रावण के
—

चतुर मैं जानत अहऊँ।"

रावण के साथ सम्भाषण करने में इन्हों ने अच्छी बुद्धिमानी, वाक्यपटुता और 'हाजिर जवाबी' प्रदर्शित की है। रणक्षेत्र में भी हमने इन्हें हनुमान ही के समान उत्साह और उमङ्ग के साथ युद्ध करते एवम् बल विक्रम प्रकाश करते देखा है। तब इन्होंने समुद्र किनारे क्यों कहा था :—

"जिय संसय कछु फिरती वारा।"

इस का उत्तर देना रामायणियों के बांटे में है, उन्हीं से पूछ लीजिये।

जामवन्त—ये भालुओं के राजा थे। ये विज्ञ और बड़े बली थे। युद्ध काल में रामचन्द्र ने इन्हें अपना मंत्री बनाया था। इन्हीं की सम्मति से लक्ष्मण के शक्ति लगने पर लंका के वैद्य सुखेन लाये गये थे और इन्हीं ने हनुमान को लंका जाने के लिये प्रोत्साहित किया था। वृद्धावस्था होने पर भी इन्हों ने एक बार मेघनाद को त्रिशूल प्रहार से मूर्छित कर और उसका पैर पकड़ कर उसे लंका पर फेंक दिया था। अपनी जवानी का बल तो इन्हों ने बानरों से स्वयं वर्णन किया है।

सुग्रीव—रामचन्द्र से मिताई कर के अपने भाई का बध कराकर इन्होंने किष्किन्धा का राज्य प्राप्त किया था। परन्तु राज्य पाकर ये विषयासक्त हो गये थे। हनुमान ने नीति ज्ञान का उपदेश करके इन्हें फिर ठिकाने पर लाया था। इन्होंने बानरी सेना से रामचन्द्र की पूरी सहायता कर अपनी कृतज्ञता दिखाई थी और रणक्षेत्र में ये खूब लड़े थे। ये रामचन्द्र के प्रधान युद्ध मंत्री और सेनाध्यक्ष थे।

विभीषण—ये रावण के छोटे भाई थे। रावण से अपमानित होने पर राम से मिलकर इन्होंने अपने कुल परिवार का नाश कराया। सुग्रीव और विभीषण यद्यपि श्री राम के भक्त थे और इन लोगों से रामचन्द्र को लंका विजय में अच्छी सहायता मिली तथापि इन लोगों की भक्ति हनुमान और अङ्गद के समान स्वार्थशून्य नहीं थी। कहां भरत और लक्ष्मण का स्वर्गीय चित्र और कहां ये बन्धु घातकों का चित्र ? परन्तु इन चित्रों को दिखा कर भी कवि हमलोगों को सुन्दर शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। घर में विरोध होने से कदापि कल्याण नहीं होता। अतएव घर के किसी व्यक्ति के संग ऐसा बर्ताव करना उचित नहीं जिस से वह शत्रु बनकर सर्वनाश करा डाले।

परन्तु ये लोग कैसे बर्तावों से इतने बिगड़ बैठे इस की भी कुछ आलोचना उचित है। सुग्रीव के पक्ष में तो यह कहा जा सकता है कि बालि उन की [1] स्त्री और सब सम्पत्ति अपहरण कर उन्हें चैन से कहीं रहने भी नहीं देता था परन्तु विभीषण के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। रावण इन्हें बहुत आदर मान से रखता था। उस ने इन्हें अपनी सभा का मंत्री नियुक्त किया था। इन के रामभजन में भी बाधा नहीं डालता था और ये खुले मैदान रामभजन करने पाते थे। यदि यह बात नहीं होती तो हनुमान जी इन का गृह

---

१. बाल्मीकीय रामायण से ध्वनित होता है कि पहले सुग्रीव ही ने बाली की स्त्री को अपना लिया था, समुद्र किनारे बानरों के सङ्ग अङ्गद का वार्त्तालाप पाठ कीजिये।

रामायुधअङ्कित नहीं देख सकते और न इन्हें रामनाम जपते ही सुनते विभीषण ने जो यह कहा कि—

"सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महँ जीभ बेचारी॥"

तो इस से भी यही अनुमान होता है कि जैसे सर्वदा दाँतों से घिरे रहने पर भी जीभ को क्लेश नहीं होता और वह स्वतंत्रतापूर्वक अपना कार्य्य किया करती हैं वैसे ही दुराचारी राक्षसों से सदा घिरे रहने पर भी इन्हें भजन भाव में बाधा नहीं होती थी।

रावण को तो सब लोग ही समझाते रहे परन्तु उसने लात तो किसी को नहीं मारी। इन को लात मारने का कारण यह हो सकता है कि उसे यह समाचार अवश्य मिल गया था कि इन्हीं ने हनुमान जी को सीता का भेद बताया था और ये गुप्तरूप से शत्रु से मिले हुये थे तथा राजद्रोही थे। यदि रावण ने अन्याय ही से इन्हें लात मारी थी तौभी पिता के तुल्य भ्राता को जिस की कृपा से ये इतने काल तक सुख भोगते रहे ऐसे कुसमय में परित्याग कर और शत्रु के संग मिलकर राक्षस कुल के संहार का इन्हें उपाय बताते रहना उचित नहीं था। इन में जातीयता की गंध भी नहीं पाई जाती। बोध होता है, विभीषण का यह कार्य्य दिनों से निन्दनीय समझा जाता है। वाल्मीकि जी ने मेघनाद के मुख से तथा गोसाईं जी के समसामयिक केशवदास ने रामचन्द्रिका में लव के मुख से इन्हें बहुत धिक्कारित कराया है। गोसाईं जी को भी यह बात कुछ जरूर खटकी है। इस का आभास गीतावली में देखा जाता है। रामायण में तो उन्होंने कुम्भकर्ण के सम्मुख इन्हें अपनी सफाई के लिये ले जाकर उस से इन्हें धन्यवाद और 'कुलभूषण' की पदवी दिलवाई है। परन्तु नशे में चूर रण मदमत्त कुम्भकर्ण का धन्यवाद ही क्या? लंका निवासी सब राक्षस इन्हें कुलभूषण समझते हों तब तो।

इन का कार्य्य निःस्वार्थ तथा उचित तब समझा जाता जब ये सीता के लंका में जाते ही उस की खबर श्री रामचन्द्र को पहुंचा देते। या लव के कथनानुसार[1] उसी दम लंका परित्याग कर देते। बात यह है कि जब इन्होंने देखा कि रामचन्द्र पहुंच गये और लङ्का पर अवश्य अधिकार कर लेंगे तब एक बहाना लेकर अपने स्वार्थसाधन के लिये उन से आ मिले, भला इन्हों ने लात मारने से तो रावण को त्याग किया; परन्तु उस की भार्य्या को अपनी गृहिणी क्यों बनाया? सुग्रीव ने तो खैर, बदला चुकाने के लिये ऐसा किया होगा और वे बनचर थे, परन्तु ये तो उत्तम कुलोद्भूत, पुलस्त्य मुनि के धर्म्मपरायण नाती थे, अपने भाई रावण के समान दुराचारी भी नहीं सुने जाते। श्री रामचन्द्र का इनलोगों के आन्तरिक भक्तिभाव के विचार से इधर ध्यान नहीं गया हो, परन्तु स्वयम् गोसाईं जी को इन लोगों की यह करतूति पाप ही प्रतीत हुई है। इसी से उन्हों ने कहा है—

"जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिर सुकंठ सोई कीन्ह कुचाली॥
सोई करतूति विभीषण केरी। सपनेहु सो न राम हिय हेरी॥"

---

१. केशवदास कृत रामचन्द्रिका देखिये।

यदि गोसाईं जी इस चित्र पर भक्ति का गाढ़ा रोगन न फेरे होते तो यह चित्र दृष्टिपात के योग्य भी नहीं होता।

रावण—लङ्का का अधीश्वर दृढ़संकल्प, महा-बल-शाली, आत्म-निर्भर, सुपण्डित, वाक्पटु तथा नीतिज्ञ था। इसने तप भी बहुत किया था, किन्तु अभिमानी होकर धर्म्म विमुख और अत्याचारी हो गया था। सूर्पनखा के मुख से उसके अपमान तथा खरदूषण के बध का हाल एवम् रामचन्द्र का वृत्तान्त सुन कर यह क्रोधाभिभूत हो गया और सोचने लगा कि मेरे तुल्य बलवन्त खरदूषण को सिवाय ईश्वर के कौन मार सकेगा?

"सुर रञ्जन भञ्जन महिभारा। जो जग नाथ लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाय वयर हठ करऊं। उन के सर भव सागर तरऊं॥
भजन न हो यहि तामस देहा। मन वच कर्म मन्त्र दृढ़ एहा॥"

फिर क्या था? सीता को अपहरण कर इस ने राम से वैर की ठान ही तो दी और अपने संकल्प पर ऐसा दृढ़ रहा कि न उस ने हनुमान जी के समझाने पर ध्यान दिया न अङ्गद के के उपदेशों को कान किया। स्त्री, पुत्र, भाई, मन्त्री, सगे, सम्बन्धी सब समझा कर हार गये परन्तु वह सभी की बातों को हंसी में उड़ाता गया। वरन् विभीषण को इसी कारण पाद-प्रहार भी किया। कह सकते हैं कि नीतिज्ञ होने पर भी उस ने यहाँ पर नीति का समुचित विचार नहीं किया। ऐसे समय में उसे भाई को रुष्ट करना नहीं चाहता था। परन्तु जब उस ने जान बूझ कर बैर बढ़ाया था और जब वह कहता था कि—

"निज भुजबल मैं बैर बढ़ावा। देहुँ उतर जो रिपु चढ़ि आवा॥"

तब उसे नीति विचार की कितनी आवश्यकता थी सो नहीं कहा जा सकता। रङ्गशाला में उस का मुकुट अकस्मात् गिरने से अपने सभासदों के उदास होने पर उस ने साभिमान कहा था—

"सीस गिरे सन्तत सुभ जाके। मुकुट गिरे कस असगुन ताके॥"

और ब्रह्मा लिखित नर बानर द्वारा अपनी मृत्यु की रेखा अपने भाल में देख कर उस ने कहा था कि 'ब्रह्मा बाबा बूढ़े हो गये इसी से उन्हों ने भ्रमवश ऐसा लिख दिया है।' रणक्षेत्र में इस ने वह बीरता और युद्धकौशल प्रदर्शित किया कि अन्त समय तक देवता और दर्शकों को सन्देह ही बना रहा कि देखें किस दल को विजयलक्ष्मी प्राप्त होती है।[1] रामचन्द्र जी के सिवाय दूसरा कोई योधा इसका समकक्ष नहीं था और यह मारा भी गया तो उन्हीं के हाथ से। यदि यह देव तथा धर्म्मव्रतधारी ऋषि मुनियों का पीड़क अत्याचारी नहीं

---

१. "ग्रियर्सन साहब ने लिखा है कि "उसने जातीय बल करके अति वीरता-पूर्वक युद्ध किया जैसा मिल्टन कवि ने अपने महाकाव्य में दुष्टात्मा का वर्णन किया है।"

होता तो यह निश्चय पूजा के योग्य था। और एक विचार से तो आज भी यह हमलोगों के धन्यवाद का भागी है। यदि यह न होता तो रामचन्द्र भी नहीं होते और रामचन्द्र आदि के समान आदर्श चित्र भी हम लोगों को सुलभ नहीं होते और न गोसाईं जी की कल्याण-कारिणी तथा मनोहारिणी कविता ही जगत को प्राप्त होती।

अङ्गद के संग बात चीत के समय बराबर बरजस्तः जवाब देने में इसकी वाक्यपटुता देखी गई है।

कुम्भकर्ण—यह भीमकाय महाबलवन्त योधा, रावण का छोटा भाई था। यह छः महीना सोया करता था। इस युद्ध के समय वह बहुत यत्न से जगाया गया। रावण की कार्रवाई पर इसने खेद तो प्रकट किया सही, परन्तु इस कुसमय में भाई को परित्याग करना इस ने उचित नहीं समझा और अकेले ही रामचन्द्र की सारी सेना से लड़ने के लिए चला आया। रणभूमि में इस ने महाविक्रम प्रकाश किया। सैकड़ों बानरों को पकड़ २ अपने अङ्गों में और भूतल पर मसलमसल कर प्राण-रहित कर दिया। सब बिख्यात बानर बीरों को अचेत कर प्रधान सेनापति सुग्रीव को काँख में दाब मानो रावण का बदला चुकाने ही के लिए गढ़ की ओर ले चला था। ऐसी विशाल सेना से अकेले ही बिना शस्त्र धारण किये संग्राम करने की जिसके शरीर में शक्ति हो ऐसा दूसरा कोई व्यक्ति नहीं सुना गया।

मेघनाद—यह प्रबल पराक्रमी पितृभक्त, रावण का पुत्र था। सुभटों में इस का प्रथम स्थान था। इस ने देवराज इन्द्र का गर्व चूर कर 'इन्द्रजीत' पद प्राप्त किया था। यह पिता का बड़ा ही आज्ञाकारी पुत्र था, इस से जो कुछ कहा जाता था उसे यह तुरंत ही कर डालता था। पिता की आज्ञा का उलंघन या खंडन यह कभी नहीं करता था। इसी से यह पिता का स्नेह-भाजन बना था। ऐसा सुशील आज्ञाकारी पिता का यश और नाम बढ़ानेवाला पुत्र भाग ही से प्राप्त होता है। हम यहाँ पर इस के धर्म्म अधर्म्म का विचार नहीं करते। जो हो वह पैत्रिक धर्म्म ही का अनुयायी था।

कवि ने **सूर्पनखा** को निर्लज्जता की मूर्त्ति खड़ी की है और लक्ष्मण के हाथ से उसकी नाक और कान कटवा कर उसे यथोचित दंड भी दिलवाया है। भक्त लक्ष्मण सिंह ने लिखा है कि "पिता की प्रतिज्ञा पालन के लिए राज परित्याग कर देने की प्रशंसा नहीं करनी तो असम्भव है; परन्तु रावण के संग युद्ध करके जिस का अपराध केवल यही मालूम होता है कि उसने अपनी बहन के प्रति अयोग्य अपमान का बदला लिया, इतने रुधिरपात को उचित समर्थन करना दुष्कर है।"[१] हमारे जानते यह अयोग्य अपमान तब होता जब राह चलते वा बैठे २

---

१. It is impossible not to admire the feeling which prompted Ram to relinquish the honour of sovereignty...........in order that the promise given by his aged sire might be fulfilled. But it is difficult to justify so much blood-shed in the war that he waged against Rawan whose only fault seems to have been that he revenged a wanton insult to his sister &c:—Life of Guru Govind Sinha, Chap. XXV. P. 141.

रामचन्द्र या लक्ष्मण उस की बहन के साथ छेड़ छाड़ करते, हँसी मजाक उड़ाते या उसकी नाक-कान काटते। कोई भी सभ्य या शिष्टजन इस बात को सहन नहीं करेगा कि जहां वह प्रिय पत्नी, भ्राता, बन्धु या किसी और ही के संग बैठा हो वहां एक कुलकलंकिनी कामुकी कुनारी पहुंच कर उससे प्रेमगांठ जोड़ने और प्रीति रीति करने की प्रार्थना करे, हठ करे और बल प्रयोग करने पर उद्यत हो जाय। लक्ष्मण ने तो नाक कान काटना उचित समझा, परन्तु हमारे भाई लक्ष्मण सिंह ऐसी अवस्था में क्या करते, उसका आदर करते या अपमान यह जानने की हमारे पाठकों को निश्चय बड़ी उत्कंठा होगी।

उसी प्रकार कवि ने मंथरा को कुटिलता के ढांचे में ढाला है और शत्रुहण जी की लात से उस का कूबर और दाँत भी तोड़वाया है।

इस का कार्य्य भी किसी २ को सराहनीय तथा उचित बोध होता है। और वे कहते हैं कि इस ने अपनी स्वामिनी के हितार्थ ऐसा किया था। परन्तु प्रथम तो उन का इस से कुछ हित साधन नहीं हुआ। दूसरे यदि इसने अपनी अल्पज्ञता के कारण पहले कुछ कहा भी था तो कैकेयी के यह कहने पर—

"जेठ स्वामि सेवक लघुभाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई॥
राम तिलक जो सांचेहु काली। देउं मांगु मन भावति आली॥"

इसे चुप रह जाना चाहता था। परन्तु इस के पेट में कुटिलता भरी थी। इस पर भी वह अनेक प्रकार की मिथ्या बातें कहती ही गई, यहां तक कि इसने दशरथ को भी—

"मन मलीन मुँह मीठ नृप,"

अर्थात् कुटिल कह ही डाला और दाम्पत्य प्रेम में विघ्न डालकर सफल परिवार को तथा स्वामिनी को भी विपत्ति-वारिधि में भसा दिया। तीसरे यदि इसका कार्य्य सराहनीय है तो अनुकरणीय भी अवश्य ही है। परन्तु इस के कार्य्य के प्रशंसकों के घर भी यदि उनकी कोई दासी इसका अनुसरण कर के उन के एवम् उनके सह धर्मिणियों के मध्य कोई बखेड़ा खड़ा कर उन के घरवालों को एवम् उन को डामाडोल करने की चेष्टा करे तो क्या वे लोग या कोई दूसरा प्राणी उस दासी के काम की प्रशंसा करेगा? कदापि नहीं। अतएव हम मंथरा को 'स्वामिनी हितकारिणी' होने की सर्टिफिकेट देने में सहमत नहीं है।

इस ग्रंथ में परोपकार के महान आदर्श कन्दर्प और जटायु हैं जिन लोगों ने दूसरों का निःस्वार्थ उपकार करने में अपने प्राण को भी विसर्जन कर दिया है।

रामायण प्रदर्शित चित्रों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट भान होता है कि सद्धर्म्मनिरूपण तथा सद्शिक्षाप्रदान के निमित्तही इस ग्रंथ की अवतारणा हुई है और ग्रंथरूपी नाट्यशाला में खड़ा हो कर इस के पात्रगण आज भी अपने उदाहरणों से आर्य्यत्व के परमोत्तम गुण सद्धर्म्मानुराग सत्यता, सरलता, धीरता, वीरता, उदारता, सहनशीलता, दयालुता आदि की सुन्दर शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।

त्रयोदश परिच्छेद

रामायण का आदर और प्रचार

गोसाईं जी को पहले ही से विश्वास था कि सज्जन 'रामचरित मानस' से प्रीति रखेंगे और असज्जन इस की अवश्य ही निन्दा करेंगे। इसी कारण से इन्हों ने कहा है :—

"छमहहिं सज्जन मोर ढिठाई। सुनिहहिं बाल बचन मन लाई।।
जौं बालक कहि तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता।।
हँसिहँहि कूर कुटिल कुविचारी। जे पर दूषन भूषन धारी।।"
और
"पैहहिं सुख सुनि सुजन सब, खल करिहहिं उपहास।"

इन का यह विश्वास ठीक ही हुआ। सज्जन लोग बालक की तोतरी बोली सी ही इसे सुन कर प्रसन्न नहीं हुये वरन् उन्हों ने इस ग्रन्थ को बहुमूल्य सदुपदेशरत्न-पूर्ण एक सुन्दर मंजूषा समझा और आज भी समझते हैं एवम् इस पर आन्तरिक प्रेम रखते हैं। परन्तु कूर कुटिल इसकी निन्दा करने में नहीं चूके।

भाषा में लिखे जाने के कारण काशी के तत्कालीन पण्डितगण भी इस की निन्दा में प्रवृत्त थे। गोसाईं जी को इस का भी भय पहले ही से था और इसी से इन्होंने कहा भी है :—

"भाषा भनित मोर मति थोरी। हँसिवे जोग हँसे नहिं खोरी।।" [1]

सुनते हैं कि एक दिन एक संस्कृतज्ञ पण्डित जी मणिकर्णिका घाट पर स्नान करते समय इनसे पूछ भी बैठे थे कि 'संस्कृत के पण्डित हो कर आप ने अपने ग्रंथ को गँवारी भाषा में क्यों लिखा ?' इन्हों ने कदाचित उत्तर दिया था कि मेरी गंवारी भाषा अभावपूर्ण होने पर भी संस्कृत के नायिका वर्णन वाले ग्रन्थों से अच्छी ही है क्योंकि :—

"मनि भाजन विष पारई। पूरन अमी निहारि।
का छाड़िय का संग्रहिय, कहहु विवेक विचारि।।"

---

१. गोसाईं जी के समसामयिक कवि केशवदास जी को भी हिन्दी भाषा में रचना करने से भय हुआ था। उन्होंने भी कहा है ;—

"भाषा बोल न जानहीं, जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मन्द मति, तेहि कुल केशवदास।।"

सच तो यह है कि इन्हें अपना पाण्डित्य प्रदर्शन की मनसा नहीं थी। इन्हें पाठकों को लाभ पहुँचाना और जगत का उपकार करना अभिप्रेत था। अतएव यदि ये इस ग्रंथ की रचना संस्कृत में करते तो इस से इतने उपकार की सम्भावना नहीं थी। इसी से संस्कृतज्ञ होने पर भी इन्होंने भाषा में, वरन सर्वसाधारण के समझने योग्य भाषा में इस की रचना की। इसी अभिप्राय से विलायत में १५२२-३४ के बीच में 'लूथर' के बाइविल और १५२५ ई० में टिंडेल के 'नियु टेस्टामेंट' की रचना हुई थी। और इसी कारण से लैटिन में कविता करने को समर्थ होने पर भी मिल्टन ने देश-प्रचलित भाषा में ही अपनी पुस्तकों की रचना की जिस में अधिकांश लोगों का उपकार हो।

फिर रामायण की प्रामाणिकता में भी बहुत-से पण्डित सहमत नहीं थे जब कदाचित रात को यह ग्रंथ विश्वनाथ जी के मन्दिर में रखा गया और भोर को इस पर उन की 'स्वीकृति' लिखी देखी गई, तब लोगों को हार माननी पड़ी।[1] हमारे सब पाठक सम्भवतः यह बात मानने को तैयार न होंगे। परन्तु महाराज गोपाल दास कृत 'रामायण माहात्म्य' का यह लेख कि "पहले बहुत से पंडितों ने इस ग्रंथ का आदर नहीं किया जब 'आनन्दकानन' वासी ब्रह्मचारी[2] ने इसकी प्रशंसा में यह श्लोक लिख दिया :—

'आनन्दकानने कश्चिज्जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कविता मञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता॥'

तब लोग इसका आदर करने लगे" मानने में किसी को हिचक नहीं होगा। इस श्लोक का अनुवाद स्वर्गीय काशीराज श्रीमान् महाराजा ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह जी ने इस प्रकार किया है :—

---

१. 'बिहारी सतसई' के सम्बन्ध में भी यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि छत्रसाल जी की सभा के प्रधान नामक एक कवि ने बिहारी जी के देखा-देखी एक सतसई की रचना कर कोलाहल मचाया कि उनकी ही सतसई उत्तम थी। इस पर बिहारी जी के प्रार्थनानुसार रात को दोनों ग्रंथ श्री युगल किशोर के समीप रख दिये गये और प्रातःकाल देखा गया कि बिहारी के ग्रंथ पर श्रीयुगलकिशोर का हस्ताक्षर बना हुआ है। इसी समय बिहारी ने यह दोहा बनाया—"नित प्रति एकतहीं रहत, बैस बरन मन एक। चहियत युगल किसोर लखि लोचन युगल अनेक॥" व्यास अम्बिका दत्त विरचित 'विहारी विहार' की भूमिका का पृ० १०—नोट देखिये।

२. बैजनाथ दास के अनुसार मधुसूदन सरस्वती ने गोसाईं जी से शास्त्रार्थ में परास्त होकर इन की प्रशंसा में इस श्लोक की रचना की। पं० रघुवंश जी ने यही बात कह कर इस श्लोक को इस प्रकार लिखा है :—'परमानन्दपत्रोऽयं जङ्गमस्तुलसीतरुः' इत्यादि। पं० महादेव प्रसाद ने पंडित का नाम नहीं लिखा है और इन के अनुसार 'कश्चित्' के स्थान में 'ह्यस्मिन्' है।

"तुलसी जंगम तरु लसे, आनँद कानन खेत।
कविता जाकी मंजरी, रामभ्रमर रस लेत॥"

आदि में किसी ग्रन्थ का, विशेषतः गूढ़ ग्रन्थों का, यथार्थ गुण सर्वसाधारण नहीं समझ सकते और न उस का आदर ही कर सकते। उस के समझनेवालों की संख्या अल्प ही होती है। और यदि कोई प्राणी पूर्व-प्रचलित प्रथा का उलंघन कर कोई रचना करे एवम् कोई नई राह निकाले तो वह अधिकतर हास्यास्पद तथा निन्दास्पद होता है। प्राचीन प्रथा के अनुयायी उसे नीचा दिखाने को प्रायः यत्नवान हो जाते हैं। ऐसी रचनाओं का आगामी सन्तति विशेष आदर करती है। ज्यों २ काल अतीत होता जाता है ऐसे ग्रन्थों के आदर सम्मान में वृद्धि होती जाती है। इसी से सुकवि भिखारीदास कायस्थ ने कहा है:—

"आगे के सुकवि रीझैं तौ तो कविताई,
ना तो राधाश्याम गाइबे को सुन्दर बहानो है।"

इसी प्रकार से गोसाईं जी कृत 'रामचरित मानस' को पहले आदर की दृष्टि से देखनेवाले आनन्दकाननवासी, मधुसूदन सरस्वती, नाभाजी आदि गिने गिनाये ही महात्मा होंगे। सब कैसे समझते। परन्तु भविष्यत् में जब इस का अमूल्य गुण लोगों पर धीरे-धीरे प्रकट होने लगा तब तो केवल सुकवि ही कौन कहे, सर्वसाधारण भी इसपर लट्टू होने लगे और इनका कवित्त सीतारामयशकीर्त्तन का सुन्दर बहाना ही नहीं हुआ वरन् उस का मुख्य कारण तथा परम सहायक हो गया और हो रहा है।

आज कलकत्ता से पंजाब पर्यन्त एवम् हिमालय से नर्वदा पर्यन्त जहां सुनिये रामायण ही रामायण उच्चारण हो रहा है। इतनी दूरी में इस का प्रबल अधिकार तो है ही, अन्य प्रान्तों में भी इस का अवश्य कुछ न कुछ प्रचार पाया ही जाता है। क्या राजा क्या रङ्क, क्या बाल क्या वृद्ध, क्या युवक क्या युवती, सब अवस्था तथा सब जाति के लोग इसे पढ़ते और इस का आदर करते हैं। कहीं वक्ता महाशय व्यासगद्दी लगाये अपने श्रोताओं को रामायण की कथा सुना रहे हैं; कहीं गाँवों में ढोल और झाल बजा-बजाकर, झूम-झूमकर, चिल्ला २ कर, लोग इस का गान कर रहे हैं; कहीं दो-चार प्राणी ही किसी पेड़ के तले बैठे यह ग्रन्थ बाँच रहे हैं; कहीं कोई एकान्त में शान्तभाव से इस के गूढ़ तत्त्वों को विचार

'भक्तमाला रामरसिकावली' तथा पं० ज्वालाप्रसादजी की बड़ी रामायण के अनुसार एक पण्डित से शास्त्रार्थ के लिए महादेव जी के स्वप्नादेश से, गोस्वामी जी मुखिया बनाये गये। इन्हों ने एक शिष्य को पांच पान देकर सब लोगों को बांट देने को कहा। बांटे जाने पर पांच पान ज्यों का त्यों बना रहा। यह देख उक्त पंडित ने शास्त्रार्थ करना अस्वीकार किया। गोसाईं जी ने उन्हें अपनी रामायण दी। पंडित ने सब पक्षों का खण्डन मण्डन उसी में पाया। उन्हीं ने यह श्लोक बनाया और वे गोसाईं जी के शिष्य भी हो गये।

पान बांटने से तो गोसाईं जी का पाण्डित्य प्रकट नहीं हुआ? इन की करामात देखी गई। तब पण्डित जी शास्त्रार्थ से भागे क्यों?

रहे हैं; कहीं कोई रामायण समाज ही [1] स्थापित कर बैठे हैं और रामायण के विषयों पर व्याख्या हुआ करती है। कहीं कोई इस के सदुपदेशों पर मोहित हैं; कहीं कोई इस के काव्य लालित्य ही पर वाह-वाह कर रहे हैं; कहीं कोई किसी दोहा चौपाई के अर्थ ही के विषय में झगड़ रहे हैं। कहीं आँगन में बैठी हुई कोई महिला ही मधुर स्वर से इसे पढ़ रही है और छोटे २ बालक बालिकाएँ उस के निकट बैठ कभी इस का पाठ सुनती हैं और कभी खेल-कूद के लिए इधर-उधर दौड़ जाती हैं। निदान, कोई नगर नहीं, कोई ग्राम नहीं, जहाँ नित्य प्रति ऐसी लीला नहीं होती हो। ऐसा घर कोई विरला ही होगा जहां एक दो प्रतियाँ रामायण की नहीं पायी जायं। कोई पठित अथवा अपठित व्यक्ति नहीं होगा जिसे रामायण के दो चार दोहे या चौपाइयां कंठस्थ न हों और जो कहावत, उदाहरण, प्रमाण और व्यवहार में उन्हें व्यवहृत नहीं करता हो। रामायण के सैकड़ों वाक्य [2] कहावत में परिणत हो गये हैं।

रामायण केवल कवितारस के प्रेम ही से नहीं पढ़ी जाती। यह धर्म्म का एक अङ्ग और धर्मशास्त्र की एक प्रधान पुस्तक हो रही है। बहुतों ने रामायण के आद्योपान्त पाठ का नियम कर लिया है और इस का नित्य पाठ किया करते हैं। धर्म्मशास्त्र ही क्यों? समाज-नीति, व्यवहारनीति, राजनीति, सब नीतियों का शास्त्र कहलाने का यह अधिकारी है। गोसाईं जी ने सब प्रकार के नीत्यादर्शों को आर्ष ग्रन्थों से लेकर इस में इस रीति से समावेशित किया है कि सहज में सब की समझ में आ जावे। इसी से यह ग्रन्थ नरनारी सब को रुचिकर हो रहा है, सब प्रकार के मनुष्य अपनी रुचि के अनुकूल इस में उपयोगी बातें पाते हैं और इस के पाठ से आनन्द उठाते हैं। ऐसा सर्वजन-प्रिय और कोई ग्रन्थ नहीं देखा जाता।

---

१. पूना में 'रामचरित मानस' का अध्ययन कराने वाली एक महाराष्ट्र मण्डली है। श्री अयोध्या में 'तुलसी सत्संग' एवम् राजापुर में 'तुलसी स्मारक सभा' है। इन सबों का उद्देश्य गोस्वामी जी रचित रामायणादि के पठन पाठन का प्रचार एवम् गोसाईं जी से सम्बन्ध रखने वाले स्थानों की रक्षा ही है।

२. कुछ उदाहरण देखिये :—'होइहहिं सोइ जो राम रचि राखा; प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं; सब से अधिक जाति अपमाना; होइ न मृषा देवरिषि बानी; वरकन्या अनेक जग माहीं; बांझ कि जान प्रसव की पीरा; समरथ को नहिं दोष गोसाईं; जस दूलह तस बनी बराता; पराधीन सपने सुख नाहीं; जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई; का वर्षा जब कृषि सुखानी; मन मलीन तन सुन्दर कैसे, विष रस भरा कनक घट जैसे; मूंदिय आँख कतहु कछु नाहीं; टेढ़ जानि संका सब काहू; सूखत धान परा जनु पानी; कोउ नृप होहिं हमें का हानी; हित अनहित पशु पंछिहुँ जाना; इहां न लागहिं राउर माया; भइ गति सांप छुछुंदर केरी; सब सुर काज भरत के हाथा; सुरनर मुनि की ऐही रीती, स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती; जिमि दसनन महँ जीभ बेचारी; जस थोरे धन खल बउराई; समुझे पग पग ही की भावा; जो इच्छा राखहु मनमाहीं, हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं। इत्यादि।

लाखों जन इसे अपना जीवन सर्वस्वसमझते हैं; करोड़ों इसी का आश्रय ग्रहण कर कतिपय कुत्सित कर्मों से बचते हैं। कितने इस के पाठ से विरक्त साधु बन जाते हैं एवम् कितने पण्डित ज्ञानी कहलाने लग जाते हैं। कोई २ इस के द्वारा उच्चाटन, वशीकरण आदि का प्रयोग बता कर नवाह, सप्ताह सिखाकर इस अमूल्य रत्न का दुष्प्रयोग भी करने में संकोच नहीं करते। परन्तु ऐसे कुत्सित कार्यों के साधन के लिये गोसाईं जी ने इस अलभ्य पदार्थ को प्रगट नहीं किया, यह निर्भीक रूप से कहा जा सकता है।

रामायण विद्याप्रचार में भी कम सहायक नहीं है। स्कूल की पाठ्य पुस्तकों में इस ग्रन्थ के अवतरण प्रायः दिये जाते हैं। महरट्ठी, गुजराती तथा वंगभाषा की पुस्तकों में भी इस के अवतरण तथा आशय समावेशित किये जाते हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय की ऐन्ट्रेन्स परीक्षा की गौणभाषाओं (Second Languages) में जब हिन्दी भी सम्मिलित थी, तब उस की परीक्षा के लिये रामायण ही पाठ्य-पुस्तक नियत होती थी। सिविलियन लोगों के हिन्दी में हाइप्रोफ़िशेन्सी (High proficiency) तथा डिगरी आव आनर (A Degree of Honour) की परीक्षा के लिये, जिनमें क्रमशः १०००) और २०००) पारितोषिक दिया जाता है, रामायण एक प्रधान पाठ्य-पुस्तक है।

ग्रियर्सन साहब ने लिखा है कि "इस की सुख्याति उपयुक्त होने में तनिक भी सन्देह नहीं है। अपने देश में इस ने सब ग्रन्थों पर प्राधान्य लाभ किया है और सर्व साधारण पर इस का ऐसा प्रभाव पड़ रहा है कि उसे बढ़ा चढ़ा कर कहना कठिन कार्य है[1] विलायत में जितना बाइबिल का प्रचार है उससे कहीं अधिक बंगाल और पंजाब एवम् हिमालय और विन्ध्य के मध्यस्थ प्रदेशों में इस महान ग्रन्थ का प्रचार है।"[2]

एक स्थान में उन्होंने ऐसा भी कहा है कि "जैसे युरोप के पादड़ी लोग बाइबिल को आदरणीय समझते हैं वैसे ही आर्य्यगण इसकी मर्य्यादा करते हैं।" उतनी ही और वैसी ही क्यों? यहां तो आर्य्य लोग अक्षत, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य से देवताओं के समान इस की पूजा करते हैं, आरती करते हैं। इस का कारण है कि जिस से धर्म्म तथा विद्या का प्रचार, आचार व्यवहार का सुधार, जगत का उपकार, नीतिरीति का सुन्दर परिष्कार और भवरोग से निस्तार हो वह निस्सन्देह बड़े आदर और सत्कार की वस्तु है।

---

१. I do not think that there can be any doubt as to its reputation being deserved. In its own country it is supreme over all other literatures and exercises an influence which it would be difficult to describe in exaggerated terms—J. R. A. Society, 1903, P. 45.

२. Over the whole of the Gangetic valley his great work (the Ramayan) is better known than the Bible is in England. —Ibid. P. 459.

जिस समय गोसाईं जी का आविर्भाव हुआ था उस के पूर्व ही से मुसलमानों के संसर्ग से हिन्दू समाज में ढीलापन आ घुसा था। हिन्दुओं पर अत्याचार हुआ करता एवम् कई मत भी निर्मित होकर धर्म के नाम पर कुत्सित कर्म और व्यवहार का प्रचार करने लगे थे। अन्य २ धर्म्म संशोधक भी अपने २ ढंग से धर्मरक्षा में लगे हुये थे। इन के पूर्व श्री १०८ रामानन्द स्वामी जी वैष्णव धर्म्म के रक्षक और संशोधक हो गये थे परन्तु रामनाम में प्रेम तथा विश्वास उपजाने वाला एवम् तथा उस सुगम उत्कृष्ट सद्धर्म्म का प्रचार करने वाला गोसाईंजी से बढ़ कर कोई नहीं हुआ। इन्हों ने उस धर्म्म को पूर्व से पश्चिम तक फैला दिया। इन्हों ने बड़े २ उपदेशों तथा वक्तृताओं का आश्रय ग्रहण नहीं किया; इन्हों ने किसी विशेष सम्प्रदाय की नींव नहीं डाली क्योंकि इनके पूर्ववर्त्ती सब धर्म्म-प्रचारक तो अवश्य इस यत्न में प्रवृत्त रहे कि धर्म्म प्रचार के दूषणों को दूर कर जीवों का कल्याण करें परन्तु सम्प्रदाय की संख्या बढ़ती ही गई और इस से पूरी सफलता नहीं हुई। ये जहां तहां दौड़ कर शास्त्रार्थ भी नहीं करते फिरे; और इन्हों ने भिन्न २ प्रान्तों में भ्रमण कर दिग्विजय का डंका भी नहीं बजाया। परन्तु स्वदेशियों के दुख से दुखित होकर इन्हों ने कुछ अन्य ही उपाय अवलम्बन किया।

आप एकाग्र चित्त हो श्री प्रभु के पादपद्म को अपने हृदयमन्दिर में स्थापित कर केवल कविता के सहारे विलायती कवि वर्ड्सवर्थ के समान दुखियों का दुख दूर करने, सुखियों को अधिकतर सुखी बनाने, एवम् वर्त्तमान तथा भविष्यत् काल के युवकों और उदारचेताओं को देखने, सोचने एवम् अनुभव करने के योग्य बनाकर अधिकतर उत्साही, दृढ़ और पक्का धार्म्मिक बनाने के उद्योग में कटिबद्ध हुये। ईश्वर ने इन्हें इस कार्य में कृतकार्य भी किया।

इन्हों ने रचनाह्रद में यह एक ऐसा कमल विकशित किया कि ज्यों २ इस की मधुर सुगन्ध फैलने लगी, लोग मुग्ध हो भ्रमर की नाईं झुंड के झुंड झूमते हुये इधर ही झुकने लगे। आज लगभग ३०० वर्ष से यह कविता कमल लोगों को आमोदित कर रहा है एवम् निज गुणद गन्ध से लोगों के हृदय तथा मस्तिष्क को हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ करके उन्हें धर्म्मनिष्ठ तथा सदाचारी बना रहा है। गोस्वामीजी धन्य हैं कि ऐसे समय में जब कि अत्याचारियों का खड्ग चतुर्दिक चमाचम चमकता हुआ सर्वदा हिन्दुओं का विशेषत: तीर्थस्थ हिन्दुओं का कलेजा कँपाया करता था, जब मतमतान्तर के झगड़ों से लोगों की बुद्धि भ्रमित हो रही थी, जब वैष्णवगण शैवों से विरोध करने ही में ईश्वर की प्रसन्नता समझते थे; जब रामोपासक तथा कृष्णोपासक में भी वैमनस्य आ घुसा था और लोग एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखने लगे थे, केवल अपनी बुद्धि और लेखनी के बल से अत्याचारियों का दर्प चूर्ण और मान-मर्दन कर, स्वदेशियों को सच्चे धर्म्ममार्ग में अटल रखने का ऐसा दृढ़ तथा प्रबल उद्योग किया जिस से लोग आज तक लाभ उठा रहे हैं तथा आगे भी उठाते ही जायंगे, क्योंकि गोसाईं जी के जीवित काल की अपेक्षा आज उनकी रचनाएं हिन्दू धर्म्म एवम् जगत पर निश्चय अधिकतर प्रभाव देखा रही हैं। विशेष प्रशंसा की बात तो यह है कि सब सम्प्रदाय के अनुगामी, क्या वैष्णव, क्या शैव, क्या शाक्त, क्या नानकशाही, क्या वेदान्ती—सभी लोग निर्द्वेष भाव से इस का आदर करते और इस से शिक्षा ग्रहण कर आनन्द पाते हैं। जो रामोपासक हैं उन का तो कहना ही क्या है? शेख़सादी ने सच कहा है :—

"हर कुजा चश्मए बवद शीरीं, मर्दुमो मुर्ग़ ओ मोर गिर्दायन्द ।।"

तत्कालीन मतमतान्तर की भभकती हुई ज्वाला को आप ने अपने शीतकर उपदेश-सलिल से ऐसा ठंढा किया कि फिर वह प्रबल रूप से कदापि प्रज्वलित नहीं होने पाई। रामायण में जहां देखिये वहां यही पुकार है कि श्रीराम तथा शिव में द्वेषबुद्धि नहीं, श्री शिवजी श्री राम को हृदयासन पर बिठाये हुये हैं और कह रहे हैं :—

"रघुकुल मनि मम स्वामि,"
तथा—"सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी।"

एवम् श्रीरामचन्द्र श्री रामेश्वर की स्थापना करते हैं और कह रहे हैं :—

"शिव द्रोही मम दास कहावै। सो जन सपने मोहि न पावै ।।"

श्रीराम तथा शिव में इन्हों ने कैसा घनिष्ठ सम्बन्ध दिखलाया है वह इसी आधी चौपाई से प्रगट है :—

"सेवक सखा स्वामि सियपिय के।"

अब शेष क्या रहा जो कहें। फिर आपने जनकनन्दिनी से गिरिराजकिशोरी को जगज्जननी कहलाकर और उन की पूजा वन्दना कराकर शाक्तों का मन ठंढा किया है और नाममाहात्म्य का अद्भुत वर्णन कर नामोपासक निराकारवादियों को भी आप ने सन्तुष्ट कर रखा है। श्रीराम तथा श्रीकृष्ण की अभेदता की बात पाठक पहले ही सुन चुके हैं।

पं० सत्यदेवजी ने बहुत ही ठीक लिखा है कि "जैसे अंकिल टाम्सकेबिन का उपन्यास उत्तरीय तथा दक्षिणीय अमेरिका से हबशी गुलामों का वाणिज्य रोकने का कारण हुआ, जैसे हाल ही में अपटन सिंक्लेयर ने अपने उपन्यास के बल से शिकागो के कसाईघर का सुधार कराया, रूसो एमिली ने स्वलिखित उपन्यास द्वारा शिक्षा के प्राकृतिक ढङ्ग का प्रचार किया, जैसे इटली की स्वतंत्रताप्राप्ति का कारण गिवनकृत 'रोमनराज का उत्थान और पतन' (Decline and fall of Roman Empire) नामक ग्रन्थ हुआ, जैसे अगनित उपन्यासों के द्वारा ईसाई धर्म्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित हुई, वैसे ही गोसाईं जी की रचनाओं ने शैव तथा वैष्णवों के परस्पर द्रोह एवम् रामोपासक तथा कृष्णोपासक के परस्पर वैमनस्य और और रागद्वेष को दूर कर एवम् हिन्दूधर्म्म की श्रेष्ठता पूर्णरूपेण प्रतिपादित कर, देश को महान लाभ पहुंचाया।

इसी से ग्रियर्सन साहब ने लिखा है कि "भारतवर्षीय धर्म्मोन्नति के इतिहासों में जो आसन तुलसीदासजी को प्रदान किया जाता है उस से कहीं उच्चतर आसन के ये अधिकारी देखे जाते हैं। क्योंकि हमलोग धर्म्म-प्रचारक की श्रेष्ठता की अटकल उस के कार्यफल से लगाते हैं। यह कहने में कि ठीक नौ करोड़ मनुष्य इन (महात्मा तुलसीदास) के लेखों ही पर अपने धर्म्म तथा सदाचार के तत्वों को स्थापित किये हुये हैं, हम सामान्य गणना से बहुत ही कम अंक

बांधते हैं। वर्त्तमान काल में इन की रचनाएं लोगों पर जो प्रभाव दिखाती हैं, यदि हमलोग उसी से जांच करें तो एशिया के तीन या चार बड़े २ लेखकों में से एक यही महाशय हैं।"[1]

सचमुच हिन्दुओं का इन्हों ने ऐसा ही उपकार किया है कि वे लोग इन से कभी उऋण नहीं हो सकते और इन के सर्वदा बाधित ही रहेंगे।

ग्रउस साहब का यह कथन कि 'पण्डितमण्डली में रामायण का आदर नहीं है' सर्वथा अमूलक है। कदाचित उन्हें पुरानी कहानी याद आ गई होगी। पंडित लोग भी इस का पूरा आदर करते हैं।

स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी, साहित्याचार्य्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास प्रभृति सुख्यात विद्वान इस के प्रशंसकों में प्रसिद्ध हैं। अनेक पण्डितों ने इस की सुन्दर टीकाएँ बनाई हैं। सुख्यात रामायणी पं० रामगुलाम द्विवेदी[2] पं० वन्दन पाठक[3] पं० शिवलालजी, पं० शेषदत्तजी इत्यादि पण्डित ही थे या क्या? सच तो यह है कि साधु, गृहस्थ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ, वैश्य, शूद्र, पण्डित, मूर्ख, देशीय, विदेशीय सभी लोग 'रामचरितमानस' पर सहज मोहित हैं एवम् उस का आदर करते हैं।

यहां पर हमें एक बात अच्छी याद आई। पण्डित सुधाकर जी ने रामायण के रचनाकाल के विषय में ग्रियर्सन साहब को लिखते समय उन्हें यह बात भी लिखी थी कि "......भाषा में कहने के कारण रामायण का प्रचार पहले कायस्थों तथा वणिकों में हुआ होगा।" उन के यह लिखने का भाव जो कुछ हो, परन्तु जिस वस्तु का आज सारा हिन्दू समाज आदर कर रहा है, जिस की प्रशंसा मुक्तकण्ठ से विदेशीय विद्वान भी कर रहे हैं, जो आज अधिकांश हिन्दूजाति का जीवन-सर्वस्व तथा धर्म्माधार हो रहा है, जो आज महान पण्डितों का भी सम्मानभाजन बना हुआ है और हिन्दीसाहित्य-सागर का एक अमूल्य रत्न गिना जाता है, उसके

---

१. We judge of a prophet by his fruits, and I give much less than usual estimate when I say that fully ninety millions of people have based their theories of moral and religious conduct upon his (Tulsidas) writings. It we take the influence exercised by him at present time as our test, he is one of the there or former great writer or Asia. J.R.A. society, July 1903, Article XVI. P. 455.

२. एक दरिद्र विद्याहीन ब्राह्मण वंश में जन्म लेकर थे एक रुई बेचनेवाले के यहां नौकरी करते थे। रामायण के बड़े प्रेमी और अच्छे वक्ता थे। इन्हों ने इस ग्रन्थ की एक हस्तलिपि भी तैयार की थी जो शुद्ध पाठ के लिए प्रामाणिक मानी जाती है। ग्रियर्सन साहब लिखित 'Notes on Tulsi Das' में इन का हाल लिखा हुआ है।

३. बाबू महादेव प्रसाद प्रकाशित 'वैराग्य सन्दीपिनी नेह प्रकाशिका' में इन का वृत्तान्त पाया जाता है।

गुणग्राही और उसे आदर की दृष्टि से देखनेवाले पहले कायस्थ ही निकलें, यह उन की विद्वत्ता तथा दूरदर्शिता प्रमाणित करता है एवम् हमारे लिये साधारण आनन्द और अल्प-गौरव की बात नहीं है।

सचमुच यह ग्रंथ साहित्यसागर का एक अमूल्य रत्न है। कवि-कुल-भूषण जौहरी तथा साहित्यदेश के महाराज विद्याचार्य्य ही इस की वास्तविक गुणगरिमा परखने और वर्णन करने को समर्थ हो सकते हैं। इसकी यथोचित प्रशंसा का प्रयत्न हमारे लिये—

"साकबनिक मनि गन-गुन जैसे।"

की बात है। इसकी अद्‌भुत प्रभा देख चित्त चकित और बुद्धि चकित हो जाती है। जिस ग्रन्थ के पद पद में, वाक्य वाक्य में, शब्द शब्द में, अक्षर अक्षर में गूढ़ाशय, अलौकिक भाव, चित्ताकर्षक लालित्य एवम् मनमोहिनी कविता कूट कूट कर भरी हुई है, उस का वास्तविक गुणकथन हमारे समान अल्पज्ञ मनुष्य से कब सम्भव है? इस ग्रन्थ का अद्भुत गुण कथन यह ग्रन्थ आप ही कर रहा है। और यदि इस जगत पर कृपा कर गोस्वामीजी ही पुनः इस भूमण्डल को पवित्र करें तो वे ही कर सकें। यों तो इस के शब्दों का रस चूस २ कर अर्थ और भाव निकालनेवालों की कमी नहीं है। हमारी लेखनी तो अपनी अक्षमता अनुभव कर दावात में मुंह दिये वस्तुतः जड़वत शिथिल हो जाती है, सिर तक हिलाने का साहस नहीं करती। बलात्कार चलायमान करने से मुंह थोथा कर दीनता पूर्वक दांत दिखाने लगती है और गले पर छुरी चलाने पर चिर चिराकर मानों यही कहने लगती है कि इस ग्रन्थ रत्न की तथा इस के रचयिता की समुचित प्रशंसा करने की मेरी शक्ति नहीं। कागज भी साफ साफ संकेत करता है कि जब योग्य प्रशंसा की सम्भावना ही नहीं तो कोरा ही रहना उत्तम है। कोष भी स्पष्ट उत्तर देता है कि मेरे शब्दभण्डार में ऐसा उपयुक्त शब्द ही नहीं जिस से इस का गुण वर्णन में सहायता प्रदान कर सकूं। अतएव हम इस महाकाव्य की प्रशंसा करने में अपने को सर्वथा असमर्थ देख मौन ही धारण करना उत्तम समझते हैं।

हां! यहां पर इतना अवश्य कह देते हैं कि इस ग्रन्थ रत्न के गुणों हीं पर मोहित हो कर ग्रउस साहब ने इसका गद्य में अंगरेजी अनुवाद किया है, उनके पूर्व फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता के एक मुन्शी अदालतखां ने अयोध्या काण्ड का अनुवाद किया था जो १८७१ में मुद्रित हुआ था। लखनऊ के मुन्शी द्वारका प्रसाद (उफ़क़) ने उर्दू में इस ग्रंथ का अनुवाद किया है। यह ग्रन्थ उर्दू तथा बंगला अक्षर में अविकल भी मुद्रित हुआ है एवम् उड़िया तथा वंगभाषा आदि में भी अनूदित हुआ है।[१]

---

१. उत्कल भाषा में इस के चार अनुवाद हैं। गोविन्द सांव तेली कृत 'गोविन्द रामायण', सम्बलपुर निवासी बाबू राम प्रसाद बोहीदार बी० एल०, बी० टी० के ज्येष्ठ भ्राता प्रणीत, वहीं के एक अन्य सुजन कृत एवम् खरिया दरबार का तैयार कराया एक अनुवाद।

ग्रियर्सन साहब ने कई प्रबन्धों में इस की प्रशंसा की है। अन्य साहब लोग भी इस का गुण गान करते गये हैं। श्रीयुत ज्ञानेन्द्र मोहनदत्त ने 'प्रवासी' भा० ११ खंड २ में लिखा है कि "इस पुस्तक में धर्म्मभाव जिस रूप से जागृत है ऐसा धर्म्मभाव समन्वित दूसरी और कोई पुस्तक नहीं देखी जाती।" कलकत्ता हाइकोर्ट के स्वर्गीय जज श्रीमान् शारदाचरण मित्र ने एक लेख में रामायण का कुछ पद उद्धृत करते हुये गोसाईं जी को 'भक्ति भाजन भावुकश्रेष्ठ कवीश्वर' तथा 'भारतवर्षीय कविगण में अग्रणी' लिखा है।

वंग भाषा में श्री मदनमोहन चौधरी बी० एल० पुरोलिया के वकील का तैयार किया हुआ अनुवाद है और एक दूसरा अनुवाद 'तुलसी चरणामृत' के नाम से ख्यात है।

यादव शंकर जमादार जागीरदार नागपुर महाल ने इस का मराठी भाषा में उलथा किया है।

पं० बलभद्र द्वारा प्रकाशित संस्कृत रामचरित मानस है। इसके सम्बन्ध में एक रहस्यमयी कथा है। इसके छपने पर यह बात उड़ाई गई थी कि गोसाईं जी प्रणीत रामचरित मानस उसी का अनुवाद है। अब श्री लाला सीताराम बी० ए० के 'माधुरी' में प्रकाशित एक लेख पर इटावा के श्री नारायण चतुर्वेदी ने एक नोट लिखा है जिस से विदित होता है कि उनके वृद्ध परपितामह महान विद्वान श्री मन्नारायण जी ने अपने शिष्यों के आग्रह से गोसाईंजी विरचित रामायण को संस्कृत में अनूदित किया। एकबार उन के चचा के कश्मीर तथा उन के पिता के प्रयाग चले जाने पर इन के पड़ोसी सेवाराम ने इन के आवारे चचेरे भाई से उस अनुवाद को हस्तगत करके उसे छपवा दिया। और पुस्तक को प्राचीन घोषित करने के अभिप्राय से जिन पंक्तियों में लेखक नाम था वे नष्ट कर दी गईं। वह कहते हैं कि संस्कृत पुस्तक न प्राचीन ही है और न गोसाईं जी की रामायण उस का अनुवाद ही है। वरन वही इस का उलथा है।

इस के फ़ारसी भाषा में कई एक अनुवादों का हाल मार्च १८२४ ई० के 'कलकत्ता रिव्यु' से ज्ञात होता है।

जहांगीर के समय में पानीपत के मुल्लामसीह ने इस का पद्यानुवाद किया एवं दिल्ली के गिरिधरदास कायस्थ ने दूसरा पद्यानुवाद करके जहाँगीर को समर्पण किया।

चन्द्रमा 'बेदिल' ने एक गद्य में और 'नर्गिस्तान' नाम से दूसरा पद्य में अनुवाद किया। इन के पद्यानुवाद की बड़ी प्रशंसा की जाती है। अपने एक मित्र के आग्रह से सन् १६३६ ई० में ६० वर्ष की अवस्था में उन्होंने यह काम किया था।

लालपुर (संयुक्तप्रान्त) निवासी अमानत कृत एक अनुवाद है। उस के तैयार करने में लगभग २५ वर्ष लगे थे और श्रावण पंचमी सं० १८१२ में उसकी समाप्ति हुई।

लंडन इण्डिया आफिस में अज्ञात नाम का एक पद्यबद्ध अनुवाद और एक गद्यानुवाद है।

एवम् सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता विन्सन्ट ए० स्मिथ ने स्वरचित 'The Onfard History of India' के १६२३ ई० के संस्करण पृ० ३७३ में हिन्दीभाषा के कवि तुलसी दास को अकबर के समय का प्रधान ग्रंथकर्त्ता होना लिखा है, यद्यपि पादशाह इन्हें स्वयं नहीं जानते थे। किन्तु इन के महोत्तम ग्रंथ 'रामचरित मानस' का पश्चिमीय भारत में सर्वत्र प्रचार है।

देशीय विदेशीय जितने महानुभावों ने इस ग्रंथ की प्रशंसा में लेखनी प्रचालित की है उन की नामावली ही देनी कठिन है। प्रत्येक का लेख उल्लेख करने के लिये तो समय और स्थान चाहिये।

एक दूसरा पद्यानुवाद भी सर विलियम अडसले के संग्रह में है।

म्युनिच पुस्तकालय में गद्यानुवाद की एक प्रति है।

ब्रिटिश म्युजियम में देवीदास कायस्थ कृत एक गद्यानुवाद है।

नोट—नहीं कह सकते कि दोनों अन्तवाले अनुवाद एवम् इण्डिया ऑफिसवाला गद्यानुवाद तीन विलग २ अनुवाद हैं अथवा एक ही की तीन प्रतियां हैं।

चतुर्दश परिच्छेद

क्षेपक और काट छांट

गोसाईं जी ने तो हमलोगों के उपकारार्थ ऐसा सुन्दर सोहावन सरोवर निर्माण किया जिस की प्रशंसा सहस्र मुख से भी नहीं हो सकती परन्तु खेद महाखेद इस बात का होता है कि कतिपय महाशय इस की अनुपम शोभा विनष्ट करने में उतारू हो गये हैं। कितने तो कवि के मनोभाव की यथार्थ विवेचना नहीं कर के इन की रचना कारीगरी में त्रुटि समझ कर क्षेपक द्वारा उस की पूर्त्ति करते गये हैं और कितनों ने इस कहावत के अनुसार—

"लोढ़ा अपनी करै बड़ाई, हमहूं शम्भुनाथ के भाई।"

इन की समता करने की मनसा से इनकी कविता में अपनी कविताएँ मिला दी हैं। परन्तु इन दोनों में से किसी श्रेणी के महाशयों ने अपना नाम[1] प्रगट करने का साहस नहीं किया है। नाम कैसे प्रगट करैं? उस से तो उन का काम ही बिगड़ जाता। क्षेपककारों ने केवल गोसाईं जी निर्मित सोपानों में ही जहाँ तहाँ क्षेपक का ईंट पत्थर नहीं रख दिया है, परन्तु वे लोग कई डेग और आगे भी बढ़ गये हैं।

---

१. अपना नाम छिपा २ कर अन्य प्रसिद्ध लेखकों की रचनाओं में अपनी रचना घुसाने वालों तथा स्वरचित ग्रंथों को सुविख्यात महानुभावों के नाम से प्रकाशित करने वालों के विषय में डाक्टर कर्ण (Dr. Kern) ने एक ज्योतिष के ग्रंथ में सम्बन्ध में कहा है कि "किसी मनुष्य के मस्तिष्क से उत्पन्न हुआ पदार्थ उसी व्यक्ति का माल है इस भावना से वे लोग अर्थात् भारतवासी अनभिज्ञ थे; जो भावना कि योरुपदेश में ऐसे हास्यास्पद परिमाण को पहुँच गई है। उन लोगों की झुकाव जो दूसरे छोर की ओर हुई दुर्भाग्यवश यह उससे भी अधिकतर हानिकारक है।"

The nation of the productions of a man's mind being his property, a notion Carried to such a ridiculous extent in Europ, was unknown to them. Unhappy the opposite extreme they fell into is much more pernicious. Rajendra Lal's 'Indo-Aryan' Vol. II. P. 212,

गोसाईं जी ने तो इस सरोवर में सात सोपान बनाया और अब लोग इस में एक और सोपान जोड़कर आठकाण्ड की रामायण प्रकाशित करने लगे हैं। इस काण्ड में लव कुश का चरित्र समावेशित किया गया है। परन्तु 'सप्त प्रबंध सुभग सोपाना' को भी बदलकर यदि 'अष्ट प्रबंध सुभग सोपाना' कर देते तो भला कुछ इज्जत भी रह जाती। यों तो पूर्वोक्त अर्द्ध चौपाई उन्हें स्पष्ट ही विचारशून्य बना रही है। 'लवकुश' चरित्र यदि गोसाईं जी का ही रचा हुआ हो तौ भी वह रामचरितमानस (रामायण) का अङ्ग नहीं है, राम कथा अङ्ग भले ही हो। यदि हमारे गोसाईं जी को 'लवकुश' की कथा रामायण में सम्मिलित करने की इच्छा होती तो क्या कोई इन का हाथ रोके हुये था कि ये 'सप्तसोपान' के स्थान में 'अष्ट सोपान' नहीं लिख देते ? यह काण्ड तो किसी प्राचीन हस्त-लिखित या प्रकाशित पुस्तक में समावेशित भी नहीं देखा जाता। ऐसे प्रकाशक लोग अपने लाभ के लिये न जाने गोसाईं जी के इस अपूर्व रचना-सर की शोभा कहाँ तक नष्ट कर देंगे। आज एक सीढ़ी जोड़ी गई, कलह दो, फिर न जाने कितनी सीढ़ियां बनती जायंगी। हमें तो इस का आश्चर्य होता है कि 'श्री गोस्वामी तुलसी दास कृत लव कुश काण्ड' यह सर्वथा मिथ्याबात ऐसे धर्म्मग्रंथ में लिखते और छापते लोगों को कुछ भी हिचक और लज्जा नहीं होती।

हम दृढ़ता पूर्वक कह सकते हैं कि निश्चय कर के गोसाईं जी को यह कथा लिखनी अभिप्रेत नहीं थी क्योंकि बहुत से लोग सीतानिर्वासन की कटु समालोचना करते हैं और गोसाईं जी अपनी लेखनी से कोई ऐसी बात कदापि नहीं लिख सकते थे जिस से श्री रामचन्द्र के सम्बन्ध में कोई दूषण-प्रदर्शक भाव निकल सके। रामायण में उन के विषय में जहाँ कहीं किसी के मुख से कोई अयोग्य बात निकल पड़ी है वहीं उसी दम इन्हों ने किसी न किसी से उसे धष करवा दिया है। तब क्या वे स्वयम् एक ऐसा काण्ड ही निर्माण कर देते जिस से रामचन्द्रगुण कीर्त्तन रूपी सुन्दर चित्र पर पोचाड़ा फिर जाता। और दूसरे लोगों ने स्वरचित ग्रंथों में यह कथा वर्णन की है तो उनलोगों को इन के समान रामचन्द्र में भावना नहीं थीं; वे लोग इन के सदृश रामचन्द्र के परम भक्त नहीं थे, यह बात निर्भयरूप से कही जा सकती है।

पं० रामेश्वर भट्ट जी स्वरचित रामायण की टीका में क्षेपक के विषय में ऐसा कहने वालों को कि 'यदि उन की आवश्यकता होती तो गोसाईं जी स्वयम् लिखते' यह उत्तर देते हैं कि गोसाईं जी स्वयम् बड़े भारी विद्वान थे और जो ऐसे विद्वान् होते हैं वे एसी पुराणान्तरों की कथाओं को जिन का संसार में बहुधा प्रचार होता है लिख कर अपने ग्रंथ को वृथा नहीं बढ़ाते क्योंकि बीच २ में अन्य कथाओं के लिखने से उन के लेख प्रसङ्ग में विक्षेप पड़ता है जैसा कि "बात चल रही है खेत की ले बैठे खलियान की' सो सतकवीश्वर ऐसा कदापि नहीं करते। वे स्वयम् अधिक विद्वान होने के कारण समझ लेते हैं कि अमुक कथा तो प्रसिद्ध है, इस से सब जानते हैं, परन्तु जानते तो वे ही जिन्हों ने सत्सङ्ग किया है·······और जो नव शिक्षित हैं और यह भी नहीं जानते कि पुराण किस चिड़िया का नाम है तो समझिये कि बिना क्षेपक और प्रसङ्गोत्थित इतिहास के उन को किस प्रकार सम्पूर्ण कथा ज्ञात हो सकती है।"

पंडितजी के कथन का उत्तर हम पहले एक पंडित ही द्वारा दिलाना उत्तम समझते हैं। देखिये 'रसवाटिका' ग्रंथ के रचयिता पं० वर गङ्गा प्रसाद अग्निहोत्री इस विषय में क्या लिखते हैं :—

"प्रथमतः हम उन प्रचंड पंडित प्रवरों का नामोल्लेख करते हैं कि जिन लोगों ने महाकाव्यलक्षणोपेत काव्य से कहीं बढ़े हुये भाषा के अद्वितीय काव्यरत्न श्रीमद् गोस्वामी बाबा तुलसीदासजी कृत चौपाई रामायण को क्षेपकों द्वारा दूषित करने ही में अपने समस्त पांडित्य का शेष किया है।"

"न जाने इन क्षेपकलेखक काव्य विशारदों ने इस बात को क्यों नहीं विचारा कि आज दिन हम जिन कथाओं को विस्तृत करते हैं उन्हें स्वयम् गोसाईंजी ने विस्तृत क्यों नहीं किया ? क्या वे उन्हें विस्तृत नहीं कर सकते थे ? गोसाईं जी ने उन्हें विस्तृत नहीं किया है तो इस का कोई गुरुतर कारण अवश्य होगा। हमें भरोसा है कि हमारे क्षेपक-विचक्षण लोग यदि इस बात को अपने विचार क्षेत्र में स्थान प्रदान करते तो वे केवल अबोध लोगों की थोथी प्रशंसा के मोह में फँसकर उक्त काव्य में क्षेपक प्रविष्ट कर उसे रस-विच्छेद दोष से दूषित नहीं करते। सारांश इस प्रचंड हानि का कारण उनलोगों की विचारशिथिलता ही कही जा सकती है।" आपने नोट में यह भी लिखा है कि 'माना कि अबोध एवं केवल कथाप्रियलोग इस बात को नहीं जान सकते कि गोस्वामी जी का प्रधान अभिप्राय श्री रामचन्द्र जी के चरित्र लिखने का था सो अपने अभिप्राय की पुष्टि के हेतु जितनी गौण कथा अभीष्ट थी उतनी ही गोसाईं जी ने लिखी हैं, गौण कथा के विस्तार द्वारा पाठकों को प्रधान विषय की विस्मृति नहीं होने दी है। पर इस बात का विचार हमारे क्षेपक लिखने वाले पण्डितों का कर्त्तव्य था।'

और जब भट्ट जी महाराज स्वयम् कहते हैं कि बीच बीच में अन्य कथाओं के लिखने से लेख प्रसंग में विक्षेप पड़ता है और सत् कवीश्वर ऐसा कदापि नहीं करते कि 'बात चल रही है खेत की और ले बैठे खलियान की' एवम् जब गोसाईं जी ने लेखप्रसङ्ग में विक्षेप डालना तथा अप्रासंगिक बातें लिख कर अपने ग्रन्थ का सौंदर्य नष्ट करना उचित नहीं समझा तब अन्य लोग क्यों उन की पुस्तक रूपिणी कविता कामिनी के मनोरम तथा जगमगाते हुये ललित वसन में क्षेपकों का चेथड़ा टांक कर उस की सुन्दरता नष्ट करने चले हैं एवम् इन की रचना वाटिका में बिना विचारे कांटे कुश तथा अनावश्यक लत्तर बवँर रोप २ कर शोभामय पुष्पों को आच्छादित करने पर उतारू हुये हैं ! गोसाईं जी की रचना के सच्चे प्रेमी यह देखना और जानना चाहते हैं कि गोसाईं जी की लेखनी से क्या निर्गत हुआ है और यह बात क्षेपक पूर्ण ग्रंथों के प्रकाशन से नहीं हो सकती। यदि यही इच्छा है कि अनभिज्ञ लोग प्रसंगोत्थित इतिहासों और बातों को पूर्ण रीति से जान जायं तो कृपा पूर्वक क्षेपकों की कथाएँ गद्य वा पद्य ही में फुटनोट में वा ग्रंथ के अन्त में दे दिया कीजिये। इस से भी तो आप का अभीष्ट सिद्ध हो जायगा। किन्तु उस शोभामय पाटम्बर से इस क्षेपक के चेथड़ों के टांकों को अवश्य तोड़ दीजिये और गोसाईं जी की ललित रचना में धब्बा न लगाइये। अन्य रचित ग्रंथों में क्षेपक घुसाने का बड़ा अनिष्टकर

फल होता है। यह क्षेपककारकों की करनी ही का फल है कि वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारत वर्णित कथाओं की सत्यता में एवम् उन के निर्माण काल में नाना प्रकार का तर्क वितर्क चिरकाल से उठ रहा है।

हम यह जानते हैं कि किसी २ क्षेपककार ने अच्छी कारीगरी दिखलाई है और स्वरचित क्षेपक में सुन्दर कविता भी की है। परन्तु क्षेपक कितना ही सुन्दर क्यों न हो, है वह क्षेपक ही, और गोसाईं जी की लेखनी से निर्गत नहीं हुआ है। अतएव क्षेपक कैसा ही हो उस का रामायण में रहना उचित नहीं।

इधर तो क्षेपक के चिथड़े जोड़े जाते हैं, और सोपानों में क्षेपकों की नयी २ ईंटें जहां तहां जमायी जाती हैं, उधर स्वर्गवासी मैनपुरी निवासी मु० सुखदेव लाल जी का यह मत है कि 'प्रत्येक काण्ड के प्रति प्रस्ताव की चौपाइयों की संख्या का क्रम इस प्रकार उतार चढ़ाव से होना चाहिये जैसे सीढ़ियों का होता है क्योंकि यह मानस (सर) है' और उन्होंने अपनी तर्कना से चौपाइयों का प्रमाण आठ २ चौपदी मानकर शेष चौपाइयों को तथा अनेक दोहों और छन्दों को उठाकर रामचरित-मानस की जमी जमायी ईंटों को खसका दिया है।

इतना ही नहीं वरन् एक सोपान के कुछ भाग को भंग कर आपने उसे दूसरे सोपान में मिला दिया है। अर्थात् आरण्य काण्ड के—'चलेराम त्याग बन सोऊ' से लेकर अन्त पर्य्यन्त सर्वांश उठाकर किष्किन्धा काण्ड में रख दिया है।

बनारस कालेज के भूतपूर्व पण्डित श्री रामजसन जीने भी गोसाईं जी के राम चरित मानस के सोपानों की ईंटों के उखाड़ने में हाथ की अच्छी सफाई दिखलाई है।

हम नहीं समझते कि जिन चौपाइयों और दोहों को इन महाशयों ने उठा दिया है उनके सचमुच क्षेपक होने का अनुभव इन्हें कैसे हुआ? क्या गोसाईं जी की आत्मा आप के कानों में कहती गई कि वे सब उनकी रचनाएं नहीं थीं? सम्भव है कि गोसाईं जी के वास्तविक रचे पद उठा दिये गये हों और क्षेपक ही ज्यों का त्यों रह गया हो। इस काट छांट में जैसे परिश्रम किया है वैसे ही प्राचीन प्रतियों के हस्तगत करने का यदि यत्न किया जाता तो ऐसी बात नहीं होने पाती। यह काट छांट सर्वथा ठीक नहीं होने का प्रमाण तो रामायण के उन संस्करणों में, जो म० कु० बाबू रामदीन सिंह जी ने राजापुर वाली तथा श्रीकाशीनरेशवाली सं० १७०४[१] की लिखी हुई प्रतियों के अनुसार एवम् 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने' राजापुर वाली, काशीनरेशवाली तथा अन्यान्य प्राचीन प्रतियों को मिलाकर प्रकाशित किये हैं, वर्तमान पाया जाता है।

इन संस्करणों के अन्य काण्डों को विलग रखिये; क्योंकि वे सब केवल अनेक प्राचीन प्रतियों को देखकर तैयार किये गये हैं और सम्भव है कि उन प्राचीन प्रतियों में भी गड़बड़ हो

---

१. प्रतीत होता है कि रामायण की टीका तैयार करने के लिये १७०० सं० (अर्थात् गोसाईं जी के स्वर्गवास से २० वर्ष पीछे) की लिखी हुई पुस्तकें जो गोसाईं जी के स्थान से बाबा लक्ष्मण दास जी से मांग कर लाई गई थी, उसी से यह प्रति तैयार की गई।

या क्षेपक आ घुसा हो। आपलोग केवल अयोध्या काण्ड की ओर दृष्टि कीजिये। दोनों संस्करणों में वह काण्ड गोसाईंजी की राजापुर वाली प्रति के अनुसार होना बोध होता है। यद्यपि इन दोनों के भी अयोध्याकाण्ड में कुछ परस्पर प्रभेद है (जैसा कि पाठकों को आगे के परिच्छेद में विदित होगा) तथापि इन दोनों ही के ८, ६४, १७३ तथा १८५ अंक के दोहों में केवल सात २ चौपाइयां एवम् २९ तथा २०२ अंक के दोहों में नौ २ चौपाइयां हैं। और मुन्शी जी की रामायण में २९ तथा २०२ के अंक के दोहों में से एक २ चौपाई उड़ाकर और शेष में नीचे लिखी हुई चौपाइयां जोड़कर आठ की संख्या पूरी की गई है।

८ वां दोहा—बार बार गनपतिहिं निहोरा। कीजै सुफल मनोरथ मोरा॥
६४ वां „ —यहि विधि सिय सासुहिं समुझाई। कहत पतिहिं वर विनय सुनाई॥
१७३ वां „ —सोचिय लोभनिरत अति कामी। सुर श्रुति निन्दक परधन स्वामी॥
१८५ वां „ —केहि न भाव सिय लक्ष्मण रामू। सब कह प्रिय हृदय सदा सकामू॥

खड्गविलास प्रेस वाले संस्करण में २५६ अंक वाले दोहे की चौपाइयां केवल छः हैं। उन में से एक चौपाई यह है:—

"सकुचउं तात कहत इक वाता। भे प्रमोद परिपूरन गात॥"

मुन्शी जी की टीका में 'सकुचउं······बाता' के बाद 'अर्ध तजहिं बुध सर्वस जाता यह नया चरण जोड़ा गया है।

तब "तुम कानन गवनहुं दोउ भाई। बहुरहिं लषन सीय रघुराई॥"

यह नई चौपाई रखी गई है।

फिर "सुनि सो वचन हरषे दोउ भ्राता।"

इस नयी अर्ध चौपाई के अनन्तर पूर्वोक्त चौपाई का उत्तरार्द्ध 'भे प्रमोद परि पूरन गाता' रखा गया है। इस रीति से इस दोहे की चौपाइयों की संख्या आठ की गई है 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' वाली प्रति में ये नये चारो चरण कोष्ठबद्ध कर दिये गये हैं जिस से दृढ़ विश्वास होता है कि राजापुर वाली प्रति में भी २५६ अंक वाले दोहे की चौपाइयां सचमुच छः हैं।

उपर्युक्त ये सब चौपाइयां जो निश्चय मुन्शी जी या किसी अन्य पुरुष की रची हुई होंगी। इस के सिवाय इन संस्करणों की प्रतियों से मुन्शीजी की टीका वाली रामायण को मिलाने से शब्दों तथा समुच्चय चरणों [1] का कतिपय पाठान्तर एवम् कहीं २ चौपाइयों के स्थान-क्रम में भेद देखे जाते हैं।

---

१. पाठान्तर देखने के लिये इन ग्रंथों के अयोध्या काण्ड के १४, ३८, ४२, ४४, ६७, ६१, ७३, ९९, ११२, १२५, १५०, १५३, २०७, २३१, तथा २४० अंक वाले दोहों की क्रमशः ३, ३, ५, १, ५, ५, १, ४, २, ३, ४, २, ५, ३, ७, और ७ चौपाइयों का मिलान कीजिये।

राजापुर वाली प्रति में भी चौपाइयों की संख्या में न्यूनाधिक देख कर यह कहा जा सकता है कि गोसाईं जी ने आठ ही आठ चौपाइयों का क्रम नहीं रखा है। और जब मुंशी जी की रामायण के अयोध्या काण्ड में गड़बड़ देखा जाता है तथा वह राजापुर वाली प्रति से सर्वत्र नहीं मिलता तो यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि जैसे मुंशी जी ने अपने रदबदल तथा काट छांट से इस काण्ड में गड़बड़ कर दिया है वैसे ही अन्य काण्डों में भी इनके काट-छांट से अवश्य गड़बड़ हुआ होगा और वह काट छांट सर्वथा ठीक नहीं माना जा सकता है। यदि वह ठीक है तो राजापुर वाली प्रति को गोसाईं जी की हस्त लिखित मानना उचित नहीं होगा। पाठक जैसा उचित समझें वैसा करें।

पूर्वोक्त पंडित जी ने साहस पूर्वक और भी पंडिताई दिखलाई है। उन्होंने ग्रन्थकार की भाषा ही बदल दी है अर्थात् उस समय की प्रचलित भाषा के शब्दों के स्थानों में संस्कृत व्याकरण की रीति से शोधकर शब्द रख दिया है। मुंशी जी ने भी शब्दों को प्रायः संस्कृत ही के ढंग से लिखा है और अन्य प्रकाशक भी पंडित जी का अनुकरण करके शब्दों का रूपान्तर कर ग्रंथ प्रकाश करने लगे हैं।

गोसाईं जी अपनी रचनाओं में शब्दों को उसी ढंग से लिखते थे जैसे वे उस समय बोल चाल में प्रयोग किये जाते थे। उन की रचनाओं में ख, ण, श ऐसे, या, तुम, के स्थानों में सर्वत्र, ष [1] न, स, अैसे, आ, तुम्ह पाये जाते हैं। न, स, उच्चारण में मधुर होता है। मधुरता की ओर ध्यान रखना कवि का परमावश्यक कर्त्तव्य है। गोसाईं जी कपिकटकु, मोहदलु, पसाऊ, भुवङ्गिनी, जागबलिकु, दसरथ, बंदउ, भगती ऐसे शब्द भी प्रयोग करते थे, परन्तु अब के ग्रंथ प्रकाशकों ने उन्हे नवीन भाषा की रीति पर संस्कृत के सङ्ग से और पाणिनीय व्याकरण के अनुसार शोध कर कपिकटक, मोहदल, प्रसाद, भुजङ्गिनी, याज्ञवल्क्य, बन्दों, भक्ति बना दिया करते हैं। हमारी समझ में ऐसा परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं। उनके लिखे शब्दों को ज्यों का त्यों ही छापना उत्तम और आवश्यक है। इस से उन के ग्रंथ के पाठकों को यह ज्ञात हो जायगा कि उस समय विशेष २ शब्द कैसे लिखे जाते थे और उस समय की भाषा कैसी थी। यदि उनकी भाषा वा लेखनशैली आधुनिक लेखप्रणाली तथा भाषा के समान हों वा वे संस्कृत भाषा के विरुद्ध हों तो कोई चिन्ता नहीं। भाषा एक सी नहीं रहती—यह परिवर्तन-शीला है।

हम को हाल ही में १८८८ ई० का छपा रेवरेन्ड डबल्यु० लियुकस कालिन्स (Rev. W. Lucas Collins) एम० ए० कृत 'होमर, दी इलियड' (Homer, The Illiad) नामक ग्रंथ देखने का सुअवसर मिला है। उस में उन्हों ने ''होमर' कृत 'इलियड' नामक ग्रंथ की एक प्रकार की समालोचना की है और प्राचीन अंगरेजी ग्रंथों के पदों का कुछ उल्लेख किया है परन्तु उन पदों के उल्लेख करने में उन्हों ने शब्दों को वैसे ही रहने दिया है, जैसे उन

१. 'खड्गविलास' प्रेस द्वारा मुद्रित रामायण के अयोध्या काण्ड में सर्वत्र 'ष' देखा जाता है और 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' वाली प्रति में 'ष' और 'ख' दोनों ही पाये जाते हैं।

शब्दों के रचयिता के समय में वे सब लिखे जाते थे। पाठक वृन्द! आप लोगों के अवलोकनार्थ हम भी उन पदों को यहां पर उद्धृत कर देते हैं।

And when Priam in full thrifty woyse
Performed hath as ye have heard devyse,
Ordained eke, as Guide can you tell,
A certain Nombre of priestes for to dwell
In the temple in their devotions,
Continually with devout arisons,
For the Soule of Hector for to pray.

× × ×

To which priestes the Kyng gave mansyons,
There to abide, and possessyons,
The which he hath to them Martysed,
Perpetually, as ye have heard devysed,
And while they kneel, pray, and wake,
I Caste fully me an end to make.
Finally of this my thirde booke,
On my rude manner as I undertooke

(*The closing Lines of Lydyate's third book*)

वह पद 'हेकटर' की अन्त्येष्टि क्रिया के सम्बन्ध में है। मोर (More) साहब ने युटोपिया (Utopia) पुस्तक १५१६ ई० में गोस्वामी जी के जन्म समय के लगभग लिखी थी। उस का पादरी जे० रासन लम्बी (J. Rausaon Lumby) द्वारा सम्पादित १८६७ ई० का एक संस्करण हमें देखने में आया है। चार सौ वर्ष पीछे छपने पर भी इस में शब्द वैसे ही दिये गये हैं जैसे १५१६ ई० में लिखे गये थे। हम उस में से भी कुछ शब्दों को यहां उद्धृत कर देते हैं।

Sometyme vertue, cleare angelicale, againe, realme, studie, Occupie, Sonne, knowinge, hime parti, sett, type remembrannce &c.

परन्तु एम० ए० होकर लियुकस साहब तथा पादड़ी रासन ने उपर्युक्त शब्दों को शोधकर क्यों नहीं छापा? यदि वे ऐसा करते तो आज हमें कैसे ज्ञात होता कि उस समय वे शब्द कैसे लिखे जाते थे।

फिर देखिये शेक्सपियर के समय की भाषा आधुनिक अंगरेजी भाषा से बहुत भिन्न पाई जाती है। शेक्सपियर की रचनाओं में व्याकरण का ऐसा उलट फेर है कि लोगों को हार कर उन की रचनाओं के समझने के लिये एक नूतन व्याकरण ही बनाना पड़ा है जिसे 'शेक्सपीरियन ग्रामर'' कहते हैं। उनके पीछे विलायत में बहुत से नामी विद्वान हुये और उन लोगों के ग्रंथों का सैकड़ों संस्करण हुआ, परन्तु किसी विद्याचार्य्य ने उन लोगों की रचनाओं पर लेखनी नहीं चलाई, उन्हें ज्यों की त्यों छापते गये। लेखनी कैसे चलावें? वे जानते थे कि इस परिवर्तन से कवि के आशयों में भेद पड़ जायगा एवम् परिवर्तित अवस्था में उन के काव्य का यथार्थ आशय प्रगट नहीं होगा और उससे यथार्थ स्वाद भी नहीं मिलेगा। परन्तु 'राम चरित मानस' के अधिकांश प्रकाशकों का ध्यान इन विचारों की ओर नहीं जाता। वे लोग अपनी ही पंडिताई तथा विद्वत्ता दिखलाने के लिये मरे जाते हैं। गोसाईं जी ही की रचनाओं पर समाप्ति नहीं है। सब प्राचीन ग्रंथों के प्रकाशक प्रायः प्राचीन पुस्तकों में लिखे हुये शब्दों को संस्कृत के ढङ्ग पर शोध २ कर छापने लगे हैं। ऐसा करना बड़ा ही अनुचित है। ऐसा करने से किस समय कैसी लेखन-रीति तथा कैसी भाषा प्रचलित थी, व्याकरण का कितना और कैसा अनुसरण किया जाता था इन बातों का पता लगना तथा निर्णय होना कालान्तर में कठिन हो जायगा।

पञ्चदश परिच्छेद

रामचरित मानस के संस्करण तथा टीकाएं

आज से कई वर्ष पूर्व हिन्दीभाषा के प्रसिद्ध प्रचारक तथा रामचरित मानस के परम प्रेमी म० कु० बाबू रामदीन सिंह जी ने स्वसम्पादित रामायण में लिखा था कि उस समय तक सुजनों के द्वारा इस ग्रंथ का १२६ संस्करण हुआ था। इस बीच में और भी अनेक संस्करण अवश्य हुये होगें क्योंकि कोई ऐसा विरला ही प्रेस है जिसने गोसाईं जी कृत रामायण को न प्रकाशित किया हो। किसी २ ने तो इस का कई संस्करण प्रकाश कर के अभिमत फल प्राप्त किया है।

इन संस्करणों में कितनों में तो केवल मूल ही छपा है एवम् कितनों में टीका सहित मूल छपा है। किन्तु अक्षरों तथा शब्दों के परिवर्तित करने और क्षेपकों के ठुसेड़ने के सिवाय प्रकाशकों ने प्रायः मूल पाठ में अक्षमा-योग्य गड़बड़ कर दिया है। इस में सन्देह नहीं कि प्राचीन रचनाओं की मुद्रित तथा हस्त लिखित प्रतियों में प्रायः पाठान्तर पाया जाता है। इसी देश के ग्रंथों में नहीं वरन् अन्य देशों के ग्रंथों में भी यह बात देखी जाती है। परन्तु इस की भी तो कोई सीमा होनी चाहिये। यहां तो इस पुस्तक के प्रकाशकों ने अपनी २ युक्तियों की ऐसी राह दी है कि सबों ने एक नई ही रचना खड़ी कर दी है और एक पुस्तक के दूसरी पुस्तक से मिलाने में विशेष अन्तर दीखता है। और वही रामायणियों में विरोध का कारण हो गया है। कोई एक रामायण का पाठ ठीक बताते हैं और कोई दूसरे का। और निज पक्ष समर्थन में बहुत से लोग विवाद की सीमा को उलंघन करने के लिये भी कमर कसकर खड़े हो जाते हैं। कहीं पाठान्तर ऐसा भी देखने में आता है जिस से ग्रन्थ कर्त्ता के माथे कलंक की टीका लगने की भी सम्भावना हो जाती है।

संस्करणों की तो यह दशा; और टीकाकारों ने कुछ और ही गुल खिलाया है। जिस की बुद्धि ने जैसी राह दिखलाई है उसने वैसी ही टीका रगड़ दी है। अपनी बुद्धि की चमत्कारी दिखाने में लोगों ने त्रुटि नहीं की है। परन्तु इस बात का कम लोगों को ध्यान रहा है कि कवि का सचमुच क्या आशय था और ग्रन्थ के आशय तथा भाव के समझने में रामायण के पाठकों को उनकी टीकाओं से कहां तक सहायता मिल सकती है। टीकाकारों का मुख्य अभिप्राय

अपनी पंडिताई तथा निपुणाई दिखाने के लिये ऐसी अनेक नई २ कल्पनाएं की हैं और छोटे छोटे पदों तथा शब्दों को तोड़ मोड़ कर उन का ऐसा गूढ़ आशय वर्णन किया है जिस की ओर कवि का कदाचित कभी ध्यान भी नहीं गया होगा। रामचरितमानस का बिचारा अबोध पाठक टीकाओं के सहारे ग्रंथ का मूल तात्पर्य्य जानने के बदले टीकाकारों के पाण्डित्य के भँवरजाल में पड़ कर घबड़ा उठता है।

आज इस ग्रंथ की पचासों टीकाएं प्रचलित हैं। किसी में भावार्थ, किसी में शंकासमाधान एवम् किसी में अलंकारों की छटा दिखलाई गई है और किसी २ में साधारण सरल शब्दों का रक्त चूस २ कर मनमाना अर्थ निकाला गया है।

श्रीमहंथ रामचरण दास जी; श्री महात्मा काष्ठजिह्वा (देव) स्वामी, पं० शिवलाल पाठक, महात्मा शेष (फनीश) दत्त शर्म्मा, पं० किशोरी दत्त, श्री अल्प दत्त, श्री रामप्रसाद जी परमहंस, महात्मा भाई सन्त सिंह (पंजाबी) महाराज काशीराज श्री ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह बहादुर, महाराज गोपाल शरण सिंहजी (बकसर), महात्मा जानकी दास जी, भक्तभूषण हरिहर प्रसाद जी, पं० राम बकस पाण्डेय, पं० बन्दन पाठक जी, महात्मा रघुनाथ दास जी, बाबा लक्ष्मण दास जी, पं० ज्वाला प्रसाद, पं० रामेश्वरभट्ट, श्री बैजनाथ दास जी इत्यादि की गणना मुख्य टीकाकारों में होती है। परन्तु इन में सब महानुभावों की टीकाएँ मुद्रित नहीं हुई हैं। हम यहाँ पर कई एक टीकाओं की संक्षिप्त समालोचना करनी अनुपयुक्त नहीं समझते।

'रामचरित मानस' के केवल मूल ही के जितने संस्करण हुये हैं उनमें से 'खड्गविलास प्रेस' द्वारा प्रकाशित संस्करण तथा 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित, इलाहाबाद इन्डियन प्रेस का छपा संस्करण प्रायः शुद्ध तथा गोस्वामी जी के लेख नियम के अनुसार छापे गये हैं। यद्यपि इन दोनों में भी जहाँ-तहाँ परस्पर प्रभेद है तथापि ये दोनों अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा निस्सन्देह प्रामाणिक हैं।

पहले-पहल म० कु० बाबू रामदीन सिंह जी ने ग्रियर्सन साहब के उद्योग से राजापुर के अयोध्या काण्ड की प्रतिलिपि तथा काशीनरेशवाली रामायण के सातों काण्डों की नकल प्रस्तुत करके गोसाईं जी के लेखानुसार केवल मूल ही १८८९ ई० में प्रकाशित किया। उस में गोसाईं जी के हस्त लिखित १० पत्रों का, काशीनरेशवाली रामायण के चार पत्रों का एवम् एक जन टोडर की सन्तति के झगड़े में गोसाईं जी के दिये व्यवस्था पत्र (पंचनामा या फैसला) के फोटो भी दिये गये हैं। अपनी लिखी हुई भूमिका तो है ही ग्रियर्सन साहब लिखित संक्षिप्त जीवनी, कोई महापुरुष कृत पदबद्ध जीवन चरित्र एवम् साहित्याचार्य्य पण्डित अम्बिका दत्त व्यास तथा अन्य लोगों की बनाई मानसप्रशंसा की कविताएँ भी छापी गई हैं।

म० कु० रामदीन सिंह हमलोगों के हार्दिक धन्यवाद के भागी हैं, क्यों कि उन्हों ने गोसाईं जी कृत रामायण की शुद्ध प्रति सब लोगों के लिये सुलभ करने के हेतु उस समय यत्न किया जब कि अन्य लोगों का ध्यान भी उधर नहीं गया था एवम् उस के मुद्रण का सर्वथा भार अपने ही ऊपर लिया। इसमें उनका किसी ने हाथ नहीं बंटाया।

१६०३ ई० में 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने भी राजापुर वाले अयोध्या काण्ड, काशीनरेशवाली रामायण, तथा एक दो अन्य प्राचीन हस्त लिखित प्रतियों को अपने पांच सदस्यों के द्वारा मिलवा कर तथा शोधवाकर सुन्दर अक्षरों में और अच्छे कागज पर 'इन्डियन प्रेस' इलाहाबाद में छपवाकर केवल मूल ही प्रकाशित किया है।

इस में भी गोस्वामी जी की जीवनी छपी है। काशी नरेश के पास जो एक सचित्र रामायण है, जिस की तैयारी में कदाचित १६०००० व्यय हुआ था, उस के बहुत से चित्रों के इस में फोटो भी दिये गये हैं। अन्त में कथा भाग है जिस में उन पौराणिक बातों का जिनका गोस्वामी जी ने रामायण में सांकेतिक वर्णन किया है पूरा विवरण दिया हुआ है। 'खड्गविलास प्रेस' वाले संस्करण के १५ वर्ष पीछे यह संस्करण तैयार होने से इस के सम्पादकों को कुछ अधिक सावधानी से काम करने का अवकाश मिला है और पांच सम्पादकों की सम्मति से काम करने एवम् इस सभा के राजों महाराजों के सहायक होने से इस में चमक दमक कुछ विशेष देखी जाती है।

हम इन दोनों संस्करणों में प्रभेद की बात अभी कह चुके हैं। हम यहां पर अन्य काण्डों का विचार नहीं करते और न हम ने शब्दों के पाठान्तरों पर विशेष ध्यान दिया है। हमारा ध्यान दोनों संस्करणों में अयोध्या काण्ड के प्रत्यक्ष प्रभेदों की ओर आकर्षित हुआ है। 'खड्ग विलास प्रेस' संस्करण में २५६ अंक के दोहे की चौपाइयां ६, और २, ५, ८, २०, ६४, १७३, १८४, १८५, २१८, २७६ तथा २६१ अंक वाले दोहों की चौपाइयां सात-सात एवम् २६ तथा २०२ अंक वाले दोहों की चौपाइयां नौ नौ हैं और 'काशी नागरी प्रचारिणीसभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में केवल ८, ६४, १७३ और १८५ दोहों की चौपाइयां सात सात एवम् २६ तथा २०२ दोहों की चौपाइयां नौ नौ हैं। २५६ अंक के दोहे की चौपाइयां हैं तो आठ, परन्तु उन में चार चरण कोष्ठबद्ध हैं जैसा कि गत परिच्छेद में दिखलाया गया है। इन दोनों संस्करणों के अयोध्या काण्ड में ऐसा प्रभेद होना बड़े आश्चर्य्य की बात है। क्योंकि इन दोनों के सम्पादक लोग पुस्तक सम्पादन के समय यह काण्ड राजापुर से प्राप्त होना बताते हैं, जहां गोसाईं जी के हाथ की लिखी हुई रामायण की स्थिति कही जाती है। 'खड्गविलास' वाली प्रति के उपक्रम में लिखा है कि "उस (राजापुर वाली) प्रति के लिये बहुत यत्न किया और बड़ी कठिनता से उस का फोटोग्राफ लिया और उसी प्रकार के कागज और लिपि में उनके लिखाने में बहुत सा द्रव्य व्यय करके उसको लिखवा लिया है।' एवम् 'काशी नागरी प्रचारिणी' सभावाली रामायण के सम्पादकगण लिखते हैं, "इन में से पहली और दूसरी (अर्थात् राजापुर वाले अयोध्या काण्ड की) प्रतियों के प्राप्त करने का सौभाग्य सभा के सभासद बाबू ठाकुर प्रसाद को प्राप्त है।"

परन्तु इस प्रभेद से तो यह निर्भीक भाव से अनुमान किया जा सकता है कि इन दोनों में से कोई एक राजापुर वाली रामायण के अनुसार नहीं है; या राजापुर के अधिकारी लोग भिन्न २ व्यक्ति को भिन्न २ प्रति गोसाईं जी लिखित कह कर निज स्वार्थ साधनार्थ दिखला दिया करते हैं जिससे वहां सचमुच गोसाईं जी लिखित रामायण होने की बात एक ढकोसला ही प्रतीत होता है; या सम्पादक महाशयों ने अपने २ संस्करण के प्रकाशन में अपनी बुद्धि से भी काम लिया है। किन्तु

बा० रामदीन सिंह जी ने तो यह स्पष्ट कहा है कि 'इस राम चरित मानस में ग्रन्थकार के लेखानुसार मक्षिका स्थाने मक्षिका रक्खी गई है। कल्पना से काम नहीं लिया गया है।'

अब मित्रवर बाबू रामदीन सिंह जी इस संसार में नहीं हैं और काशी सभावाली रामायण के सम्पादकों में से केवल सुहृदय श्यामसुन्दर दास वर्तमान हैं। उन्हों ने हमारे पत्र के उत्तर में यथार्थ लिखा है कि अब फिर राजापुरवाली प्रति देखे बिना कुछ कैसे कहा जा सकता है। परन्तु हम को तो वहां जाकर वह रामायण देखने का समय और अवकाश नहीं है। क्या उस प्रान्त के कोई साहित्यानुरागी अपने ऊपर कष्ट उठाकर इसके निर्णय करने का उद्योग करेंगे?

राजापुर वाली रामायण में तापस की बेजोड़ कथा रहने में भी उस प्रति के विषय में हमारे मन में बड़ा असमंजस उत्पन्न होता है, क्योंकि गोसाईं जी ने रामायण में और कहीं कुछ अप्रासंगिक रीति से नहीं लिखा है।

रोशन लाल कृत टीका—टीकाकार ने लिखा है कि "श्रीमत पंडित रामबक्स पांड़े रामायणी की सहायता से जिन्हों ने चौदह वर्ष से बहत्तर वर्ष पर्य्यन्त इसी रामायण के पढ़ने और सत्सङ्ग में सारी अवस्था व्यतीत की यह टीका निर्मित होकर मूल के सहित बड़ी शुद्धता के साथ छापी गयी।" १८७८ ई०[1] की छपी हुई इस टीका की द्वितीयावृत्ति हमारे सामने इस समय उपस्थित है। यह टीका 'नूरुल अबसार' यन्त्रालय आगरा में छपी थी। यह टीका बहुत सरल रीति से अंगरेजी भाषा की पुस्तकों के नोट के ढंग पर बनी है। जहां कहीं किसी चौपाई में एक ही शब्द कठिन समझा गया है वहां उसी का अर्थ लिख दिया गया है। कहीं आवश्यकतानुसार चौपाइयों और दोहों की सविस्तर व्याख्या भी हुई है। कहीं किसी विषय का दो एक भाव भी दिखलाया गया है। मूल के सांकेतिक पौराणिक कथाओं का संक्षिप्त वर्णन भी कर दिया गया है। इस के अन्त में रामायण के शब्दों का कोष भी दिया हुआ है। टीका अच्छी है।

श्रीरामबक्स पाण्डेजी श्रीमन्महाराजा ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंहजी काशीनरेश के रामायण के एक मुख्य पंडितों में से थे। आप रामायण के अच्छे ज्ञाता थे। आपने रामायण की एक टीका भी बनायी है जो श्रीकाशीनरेश के पुस्तकालय में वर्तमान है और उस टीका के बालकांड का उतारा बांकीपुर के खड्गविलास यन्त्रालय में भी है। प्रवाद है कि रामबक्स जी की कथा में मु० रोशन लाल सदैव उपस्थित रहते थे और जो कथा में सुनते थे उसे लिख लिया करते थे। उसी से उन्हों ने अपनी टीका बनाकर प्रकाशित की जो बात कदाचित पंडित जी को कुछ बुरी भी लगी थी। परन्तु भूमिका के ऊपरवाले उद्धृतांश से इस प्रवाद की पुष्टि नहीं होती।

रामायण परिचर्य्या परिशिष्ट प्रकाश—पहले व्याकरण वेदान्त न्यायादि के महान पंडित काशीनिवासी श्री काष्ठजिह्वा स्वामी ने 'रामचरित मानस' की संक्षिप्त टीका करके उसका नाम 'मानस परिचर्य्या' रखा था। उसी को श्री मन्महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण

---

१. रामचरित मानस की टीका चाहे पहले किसी ने बनाई हो परन्तु बोध होता है कि यही रोशन लाल कायस्थ की बनाई टीका पहले पहल छपकर प्रकाशित हुई।

सिंह जू ने परिवर्द्धित कर उसका नाम 'मानस परिचर्य्या परिशिष्ट' रखा। उस के प्रकाशन के समय उस में जो कुछ अपूर्ण देखा गया वह श्रीमान् के फुफेरे भाई छपरा जिलान्तर्गत बगौरा-निवासी महात्मा हरिहरप्रसाद जी द्वारा पूर्ण होकर उसका नाम 'मानसपरिचर्य्या परिशिष्ट प्रकाश' रखा गया एवम् उसी नाम से तीनों महानुभावों की टीकाएँ सम्मिलित होकर संवत् १९३५-४० के मध्य काशी आर्य्ययन्त्रालय तथा लाइटप्रेस में मुद्रित हुई थीं। फिर वही टीकाएँ उपर्युक्त नाम से बांकीपुर खड्गविलास यन्त्रालय से १८९८ ई० में प्रकाशित हुईं।

श्री गोस्वामीजी के स्थान से संवत १७०० की लिखी रामायण प्राप्त कर सं० १८९४ में श्रीकाष्ठजिह्वास्वामी ने यह टीका लिखना आरम्भ किया था।

इस ग्रन्थ का पाठ शुद्ध माना जाता है। टीका अच्छी है। अर्थ सुन्दर स्पष्ट, भावप्रदर्शन मनोहर, सुगम तथा बोधगम है। इस में संस्कृत ग्रन्थों का एक भी प्रमाण उद्धृत नहीं पाया जाता। भाषा वर्त्तमान शैली की नहीं है। तौभी अर्थ विषय भाव सब भलीभांति समझ में आ जाता है। कहीं २ शंका समाधान की भी बहार देखी जाती है। भूमिका की भाषा अपूर्व है। आजकल के लोगों को उसे पढ़ते अवश्य हंसी आने लगती है।

"मैनपुरी निवासी मुं० सुखदेव लाल सक्सेना कायस्थ कृत टीका"—इस की रचना सं० १९२५ में हुई और १८६१ ई० में लखनउ के मुं० नवलकिशोर के छापेखाने में इस की पांचवीं आवृत्ति हुई जो हमारे सामने इस समय उपस्थित है। इसका पहला संस्करण कब प्रकाशित हुआ यह हम ठीक नहीं कह सकते। लगभग दसवर्ष पहले हुआ होगा। मुन्शी जी ने सर्वत्र आठ ही आठ चौपाइयां रखकर एवम् शेष चौपाइयों को प्रति दोहे से निकाल कर टीका की है। शेष चौपाइयों को आपने क्षेपक माना है। इस की समालोचना पहले हो चुकी है। आप ने चौपाइयों के निकाल देने का कारण भी दिखलाया है और उसका यथार्थ होना सम्भव भी हो सकता है। परन्तु आप को यह कैसे अनुभव हुआ कि अमुक ही अमुक चौपाइयाँ निकाल देने के योग्य है। यह बात आपने पाठकों को नहीं जनाई है।

यह काम इनका श्लाघनीय न हो, परन्तु टीका बहुत सरल स्पष्ट सुन्दर तथा सराहनीय है। सब के पढ़ने और समझने के योग्य है। टीका वाह्याडम्बर से शून्य है। संस्कृत वाक्यों की भरमार नहीं है। तथापि संस्कृत प्रमाणों का अभाव भी नहीं है। इस टीका के पढ़ने से रामायण का साधारण ज्ञान हो सकता है।

श्रीरामानन्दलहरी टीका—श्री अयोध्या निवासी महात्मा रामचरण दासजी [1] कृत यह टीका महाराज युगलानन्द स्वामी द्वारा संग्रहीत होकर महाराज रघुनाथ दास प्रभृति के

---

१. कान्यकुब्ज कुल में उदार अवतार लैके बारे हीं ते सीतानाथ पद अनुरागे हैं। कोई देश भूपति की चाकरी करत तहां इष्ट देव सेवा जोग छेम ही में पागे हैं॥ एक दिन राघव की सेवा में लुभाने उनहीं को रूप धारि आपु हरि जागे हैं। जानी जब बात भये हरखित गात तजि जगत के नाथ रघुनाथ ओर लागे हैं॥ 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' पर पं० वासुदेवदास कृत टीका भाग १, २१४—२७ कवित्तों को देखिये।

आज्ञानुसार मुं० रघुवरदयाल की सम्मति से लखनऊ के मुं० नवलकिशोर के यन्त्रालय में १८८३ ई० में प्रथमबार पत्रा के आकार में छपी थी। उस में प्रति काण्ड के आरम्भ में टीकाकार कृत छन्दबद्ध बन्दनादि देखी जाती है। बालकाण्ड के आदि में लिखा है :—

"गुरु कहि तुलसी कृत समुझ, सकल शास्त्र सुठि ज्ञान।
मम विचार यह आइ हिय, तुलसि दास को ध्यान॥
तब अनुभवित सुसब्द भो, पहर डेढ़ दिन पाठ।
अवधपुरी दिन विजय तिथि, पैंसठि सत दस आठ॥"

इस से भान होता है कि इस टीका की रचना १८६५ में आरम्भ हुई। यद्यपि इस दोहा से यह ज्ञात नहीं होता कि यह विक्रमी संवत् है या अन्य कोई सन है परन्तु चिरान-जिला-सारन के महन्थ श्री जीवाराम (युगल प्रिया) जी कृत 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' में इन के साकेतवास का समय सं० १८८८ [1] लिखा हुआ है—"संबत अठार सै अठासी माघ शुक्ल नौमी गुरु पिय पास गये दुबिधा निबारिकै।" इस से १८६५ [2] के भी संबत् ही होने की सम्भावना है।

इस में पुराणों, शास्त्रों, उपनिषदों तथा वेदों के वाक्यों का यथा योग्य दृष्टान्त देकर आप ने भाषाकथित भावों की पुष्टि की है। कहीं २ चौपाइयों तथा दोहों का अर्थ संक्षेपतः कहा गया है और कहीं कई पृष्ठों तक चला गया है जिस से कभी २ साधारण पाठकों का मन पढ़ने से कुछ उचट भी जाता है। प्रमाणवाले श्लोकों का अर्थ वा आशय नहीं दिया गया है। और एक ही श्लोक अनेक स्थानों में उद्धृत हुआ है। आप ने प्रत्येक काण्ड के विषयों को, (यथा, सन्तस्वभाव, खलस्वभाव इत्यादि) तरङ्गों में विभक्त किया है और प्रत्येक तरङ्ग के अन्त में आप कोई छन्द देते गये हैं। कहीं २ अलङ्कार भी दिखलाया गया है।

इस टीका में उपासना भली भांति दृढाई गई है और इस के लिये यह बहुत उत्तम टीका है एवम् साधु महात्माओं के बड़े काम की है। रामनाम की महिमा अनेक रूपों से निरूपित हुई है। इसकी गणना प्रामाणिक तथा उत्तम टीकाओं में है। इस की भाषा में कहीं २ ब्रजभाषा की झलक आ जाती है।

इसका एक संस्करण १८८९ ई० में मुं० रघुबर दयाल ही की सम्मति से हुआ था। फिर १८६० में इसकी तृतीयावृत्ति हुई। उस में मुन्शीजी का नाम नहीं देखा जाता। इन दोनों संस्करणों में प्रत्येक काण्ड के आदि में प्रथमावृत्ति वाली छन्दबद्ध वन्दना भी नहीं देखी जाती। इस के पीछे की कोई आवृत्ति हमें देखने में नहीं आई।

इस टीका की प्रशंसा में पूर्वोक्त 'भक्तमाल' भाग १ में यह लिखा है :—"मानस रामायण प्रसिद्ध पाठ अर्थ करि आगम निगम और पुरान मत गावैगो। अलङ्कार छन्द के प्रबन्ध हाव भाव भेद रसन के भेद जहां तहां दरसावैगो। कर्म ज्ञान भक्ति जोग अर्थ धर्म काम मोछ तत्ववाद संजत परत्व सरसावैगो। सिरी रामचरन तिलक बिनु देखे जीव दंपति उपासना की रीति कहां पावैगो।"

---

१. 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' कवित २२१ देखिये।

२. न जाने ग्रउस साहब ने सं० १८६२ कैसे लिखा है।

मानसतत्व प्रबोधिनी—श्रीसीतारामीय बाबू शिवराम सिंह की बनाई केवल किष्किन्धाकाण्ड की टीका है और बांकीपुर 'खड्गविलास यन्त्रालय' से प्रकाशित हुई है। इस में पहले मूल रख कर तब मानस तत्व-टीका रखी गई है, तत्पश्चात टिप्पणियां दी गई हैं। उस में जहां रा० प० लिखा गया है वहां 'प्रबोधिनी' श्री काष्ठ जिह्वा स्वामीकृत 'रामायण परिचर्य्या' जहां रा० प० प० है वहां श्री महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण कृत 'रामायण परिचर्या परिशिष्ट' और जहाँ रा० प० पं० प्र० लिखा गया है वहां महात्मा हरिहर प्रसाद जी कृत 'रामायण परिचर्य्या प्रकाश' और जहाँ रा० ब० है वहां पं० राम बक्स पाण्डेय कृत टीका से तात्पर्य्य है अर्थात इन सब टीकाओं का भाव यथोचित स्थानों में समावेशित होता गया है। इस टीका में सब से उत्तम यह बात है कि इसे ध्यान पूर्वक पढ़ने से सातो कांडों के प्रसिद्ध २ स्थानों के शंका समाधान तथा भाव का अच्छा ज्ञान हो सकता है और अन्य सोपानों के समझने की भी योग्यता प्राप्त हो सकती है। है तो यह सब सोपानों से छोटे सोपान की टीका, परन्तु केवल शंका समाधानादि के कारण ही ८६६ पृष्टों में इसकी समाप्ति हुई है। यह टीका १८८६ ई० में छपी है।

मानसतत्व विवरण—मुं० गुरसहाय लाल रचित केवल बालकाण्ड का तिलक जो पटना के प्रसिद्ध रईस राय काशी प्रसाद साहब के आज्ञानुसार १८८६ ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें ८६ पृष्ठों में केवल भूमिका है। अर्थ बहुत विस्तार करके लिखा गया है। 'जेहि सुमिरत सिद्धि होइ' इसकी टीका लम्बे २ सोलह पृष्ठों में है। इसी से इस के विस्तार की अटकल लगाई जा सकती है। और संस्कृत वाक्य भी बहुतायत से उद्धृत हुये हैं। टीका सरल नहीं है। रामायण के पूरा अभ्यास के बिना अथवा किसी अच्छे विद्वान पंडित की सहायता के बिना इस तिलक का समझना हमारी समझ में कठिन है।

बैजनाथ दासजी की टीका—जिला बाराबंकी नवाब गंज मौजा डेहवा मानपुर के निवासी कूर्म वंशीय लम्बरदार बैजनाथ जी कृत। यह टीका मुं० नवल किशोर (सी० आई० ई०) के यन्त्रालय में १८६० ई० में प्रथम बार छपी है। कदाचित् इस का और भी संस्करण हुआ है परन्तु हमें कोई देखने में नहीं आया।

इस टीका का रङ्ग ढङ्ग श्रीमहन्त रामचरणदासजी कृत टीका का है। बोध होता है कि टीकाकार ने उन्हीं का अनुकरण किया है। परन्तु संस्कृत ग्रंथों के प्रमाण संग्रह करने में आप उन से भी बढ़ गये हैं। कहीं २ दो दो पृष्ठों में प्रमाण ही प्रमाण देख लीजिये। बहुत-सी अप्रयोजनीय बातें भी कथन कर व्यर्थ अर्थविस्तार किया गया है। पाठकगण! आप लोग भी स्वयम् देखिये और विचारिये कि इस चौपाई के अर्थ में "तब प्रभु भूषन बसन मंगाये। नाना रङ्ग अनूप सोहाये।" कितनी व्यर्थ की बातें कही गयी हैं। टीकाकार लिखते हैं। "तब प्रभु अनेक भांति के भूषण तथा किरीट, कुण्डल, कण्ठा, माला, बहूंटा, पहुंची, क्षुद्रघंटिकादि स्वर्णमणि जटित; पुनः बसन यथा पायजामा, दुशाला, रुमाल, पटुका, धोती आदि, ते श्वेत, अरुण, श्याम, पीत, ऊदी, हरित, आबी, गुलाबी, इत्यादि अनेक रङ्ग के; पुनः ऊनी, रेशमी, कौशेयी, कार्पासी तिन में जरबाफ़्त, कमखाप, गिरंट, अतलस, फूलदार, जरतारी गिरट, कारचोबी, लदाऊ आदि, अनूप

बने सोहाये अत्यन्त सुन्दर इत्यादि मंगाये।" नहीं मालूम, टीकाकार मोज़ा, दस्ताना कमफर्टर, शिरवानी, कोट, पतलून, गंजी, इत्यादि मँगाना क्यों भूल गये? और देखिये—"नीच टहल गृह कै सब करिहौं।' अर्थात् कुल्ला दतूनि करावना, उबटन लगावना, स्नान करावना, भूषण बसन पहिरावना, गंध लगावना, बिछौना बिछावना, पांव पलोटना इत्यादि नीच टहल।" ये सब लिखना निष्प्रयोजनीय था। इन सब बातों का जिन्हें १२, १४ वर्ष का बालक भी जान सकता है इतना विस्तार करना और शास्त्र तथा पौराणादि के वाक्यों को उद्धृत कर उनका भाषा में सारांश भी नहीं जानना यही टीका की परिपाटी निकाली गई है। इन्हीं महाशय को हम नहीं कहते। प्रायः सभी लोग संस्कृत का पाण्डित्य दिखलाने को आर्ष ग्रंथों के वाक्य तो उल्लेखित कर देते हैं परन्तु पाठक को उसका सारांश भी नहीं बताते मानो यह राजा भोजादि का समय हो जब कि सर्वसाधारण कुछ न कुछ संस्कृतज्ञ ही पाये जाते थे।

टीकाकार ने स्वरचित कविताएँ भी कहीं कहीं समावेशित की हैं; स्थान २ में अनेक भाव भी दरसाया है; जहां तहां अलङ्कार भी दिखलाया है और ऐसे स्थानों में उन अलङ्कारों का लक्षणादि भी लिखा है। ये बातें उत्तम हैं। कठिन बातों को स्पष्ट करना ही टीका का मुख्य अभिप्राय होना चाहिये। टीका बहुत सरल और सर्वबोधगम है। इस टीका को लोग पसन्द भी करते हैं। यदि संस्कृत प्रमाणों का कुछ आशय भी लिख दिया गया होता एवम् अनावश्यक बातें घटा दी गई होतीं तो यह टीका और भी उपयोगी हो जाती।

सञ्जीवनी टीका—पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत यह टीका प्रथम बार श्री वेंकटेश्वर यन्त्रालय से स० १९४८ (१८९१ ई०) में प्रकाशित हुई थी और १९१३ ई० तक इस की बारह आवृत्तियाँ हो गईं।

इस में मंगलाचरण के अनन्तर कई एक स्फुट बातें लिख कर गोस्वामी जी का पदबद्ध जीवन चरित्र दिया गया है। फिर रामायणमाहात्म्य, तब तिलक सहित रामायण, लवकुशकाण्ड, आरती, भजन, रामचन्द्र के चतुर्दश वर्ष बनवास का तिथिपत्र और रामायण कोष है। पदबद्ध जीवनचरित्र निश्चय रींवाधिप श्रीमन्महाराज रघुराजसिंह देवजू कृत 'भक्तमाला राम रसिकावली' से अविकल उद्धृत किया गया है। पण्डितजी महाराज को कहीं पर यह टिप्पणी कर देनी चाहिये थी। ऐसा नहीं करना बहुत अनुचित और महा दोष है।

यह तिलक कैसा है एवम् इस में कौन २ विषय समावेशित हुए हैं यह बात हम स्वयम् टीकाकार के ही शब्दों में पाठकों को सुना देते हैं। "इस रामायण के तिलक में वेदशास्त्र का जहां जो आशय आया है वह सप्रमाण संस्कृत वाक्य लिख कर लिखा है और प्रत्येक चौपाई का तिलक उस के नीचे ही लिखा है....प्रत्येक चौपाई का अक्षरार्थ और जहाँ भावार्थ की आवश्यकता देखी है वहाँ भावार्थ भी लिख दिया है....जितने राजों के नाम वा चरित्रों के संकेत रामायण में आये हैं उन के इतिहास इस ग्रन्थ में वर्णन किये हैं और सम्पूर्ण क्षेपक कथा जो कि वाल्मीकीय आदि रामायणों में विद्यमान है, इस में जहां उचित जाना है वहां मिश्रित की है।" यह प्रथमावृत्ति की भूमिका में लिखा है। दूसरी आवृत्ति में आपने रावणवाणासुरसम्वाद, रामकलेवा, महासंकल्प, वशिष्ठजी का तेरह राजों का इतिहास कहना, जानकी जी का महावीरजी से पश्चात्ताप, रावण की सभा में विचार, धूम्राक्षादि का मरण, मेघनाद की शक्ति और सुलोचना

मिलने की कथा तथा लवकुशकाण्ड, माहात्य की टीका, कोष, रामशलाका प्रश्न, संसारवृत्त, महावीर की समंत्र मूर्ति मिला कर 'इस की शोभा दुगुनी बढ़ा दी है'। पंडितजी ने लिखा है कि 'इस रामायण के पाठक महाशयों ने हमारे पास बहुत से प्रशंसापत्र भेजे हैं।' पांचवीं आवृत्ति में 'दो चार कथा वाल्मीकीय से निकाल कर मिला दी है।" एवम् छठीं में 'कंक राज का भरत-शत्रुघ्न को घर ले जाने और खरमुख केतु का उन के हाथ से बध कराने की कथा अधिक है।'

पाठकवृन्द समझ गये होंगे कि पंडित जी का क्षेपक पर कितना अनुराग है। ग्रंथ में क्षेपक भरने से आप की तृप्ति ही नहीं होती। जब नई आवृत्ति हुई कि आप ने दस पांच क्षेपक की कथाएँ पदबद्ध कर के गोसाईं जी की ललित रचना में घुसेड़कर पाटम्बर पर मूंज की बखिया सी चला दी और अपने जानते 'उस की दुगनी शोभा बढ़ा दी।' पंडित जी चाहे जैसा समझें; उन के घर चाहे प्रशंसापत्रों की ढेरी लग गई हो; क्षेपकानुरागी चाहे उन से जितना प्रसन्न रहते हों एवम् प्रकाशक की कोष वृद्धि करते हों, परन्तु क्षेपकों की ऐसी भरमार से कालान्तर में मूल ग्रंथ की क्या दुर्गति होगी? वह मनोहर कुसुमित तथा महामधुर सरसफल से पूरित सुन्दर सोहावन ग्रन्थवृत्त क्षेपकों की अतिविस्तृत बँवर लताओं से आच्छादित होते २ क्या एक दिन अपना सहजसौंदर्य्य खो न बैठेगा? क्या हमारे अँगरेजी पढ़े पाठकों को यह बात रुचिकर होगी कि शेक्सपियर तथा अन्यान्य कवियों की रचनाओं में जहाँ कहीं ऐतिहासिक वा धार्मिक कथा का सांकेतिक निदर्शन हुआ है वहां पर या अन्यान्य स्थानों ही में, कोई टिप्पणीकार (note writer) उसका पदबद्ध सविस्तर वर्णन कर के उसे मूलग्रन्थ में समावेशित कर दे? परन्तु क्षेपकानुरागियों को इस से क्या? चाहे मूल ग्रन्थ का सौंदर्य्य विनष्ट हो, चाहे कुछ हो परन्तु गँवारों में क्षेपकपूर्ण रामायण का प्रचार कर अपना कार्य्यसाधन करने में त्रुटि नहीं होनी चाहिये। हम भी निर्भीकभाव से कह सकते हैं कि बुद्धिमान पाठक, सच्चे रामायणानुरागी लोग क्षेपक पर इस प्रकार का अनुराग कदापि नहीं रखते।

पंडित जी जैसे कवितादि को जहाँ तहाँ फुटनोट में देते गये हैं यदि वे क्षेपकों को भी कोई अन्य स्थान प्रदान करते तो उन का काम भी होता और 'मानस' की शोभा भी नहीं बिगड़ती।

क्षेपक की बात दूर रखने पर तिलक निस्सन्देह बहुत सुन्दर, सरल, सुगम और उपयोगी हुआ है। रामायण के नये पुराने सब पाठकों को सचमुच उपकार पहुंचा सकता है। इसी से प्रामाणिक तथा प्रतिष्ठित टीकाओं में इस की गणना होती है।

सब प्रकार के मनुष्यों के लिये सुलभ बनाने के अभिप्राय से आप ने अपनी टीका को छोटे ढांचे में गुटका के आकार में भी प्रकाशित कराया है उस में गोसाईं जी का जीवन चरित्र रामायण माहत्म्यादि दिया गया है।

"मानव भाव प्रकाश" —सिक्ख सम्प्रदाय के एक मुख्यधर्म्मस्थान श्रीअमृतसर गुरु दरबार के प्रबन्धकर्त्ता महंथ भाई ज्ञानी सन्त सिंह [1] जी ने इस टीका की रचना की है।

---

१. इनका संक्षिप्त जीवनवृत्तान्त भी उसी टीका में दिया हुआ है।

चैत्र शुक्ल नौमी सम्बत १८७५ (१८१८ ई०) में इस का लिखना आरम्भ हुआ था। समाप्त होने पर श्री पंडित रघुनाथदास जी के द्वारा मानस के परम प्रेमी साधुसेवी श्रीमहाराजा उदित-नारायण सिंहजूदेव की सेवा में काशी भेजी गयी थी। वहां चारमास पर्य्यन्त राजसभा में इस का पाठ हुआ और सबों ने इस तिलक की बड़ी प्रशंसा की।

यह टीका उत्तम है। आवश्यकता से अधिक इस में कहीं कुछ नहीं लिखा गया है। कहीं २ चार २ छः २ पदों का अर्थ एक दो पंक्तियों में लिखा है और कहीं २ एक ही दोहा वा चौपाई के भावार्थ इत्यादि से पृष्ठ का पृष्ठ भूषित है। अर्थ सहज और सुन्दर है। भावों की विलक्षणता पाठक को मनोमुग्ध कर देती है। इस विषय में इन से टक्कर लगाने वाला कदाचित् कोई विरला ही टीकाकार दृष्टिगोचर होगा। जहां तहां गुरु ग्रन्थ साहब और शास्त्रपुराणादि के वाक्य भी अर्थ सहित उल्लेखित होते गये हैं। टीकाकार कहीं २ पाठान्तर भी दिखलाते गये हैं और यथा-वश्यक शंका समाधान भी करते गये हैं। आपने भानुप्रताप की कथा को क्षेपक माना है। टीका में पंजाबी भाषा की पूरी झलक दिखलाई देती है। इस में बाबू राम दीन सिंह जी तथा बाबू महादेव प्रसाद जी की टिप्पणियाँ भी यथोचित स्थानों में समावेशित हुई हैं। टिप्पणियों में 'मानस प्रचारिका' तथा मुं० रोशनलाल की टीकाओं से बहुत सी बातें ली गई हैं।

एक पंजाबदेशीय का, जिस देश में आज भी हिन्दी भाषा का इतना प्रचार नहीं है, उस समय जब कि उस प्रान्त में सर्वदा लड़ाई भिड़ाई की घटनाएँ देखी जाती थीं और जब आज के समान रामायण की टीकाएं और संस्करणों की भरमार भी न थी जिस से उन्हें किसी प्रकार की सहायता की सम्भावना होती, ऐसा सुन्दर सर्वबोधगम और साथ ही साथ गूढ़ाशयों से सम्पन्न तिलक बनाना उन की विद्वत्ता तथा योग्यता का पूरा परिचय देता है।

बाबू रामदीन सिंह ने श्री १०८ बाबा सुमेर सिंह साहब शाहबज़ादे महन्थ श्री हरिमन्दिर पटना की सहायता से इस की एक प्रति हिन्दी में तैयार करा कर एवम् १८६८ ई० में निज यंत्रालय में मुद्रित कर लोगों को इस के हस्तगत होने का सुअवसर दिया है। इस टीका के सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध ग्वाल कवि ने यह कविता की है :—

"श्री तुलसी जन कीन्ह रमायन हौं सुखदाइन जद्यपि ही का।
तद्यपि बाल औ बृद्ध जुआन के लायक हीं न दिखा इक टीका॥
हाँ मिसरी के कुजा सम ग्वाल सो संत सिंहै हैं कर्‍यो रस नीका।
भक्त विलासिनी प्रेम प्रकासिनी भासनी भाव विलासिनी टीका॥"

और पूर्वोक्त बाबा सुमेर सिंह जी ने कहा है :—

"मानस मंजु मरालन के हित मुक्त की खान प्रमान प्रभासिनी।
त्यों सुमेरेस सियावर के गुन ग्रन्थन की मनिमाल बिकासिनी॥
संतसिरोमनि संतमृगेस (सिंह) की टीका अनूप अज्ञान प्रनासिनी।
नीतिनिवासिनी प्रीतविलासीनी भक्तिहुलासिनी भावप्रकासिनी॥"

पियूषधारा की टीका आगरा निवासी श्री पं० रामेश्वरभट्ट कृत—यह टीका संवत् १९५६ में तैयार हुई और उसी साल बम्बई के 'निर्णयसागरयंत्रालय' में प्रकाशित हुई। इस टीका की रचना के सम्बन्ध में टीकाकार ने लिखा है:—

"रामचरित्र महात्म यह, सादर सन्तन लेहु।
तुलसीदास प्रसन्न ह्वै, मो पर करहु सनेहु॥
गुणमंडित गोकुलपुरा, अकबरनगर मझार।
पंडित बालमुकुन्द वर, तहं द्विज कुल अवतार॥
तिन के तनय विचारि मैं, रामेश्वर मतिमन्द।
रामकथा माहात्म्य यह, पूरन आनन्दकन्द॥
सम्बत, ऋतु सर रस मही,[1] मास असाढ़हिं पाय।
सित सातैं पूरन कर्‌यौ, रामचरन चित लाय॥"

इस पुस्तक के आदि में भूमिका, गोसाईं जी की जीवनी, रामशलाकाप्रश्न, प्रभाती, सायंकाली, रामायण प्रशंसा की कविता, रामायण माहात्म्य और एक श्लोकी रामायण दे कर तब टीका प्रारम्भ की गई है। तदनन्तर लवकुशकांड, श्रीरामचन्द्र के बनवास का तिथिपत्र, वैराग्यसन्दीपिनी, हनुमान चालीसा, गूढ़ार्थ चिन्तामणि कोष दिये गये हैं। फिर ग्रंथ समाप्ति में टीकाकार ने आत्म परिचय दिया है। टीका सरल और सहज है। बातें व्यर्थ बढ़ाई नहीं गई हैं। मूल के शब्दार्थ या भावार्थ टीका के अतिरिक्त जो जो अन्य बातें दी गई हैं वे सब टिप्पणी द्वारा प्रदर्शित की गई हैं। यह अच्छा ढंग है। अन्य टीकाओं के सदृश संस्कृत ग्रन्थों के कोरे वाक्य ही यथावश्यक उद्धृत नहीं किये गये हैं वरन् कठिन वाक्यों का अर्थ भी साथ २ दे दिया गया है। टिप्पणी में ऐतिहासिक तथा पौराणिक कथाएं भी प्रसंगानुकूल वर्णन की गई हैं। जहां तहां अलंकार भी प्रदर्शित कर दिया गया है और कहीं २ शंका समाधान भी है। टीका लिखी भी अच्छी रीति से गई है और बहुत मनोहर ढंग से छपी भी है। जिस से देखने वालों को लेने और पढ़ने की इच्छा होती है।

टीका में क्षेपक और लवकुशकाण्ड भी रखे गये हैं। इस की समालोचना हम ने अन्यत्र की है। इस के विषय में पुनरुक्ति की कुछ आवश्यकता नहीं। यदि क्षेपक वाले पद भी टिप्पणी ही में या कहीं अन्यत्र रखे जाते तो अच्छी बात होती और यह टीका एक प्रकार से सर्वथा दोषरहित हो जाती।

१९१० ई० में इस की पांचवीं आवृत्ति हुई है।

---

१. सम्बत् १९५६।

'मानसमयंक'—पं० शिवलाल पाठक [1] विरचित। यह भी 'रामचरित मानस' का एक प्रकार का छन्दबद्ध तिलक है। परन्तु उस का साङ्गोपाङ्ग तिलक नहीं है। उस के मुख्य २ पदों का कहीं भाव, कहीं सन्दर्भ, कहीं धुनि और कहीं अभिप्राय यथावश्यक कथन कर के भक्ति तत्व इस में प्रतिपादन किया गया है। जिन पदों का तिलक पं० किशोरीदत्तकृत 'मानस सुबोधिनी' श्री योगीन्द्रअल्पदत्त कृत 'मानसकल्लोलिनी' एवम् श्री रामप्रसादजी कृत 'मानसरसबिहारिणी' में लिखा गया है उन पर जान बूझ कर तिलक नहीं किया गया है।

इस 'मानस मयंक' के टीकाकार बाबू इन्द्रदेव नारायण जी लिखते हैं कि "मानस मयंक श्रीराम चरित्र मानस का सारतत्व प्रकाश है। इस की विमल चन्द्रिका में रामपंचाङ्ग यथार्थ दर्शित होता है। यह अखंड मयंक तत्त्वदर्शी को रामतत्त्व सुधापान कराय हृदय पुष्ट करता है।.......जैसे रामचरितमानस भक्तों का परम प्रिय है तैसे ही यह मयंक भक्तों को परम प्रिय है। इस मयंक की परम सांकेतिक सूत्रवत रचना है।"

यद्यपि 'रामचरित मानस' के गूढ़ तत्वों का यह एक प्रकार का तिलक है और उस के तत्वों के प्रकाश के हेतु इस की एक रचना हुई है तथापि सहज सरल सर्वप्रिय और सर्वहित कर 'रामचरितमानस' की अपेक्षा इस की रचना महाक्लिष्ट हुई है। तिलक और मूल से भी कठिन? इस का यथार्थ कारण और अभिप्राय मयंककार ही जानें। हां! मयंक के तिलककार का अनुमान है कि "इस महत्व का अधिकारी सब को न समझ कर के ऐसा कठिन किया कि ग्रन्थ हाथ में रहते भी अनधिकारी की बुद्धि शिला जल की नाईं भेद न करे।" हमारे सुयोग विज्ञ पाठक इस विचार से कैसा जगतोपकार विचारेंगे यह वेही लोग विचारें। मूल 'रामचरितमानस' के रचयिता को अधिकारी तथा अनधिकारी का विचार कदाचित् नहीं था, अतएव उन्हों ने अपनी पुस्तक को 'सरल लोकोपकारी' बनाया और उस के तत्व प्रकाशक तिलककार मयंक के रचयिता ने अपनी रचना को सरल तर बनाने के बदले अधिकारी अनधिकारी के विचार से तिलक रूपी ऐसा मयंक उदय किया कि उस की विमल चन्द्रिका के रहते साधारण अधिकारी भी 'रामचरित मानस' के तत्वों की सुन्दर ललित छवि अवलोकन से बंचित ही रहते यदि मयंक के तिलककार कृपापूर्वक उस की सरल वार्तिक टीका कर के जगत का यथार्थ उपकार नहीं करते।

यह 'मानस मयंक' १६०४ ई० में बाकीपुर खड्गविलास यन्त्रालय से सुन्दर पुष्ट अक्षरों में मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ है और निस्सन्देह आनन्ददायक तथा उपकारक ग्रंथ होने के कारण देखने योग्य है। वार्तिक तिलक की सहायता से एवम् किंचित बुद्धि को प्रचालित करने से अब इस के समझने में भी उतनी कठिनाई नहीं होगी।

अब 'मानस मयंक' की कुछ टीका का नमूना देखिये:—

"अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुख सोहाग तुम कहं दिन दूना।"

अर्थ—सात दिन में दो दिन नहीं, अर्थात् पांचही दिन सोहाग रहेगा।

"पूछेऊँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खांची। भरत भुआल होंहि यह सांची।।"

---

१. इन्होंने 'मानस अभिप्राय दीपक' और बाल्मीकीय रामायण पर 'भावप्रकाश' नामक संस्कृत भाष्य भी लिखा है।

अर्थ—(भू) पृथ्वी में, (आल) रहने का स्थान बनावेंगे। तात्पर्य यह कि पृथ्वी को खोद कर और अपना स्थान बना कर तप करेंगे।

"का बापुरो पिनाक पुराना।"

अर्थ—कावा = ठग; पुरो = पुरा, पुराना अर्थात् पुराना ठग।

इस प्रकार के अर्थों को रामायणी संसार में लोग 'चमत्कार' अर्थ बताते हैं और इसके टीकाकार कहते हैं कि 'इस तत्व अर्थ को सत्संगी ही लखेंगे शठ तो अवश्य भ्रमकूप में गिरेंगे।' वाचक वृन्द स्वयम् विचार करेंगे कि ऐसी व्याख्या चमत्कार है वा भ्रमकार एवम् वे 'सत्संगी' कहलाना पसंद करेंगे वा 'शठ'।

'मानसमयंक' एक महत्वपूर्ण ग्रंथ समझा जाता है और रामायणी संसार में इस की बड़ी प्रतिष्ठा है।

एक लीथो प्रेस की छपी टीका—इस की भूमिका का कुछ अंश यहाँ पर उद्धृत कर दिया जाता है जिस से इसका वृत्तान्त पाठकों को ज्ञात हो जायगा। "इसे मुं० महम्मद हबीब खां प्रबन्धक मत बे खुर्शेद आलम शहर आगरे ने यहां के बड़े नामी लल्लू जी[1] लाल कवि ब्राह्मण गुजराती के भ्रातात्मज पं० मन्नू लाल जो भाषा में आज के समय अद्वितीय वा प्रसिद्ध थे वरन् बहुधा लोग उन्हें रामायण के पठन पाठन में शाक्षात तुलसी का अवतार कहते थे, उन के परम प्रिय शिष्य पं० लछमणप्रसाद भट्ट से द्रव्य व्यय कर आधीनीपूर्वक इस की एक २ चौपाई का अर्थ स्पष्ट खड़ी बोली में प्रेमसागर की सी वार्तिक में टीका कराई वरन् बहुत से विद्यमान कथकड़ों की भी इस में कई स्थानों में सहायता ली गई है और निज यन्त्रालय में पुस्तक के समान मूल्य मोटे अक्षरों में और टीका उसके नीचे रख बहुत सुन्दर अक्षरों में लिखवा कर स्वच्छ छपवाया"।[2] इस में स्थान स्थान में चित्र भी बनाया हुआ है। यह टीका संयुक्त प्रदेश के प्रवेशिका तथा मध्यम परीक्षा के विद्यार्थियों के उपकार और काम के लिये छपी थी। इस की टीका इस ढंग से लिखी गई है कि मूल को परित्याग कर यदि उसे पढ़ें तो प्रतीति होती है कि कोई गद्य की पुस्तक पढ़ रहे हैं। इस में मुद्रण का समय नहीं लिखा हुआ है।

हम ने केवल प्रकाशित टीकाओं की समालोचना की है। अप्रकाशित टीकाएं हमारे देखने में नहीं आई हैं। कदाचित हमारे अधिकांश पाठकों को भी उन्हें देखने का सुअवसर नहीं मिलेगा। वे सब जहां हैं यत्नपूर्वक बहुत अँधेरी कोठरियों में रखी गई हैं।

इस जीवनी के छपने के बाद जो कई एक अन्य टीकाएं प्रकाशित हुई हैं, यहाँ पर उन का संक्षिप्त विवरण उल्लेख कर दिया जाता है :—

रामचरितमानसः—टीकाकार पं० महावीर प्रसाद वैद्य,'वीर कवि' ज्ञानपुर बनारस स्टेट के रहने वाले हैं, टीका की भाषा बोलचाल की है और टीका साधारणतः अच्छी है टीकाकार ने

---

१. इनका वृत्तान्त 'हरिश्चन्द्र' में पाठ कीजिये।

२ यदि हम इसे सुधार कर उल्लेखित करते तो हमारे पाठकगण कैसे जानते कि एक समय कोई २ ऐसी हिन्दी भी लिखते थे।

छन्दोगत अलंकारों का भी उल्लेख कर दिया है। यही इस की विशेषता है और कुछ नहीं।

हां! टीकाकार ने यह दावा किया है कि 'इस टीका के लिखने में हम ने कवि के उद्देश्यानुसार ही अर्थ करने की चेष्टा की है।' यह कथन कहां तक ठीक हो सकता है उसे पाठक वृन्द स्वयं विचार करेंगे। हम तो यही कहेंगे कि कोई टीकाकार मूल लेखक के भावों तक पूर्णरूप से नहीं पहुंच सकता। इसी से कहा है कि 'तसनीफ रामो सन्निफ नीको कुनद ब्यां।" अर्थात् किसी रचना के रचयिता ही सुन्दर रीति से व्याख्या कर सकता है।

मानस-पियूष—प्रकाशक बाबू सम्मन लाल बी० ए०, एल० एल० बी०। यह बालकांड के १७ से २७ दोहे तक की टीका है। इस में भावार्थ शंकासमाधान टिप्पणी आदि देकर अर्थकी खूब ही पुष्टी की गई है। इसमें बहुत छानबीन की गई है। सम्भवतः आगे इसके और भी भाग प्रकाशित हों।

मानस-मंजूषा—(बालकांड, प्रथम भाग)—लेखक शोभाराम धेनुसेवक। इसमें आदि कांड की रचना की खूबियां दिखलाई गई हैं। कवि के गूढ़ भावों का रहस्योद्घाटन कवितागत रसों का विश्लेषण तथा उदाहरणों के साथ अलंकारों का वर्गीकरण करने में लेखक ने युक्ति और परिश्रम से काम लिया है। बहुत सी शंकाओं का समाधान भी किया है। बहुत सी व्यर्थ की शंकाएं हैं। जिन लोगों ने मानस शंकावली मानदर्पण आदि पुस्तकें देखी हैं उन के लिये इस में कुछ विशेष नवीनता नहीं है।

कविता की भाषा में अन्य भाषाओं के शब्द भी ढूंढ़ निकाले गये हैं। अरबी और फारसी के ही नहीं अंगरेजी के शब्द भी दिखलाये गये हैं। यथा 'पतन्ति नो भवार्णवे' में नो No' और 'वर्षहिं जलद भूमि नियराए' में Near आए=निकट आकर। इन शब्दों के निकालने में टीकाकार को यह बात न सूझी कि गोसाईं जी के समय न भारत में अंगरेजों का ऐसा भरमार ही था और न इस देश में अंगरेजी का ऐसा प्रचार। तब सर्वसाधारण के मुख में और सन्त कवियों की रचनाओं में उस भाषा के शब्द कैसे और कहां से आकर घुसते।

तुलसी-सूक्ति-सुधाकर-भाष्य—लेखक तथा प्रकाशक पं० बाबू राम शुक्ल। इसमें आपने—

> "सब कर मत खग नायक एहा।
> करिय राम-पद-पंकज नेहा॥"

का १६,७५,१४६ अर्थ किया है। उसमें विस्तार से सूचित ५२५ और संक्षेप से १६,७४,६२१ हैं। पंडितजी का परिश्रम सराहनीय हो सकता है। पर इस अर्थ विस्तार की उपयोगिता में सन्देह ही नहीं है वरन् यह सर्वथा व्यर्थ कहा जायेगा। इस के सीधा सादा अर्थ में ही चौपाई का गौरव है।

रामायण भाष्य—बछरावां जिला राय बरैली (अवध) के पं० राघवेन्द्र दत्त शुक्ल इस के लेखक हैं। किष्किन्धा कांड पर यह टीका लिखी गई है। भाषा सरल और विचार युक्ति-युक्त तथा उपादेय है। पृष्ठ संख्या ६६ है। इसी कांड की बांकीपुर के खड्ग विलास प्रेस द्वारा प्रकाशित टीका २६६ पृष्ठों की हैं।

बालकांड का नया जन्म—लेखक बाबू श्याम लाल। आपने क्षेपकरहित कांड प्रकाशित करने का श्रम किया है। यह तो अच्छी बात है। परंतु आप ने लिखा है कि प्रचलित क्षेपकों के सिवाय बहुत सा ऐसा विषय है जो गोसाईं जी का लिखा माना तो जाता है पर असल में है नहीं। रामायण के ललित और सुहावने अंश बाबूसाहब की राय में तुलसीदास कृत नहीं हैं। क्षेपकों के साफ करने के उमंग में युक्ति-उक्ति की खुर्पी-कुदाली आप ने मूल और शाखाओं पर चलाई है। वाटिका प्रसंग तथा कई एक अंश खोद कर फेंक दिये गये हैं।

आप के पूर्व प्रागुक्त मुं० सुखदेव लाल जी ने भी अपने संस्करण में आठ २ चौपाइयां रख कर बहुत सी काट छांट कर दी है। किन्तु उन्हें भी फुलवारी के प्रकरण पर कलम-कुल्हार चलाने का साहस नहीं हुआ है। प्रत्युत उनके विचारानुसार सर्व प्रथम वही अंश लिखा था। और उस कथन के समर्थन में उन्होंने भी दलीलें प्रस्तुत की हैं। युक्ति बल से आम को इमली और इमली को आम मनुष्य को पशु सिद्ध किया जा सकता है। तो क्या सचमुच यही यथार्थ समझा जायगा। हम क्षेपक विहीन रामायण अवश्य चाहते हैं पर ललितांश शून्य नहीं चाहते। इस बात में बहुत-से लोग हमारे साथ सहमत हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की दृष्टि में भी यह प्रामाणिक नहीं है।

रामायण तथा अन्यान्य रचनाओं की टीका तिलक के सिवाय आजकल गोसाईंजी के महत्व-प्रदर्शन में सब पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः लेख निकला करते हैं। कोई आप की सुन्दर सूक्तियां पाठकों के लिये प्रस्तुत करता है तो कोई मनोरञ्जक उपमाओं और रूपकों का गुलदस्त पेश करता हैं; कोई आप के सदुपदेशों को सुनाता है और कोई आप की रचनाओं के पात्र द्वारा प्रदत्त सद् शिक्षाओं की बातें करता है। एवम् कोई आप के समाजनीति आदि के सिद्धान्तों की आलोचना-प्रत्यालोचना कर आनन्द अनुभव करता है। और भी विविध दृष्टिकोण से लोग इसे देखते हैं। यह गोस्वामीजी और उन के ग्रंथों को समालोचना की दृष्टि से देखनेवाले आज के सज्जनों तथा विद्वज्जनों का कार्य है। इन सब कथनों और विचारों से काव्य-कला-कौशल, जगहित साधन का अपूर्व यत्न और उस की परम सफलता पूर्ण रूपेण प्रतिपादित होती है।

षोडश परिच्छेद

कबित्त रामायण या कबितावली

इस ग्रंथ के उत्तर काण्ड में नीचे लिखी हुई एक कबिता है :—

"एक तो कराल कलिकाल सुलमूल तामें कोढ़ में की षाजु सी सनीचरी है मीन की। वेदधर्म दूर गये भूप चोर [1] भूप भए साधु सिद्ध मान जन बिय पाप पीन की॥ दूबरे को दूसरो न द्वार राम दयाधाम रावरोई गति बल बिभव-बिहीन की। लागैगी पै लाज वा विराजमान बिरदही महाराज आजु जो न देत दाद दीन की॥" (नं० १७१)

अर्थात् एक तो दुखदायक काल अपना प्रबल प्रभाव देखाही रहा है दूसरे मीनराशि के शनीचर होने से और भी उत्पात की वृद्धि हो रही है। इत्यादि।

महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी जी ने सूर्य्यसिद्धान्त के अनुसार गणना करके ग्रियर्सन साहब को बतलाया है कि गोस्वामी जी के समय दो बार मीन के शनीचर हुये थे। एक बार ५ सुदी चैत सं० १६४० (=१५८३ ई०) से ज्येष्ठ सं० १६४२ (=१५८५ ई०) तक और दूसरी बार २ सुदी चैत सं० १६६६ (=१६१२ ई०) से ज्येष्ठ सं० १६७१ (=१६१४ ई०) तक। संबत् सारिकगति में तीन बीसियां होती हैं अर्थात् ब्रह्मबीसी, बिष्णुबीसी तथा रुद्रबीसी। रुद्रबीसी सं १६५५ (=१५९८ ई०) में आरम्भ हुई और बनारस में मुसलमानों का अधिकतर उत्पात जहांगीर बादशाह के समय अर्थात् १६०५ ई० के कुछ काल पीछे आरम्भ हुआ। इस से लोगों का अनुमान है कि इस ग्रन्थ की रचना सं० १६६९–७१ (=१६१२–१६१४ ई०) के भीतर दूसरे बार मीन के शनीचर होने के समय हुई।

पूर्वोक्त कविता एवम् अन्य कविताएं जो इस प्रकार के उत्पातों के वर्णन में हैं १६१२–१६१४ ई० के भीतर की बनी कही जा सकती हैं, परन्तु ऊपर के अनुमान के आधार पर समुच्चय ग्रंथ की रचना १६१२–१४ ई० के मध्य माननी निश्चय भूल होगी। इस ग्रंथ की सब कविताएं किसी विशेष समय में कदापि नही बनाई गई। मन में जब जैसा उमंग उठता गया

---

१. यदि शाहजहां बादशाह के कैद करने से 'भूपचोर' का लक्ष्य औरंगजेब पर है, जैसा कि 'काशी ना० प्र० सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है, तो इस कवित्त को अवश्य क्षेपक मानना पड़ेगा। परन्तु टीकाकारों ने 'भूप चोर' का कुछ अन्य अस्पष्ट अर्थ किया है। औरंगजेब गोसाईं जी से बहुत पीछे बादशाह हुये।

गोसाईं जी कविता करते गये और पीछे वे सब पुस्तकाकार में संग्रहीत हुईं चाहें उन्हें स्वयम् गोसाईं जी संग्रह किये हों चाहे उन के किसी प्रेमी ने संग्रह किया हो।

इस ग्रन्थ के बालकाण्ड के कवित्त नं० २ तथा उत्तर काण्ड के कवित्त नं० १२७ में गोस्वामी जी का नाम नहीं है, वरन् 'भृंग' [1] का नाम है। कोई २ कहते हैं कि गोस्वामी जी के यही भृंग शिष्य ने इन के स्वर्गवास के अनन्तर इन की कविता संग्रह कर कवितावली, गीतावली दोहावली नाम रखा है और उसी से फिर पण्डित रामगुलाम जी तथा पं० शेषदत्तजी ने उलट पलट कर क्रम लगाया है।

गोस्वामीजी ने कोई ग्रन्थ प्रणयन के अभिप्राय से इन कवित्तों की रचना नहीं की। इस का एक प्रमाण यह भी है कि कई एक कविताएं संग्रह में जिन प्रकरणों में रखी गई हैं उन प्रकरणों से पूरा सम्बन्ध नहीं रखतीं; केवल सांकेतिक सम्बन्ध रखती हैं और बिना प्रकरणविरोध के वे दूसरे स्थानों में भी रखी जा सकती हैं। बहुत-सी ऐसी भी हैं जिन्हें हम केवल हनुमानजी की स्तुति मानें तो कोई क्षति नहीं हो सकती। इसी से संग्रहकर्त्ता ने जिन कवित्तों का किसी विशेष काण्ड से कुछ भी सम्बन्ध देखा है उन्हें काण्ड में समावेशित किया है और शेष कवित्तों को उत्तरकाण्ड में रख दिया है।

फिर जिन कविताओं में 'तुलसी' के स्थान पर रामबोला लिखा है वे तो अवश्य इन के तुलसीदास होने के पूर्व ही रची गयी होंगी, जिस से यह भी अनुमान किया जा सकता है कि ये विरक्त होने के पूर्व भी कविता किया करते थे।

और क्षेमकरी वाली कविता जब कि इन्हों ने मृत्यु के समय गंगातट पर एक चील्ह को देख कर बनाई थी जैसा कि बहुत से लोग मान रहे हैं [2] और वह कवित्त भी इस ग्रन्थ में रखा गया है तब यह कैसे हो सकता है कि समुच्चय कवितावली की रचना सं० १६६६—७१ के मध्य में हुई?

इस में बहुत सी कविताएं समस्यापूर्ति के ढङ्ग की हैं, यथा :—

"अवधेस के बालक चार सदा तुलसी मनमन्दिर में विहरैं।"

"होइ भले को भलोई भलाई।"

"गुमान गोविन्दहिं भावत नाहीं।"

"राजिव लोचन राम चलै तजि बाप को राज बटाउ की नाईं।"

फिर यदि गोसाईं जी पुस्तक बनाने के अभिप्राय से इन कवित्तों की रचना करते तो जिस अङ्गद और रावण के सम्बाद को इन्हों ने रामचरितमानस में ऐसा लम्बा चौड़ा तथा ललित बनाया है उसे क्या इस ग्रन्थ में ऐसा फीका कर देते कि लङ्काकाण्ड के ६ से १६ तक के

---

१. 'शिवसिंह सरोज' में भृंग को सं० १७०८ में लिख कर यही १२७वां कवित उनके नाम से दिया हुआ है। लेखक का उनके उस समय वर्तमान रहने से तात्पर्य है। यह भृङ्ग का जन्मसंबत् नहीं होगा।

२. इस विषय में इसी परिच्छेद में आगे भी लिखा गया है।

हमारी जानकारी है अभी तक किसी ने इसे नहीं माना है। गोसाईं जी ऐसी कविता इस अवसर में कभी नहीं कहेंगे।

बैजनाथ दास ने लिखा है कि गोसाईं जी ने हास्यरस में यह कविता की है। यह तो बेवक्त की शहनाई हुई। और यह हासप्रमोद किस के साथ है? रामचन्द्र के प्रति या विन्ध्यवासी मुनियों के प्रति? गोसाईंजी ऐसे बेजोड़ हंसी करनेवाले नहीं थे जिस में धर्मनाश की चमक दीख पड़े।

और यदि आप ने निषाद के मुंह से 'परसैं पगधूरि तरैं तरनी घरनी घर क्यों समुझाइ हौं जू' कहलवाया है, तो इसमें भी धर्म्म का लक्ष्य रखा है। निषाद किसी उपाय से रामचन्द्र का पदपंकज प्रच्छालन करना चाहता था और तरनी के तरुणी होने की सम्भावना से आनन्दित नहीं होता था बरन् उस से भयभीत तथा चित्तव्यथित ही हो रहा था।

आरण्यकाण्ड—इस में एक ही छन्द पञ्चवटी की कुटी से कुरङ्ग के पीछे जाने की है।

किष्किन्धाकाण्ड—इस में भी एक ही छन्द हनुमानजी के लङ्का की ओर कूंच करने का है।

सुन्दरकाण्ड—३२ छन्द। २५ वें तक में हनुमानजी का लङ्काप्रवेश, लंकादहन, तथा समुद्र में कूद कर लूम बुझाना है। २६–२७ जानकी जी से विदा होना, २८–३१ समुद्र इस पार लौट आना एवम् सब बानरों के संग मिलजुल कर वहां से चलना और ३२ वें में रामचन्द्रादि का तीन दिन उपवास करते हुये सागरतट पर पहुंचना, वहां विभीषण का मिलना तथा लंकेश बनाया जाना।

लंकादहन का वर्णन बहुत सुन्दर हुआ है। लंका-निवासियों का चीज-वस्तु घरों से निकालने के लिये इधर-उधर दौड़ना, पानी के लिये चिल्लाना, घरों में खड़बड़ाहट, अग्निज्वाला की चटचटाहट, पुरजनों की घबड़ाहट इन विषयों का ऐसा विशद वर्णन हुआ है एवम् ऐसा सच्चा चित्र खींचा गया है कि पाठकों को यही प्रतीत होता है कि वे लोग सचमुच वहीं खड़े होकर इन घटनाओं को देख रहे हैं और इन बातों को सुन रहे हैं।

देखिये! लंका में आग लगी है। कैसी घबड़ाहट, कैसी व्यग्रता, कैसी निराशा पुरवासियों के मुखाकृति, कार्य्य तथा बातों से प्रकट हो रही है।

"जहां तहां बुबुकि बिलोकि बुबुकारी देत, जरत निकेत धाओ धाओ लागी आगि रे। कहां तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी, ढोटा, छोटे छोहरा अभागे भोंड़े भागि रे॥ हाथी छोरो, घोरा छोरो महिप वृपभ छोरो, छेरी छोरो सोवे सो जगावो, जागि जागि रे। तुलसी बिलोकि अकुलानि जातु धानि कहैं बार बार कह्यौं पिय कपि सों न लागि रे।

पानी पानी, सबरानी अकुलानी कहौं, जाति हैं परानी गत जानी गज चालि है। बसन बिसारे मनि भूषन संभारत न, आनन सुपाने, कहैं क्योंहू कोऊ पालि है॥

। तुलसी मंदोवे मींज हाथ धुनि माथ कहै कहू कान कियो न मैं कह्यो केतौ कालिहै।
बापुरो बिभीपन पुकार बार बार कह्यो बानर बड़ी बलाइ घनेघर घालि है ॥

लागि लागि आग भागि भागि चले जहां तहां धीय को न माय बाप पूत न संभारहीं। छूटे बार बसन उघारे धूम धूद अंध कहैं बारे बूढ़े बारि बार बारि बारहीं ॥
हय हिहिनात भागे जात घहरात गज भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि पौंदि डारहीं।
नाम लै चिलात बिललात अकुलात अति तात तात तोसियत झौंसियत झारहीं ॥"

बस नमूने के लिये इतना बहुत है । यदि अधिक पढ़ने की इच्छा हो तो पुस्तक पाठकर आनन्द उठाइये ।

लंकाकाण्ड—इस में ५८ छंद है । १ सचिव सब आगामी दशा सोच कर कहते हैं कि अब प्राणरक्षा की आशा नहीं, २-३ त्रिजटा और सीता सम्बाद ४-५, पुरजनों की परस्पर बातचीत, ६-७ सेतु-बन्धन, ८ सुकसारन का रावण से रामसेना का हाल कहना, ६—१६ अङ्गद का रावण की सभा में श्रीरामयश वर्णन करना और पांव रोपना, १७—२६ मन्दोदरी का रावण को समझाना, ३०—५० युद्ध वर्णन जिस में ३६ से ४७ कवित्त तक हनुमानजी का युद्ध-कौशल्य विशदरूप से वर्णन किया गया है, ५१ रामरावण युद्ध, ५२—६६ लक्ष्मणजी को शक्ति लगना, सजीवनमूरि का आना और उन का फिर चैतन्य होना, ५७ रावण और कुम्भकरण वध, ५८ देवताओं का फूल बरसाना ।

उत्तरकाण्ड—इस में १७७ छंद हैं । यह काण्ड ग्रंथ के अर्द्धांश से भी अधिक है । इस में बहुत से ऐसे कवित्त हैं जिन से काशी में कराल कलिकाल जनित उत्पात महामारी प्रकोप, दुर्भिक्षादि देश दशा तथा कवि की निज जीवन दशा की बहुत कुछ बातें ज्ञात होती हैं। महामारी आदि का वर्णन बहुत सुन्दर हुआ है । श्री रामचन्द्र की महिमा, भक्ति तथा कृपा का इस में अधिक वर्णन है ।

५१—५३ में यही वर्णन है कि यमयातना से छोड़ानेवाले केवल ईश्वर ही हैं, ८०, ८२—८५ और ८७ आदि अनेक कवित्तों में काशी में कलिकाल की करालता का वर्णन है, ६१ में देश दशा का अच्छा चित्र खींचा गया है १२२—१२४ में प्रह्लाद कथा वर्णन, १२५—१२६ में श्रीकृष्ण एवम् गोपी ऊद्धवसम्बाद है, १४३—६० शिवबन्दना, १४३—६२ तक शिवाशिव से काशी में कलिकाल की विकरालता रोकने की विनती, १६७--७० में काशी में महामारी होने का वर्णन एवम् श्री पार्वती तथा हनुमानजी से उस के निवारण की प्रार्थना है ।

१७१ मीन के शनीचर के विषय में है, १७२ में कहते हैं कि राम नाम ही मेरा सब कुछ है । १७३ में यह कहा गया है कि जो बटोही और ब्राह्मण को वध करके या अन्य अन्याय से लोगों को दुख देकर धन संग्रह करेगा वह भोलानाथ के कोप से शीघ्र ही नाश होगा। कदाचित काशी में उस समय राजउपद्रव होने से यह कविता की गई थी ।

१७४ में एक क्षेमकरी को देखकर इन्हों ने कहा है "पेषु सप्रेम पयान समय सब सोच विमोचन क्षेमकरी है" । बस इसी 'पयान समय' के लिखने से लोग इसे इन की अन्त समय की कविता बताते हैं ।

१७५--७६ में काशी में कलिकालजनित उत्पात के निवारण के लिये हनुमानजी से प्रार्थना की गई है और १७७ में कहते हैं कि रामचन्द्र ने समय देखकर दुःख दूर कर दिया।

इन सब बातों के अतिरिक्त श्री काशी, अन्यपूर्णादि, चित्रकूट, प्रयागराज श्रीगङ्गा इत्यादि की भी वन्दना है।

'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में कवितावली की समालोचना १७४वें कवित्त पर समाप्त हुई है क्योंकि महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदीजी ने इसे गोसाईं जी की अन्त समय की कविता मानी है। वैद्यनाथ दास के अनुसार गोसाईंजी ने कभी यात्रा के समय क्षेमकरी (चील्ह) को देख कर उस की प्रशंसा की है। निखिलशास्त्रनिष्णातस्वामी बालरामजी तथा भक्तभूषण बाबा टीकम दास जी ने इस कविता का रामचन्द्र के व्याह से सम्बन्ध मिलाया है जैसा कि म० कु० रामदीन सिंह ने लिखा है। इन बातों से तो इस ग्रन्थ के किसी विशेष समय में रचे जाने में और भी सन्देह होता है।

महात्मा हरिहरप्रसाद जी ने अपनी टीका में १७५–७७ कवित्तों को भी इसी ग्रन्थ में दिया है। इन में से दो अन्त की कवित्तों को 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने अपनी समालोचना में बाहुक में रखा है और पं० रामगुलाम द्विवेदी जी ने भी १७५–१७७ नम्बर की कबित्तों को बाहुक ही में दिया है। हमारी समझ में इन तीनों कवित्तों को प्रसङ्गानुसार कवित्त रामायण ही में रखना चाहिये। न उस ग्रन्थ के अन्त में रखना चाहिये और न बाहुक में।

इस ग्रन्थ की टीका महात्मा हरिहरप्रसाद जी ने की है जो बांकीपुर के खड्गविलासप्रेस में १८६७ ई० में छपी है उसी को देख कर हम ने ऊपर की समालोचना लिखी है।

बैजनाथ दास ने भी इस की अच्छी टीका बनाई है।

हनुमान बाहुक

कहते हैं कि बांह में पीड़ा होने से गोसाईंजी ने उस की निवृत्ति के लिये हनुमानजी से प्रार्थना की थी और पीड़ा छूट गई। इसी से इस पुस्तक का नाम बाहुक रखा गया।[1]

इस का सब अंश नहीं किन्तु वह अंश जिस में बांह की पीड़ा का वर्णन है निस्सन्देह किसी विशेष समय में लिखा गया है। और यदि उसी बांह-पीड़ा से इन्हों ने शरीर त्याग किया, चाहे वह ग्रियर्सन साहब के लेखानुसार प्लेगजनित हो चाहे पिरकी के कारण हो, तो उस अंश की रचना सं० १६८० में हुई। परन्तु इस बार की पीड़ा से उन के स्वर्गपयान का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं मिलता।

यदि सब अंश एक ही समय रचा गया तो यह निश्चय है कि इस की रचना बांह में पीड़ा आरम्भ होने के पूर्व ही आरम्भ हुई थी, क्योंकि १६वां कवित्त पर्यन्त पीड़ा की कुछ बात नहीं है। इस से इस का सर्वांश एक समय रचे जाने में सन्देह है—चाहे

---

१. पं० ज्वाला प्रसादजी ने लिखा है कि हनुमानमन्दिर में इसका ४० दिन पाठ करने से शरीर की पीड़ा तथा प्रेतबाधा छूट जाती है।

पं० सुधाकर जी से उनके पूज्यपाद पिता जी कहे हों कि इस की सर्वांश रचना चार दिन में हुई, चाहे सुप्रसिद्ध रामायणी पं० रामगुलाम द्विवेदी कहे हों।

वस्तुतः जो हो, इस 'बाहुक' में छप्पै, झूलना, घनाक्षरी और सवैया छंद हैं। इस की भाषा कवित्त रामायण के सदृश है और इसके छन्द उस के छन्दों से बढ़े चढ़े हैं। इस में गोस्वामी जी ने अपनी ही बातें लिखी हैं तथा स्तुति प्रार्थना की है। यह एक उत्कृष्ट तथा सराहनीय पुस्तक है।

१५वें कवित्त तक हनुमान जी की सुन्दर बन्दना है, १६वें में कवि कहते हैं कि 'हम तो तुम्हारे हैं, किसी का बिगाड़ते नहीं तब हम से लोग क्यों रुष्ट रहते हैं? बताइये तो आगे से सावधान हो जायं।' १७वें में कहते हैं कि 'आप ने इतने गरीबों को नेवाजा है क्या मेरे ही बार बूढ़े हो गये?' १८वें में दुखदायक खलों के दमन की प्रार्थना है, १९वें में कहते हैं कि 'पाप, ताप तथा साप तीनों से तुम मेरी रक्षा करने वाले हो।'

२०वें कवित्त से ४३वें तक बांह पीड़ा का वर्णन है एवम् उस के निवारणार्थ श्री हनुमान, भूतनाथ, रघुनाथ आदि से प्रार्थना की गई है। एक प्रकार से इस का सविस्तार वर्णन स्वर्गप्रयान के प्रकरण में हो चुका है। यहां पर पिष्टपेषण की आवश्यकता नहीं।

अन्त में यह कविता है :—

"कहौं हनुमान सों सुजान रामराय सों कृपानिधान संकर सों सावधान सुनियै। हरष विषाद राग रोष गुन दोष मई बिरची बिरंचि सब देषियत दुनियै॥ माया जीव काल के करम को सुभाय के करैया राम बेद कहैं सांची मन गुनियै। तुम ते कहा न होय हाहा सो बुझैये मोहि हौंहूं रहौं मौन ही बयो सो जानि लूनियै॥

अर्थात् तीनों देवताओं को सम्बोधन करके कहता हूँ कि "माया, जीव, काल, कम, सुभाव सब के करने वाले तो राम हैं, सो हे राम! तुम से क्या नहीं हो सकता सो बुझाय कर कहो कि हम भी चुप बैठ जायं।" और आप ईश्वर पर भरोसा कर चुप बैठ भी गये हैं।

प्रतीत होता है कि गोसाईं जी की बांह में प्रायः पीड़ा हो जाया करती थी। महात्मा हरिहर प्रसाद जी कृत बाहुक की टीका के अन्त में, जिसे बाबू रामदीन सिंह जी ने टिप्पणी सहित छापा है, लिखा है कि एक बार बांह में पीड़ा हुई तो कवित्तरामायण उत्तर-काण्ड के १५९, १६०, १६१ और १६२ चार कवित्त बनाये गये और पीड़ा छूट गई। परन्तु १५९वें और १६२ वें कवित्तों को पीड़ा से क्या सम्बन्ध है सो हम नहीं समझ सकते। और स्पष्ट बांह पीड़ा तो दो शेष कवित्तों में भी नहीं पायी जाती। यदि किसी को इन कवित्तों में बांहपीड़ा प्रलक्षित ही होती हो तो कौन जाने ये कविताएं भी बाहुक ही के हों और संग्रहकर्त्ता ने भूल से कवित्तरामायण में इन्हें समावेशित कर दिया हो। बाहुक को कवितावली का

अंश मानते हैं तो कवित्तों के उलट फेर हो जाने में क्या आश्चर्य है? इधर-उधर हो जाने की बात अन्य कवित्तों के सम्बन्ध में कही भी जाती है।

एक बार पीड़ा होने से कदाचित् इन्हों ने दोहावली के २२८— २२६ दोहों का 'बाहुकाष्टक' बनाया था। उन में २२८—२३३ तक श्री हनुमान जी की प्रशंसा है, पीड़ा की बात नहीं। शेष दोहों में अवश्य पीड़ा की बात है।

"तुलसी तनसर सुपजलज, भुजरुज गज वर जोर।
दलत दयानिधि देखिए, कपि केसरी किसोर॥२३४॥
भुज तरु कोटर रोग अहि, बरबर कियो प्रवेस।
विहंग राज वाहन तुरत, काढ़िए मिटै कलेस॥२३५॥
बाहु बिटप सुख विहंग थल, लगी कुपीर कुआगि।
राम कृपा जल सींचिए, वेगि दीन हित लागि॥२३६॥"

इन दोहों के विषय में कोई २ यह भी कहते हैं कि एक बार पीड़ा हुई तो २२८—२३४ की रचना हुई, दूसरी बार पीड़ा के कारण २३५वां दोहा बना और तीसरी बार पीड़ा के कारण २३६वाँ दोहा बना। न जाने बाहुक वाला पीड़ा सम्बन्धी प्रत्येक छन्द की रचना भी विशेष २ समय की क्यों नहीं कही जाती।

बाबू रामदीन सिंह जी लिखते हैं कि गोसाईं जी के ग्रन्थों के ज्ञाता बहुत से साधु ऐसा कहते हैं कि एक बार बांह में पीड़ा होने से गोसाईं जी दोहावली के १७, ३५—३८, ५१—५५, ८३-८४, ६६, ६७, १४६—१४८, १७५—१७८ इन २३ दोहों की रचना की थी। परन्तु पाठकवृन्द दोहावली पाठ कर स्वयम् देख सकते हैं कि यह कहाँ तक ठीक है।

बांह में पीड़ा होने पर बराबर श्रीरामचन्द्र, श्री विश्वनाथ तथा श्री हनुमान जी की प्रार्थना करने से विदित होता है कि गोस्वामी जी औषधि प्रयोग से देवस्तुति अधिकतर फलदायक मानते थे एवम् अपने सच्चे विश्वास का फल भी पाते थे।

कोई २ इसे एक स्वतंत्र पुस्तक मानते हैं और कोई इसे कवितावली का अंश बताते हैं। हमारी समझ में यह एक स्वतंत्र पुस्तक है। कवितावली से इसे कुछ सम्बन्ध नहीं। इसमें कवि ने केवल देवस्तुति तथा निज बांह-पीड़ा का वर्णन किया है। कवित्त रामायण में राम कथा है एवम् उस के संग अन्य विषय भी आ गये हैं। अतएव कवितावली का अंश मानने से तो उत्तम यह बात होगी कि उस ग्रन्थ में जो कविताएं बांहपीड़ा सम्बन्धी माने जाते हैं वे तथा पीड़ा सम्बन्धी दोहे भी उठाकर इसी बाहुक में समावेशित कर दिये जायं। दोनों ग्रन्थ साथ रहने के कारण हमने एक ही परिच्छेद में दोनों की समालोचना की है।

१८८३ ई० फरवरी में जो 'हनुमान बाहुक' मुं० नवलकिशोर के छापेखाने से प्रकाशित हुआ है उस में 'बाहुक' के आदि का यह छप्पै 'सिंधु तरन, सिय सोच हरन रविबालबरण तनु' नहीं देकर तीन दोहे तीन सवैये तथा एक झूलना छन्द दिये हुए हैं। 'शिव सिंह सरोज' में भी वह झूलना छंद कुछ अक्षर उलट फेर कर दिया हुआ है। लखनऊवाली

पुस्तक में ६ से लेकर २२ तक जो कविताएं छपी हुई हैं, उनमें क्रम से माथा, आँख, कान, दन्त सब की पीड़ा की बातें लिखी हुई हैं। तब यह 'बाहुक' क्यों? इस का नाम 'नख शिष पीड़ा' रखना चाहता था। पूर्वोक्त कविताएं भी सर्वथा गंदी हैं। यह क्षेपककारों तथा क्षेपक-प्रेमियों की कृपा है कि वह पुस्तक इस दुरवस्था को प्राप्त हुई है।

सप्तदश परिच्छेद

गीतावली

रामचरित मानस के समान इस ग्रन्थ का ग्रन्थ क्रम से बनना प्रतीत होता है। लीलाओं की लड़ी तथा विषयों का श्रृंखलाबद्ध क्रम मिलता है। कथा भाग तो रामायण ही सदृश है। परन्तु बाललीला, हिंडोला, होली आदि का वर्णन कृष्णलीला की छाया पर लिखी गई है। इस से अनुमान होता है कि व्रज में कृष्णलीला अवलोकन के अनन्तर एवम् रामायण के प्रणयन के पीछे इस की रचना हुई है। यह ग्रन्थ विनयपत्रिका से टक्कर लगाता है। इस में माधुर्य लीला का विशेष वर्णन होने से यह ग्रन्थ माधुर्य्य रस में पगा हुआ मोदक के समान मन को संतुष्ट करता है। इस की भाषा बड़ी ही ललित, सरल, सराहनीय, मधुर तथा मर्मबेधिनी है। यदि इस ग्रन्थ पर किसी रामप्रेमी धर्म्मिष्ठ हिन्दू का मन मोहित हुआ तो क्या? हिन्दीरसिक विदेशीय भी इस की रचना देख अत्यन्त आह्लादित हो जाते हैं। ग्रियर्सन साहब ने लिखा है कि 'गोसाईं' जी ने श्रीरामजी के बालपन के वर्णन में और बनयात्रा के समय दुःखजनक मार्ग चलने और सुपासित रहने के बखान में और ग्रामीण स्त्रियों के बोल चाल में जो अनेक भाव दिखलाया है उस से अधिक मनोहर और क्या वर्णन कोई कवि कर सकता है।"[१]

परन्तु दो चार स्थानों में ऐसा देखा जाता है कि एक पद में एक विषय का वर्णन हो जाने पर फिर भी आगे के पदों में वही घटना या उस घटना के पीछे की बातें वर्णन की गई हैं। जैसे मुनि के संग जाने के समय ५२वें पद के अन्त में कहा है :—

"एक तीर तकि हती ताड़का विद्या विप्र पढ़ाई। राख्यो यज्ञ जीत रजनीचर भइ जग विदित बड़ाई। चरन कमल रज परसि अहिल्या निज पति लोक पठाई। तुलसीदास प्रभु के बूझे मुनि सुरसरि कथा सुनाई॥"[२]

---

१. 'खड्गविलास यन्त्रालय' द्वारा प्रकाशित 'रामचरित मानस' में ग्रियर्सन साहब के लेख का पृ० ११ देखिये।

२. यह वर्णन रामायण के समान है परन्तु, जो विद्या मुनि ने पढ़ाई उस का नाम न रामायण में दिया हुआ है और न इस ग्रंथ में। बाल्मीकि तथा कालिदास ने उस का नाम बला अतिबला दिया है। उस के जानने से भूख प्यास का क्लेश नहीं होता। भट्टी में उसका नाम जया और विजया दिया हुआ है। रामचरित मानस, वाल्मीकीय रामायण तथा भट्टी के अनुसार यह विद्या केवल रामचन्द्र को सिखाई गई। रघुवंश से दोनों भाइयों का यह विद्या पाना ध्वनित होता है।

फिर ५३ और ५४ में मुनि के संग जाने की बात लिखकर ५५वें पद में लिखा है :—

"ख्यालहि दली ताड़िका देखि रिष देत असीस अघाई ।।
बूझत प्रभु सुरसहि प्रसंग कहि निज कुल [१] कथा सुनाई ।।"

और अहिल्यावृत्तान्त ५७, ५८ और ५९वें पदों में फिर वर्णन किया गया है ।

बोध होता है कि दो चार स्थानों में जो पद बेजोड़ पाये जाते हैं वे पीछे जोड़ दिये गये हैं । नहीं तो पूर्वापर का पूर्ण ध्यान रखने वाले गोसाइं जी केवल दो चार स्थानों में इस प्रकार बेजोड़ पदों को रख कर विषयक्रम को नहीं बिगाड़ते । या पीछे पुस्तक नक़ल करने वालों से लिखने में इधर उधर हो गये हैं ।

यह ग्रन्थ राग रागिनियों में रचा गया है और यह भी सात काण्डों में विभक्त है ।

बालकाण्ड—इसमें ११० पद हैं । जिस पुस्तक[२] को देख कर हम इस की समालोचना कर रहे हैं । उस में टीकाकार कृत एक श्लोक, एक सोरठा तथा एक दोहा के अनन्तर गोस्वामी जी कृत 'नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्' श्लोक है और तब गीतावली के पद हैं ।

चारों भाइयों का जन्मोत्सव, छठी, नामकरण (१–६ पद); राजा तथा रानियों का चारो शिशुओं का लाड़ प्यार; गोद में खेलाना; कब बड़े होंगे, कब चलने लगेंगे इत्यादि [३] बातों की अभिलाषा करना, उबटना, तेल लगाना, स्नान करना एवं शैशवावस्था का सौन्दर्य (७–११); रामचन्द्र का अनरस (अस्वस्थ) होना, माता का दूध न पीना, ऋषिराज वशिष्ठजी के मंत्र पढ़ कर रामचन्द्र के माथे पर हाथ फेरने से उन का स्वस्थ होना, सब लोगों का आनन्द मनाना एवम् ऋषि का प्रभुत्व वर्णन करना (१२–१६); फिर शंकर जी का आगमी बन कर राजा के अन्तःपुर में जाना एवम् चारो भाइयों को देख कर उन लोगों के सम्बन्ध में भविष्यत् वाणी कहाना (१७) ।

[यशोदा के घर शंकर आगमन की लीला रासधारी सब भी किया करते हैं ।]

कवि कहते हैं : "हौं जँभात अलसात तात तेरी बानि जानि मैं पाई । गाई गाइ हलराइ बोलिहौं सुप नीदरी सुहाई ।।"

इस में तथा रामचरित मानस में अहिल्या के पतिलोक जाने की बात है । वाल्मीकीय रामायण में गौतम जी अहिल्या के शापमोचन का सामचार सुनकर वहीं पहुँचे हैं ।

१. रामायण में विश्वामित्र ने इस ठिकाने निज कुल की कथा नहीं सुनाई है । वाल्मीकि जी सुनाना बताते हैं ।

२. श्री महात्मा हरिहर प्रसाद जी कृत टीका, 'खड्गविलास प्रेस' द्वारा प्रकाशित ।

३. श्री कृष्ण के सम्बन्ध में सूरदास जी ने भी इन सब बातों का वर्णन किया है ।

पुनः—"पालने रघुपतिहिं झुलावै। लैलै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावै ॥ केकिकंठ द्युति स्याम बरन वपु बाल विभूषण विरचि बनाए। अलकैं कुटिल ललित लटकन भ्रू नीलनलिन दोउ नहन सुहाए ॥ सिसु सुभाय सोहत जब कर गहि वदन निकट पद पल्लव ल्याए। मनहु सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि सों सचुपाए ॥"

सूरदासजी कहते हैं :—

"यशोदा हरि पालने झुलावै। हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोई कछु गावै ॥ मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आइ सुवावै। तू काहे न बेग सी आवै तो को कान्ह बुलावै ॥ कबहुं पलक हरि मूंद लेत हैं कबहुं अधर फरकावै। सोवत जानि मौन ह्वै ह्वै रहि कर करि सैन बतावै। इहि अन्तर अकुलाइ उठै हरि जसुमति मधुरै गावै। जौ सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नन्द भामिनि पावै ॥"

एक पलना पर जगे हुए शिशु की शोभा और उस के कार्य्य का चित्र दिखलाया गया है एवम् दूसरे पर निद्रावशीभूत शिशु की छवि तथा उस के सुलाने वाले का स्वाभाविक कार्य्य दिखलाया गया है। हम पाठकों को अनुमति देंगे कि वे इस ग्रन्थ के शिशु लीलावर्णन को सूरदासवर्णित श्री कृष्ण की शिशुलीलावर्णन के साथ मिलाकर पढ़ें और दोनों में तुलना करें। इस में उन्हें बहुत आनन्द मिलेगा।

पलना पर ठोक ठोक कर सुलाना तथा उस अवसर की शोभा का वर्णन (२४ पर्य्यन्त)।

बालविनोदशोभा के विषय में गोसाईं जी कहते हैं :—

"बाल विनोद मोद मंजुल मति किलकनि षानि पुलावौं। तेइ अनुराग ताग गुहिबे कहुं मतिमृगनयनि बुलावौं ॥ तुलसी भनित भली भामिनी उर सो पहिराइ फुलावौं। चारु चरित रघुवर तेरे तेहि मिली गाइ चरन चित लावौं ॥"

२२—४४ तक के पदों में शिशुलीला का सुन्दर स्वाभाविक चित्र खींचा गया है।

४५वें तथा ४६वें पदों में सब भाइयों के चौगान खेलने का वर्णन है अर्थात् उस प्रकार से गेंद खेलने का वर्णन है जैसे आज कल साहब लोग लम्बा २ डंटा हाथों में लेकर घोड़ों पर सवार हो मैदानों में खेला करते हैं और जो खेल पोलो के नाम से प्रसिद्ध है। उसका वर्णन सुनिये।

"राम लषन इक ओर भरत रिपुदमन लाल इक ओर भये। सरजू तीर सम-सुखद भूमि थल गनि २ गोइंआ बांट लाए ॥ कंदुक केलि कुसल हय चढ़ि २ मन कस कसि ठोकि २ षए। कर कमलनि विचित्र चौगाने षेलन लगे षेल रिझए ॥······ एक लै बढ़त एक फेरत सब प्रेमप्रमोद बिनोद भए। एक कहत भई हार राम जु की एक कहत भइया भरत जए ॥"

केशवदासजी ने 'रामचन्द्रिका' में चौगान का यों वर्णन किया है :—

"यहि बिधि गये राम चौगान। साबकास सब भूमि समान ॥
सोभत एक कोस परिमान। रचो रुचिर तापर चौगान ॥
एक कोद रघुनाथ उदार। भरत दूसरे कोद विचार ॥
सोहत हाथे लीन्हें छरी। कारी पारी राती हरी ॥
गोला जाय जहां जहँ जबै। होत वहीं तितही तित सबै ॥
गोला जाके आगे जाय। सोई ताहि चले अपनाय ॥
उत ते इत इत ते उत होइ। नेकहु ढील न पावै सोई ॥"

श्रीरामचन्द्र के समय इस रीति से गेंद खेलने का निश्चय प्रमाण नहीं पाया जाता। इस से इन कवियों के इन वर्णनों को लोग असामयिकवर्णन (anachronism) कह कर दूषणीय कहेंगे। परंतु ऐसा असामयिक वस्तुओं का वर्णन विदेशीय कवियों की रचनाओं में भी देखा जाता है। सुप्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर के नाटकों में भी उस समय कई एक वस्तुओं का वर्णन पाया जाता है जब कि उन सबों का व्यवहार युरुप देश में नहीं था।[1]

श्रीरामचन्द्र के समय चौगान का प्रचार हो या न हो परंतु गोसाईं जी के समय में भारतवर्ष में चौगान अवश्य खेला जाता था और भारतवर्ष ही से यह खेल योरुपदेश में गया। कर्नल मेलसन् कृत "अकबर" नामक पुस्तक में यह स्पष्ट लिखी हुई है।[2]

---

१. 'जुलियस सीज़र' नाटक में घर्म्म घड़ी; 'हेनरी छठवां' (Henry the Sixth) में—काग़ज़ बनने का कारखाना और छापाख़ाना; 'किंगलियर' के अंक १ दृश्य २ में—चश्मा का व्यवहार; 'किंगलियर' के समय जिन का वर्तमान होना इतिहासवेत्तागण ईस्वी शताब्दी के नौ सौ वर्ष पूर्व बताते हैं। 'वेथ्लिहम' स्पताल का वर्णन है जिसकी नींव १२४७ ई० तक भी नहीं पड़ी थी (दृश्य २)। इसी नाटक में 'फ्रांस' शब्द आया है जिस का प्रयोग ८वीं शताब्दी में आरम्भ हुआ। 'हैमलेट्' में—विटनबर्ग के विश्वविद्यालय में उस के संस्थापन के कई सौ वर्ष पूर्व ही वह भेजा गया है। 'किंग जान' के अङ्क २ दृश्य १ में तोप का वर्णन आया है।

२. The native historians record that in those times of peace his (Akbar's) great delight was to spend the evening in the game of *Chaugan*. *Chaugan* is the modern polo, which was carried to Europe from India. But Akbar, whilst playing it in the day time in the manner in which it is now played all over the world, devised a method of playing it in the dark nights which supervene so quickly on the day light in India.

श्रीविश्वामित्रागमन, उन का स्वागत, वशिष्ट जी के समझाने से राजा का रामलक्ष्मण को उन के साथ जाने देना, ताड़काबद्ध तथा यज्ञरक्षा (४७-५६)।

कवि ने दोनों भाइयों के राह चलते समय बालपने की चपलता तथा चकितचित्त पदार्थों के देखने का क्या सच्चा और मनोहर चित्र खींचा है !

"पैठत सरनि सिलन चढ़ि चितवत षग मृग वन रुचिराई।
सादर सभय सप्रेम पलकि मुनि पुनि पुनि लेत बोलाई॥"
पुनः—"षेलत चलत करत मग कौतुक बिलमत सरित सरोवर तीर।
तोरत लता, सुमन, सरसीरुह, पियत सुधा सम नीर॥
बैठत विमल सिलनि विटपनि तर पुनि पुनि वरनत छांह समीर।
देखत नटत केकि कल गावत मधुप मराल कोकिला कीर॥"

अहिल्या शाप मोचन; दोनों भाइयों को कौशिक के संग जाते देख मगवासियों का आनन्दित होना; जनकपुर पहुंचने पर जनकराज का कौशिक का दर्शन करना; श्रीराम और लखन का परिचय पाना, पुरवासियों का इन के रूप पर मोहित होना, उन की प्रशंसा करना, और कौशिक के निमित्त बाग में फूल बीनने के समय श्री राम और श्री जानकी जी का परस्पर दर्शन (५७—७१)।

गोसाईं जी ने गीतावली में श्री गिरजापूजन के समय गिरजा जी से स्पष्ट बरदान दिलवाया है।

'मूरति कृपाल मंजु माल दै बोलत भई, पूजो मन कामना भावतो बरु बरि कै।
राम काम तरु पाय बेलि ज्यों बोडी बनाइ मांग कोपि पोषि फैल फूलि फरि कै।
रहोगी कहोगी तब सांची कही अंबा सिय गहे पांय है उठाय माथे हाथ धरिकै॥"(७२)

जो लोग गिरिजामूर्त्ति की मुस्क्यानही पर नाना प्रकार का प्रश्न उठाते हैं, वे प्रतिमा की बातें करने पर क्यों नहीं उठाते ?

रंगभूमि में जाना, दोनों भाइयों के देखने के लिये वहाँ नर नारियों की भीड़ होनी, उन लोगों का परस्पर कथोपकथन, श्री जानकी जी का रङ्गभूमि में लाया जाना, बन्दी का श्री जनकराज का प्रण सुनाना, सकल राजाओं का धनुष तोड़ने श्रम का विफल होना, श्री राम का धनुषभङ्ग करना (७३—६२)।

जनकराज और पुरवासियों का आनन्द, क्रूर राजाओं का निरर्थक गाल बजाना, जानकी जी का रामचन्द्र को जयमाल देना और सबों का आनन्द मनाना (६३—६८)।

For this purpose, he had balls made a *palas* wood—a wood which if very light and which burns for a long time, and set them on fire. He had the credit of being the Keenest Chaugan player of his time. Clonel Malleson's Akbar, P. 102.

श्री रामलखन के घर नहीं रहने के कारण कौशिल्या तथा सुमित्रा का विलाप (१६६-२०२)।

"भूष पियास सीत स्रम सकुचनि क्यों कौसिकहिं कहिंगे ॥ को भोरहिं उबटि अन्हवै हैं काढ़ि कलेऊ दैहैं। को भूषन पहिराई निछावरि करि लोचन सुख लैहैं ॥[१]

इसी बिलाप के समय श्री भरत जी का सानुज आंगन में जाकर जनकपुर का समाचार सुनाना, सबों का आनन्द मनाना, जनकपुर बारात जाना, वहां विवाहोत्सव का परमानन्द और बरकन्या के अवध आने पर मातृगण तथा परिजनों को अकथनीय आनन्द प्राप्त होना (१०१—११०)।

गीतावली के १०६वें पद के इसी वाक्य में "दुसहरोष मूरति भृगुपति अतिनृपति निकर षयकारी। क्यों सौंप्यो सारंग हारि हिय करिहै बहुत मनुहारी ॥" परशुराम जी की कथा का आभासमात्र पाया जाता है और कहीं कुछ वर्णन नहीं आया है।

अयोध्याकाण्ड—इसमें ८६ पद हैं। मङ्गलाचरण में टीकाकार-कृत चार दोहे हैं।

पहिले पद में राजा का श्री रामचन्द्र को युबराज पद देने का विचार तथा कैकेयी जी के कारण श्री रामचन्द्र का बनवास, कौशल्या जी का रामचन्द्र के रहने के लिये बिनती करनी, और परस्पर समझाने बुझाने के अनन्तर श्रीराम, जानकी तथा लखन लाल का सब से बिदा होकर बनगमन।

श्री राम जानकी और लखन का बनपथ में चलना, उस का कष्ट, मगवासियों का इन लोगों की सुकुमारता, सुन्दरता, शोभा तथा अवस्था देख चकित होना, मोहित होना, नाना प्रकार का संकल्प विकल्प करना एवम् इन लोगों के बनगमन पर खेद प्रकाश करना, फिर इन लोगों का चित्रकूट में जाकर वहां कुटी बना कर रहना (२–४२)।

चित्रकूटनिवासिनी किरातिनियों का इन लोगों की अवस्था की समालोचना करनी, और कवि का चित्रकूट की शोभा तथा महिमा कथन (४३–५०)।

४७वें पद में गोसाईं जी ने फाग के रूपक में चित्रकूट के शोभाचित्रण में अच्छी चमत्कारी दिखलाई है—

"लषनलाल कहेउ रघुनन्दन देषिय बिपिन समाज। मानहुँ चयन मयनपुर आयउ प्रिय रितुराज ॥ चित्रकूट पणराउर जानि अधिक अनुराग। सखा सहित जनु रितुपति आयउ खेलन फाग ॥ झिल्ली झांझ झरना डफ पवन मृदंग निसान। भेरि उपंग भृङ्ग रव ताल कीर कल गान ॥ हंस कपोत कबूतर बोलत चक्क चकोर। गावत मनहुं नारि नर मुदित नगर चहुं ओर ॥ चित्र बिचित्र बिबिध मृग डोलत डोमर

१. ऊधव प्रति यशोदा के इन वाक्यों से तुलना कीजिये :—"प्रात समय उठि माखन रोटी को मांगे बिन दैहैं।" "अब यह सूर मोहि निसुवासर बड़ो रहत हिय सोचू। मेरे ललित लड़ैते लालन हैं करत सँकोचू ॥"

डांग। जनु पुरबीथिन्ह विहरत छैल संवार स्वांग ॥ नटहिं मोर पिक गावहिं सुस्वर राग बंधान। निलज तरुन तरुनि जनु षेलहि समय समान। भरि २ सूगड करनि सब जहं तहं डारहिं बारि। भरत परसपर पिचकनि मनहुं मुदित नर नारि ॥ पीठ चढ़ाइ सिसुन्ह कपि कूदत डारहिंडार। जनु मुंह लाइ गेरुमसि भये परनि अवसार ॥ लिए पराग सुमन रस डोलत मलय समीर। मनहुं अरगजा छिरकत भरत गुलाल अबीर ॥"

५०वें पद में चित्रकूट में वर्षा ऋतु की शोभा भी सुन्दर उपमाओं के साथ वर्णन की गई है।

कौशल्या का रामविरहजनित परिताप (५१–५५); सुमंत्र प्रत्यागमन, दशरथ का शोक तथा प्राणत्याग, (५६–५९); भरतजी का कैकेयी को धिक्कारना, कौशल्या का आश्वासन, भरतजी का राज्यदण्ड ग्रहण करना अस्वीकार कर चित्रकूट की ओर प्रस्थान (६०–६५); शुकसारिका सम्बाद (६६–६७); शृंगवेरपुर में निषाद से भेंट, चित्रकूट में रामचन्द्र जानकी जी तथा लक्ष्मण से भेंट और रामचन्द्र के बन से नहीं लौटने के कारण उन का चरणपादुका लेकर भरत जी का अवध आना और उसी को सिंहासनासीन कर स्वयम् मुनिव्रतधारी हो नन्दीग्राम में निवास करना (७३–७९); भरतजी की प्रशंसा (८०–८२), कौशल्या विलाप (८३–८७); ८८वें में रामचन्द्र के चित्रकूट से अनत जाने का समाचार तथा ८९वें में रेवा और विन्ध के मध्य में डेरा जमाने का हाल गुह के पत्र से ज्ञात होना। यह बात रामायण में नहीं है।

८६वें और ८७वें में कौशल्या रामचन्द्र के घोड़ों को देख विलाप करती हैं।

आरण्यकाण्ड—इस में १७ पद हैं। टीकाकार-कृत मङ्गलाचरण एक बरवा छन्द।

विपिन शोभा तथा राम आखेट (१–२); कपट कुरङ्ग बध और सीताहरण (३–६); सीता के खोजते समय जटायु से भेंट; सीता हरण समाचार पाना; जटायु का शरीरसंस्कार; शवरी भेंट (९–१७)।

किष्किन्धाकाण्ड—इस में केवल दो पदों में सुग्रीव का रामचन्द्र को सीता जी का बसन भूषन दिखाना एवम् वर्षा विगत होने पर सीता की खोज में चतुर्दिक् बानरों के पिठाने का हाल वर्णित हुआ है।

सुन्दरकाण्ड—इस में ५१ पद हैं। टीकाकार के मङ्गलाचरण का कोई छन्द नहीं है।

मुद्रिका पाकर जामवंत आदि के संग हनुमान का जाना; संपाती भेंट; सीता दर्शन; सीता का मुद्रिका से प्रश्न तथा उस का उत्तर देना (२–४); हनुमान सीतासम्बाद (५–११); रावण प्रति हनुमान वाक्य; सीता जी को सन्तोष देकर हनुमान का लंका से विदा होना (१२–१५)। इस में हनुमान जी के अशोक वाटिका में पहुंचने पर वहां रावण नहीं गया है।

१४वें पद के इस वाक्य में 'लंका दाह उर आनिबो सांच राम सेवक को कहिबो' लंकादहन का आभासमात्र है। कवि ने कवितावली में लंकादहन का अच्छा चित्र दिखलाया है।

श्री लक्ष्मण का रामचन्द्र को हनुमान के आगमन का समाचार जनाना; हनुमान जी का सीता की दशा वर्णन करना (१६–२०); रामचन्द्र का शोकातुर होना, लंकायात्रा, सेतु-बन्धनादि (२१–२२)।

अब श्रीरामचन्द्र ससैन लंका की ओर पयान करते हैं :—

जब रघुबीर पयानो कीन्हो।
छुभित सिंधु डगमगत महीधर सजि सारंग कर लीन्हो ॥
सुनि कठोर टङ्कार घोर अति चौंके बिधि त्रिपुरारी।
जटापटल से चली सुरसरि सकत न संभु संभारि ॥
भये बिकल दिगपाल सकल भय भरे भुवन दस चारि ॥
पर भर लंक-ससंक दसानन गर्भ स्रवहिं अरिनारि ॥
पवन पंगु पावक पतंग ससि दुरि गये थके बिमान ॥
गए पूरि सर धूरि भूरि भय अग थल जलधि समान ॥
चली चमू चहुं ओर सोर कछु बनै न बरनत भीर।
किलकिलात कसमसत कुलाहल होत नीर नीधितीर ॥" (२२)

श्रीरामसेना के आगमन का समाचार रावण को पाना, मन्दोदरी आदि का उसे समझाना तथा विभीषण का उस से लात खाकर श्रीरामचन्द्र की सेवा में आना (२३–४६)।

इस में विभीषण के रामचन्द्र के पास आने की कथा इस प्रकार से लिखी हुई है कि रावण के पदप्रहार के अनन्तर उन्हों ने अपनी माता के पास जाकर अपनी कथा सुनाई जिस पर उन की माता बोली 'कहा भयो तात लात मारे बड़ो भाई है', 'सहिब पितु समान जातुधान को तिलक ताके अपमान तेरी बड़ीये बड़ाई है।' और 'रोष किये दोष सहे समझे भलाई है' तथा 'इहां ते बिमुख भये राम की सरन गये भला' है तो सही परन्तु "नेकु लोक राषे निपट निकाई है।' तब माता को सीस नवा कर तथा उन से आशीर्वाद पाकर वे कुबेर से सम्मति लेने गये हैं और वहीं शिवजी ने उन्हें उपदेश दिया है कि राम की शरण में जाने में सुदिन ढूंढ़ने की आवश्यकता नहीं। तब 'संकर सिष आसिष पाइ कै' मन में अनेक लालसा करते हुये वे सचिव के सङ्ग रामजी की सेवा में पहुंचे हैं।

इस वर्णन से प्रतीत होता है कि विभीषण ने कुअवसर में अपने भाई ही को नहीं त्याग किया परन्तु अपनी माता की सम्मति का भी उल्लंघन किया। कदाचित् गोसाईं जी ने वही कलंक मिटाने के लिये शिवजी के उपदेश से इन का आना कहा है।

श्रीसीता जी का त्रिजटा से वार्तालाप इत्यादि (४७–५१)।

लंकाकाण्ड —इसमें २३ पद हैं। टीकाकार कृत मङ्गलाचरण का एक दोहा है।

मन्दोदरी की रावण के प्रति शिक्षा तथा प्रार्थना; अङ्गद रावण सम्बाद (१–४); लक्ष्मण जी का मेघनाद के शक्तिप्रहार से आहत हो भूशायी होना; हनुमानजी का सजीवन लाना; रास्ता में भरतजी से भेंट, वार्तालाप; लक्ष्मणजी का फिर चैतन्यता लाभ करना (५–१५)।

श्रीरामचन्द्र रिपु को जीतकर सानुज तथा ससैन्य रणक्षेत्र में शोभायमान हो रहे हैं। इस समय उन की मूर्ति का दर्शन कीजिये।

"राजत राम कामसत सुन्दर। रिपुरनजीत अनुज संग सोभित फेरत चाप बिसिष बनरुह कर॥ स्याम सरीर रुचिर स्रमसीकर सोनितकन बिच बीच मनोहर। जनु षद्योतनिकर हरि हित गन भ्राजत मरकत सैल सिषर पर॥ घायल बीर बिराजत चहुँदिस हरषित सकल रीछ अरु बनचर। कुसुमित किंसुक तरु समूह महँ तरुन तमाल बिसाल बिटप बर॥ राजिवनयन बिलोकि कृपा करि किये अभय मुनिनाग बिबुध बर। तुलसि दास यह रूप अनूपम हृदिसरोज बस दुसह बिपतिहर॥"

कौशल्या का रामचन्द्र का शुभागमन सोचना, काग तथा क्षेमकरी से शगुन पूछना, रामचन्द्र के निकटागमन का समाचार सुनने से नगर में सर्वत्र आनन्दकोलाहल, रामचन्द्र का आना, यथायोग्य सबों से मिलना एवम् तिलक पाकर सिंहासन पर विराजमान होना (१६–२३)।

इस ग्रन्थ में युद्ध वर्णन विशेष नहीं है। और जब द्रोण पर्वत लाते समय भरत जी के सींक बाण लगने से हनुमान जी भूतल में गिरे हैं तब सुमित्राजी ने लक्ष्मण जी के युद्धक्षेत्र में घायल हो अचेत पड़ने का समाचार सुन कर सहज भाव से आंखों में जल भर हनुमान से कहा है कि 'यद्यपि रामचन्द्र का दूसरा सहायक उन का धनुष है तथापि शोक इसी बात का है कि वे बड़े कुअवसर में बन्धुहीन हो गये' और यह कह कर उन्हों ने अपने दूसरे पुत्र रिपुसूदन को हनुमान जी के संग जाने की आज्ञा की है। वे सानन्द उठ खड़े हुए हैं। हनुमान जी तथा भरतादि को सुमित्रा जी और शत्रुघ्न का यह कार्य्य देख बहुत ग्लानि हुई है और भरत जी ने समझाबुझाकर सुमित्राजी का परितोष किया है तथा शत्रुहन जी भी घर रखे गये हैं।

अहा! सुमित्रा जी आप धन्य हैं! विमाता होकर रामचन्द्र के हितार्थ अपने एक पुत्र के युद्धयज्ञ में वलिप्रदान होने पर आप अपने दूसरे पुत्र को भी उसी यज्ञस्थल में सानन्द भेज रही हैं और धन्य २ शत्रुहन! जो सानन्द जाने को उद्यत हैं।

सूरदास जी के अनुसार इस अवसर में कौशल्या को दुःखित देख सुमित्रा ने उन्हें इस प्रकार समझाया है :—

"धन जननी जो सुभटहि जावै। भीर परै रिपु को दल दलि मलि कौतुक कर दिखरावै॥ कौसल्या सों कहत सुमित्रा जिनि स्वामिनि[१] दुख पावै। लक्ष्मन जनि हौं भई सपूती राम काज जो आवै॥ जीवै तौ सुख बिलसै जग मों कीरति लोगन गावै। मरै तो मंडल भेदि भानु को सुरपुर जाइ बसावै॥ लोह गहे लालच करि जिय को औरो सुभट लजावै। सूरदास प्रभु जीत शत्रु को कुशल क्षेम घर आवै॥"

भरत जी के समीप उस समय सुमित्रादि के रहने के कारण यह कहा जाता है कि लक्ष्मण जी को शक्ति लगने पर सुमित्रा जी ने स्वप्न देखा था कि भुजा को सर्प लील गया और

१. परन्तु 'स्वामिनी' क्यों? बड़े होने के कारण सन्मान सूचना के लिये।

वशिष्ठजी ने कहा था कि श्री लक्ष्मण जी को कुछ अरिष्ट है उस की शान्ति के निमित यज्ञ होना चाहिये यदि भरत जी राक्षसों से इस की रक्षा करें। वही यज्ञ सम्पादन हेतु सब लोग नन्दीग्राम में आये थे और भरत जी बिना गासी का वाण यज्ञरक्षार्थ पास धरे हुये थे। उसी समय हनुमान् जी पहुंचे और राक्षस के धोखे में भरत जी ने उन्हें बाण मारा जिस से वे भूतल में गिर पड़े।

उत्तरकाण्ड—३७ पद। टीकाकार कृत मङ्गलाचरण का एक दोहा।

बन से लौट आने पर और राजसिंहासन पर बैठने पर श्री रामचन्द्र का ऐश्वर्य (१); प्रातः काल श्रीरामचन्द्र के जागने पर गानवाद, सूर्य्य स्नान कर के घाट पर खड़े रहने समय की शोभा के वर्णन; श्री रामचन्द्र के सिंहासन पर विराजमान रहने के समय की छवि वर्णन; राम रूप वर्णन (२–१७)।

१३वें पद में श्री रामचन्द्र की बांह का यमुना से रूपक बांधा गया है, यथा—

"सुन्दर स्याम शरीर सैल तें धसि जनु द्वै ज़मुना अवगाहैं। अमित अमल जलबल परिपूरन जनु जनमी सिंगार सविता हैं। धारैं बान, कूलधनु, भूषण, जलचर भंवर सुगम सबधा हैं। विलसति बीच बिजै बिरुदावलि कर सरोज सोहत सुखमा हैं॥

झूला की शोभा; अयोध्या की प्रशंसा; साँझ समय अवध में दीपमालिका की शोभा; फाग वर्णन (१८–२२)। ये सब वर्णन बहुत उत्तम हुये हैं। इस ग्रंथ में गोसाईं जी ने शृंगार वर्णन अति विशदरूप से किया है और वह कहीं पर भी अश्लीलता से दूषित नहीं है।

गोसाईं जी के समय भी लोग गदहों पर चढ़ कर स्वांग बनते थे एवम् नरनारियां परस्पर हास्यरस की गालियां देती थीं।

"चढ़ै षरनि बिदूषक स्वांग साजि। करै कूट निपट गई लाज भाजि॥ नर नारि परसपर गारि देत।"

अवध की समृधि समृद्धि (२३) श्री रामचन्द्र का न्याय, श्वान, धोबी तथा ब्राह्मण के मृतक बालक की कथाएं (आभासमात्र) और श्री सीता जी का बाल्मीकि जी के आश्रम में भेजा जाना (२४-३२)। बाल्मीकि जी के आश्रम में सीता जी का वास, लवकुश जन्म इत्यादि (३३–३७) और अन्त के ३७वें पद में संक्षिप्त रामायण वर्णित है।

इस में लक्ष्मण जी सीता जी को लेकर मुनि को सौंप आये हैं। परन्तु बाल्मीकीय रामायण तथा रघुवंश में वे सीता को गंगा पार उतार मुनि के आश्रम का मार्ग बता कर चले आये हैं। बाल्मीकीय में शिष्यों से समाचार पाकर बाल्मीकि जी सीता को लाये हैं और रघुवंश के अनुसार बाल्मीकि जी सीता का स्वयं रोदन सुन कर उन के पास जा कर उन्हें ले गये हैं।

इस गीतावली में गोसाईं जी ने, अथवा बाल्मीकि जी, कालिदास, भवभूति किसी ने लवकुश के युद्ध का हाल नहीं लिखा है। केशव दास ने रामचन्द्रिका में अवश्य लिखा है।

जब लक्ष्मण जी सीता जी को बाल्मीकि मुनि के पास रख के चले हैं उस समय दुःख से कातर सीता जी का वचन सुन कर सब व्याकुल हो गये हैं यहां तक कि 'मुनि व्याकुल भयेउ तरु कछु कह्यौ न जाई।'

कवि की सार्वजनिक-सहानुभूति-स्वभाव जगद्‌व्यापी प्रेमतत्व को उस के नेत्रों के सामने खड़ा कर देता है। विकाश की सारी अवस्थाएं तथा श्रेणियाँ जिन के द्वारा प्रभुइच्छा प्रगट तथा अनुभूत होती है एकता के बन्धन में बंधे रहने के कारण यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है यदि कवि की सूक्ष्म दृष्टि में वे सब भिन्न २ श्रेणियां सर्वथा एक अखण्डित पदार्थ-सी दीखती हैं एवम् वह उन सबों में ठीक वैसा ही प्रेमसम्बन्ध पाता है जैसा किसी चैतन्य जीव के अंग प्रत्यंग में हो। उसी से इस की दृष्टि में बनस्पतियां तथा क्षुद्रजीव जन्तु भी मनुष्य के दुख सुख में सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं।

इसी से यहां गोसाईं जी ने तरुवरों की वि. लता एवं सुक सारिका का वार्तालाप कहा है और रामायण में सुमंत के श्रृंगबेरपुर से रथ लेकर चलने पर 'रथ हांकेउ हय राम तन, हेरि हेरि हिहिनाहिं।' और इसी से श्री कृष्ण जी के मथुरा गमन पर, सूरदास जी के अनुसार 'धेनु नहीं पय स्रवहिं रुचिर मुख चरत नहीं तृन कन्द' तथा 'प्रभु न मिलै धेनु दुर्बल भई श्याम बिरह की त्रासीं।।' और कालिदास ने कहा है :—

"मृगश्चदर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञं समबोधयन् माम्।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्याम् उत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि।।"

—रघुवंश, सर्ग १३, श्लोक २५।

यह पुस्तक 'डिगरी ऑफ आनर' (Degree of Honour) की परीक्षा की पाठ्य-पुस्तकों में सम्मिलित है जिस का पारितोषिक हज़ार रुपया है।

अष्टदश परिच्छेद

विनयपत्रिका

कोई श्री रामचन्द्र जी की माधुर्य्यलीला पर मोहित हो उसी के गान में मस्त रहते हैं, कोई उन के ऐश्वर्य्य ही के वर्णन में आनन्द पाते हैं, कोई माधुर्य तथा ऐश्वर्य मिश्रित गुण कथन का सुख उठाते हैं एवम् कोई अर्थिन होकर उन का गुणगान किया करते हैं। गोसाईं जी ने चारों रीतियों से श्री रामगुणगान किया है। गीतावली में माधुर्य का विशेष लक्ष्य रखा है और कवितावली में ऐश्वर्य्य का। रामचरित मानस में उन का मिश्रित गुणगान किया गया है एवम् 'विनयपत्रिका' में आप ने अर्थिन होकर ईश्वर का भजन किया है जैसा कि इस की रचना की कथा से विदित होता है।

कहते हैं कि जब गोसाईं जी ने हत्यारे ब्राह्मण को अपने साथ खिलाया और उस के हाथ का प्रसाद श्री विश्वनाथ जी के नान्दी को खिलवा कर उस का पापरहित होना काशी के पंडितों पर सिद्ध कर दिया तब यह देख कर सहस्रों मनुष्य हरिभक्ति के रंग में रंग कर हरिभजन में निरन्तर निमग्न रहने लगे। इस से 'कलियुग' को बड़ा क्रोध हुआ और वह प्रत्यक्षरूप से गोसाईं जी का सर्वनाश करने को धमकाने लगा। गोसाईं जी ने श्री हनुमान जी से कलियुग के धमकी देने का हाल निवेदन किया। हनुमान जी ने कहा कि 'आजकल कलियुग का अधिकार है बिना प्रभु की आज्ञा के उसे दण्ड देना उचित नहीं। तुम एक विनय की पत्रिका लिखो उसे श्रीरामचन्द्र की सेवा में उपस्थित कर श्री प्रभु से कलियुग के दण्ड देने की आज्ञा ले ली जायगी।' इसीसे इस ग्रन्थ की रचना हुई।

इस से प्रतीत होता है कि गोसाईं जी ने इसे ग्रंथ के ही रूप में रचा होगा—चाहे लगातार हो, चाहे क्रमशः। तथापि इस में विशेष २ समय के रचे हुए पद भी पाये जाते हैं, जैसे महावीर जी की स्तुति के वे पद जिन का दिल्ली में इन के कारागार में रखे जाने के समय बनना कहा जाता है।

लोग कहते हैं कि इस ग्रंथ का सब अंश नहीं तो कुछ अंश काशी के गोपाल मन्दिर के पश्चिम दक्खिन वाले कोने की कोठरी में जो तुलसीदास की बैठक के नाम से प्रसिद्ध है अवश्य बना है क्योंकि इस ग्रन्थ में विन्दुमाधव, विश्वनाथ, काशी, दण्डपाणि, भैरव, त्रिलोचन मणिकर्णिका, पंचगङ्गा, पंचकोश, अन्नपूर्णादि का विशेष वर्णन है। पूर्वोक्त कोठरी की बाहरी दिवाल में एक पट्टी लगाई गई है और उसपर अंग्रेजी में अंकित है। "Here Goswami Tulsi Das composed his Vinay Patrika" अर्थात् यहां पर गोसाईं जी ने 'विनयपत्रिका' की रचना की।

यह विनय का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है और कवि ने इस में भारी कविता शक्ति दिखलाई है। बहुत लोगों का तो यह मत है कि ऐसी कवित्वशक्ति तथा ऐसा पाण्डित्य इन्हों ने अपने अन्य ग्रन्थों में नहीं दिखलाया है। इस के आदि के कतिपय पदों की भाषा कलिष्ट है एवम् वे संस्कृत के ढङ्ग के पद हैं। सर्वसाधारण उन्हें सहज ही नहीं समझ सकते और न उस का गान ही कर सकते। परन्तु शेष पदों की भाषा सरल तथा मनोहारिणी है। इस में व्रजभाषा के शब्द का भी बहुत प्रयोग किया गया है; रूपकों की भी अच्छी छटा देखी जाती है; और विनय के बड़े उत्तम २ हृदयग्राही पद वर्तमान हैं। इस में भावों की पुनरुक्ति भी बहुत है, जिस से पढ़ने के समय कभी २ मन चाहता है कि शीघ्र आगे बढ़ते तो कदाचित् नये भाव का आनन्द मिलता। यह ग्रन्थ बड़ाही प्रभावशाली है। इस के पाठ से मन को बड़ी शान्ति प्राप्त होती है। इस में भक्ति तथा नाम माहात्म्य एवम् नाम पर भरोसा रखना पूर्ण रीति से दृढ़ाया गया है। सब बातों के विचार करने से यह कहना अनुचित नहीं होगा कि ऐसा उत्तम बिनय का ग्रंथ कदाचित् विरलाही पाया जायगा।

इस ग्रन्थ से गोसाईं जी की अपनी बातें भी बहुत सी जानी जाती हैं। इस ग्रन्थ के आरम्भ में श्री गणेश जी की वन्दना है और उन से यही प्रार्थना है 'मांगत तुलसिदास कर जोरे। बसहु राम सिय मानस मोरे।' इसी मनोरथ से इन्हों ने इस ग्रन्थ की रचना के लिये लेखनी उठाई है और इसी के सफल होने से कलिकाल कृत उत्पातों के शमन की दृढ़ आशा है।

फिर पंचदेवों में से सूर्य्य की बन्दना है जिन के वंश को कवि के उपास्य देव ने जन्म धारण कर पवित्र किया है।

फिर क्रमशः श्री शिव जी, भैरव, काली जी, गङ्गा, यमुना की स्तुति, काशी तथा चित्रकूट महिमा वर्णन एवम् हनुमानजी की स्तुति है। [इन में से ३२, ३३ और ३४वें पदों की रचना दिल्ली की घटना के समय कही जाती है।]

फिर श्री जानकी, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुहण जी की वन्दना है। सबलोगों की वन्दना केवल रामही के नाते हुई है और सब से प्रायः यही प्रार्थना है जिस में श्रीराम की कवि पर कृपा हो।

४३वें पद में संक्षेपतः रामचरित्र वर्णन है। ४७वें में श्रीरामचन्द्र की आरती है। निस्सन्देह सब किसी को निज इष्टदेव की ऐसी ही आरती करनी चाहिए।

"ऐसी आरती राम रघुबीर की करहि मन। हरनि दुखद्वन्द गोविन्द आनन्द घन ॥ टेक ॥ अचरचर रूप हरि सर्वगत सर्वदा वसत इति वासनाधूप दीजै। दीप निजबोध गतक्रोधमदमोहतम प्रौढ़अभिमान चित्तवृत्ति छीजै ॥ भाव अतिसय बिसद प्रवरनैवेद्य सुभ श्रीरमन परमसन्तोषकारी। प्रेम ताम्बूल गतसूल संसय सकल विपुल भवबासना बीजहारी ॥ असुभ सुभ कर्म घृतपूर्ण दसवर्त्तिका त्यागपावक सत्वगुन प्रकासं। भक्तिबैराग्य विज्ञान दीपावली अर्चि नीराजनं जगनिवासं ॥ बिमल हृदि

भवनकृत सान्तिपर्य्यंक सुभसयन बिस्राम रामराया। छमाकरुणा प्रमुख तंत्र परिचारिका यत्र हरि तत्र नहिं भेद माया ।। एहि आरती निरत सनकादि स्रुति सेष सिव देवऋषि अखिलमुनि तत्वदरसी। जोइ करै सोइ तरै परिहरै काम सब बदत इति बिमल मति दास तुलसी ।।" [1]

४६वें में श्रीहरिहर की वन्दना और ५०वें में सातो काण्डों की कथा संक्षेप से सूचित की गई है। फिर १० पदों में श्री रामस्तुति; तब विन्दुमाधव छवि बर्णन इत्यादि के अनन्तर २७६ पद पर्य्यन्त कविने मन की मूढ़ता, चित्त की चंचलता, इन्द्रियों की दुष्टता, कलि की कुटिलता वर्णन करते, पश्चाताप करते; मन को धिक्कार देते एवं उपदेश करते अत्यन्त नम्रता, दीनता तथा अनन्यता के साथ प्रेमपूर्ण हृदय से अपने प्रभु श्रीरामचन्द्र को कहीं केशव, कहीं माधव, कहीं हरि, कहीं मुरारी नाम से सम्बोधन कर के उन की बड़ीही विशद स्तुति, लीलावर्णन तथा यशकीर्त्तन किया है और उन की कृपादृष्टि तथा निज उद्धार के लिये विह्वल चित्त से प्रार्थना की है। इन बन्दनाओं में इन्हों ने कहीं २ पृथक् और प्रायः एक ही पद में श्री रामावतार तथा श्री कृष्णावतार की लीलाओं का गान किया है। सब पदों का भाव प्रगट करना तो दुष्कर है तौ भी यहां पर कुछ कहने की चेष्टा की जाती है।

राम नाम का प्रभाव बताते और उस के जपने का उपदेश करते कवि कहते हैं कि "तुलसिदास ब्रतदान ज्ञान तप सुद्धि हेतु स्रुति गावै। रामचरन अनुरागनीर बिनु मल अति नास न पावै ।।"

आगे चल कर कवि प्रभु के शरणापन्न होते हैं और यह विनती करते हैं कि "निज भवन द्वार प्रभु दीजै रहन पर्यो।" यदि गोसाईं जी के समान शुद्ध हृदय से हमलोग भी ऐसी विनती करें तो निस्सन्देह प्रभु की कृपा के भागी हों।

देखिये गोसाईं जी ऐसा अचल भक्त अपने को महा कुकर्मी मान कर क्या कह रहे हैं:— "तउ न मेरे अघ औगुन गनिहैं। जौं यमराज काज सब परिहरि यहै ख्याल उर अनिहैं।। चलिहैं छूटि पुंज पापिन के असमंजस जिय जनिहैं।" इत्यादि।

फिर कवि कहते हैं कि :—

"बिषयबारि मनमीन भिन्न नहिं होत कबहुं पल एक। तेहि सों सहौं बिपति अति दारुन जनमि कुजोनि अनेक ।।" अतएव "कृपा डोरि बनसी पदअंकुस परम प्रेम मृदु चारो। एहि बिधि बेधि हरहु मेरो मन कौतुक नाथ तुम्हारो ।।" इतनाही नहीं बरन् "कुटिल कर्म लै मोहि जाइ जँह जँह अपनी बरिआई। तहँ २ जनि छिन छोह छाड़िये कमठअंड की नाई ।।"

---

१. इस आरती की श्री गुरु नानक कृत आरती से तुलना कीजिये।

और स्वयम् यह प्रण करते हैं कि "अबलौं नसानी अब ना नसैहों। राम कृपा भव निसा सिरानी जागेउ फिर ना डसैहों॥ पायो नाम चारु चिन्तामनि उर कर तें न खसैहों। स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचन हिं कसैहों॥ परबस जानि हंस्यों इह इन्द्रिन निजवस ह्वै न हसैहों॥ मन मधुपहिं पन कै तुलसी रघुपति पद कमल बसैहों॥"

आगे चलकर गोसाईं जी एक अन्य प्रेमी के समान, जो कहता है कि

"बैठे हैं तेरे दर पै तो कुछ करके उठेंगे।
या वस्लही हो जायगा या मर के उठेंगे॥"

हठपूर्वक ईश्वर के द्वार पर बैठते हैं।

"पन करि हौं हठि आजु तें राम द्वार पर्यो हौं। तुम मेरे यह बिनु कहे उठिहों न जनम भरि प्रभु की सौंह करि निबर्यो हौं॥ दै धक्का यमभट थकै टारे टर्यो हौं। उदर दुसह सांसति सहि बहु बार जनमि जग निदरी निकर्यो हौं॥ हौं भाचल लै छूटिहौं जेहि लागि पर्यो हौं। प्रगट कहत जो सकुचिये अपराध भर्यो हौं। तौ मन में अपनाइये तुलसिहिं कृपा करि कलि बिलोकि हहर्यो हौं।"

इसी प्रकार अनेक भावों से श्रीरामचन्द्र जी की विनती कर के २७६ पद के अन्त में गोसाईं जी कहते हैं:—"दशरथ के समरथ तुहीं त्रिभुवन जस गायो। तुलसी नमत अवलोकि, बलि बांह बोल दै बिरुदावली बोलायो।" अर्थात् आप की बिरुदावली बांह का सहारा दे के हमें लाई है, हम आप के चरण कमलों पर सीस नवाते हैं। हे प्रभो! आप कृपादृष्टि कीजिये।

२७७ में अपनी 'विनयपत्रिका' प्रभु की सेवा में उपस्थित कर उस पर सही करने के लिये श्री प्रभु को सविनय निवेदन करते हैं "विनय पत्रिका दीन के बाप आप ही बांचो। हिये हर तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूछिये पांचो।"

जैसे कोई कचहरी में हाकिम के पास दरख़ास्त देकर और अपना हाल सुना कर वहां के अमलों से भी कह रखता है कि सुअवसर पा कर मेरी दरख़ास्त पेश कर दीजियेगा वैसे ही गोसाईं जी ने भी प्रभु की सेवा में 'विनयपत्रिका' उपस्थित कर एवम् अपनी प्रार्थना सुना कर एक पद में श्री प्रभु के दरबार के लोगों से भी विनय किया है कि निज २ अवसर में करुनानिधि को इस दीन की सुधि दिलाइयेगा।

समय पाकर मारुतनन्दन तथा भरत जी की रुचि देख लखन लाल के गोसाईं जी कृत 'विनयपत्रिका' के विषय में श्री रामचन्द्र से निवेदन करने पर सब लोग उन का अनुमोदन करते हैं और श्री प्रभु विहँसि कर कहते हैं कि 'हाँ मुझे उसकी खबर है' एवम् उस पर सही कर देते हैं और गोसाईं जी का कार्य्य सिद्ध होता है।

"मारुति मन, रुचि भरत की लषि लषन कही है। कलिकाल हुं नाथ नाम सों प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है॥ सकल सभा सुनि लै उठी जानि

रीति रही है। कृपा गरीबनवाज की देषत गरीब को सहसा बांह गही है।। बिहंसि राम कह्यौ सत्य है सुधि मैं हूं लही है। मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ सही है।।"

पं० ज्वाला प्रसाद के अनुसार विश्वनाथ जी के मन्दिर में 'विनयपत्रिका' रखे जाने पर जब उस पर उन की सही हुई उस समय का यह पद है 'तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ सही है।' परन्तु इस पद के ऊपर के प्रसंग से यह कथन ठीक नहीं जंचता। इस ग्रन्थ में २८० पद हैं। महात्मा हरिहरप्रसाद जी ने अपनी टीका में इसका दो भाग करके ३६वां पर इस ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध समाप्त किया है। बहुत से महात्माओं ने इस ग्रन्थ के विषय को दीनता, मानमर्षण, भयदर्शन, भर्त्सन, आश्वासन, मनोराज्य तथा विचार इन कई भागों में विभक्त किया है।

महामहोपाध्याय पं सुधाकर द्विवेदीजी ने इस विनय का संस्कृत गीत बनाया है। महात्मा हरिहर प्रसाद जी ने हिन्दी में इस की बहुत उत्तम टीका की है। सुनते हैं कि चुनारनिवासी पं० भानु प्रताप तिवारी इस का अंग्रेज़ी अनुवाद कर रहे हैं।

पं० लल्लूलाल जी ने इस ग्रन्थ को कलकत्ता 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के छात्रों के लिये पहले पहल १८२६ ई० में मुद्रित किया था।

ऊनविंशति परिच्छेद

दोहावली

यह ग्रन्थ गोस्वामी जी ने पुस्तकाकार किसी विशेष समय में नहीं लिखा था। यह गोसाईं जी कृत दोहों का संग्रहमात्र है। संकलन इन के समय में हुआ या पीछे इन के किसी प्रेमी ने किया, या इन्हों ने स्वयम् किया यह बात ठीक ज्ञात नहीं होती। हां! यह कथा अवश्य प्रसिद्ध है कि इन्होंने राजा टोडरमल्ल के अनुरोध से अपने पूर्वरचित पुस्तकों के दोहों को एकत्रित कर तथा कुछ नवीन दोहों की रचना करके यह धर्म्म और नीतिपूर्ण संग्रह तैयार किया था। परन्तु इसमें 'रामाज्ञा' के कई एक दोहे पाये जाने से राजा टोडरमल्ल के अनुरोध से यह संग्रह तैयार होने में ग्रियर्सनसाहब को सन्देह हुआ है क्योंकि मुं० छक्कन लाल के अनुसार 'रामाज्ञा' की रचना सं० १६५५ में हुई और वहां सं० १६४६ में राजा टोडरमल्ल का स्वर्ग पयान हो गया था।

परन्तु जब कोई २ महाशय सं० १६५५ रामाज्ञा के प्रणयन का नहीं वरन् उस प्रति के लिखे जाने का समय मानते हैं जिस से मुं० छक्कन लाल ने नकल की थी और जब दोहावली की हस्तलिखित एक प्राचीन पुस्तक में जो स्वयम् ग्रियर्सन साहब को प्राप्त हुई थी रामाज्ञा का एक भी दोहा नहीं था तो दोहावली का राजा टोडरमल्ल के समय संगृहीत होना असम्भव नहीं दीखता। प्रत्युत इस से यह बात सिद्ध होती है कि दोहावली में रामाज्ञा के दोहे पीछे सम्मिलित किये गये हैं।

और हमारा तो यह अनुमान है कि गोस्वामी जी ने राजा टोडरमल्ल के अनुरोध से नहीं वरन् अपने मित्र काशीनिवासी टोडर के अनुरोध से, जिन का ऊपर वर्णन हो चुका है, दोहावली का संग्रह तैयार किया होगा। यह अनुमान स्वीकार करने से सब ब्योरा ठीक हो जाता है। क्योंकि टोडर के स्वर्गवास के अनन्तर आप सं० १६६९ में उन के लड़के और पोते के झगड़े में पंच हुये थे। तब निश्चय उन की मृत्यु भी उस के थोड़े ही दिन पहले हुई होगी क्योंकि किसी की सम्पत्ति बांटने के लिये उस के उत्तराधिकारियों में प्रायः उस की मृत्यु के कुछ ही काल पीछे झगड़ा उठ खड़ा होता है। तब यदि रामाज्ञा का प्रणयन सं० १६६५ में भी हुआ हो तो दोहावली के टोडर के अनुरोध से संगृहीत होने की कहानी असत्य प्रतीत नहीं होती और उसके संग्रह का समय चाहे १६५५ के पहले या पीछे माना जाय इस से भी कुछ क्षति नहीं।

हां! इससे राजा टोडरमल्ल काशीवाले टोडर अवश्य हो जायंगे। परन्तु हम जानते हैं कि दन्तकथा एवं किसी २ की लेखनी ऐसा गड़बड़ जरूर कर देती है और मुख्य प्राणी को छोड़ कर

किसी सुप्रसिद्ध व्यक्ति के साथ किसी घटना का सम्बन्ध जोड़ने में त्रुटि नहीं करती। सिक्ख-गुरुओं की जीवनो के प्राचीन लेखकों ने भी मिर्ज़ा राजा जयसिंह के बदले सवाई जयसिंह का नाम एवम् राजा रामसिंह के स्थान में विष्णुसिंह का नाम लिख दिया है। ग्रियर्सन साहब बराबर दोनों टोडर को एक मान कर भ्रम में पड़ते गये हैं। दोनों टोडर एक ही व्यक्ति नहीं थे यह बात अन्यत्र दिखलाई जा चुकी है। जो हो, इस संग्रह को टोडर नामक व्यक्ति से अवश्य सम्बन्ध है, चाहे वे काशीवाले टोडर हों चाहे दिल्लीवाले हों। दोनों ही का होना सम्भव है जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है। वस्तुतः कौन थे ऐसा कहने की कोई सामग्री नहीं है।

परन्तु प्राचीन संग्रह में पीछे लोगों ने और दोहादि जोड़ दिया है ऐसा अनुमान करने का प्रमाण पाया जाता है। एक तो ग्रियर्सन साहब का एक प्राचीन प्रति में रामाज्ञा का कोई दोहा नहीं पाना है। दूसरे "खरिया खरी कपूर लों, उचित न पिय तिय त्याग। कै खरिया मोहि मेलि कै, बिमल बिबेक बिराग॥" इस का इस ग्रन्थ में होना है। यह दोहा गोस्वामी जी की स्त्री का रचा कहा जाता है; और "मनि मानिक मँहगी किये, सहगो तृन जल नाज। तुलसी यातें जानिये, राम गरीबनिवाज॥" इस दोहे को लोग रहीम ख़ानख़ाना के नाम से भी सुनना बताते हैं। इस के सम्बन्ध में तो यह कहा जा सकता है कि इन दोनों महानुभावों में परस्पर स्नेहभाव रहने के कारण सम्भव है कि उन्हों ने इसे बनाकर गोसाईं जी के पास भेजा हो और इन के रचनाओं के साथ रहने से यह भी संग्रह हो गया हो या गोसाईं जी ही से यह उन को प्राप्त हुआ हो और उन के नाम से प्रसिद्ध हो गया हो। परन्तु इन की स्त्री के नाम से प्रसिद्ध दोहा के विषय में ऐसी बात भी नहीं कही जा सकती क्योंकि उन्हों ने आप से भेंट होने पर यह दोहा मुखात कहा था। लोग ऐसा ही कहते हैं। फिर ग्रन्थ में जहां तहां सोरठा का आना है, जो 'दोहावली' नाम में धब्बा लगा रहा है। यह अविचारपूर्ण कार्य्य गोसाईं जी या प्राचीन किसी संग्रहकर्ता का होही नहीं सकता। यह करनी हमारे प्रवीण क्षेपकानुरागियों ही की होगी जिन्हें गोसाईं जी की रचनाओं में इधर उधर से निरर्थक जोड़ लगाये बिना सन्तोष ही नहीं होता।

वर्तमान दोहावली में ५७३ छन्द हैं जिन में से ८५ दोहे रामायण में, २ वैराग्य-सन्दीपनी में, ३५ रामाज्ञा में तथा १३१ सतसई में पाये जाते हैं और शेष नये दोहे हैं।[१] इस में सब मिलाकर २२ सोरठे हैं। दोहे तथा सोरठे सब नाममाहात्म्य, भक्ति, नीति के उपदेश एवम् अनेक विषयों के वर्णन में हैं और भक्ति को खूब दृढ़ाते हैं। इन दोहों से गोस्वामी जी के समय की अवस्था तथा देशदशा की बहुत कुछ अटकल लग सकती है।

---

१. ग्रियर्सन साहब ने बाबू रामदीन सिंह की सहायता से एक सूची इस बात की तैयार कराई थी कि गोसाईं जी कृत किस २ ग्रंथ के कौन २ दोहे दोहावली में पाये जाते हैं। उसी से ये जोड़ संख्याएँ यहां पर लिखी गई हैं।

दोहावली के कई एक ऐसे दोहे जो गोसाइं जी के अन्य ग्रन्थों में नहीं पाये जाते, नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

"मोर मोर सब कहं कहसि, तूं को कह निज नाम।
कै चुप साधहि सुनु समुझ, कै तुलसी जप राम ॥१८॥
विगरी जन्म अनेक की, सुधरे अब हीं आज।
होइ राम को राम जप, तुलसी तजि कुसमाज ॥२२॥
जे जन रूखे विषय रस, चिकने राम सनेह।
तुलसी ते प्रिय राम के, कानन बसहिं कि गेह ॥६१॥
तुलसी जो पै राम सों, नाहिन सहज सनेह।
मूड़ मुंड़ायो बादहीं, भांड भयो तजि गेह ॥६३॥
तुलसी परिहरि हरि हरहिं, पांवर पूजहिं भूत।
अंत फ़ज़ीहत होहिंगे, ज्यों गनिका के पूत ॥६५॥
साहब सीता नाथ सों, जब घटिहैं अनुराग।
तुलसी तब हीं भाल तें, भभरि भागिहैं भाग ॥७०॥
मुख मीठे मानस मलिन, कोकिल मोर चकोर।
सुजस धवल चातक नवल, रह्यो भुवन भरि तोर ॥२९६॥
तुलसी जे कीरति चहहिं, पर की कीरति षोय।
तिन के मुह मसि लागिहैं, मिटहिं न मरिहैं धोय ॥३८९॥
तुलसी पावस के समय, धरि कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहैं कौन ॥५६४॥"

इसके कुछ दोहे 'बाहुक' की समालोचना में उद्धृत हुए हैं।

विंशति परिच्छेद

रामाज्ञा

यह पुस्तक ७ अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में ४६ दोहे हैं। उन्हें सात भागों में बांटने से सात २ दोहों के सात २ सप्तक होते हैं। इस पुस्तक में रामायण की कथा कही गई है परन्तु उस क्रम से नहीं। पहले तथा चौथे अध्यायों में बालकाण्ड की कथा है; दूसरे में अयोध्याकाण्ड एवम् कुछ आरण्यकाण्ड की कथा; तीसरे में आरण्य और किष्किन्धा; पांचवें में सुन्दर तथा लङ्का, छठवें में राज्याभिषेक, मृतबालक, बक-उलूक, यति-श्वान, और सीता परित्यागादि की बातें एवम् सातवें में स्फुट कविताएँ हैं।

कहते हैं कि इस ग्रन्थ को गोसाईं जी ने अपने एक मित्र प्रह्लादघाटनिवासी गंगाराम योतिषी का प्राण संकट में पड़ने से शगुन विचारने के लिये बनाया था। कथा ऐसी है कि काशी में राजघाट के राजा गहवारवंशीय एक क्षत्रिय थे जिन के वंशधर अब मांड़ा और कंतित में राज करते हैं। एक बार उन का कुमार अहेर खेलने गया। उस के एक साथी को बाघ पकड़ ले गया। राजा को खबर मिली कि उसके पुत्र ही को बाघ खा गया। इस से घबड़ा कर राजा ने पूर्वोक्त योतिषी को बुलाया और अपने पुत्र के विषय में प्रश्न कर कहा कि 'यदि आप की बात सत्य होगी तो एक लाख पारितोषिक पाइयेगा, नहीं तो आप का सिर काट लिया जायगा। 'योतिषी जी उत्तर देने के लिये एक दिन का समय मांग, घर आकर उदास पड़ रहे। वे नित्य सायंकाल में गोसाईं जी के संग गङ्गा पार सन्ध्याबन्दन को जाया करते थे। उस दिन उन के साथ जाना अस्वीकार करने पर तथा उस का कारण जानने पर गोसाईं जी ने उन्हें धैर्य्यप्रदान किया। निदान दोनों मित्रों के गङ्गा पार से लौट आने पर कलमदावात के अभाव में गोसाईं जी ने पानडिब्बा से कत्थ निकाल और घोल कर एक सरई के टुकड़े से ६ घंटे में यह पुस्तक लिखकर योतिषी जी के हवाले किया। गोसाईं जी के आदेशानुसार शगुन विचार उन्हों ने प्रातःकाल जा कर राज पुत्र के सकुशल लौटने का समय बता दिया। राजा ने उस समय तक उन्हें बन्दीगृहि में रहने की आज्ञा दी। ठीक बताये समय पर राजकुमार घर आ धमका। आनन्द-निमग्न राजा योतिषी जी के स्मरण दिलाने पर उन्हें मुक्त किया और उन के अस्वीकार करने पर भी सानुरोध नियत पारितोषिक दे कर उन्हें बिदा किया। वे सीधे गोसाईं जी की सेवा में उपस्थित हो सब रुपया इन के चरणों में अर्पण करने लगे और इन के लेने में सहमत नहीं होने पर उन्हों ने आग्रहपूर्वक गोसाईं जी को दस हजार रुपया दिया। उस द्रव्य से गोसाईं जी ने हनुमान जी का दस मन्दिर बनवा दिया, जिन में दक्षिणाभिमुख स्थापित मूर्त्तियां अभी तक वर्त्तमान हैं।

यह कथा म० कु० रामदीन सिंह ने ग्रियर्सन साहब से कही थी और उन्हों ने इसे अपने प्रबन्ध में सन्निवेशित किया है। परन्तु उन्हों ने पाद नोट में यह भी लिखा है कि "पं० सुधाकर द्विवेदी कहते हैं कि इस आख्यायिका में ठीक समय बतलाया जाना ही इस की सत्यता में बट्टा लगाता है। रामाज्ञा से ठीक समय निर्णय नहीं होता। इस से तो कोई नया कार्य्य आरम्भ करने के लिये शुभाशुभ शगुन का विचार होता है। अन्तिम सप्तक के १—३ दोहों यह बात स्पष्ट विदित होती है।"[१]

इस पुस्तक की एक प्राचीन प्रति गोसाईं जी के हाथ की लिखी हुई काशी के प्रह्लाद-घाट में एक ब्राह्मण के पास थी, जिससे मिरज़ापुर निवासी मुं० छक्कन लाल ने अपने लिये एक प्रति तैयार की थी। उन्हों ने लिखा है कि 'श्री संवत् १६५५ ज्येष्ट सुदी १० रविवार की लिखी पुस्तक श्री गोसाईं जी के हस्तकमल की प्रह्लादघाट श्री काशी में रही। उस पुस्तक पर से श्री पं० रामगुलाम जी के सत्संगी छक्कन लाल कायस्थ रामायणी मिरज़ापुर ने अपने हाथ से संवत् १८८४ में लिखा।'

पं० सुधाकर जी के कथनानुसार उक्त ब्राह्मण महाशय का नाम रामकृष्ण था और उन के कथा बांचने के लिये कहीं जाने के समय अन्य पुस्तकों के साथ वह भी रेल से चोरी चली गई।[२]

उनके घर गोसाईं जी का चित्र भी वर्तमान होना और उन के स्वर्गपयान की तिथि को सर्वसाधारण को उस का दर्शन कराया जाना कहा जाता है। कदाचित वह चित्र जहांगीर ने अकबर पादशाह के निमित्त तैयार कराया था।[३] तब वह ब्राह्मण महाशय को कैसे हाथ लगा?

'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है कि 'इच्छा थी कि इस का फोटो लिया जाय, परन्तु इसके मालिक के मर जाने से अब नहीं जानते कि किस के अधिकार में हैं।'

उस में यह भी लिखा है कि 'उस समय (गंगाराम जी के समय) राजघाट का किलाध्वंश हो चुका था, महमूद ग़ज़नवी के सेनानायक सैयद सालार मसऊद (ग़ाज़ी मियां) की लड़ाई में यह किला टूट चुका था। मुसल्मानी समय में यहाँ के चकलेदार मुसल्मान होते थे। अन्तिम चकलेदार मीर रुस्तम अली थे जो दशाश्वमेध के पास मीर घाट पर रहते थे, जिनको वर्तमान

---

१. Vide Indian Antiquary—Notes on Tulsi Das. p. 27-28.

२. चुनार के पं० भानुप्रताप तिवारी ने ग्रउस साहब को खबर दी थी कि गोसाईं जी की हाथ की लिखी हुई एक प्रति काशी में गोसाईं जी संस्थापित सीताराम के मन्दिर में विद्रोह के समय तक थी, फिर चोरी हो गई। और सं० १७०० की लिखी हुई प्रति की उनके पास एक नकल है।

इसी पुस्तक की हर जगह से चोरी क्यों?

३. Notes on Tulsi Das, by Grierson, p. 8-9. note.

।राजवंश के संस्थापक मनसाराम ने भगा कर यहां की राजगी ली थी।' अर्थात् उस समय कोई हिन्दू राजा नहीं था।

इस से पुस्तक लिखे जाने का कारण निःसार सिद्ध होता है। और गोसाईं जी क्या कल के कालेज के छात्रों तथा अन्य शौकीन बाबूओं के समान सदा अपने पाकेट—नहीं, अपनी गांती वा झोली में—पान का डिब्बा लिये फिरते थे या आधुनिक संडमुसंड ों के सदृश्य गद्दी मसनदविलासी, नाच थियेटराभिलाषी तथा विलासप्रिय थे कि दिशा । के समय, सन्ध्याबन्दन के समय भी पान का डिब्बा साथ नहीं छोड़ता था? निश्चय उसी र की किसी सियाही से वह पुस्तक लिखी गई होगी। ऐसा कहने का हम साहस करते हैं इस का कारण है। हमारे पास लगभग सौ वर्ष की लिखी हुई गुरुमुखी अक्षर में एक ंथी है। अपने चार भाइयों में सबसे बड़े हमारे पूज्यपाद काका मुन्शी हरिवंश सहाय जी । इस का पाठ किया करते थे, जिन को स्वर्गपयान किये आज ७० वर्ष हुआ होगा। इस की लिप्पी का रंग भी कत्थे के रंग जैसा है।

पं० सुधाकर जी ने १६५५ सं० को रामाज्ञा के प्रणयन का समय नहीं वरन् उस प्रति लेखे जाने का समय माना है, जिस से मुन्शी छक्कन लाल ने नकल उतारी थी। उन का कथन ठीक प्रतीत होता है, क्योंकि इन पुस्तक की कविता साधारण है इस में गोसाईं जी प्रौढ़ लेखनी की झलक नहीं देखी जाती। यदि इसे गोसाईं जी ने बनाई हो तो इस की रचना ो ऐसे समय हुई होगी, जब उन की लेखनी पूर्ण बलवती नहीं हुई थी।

हमारी समझ में यह बात भी नहीं आती कि गोसाईं जी ऐसा कोई धुरन्धर कवि म अध्याय में बालकाण्ड की कथा कह कर फिर तुरत ही चौथे अध्याय में उसी काण्ड की लिख कर इतनी बड़ी लम्बी चौड़ी पुनरुक्ति का दोष अपने ऊपर क्यों आने देगा और दोनों नों में प्रभेद भी क्यों होने देगा? प्रथम अध्याय में परशुराम जी बारात लौटती समय आये हैं : चौथे में उन का आगमन ही नदारद, परन्तु जानकी जी की उत्पत्ति की बात है। ।चरितमानस में भी कई स्थानों में समुच्चय रामकथा संक्षिप्त रूप से वर्णित हुई है। परन्तु का कारण वहीं पर स्पष्ट विदित हो जाता है। इस में तो ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलता। यदि ये कि सात अध्याय पूरा करने के लिये ऐसा किया गया तब दो दो काण्डों की कथाएँ एक याय में देने की क्या आवश्यकता थी। उन्हीं का कुछ विस्तार करने से सात अध्याय हो ा। और एक अध्याय में तो स्फुट कविता भी देखी जाती है। ये सब बातें निस्सन्देह देह-उत्पादिनी हैं। परन्तु रामाज्ञा से शगुन विचारा जाया करता है, अतएव हम उस की तेयां नीचे लिख देते हैं।

एक रीति यह है कि एक मुट्ठी कमलगट्टा लेकर सात २ करके गिनता जाय, शेष संख्या याय की संख्या होगी, फिर दूसरी मुट्ठी लेकर उसी रीति से सप्तक की संख्या, एवं तीसरी से की संख्या स्थिर करके शगुन का विचार करे। गिनने में यदि कुछ भी शेष नहीं रहे तो सात ा जायगा और उसी के अनुसार अध्याय सप्तक वा दोहा देख कर शगुन विचारा जायगा।

दूसरी रीति यह है कि एक सात घरों का और दूसरा ४६ घरों का दो चक्र बना ले। पहले में उंगली रखने से जिस अंक पर उंगली पड़ेगी वही अध्याय की, और दूसरे चक्र की जिस संख्या पर उंगली पड़ेगी वही दोहा की, संख्या होगी। बस उस अध्याय के उस दोहे को पढ़ कर हानि लाभ जान लेना होगा।

शकुन विचारने की रीति ७वें अध्याय के ४३-४४ दोहों में भी बताई गई है:—

"सुदिन सांझ पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम।
सकुन बिचारब चारुमति, सादर सत्य सनेम॥
मुनि गनि, दिन गनि, धातु गनि, दोहा देखि विचारि।
देस करम करता वचन, सगुन समय अनुहारि॥"

परन्तु धातु तो आठ (अष्ट,हश्त) प्रसिद्ध हैं। तब कैसे बनेगा? और शगुन विचारने के समय यदि इन्हीं दोहों में से कोई एक निकल आवे तब क्या फलाफल निकलेगा? गोसाईं जी इतना अवश्य सोच सकते थे। ये तथा इस के आगे के दोहे भी सन्देहजनक ही हैं।

नोट—यह जीवनी छपवाने के थोड़े ही दिन पहले हम को काशी की 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'[1] में रणछोड़ लाल व्यास जी का एक लेख देखने में आया। आप अपने को पं० गंगा राम ज्योतिषी का वंशधर बताते हैं और लिखते हैं कि "गंगारामजी दो भाई थे। दूसरे का नाम दौलत राम था। उन के वंशजों में पं० गिरिवर व्यास हुए। इन के पास ही ग्रियर्सन साहब ने गुसाईं जी की तसवीर देखी थी। मैं उन का भांजा हूं। असल में 'रामाज्ञा' नहीं, किन्तु 'रामशलाका' थी जो रामचन्द्र (मेरे बहनोई के भाई) और गंगाधर (मेरी मा के बुवा के पुत्र) के हाथ से सं० १६२०--२२ के करीब लुटेरों ने श्रीनाथजी की यात्रा के समय उदयपुर के निकट लूट ली थी। उस रामशलाका की नकल मिरजापुरनिवासी पं० रामगुलाम जी द्विवेदी के श्रोता छगन लाल जी के पास है। तसवीर मेरे पास सुरक्षित है।" रामाज्ञा की रचना के सम्बन्ध में जो बातें ग्रियर्सन साहब ने लिखी है उन्हीं का सारांश इन्हों ने 'राम शलाका' के विषय में लिखा है।

चलिये छुट्टी हुई। 'रामाज्ञा' की सब बातें हवा हो गईं। उस की जगह पर 'राम-शलाका' विराजमान कराई गई। परन्तु ग्रियर्सन साहब ऐसा खोजी पुरुष ने क्या बिना निश्चय किये ही छक्कन लाल लिखित नकल सम्बन्धी वाक्य को 'रामाज्ञा' के विवरण में जोड़ दिया है? जो हो, इन सन्दिग्ध बातों से तो यह अनुमान करना अनुचित नहीं होगा कि अति प्राचीन काल से लोगों ने 'रामाज्ञा' का सम्बन्ध गोसाईं जी से जोड़ रखा है, जैसा कि आज लोग बहुत से ग्रन्थों को उन्हीं की रचना में सम्मिलित करते जा रहे हैं। परन्तु वस्तुतः यह उन का रचा ग्रन्थ नहीं है। हम आगे 'रामशलाका' की भी समालोचना किये ही देते हैं।

किन्तु इस के पूर्व चित्र के विषय में कुछ कहना आवश्यक समझते हैं। लोगों का कथन है कि प्रह्लादघाटवाले चित्र को ग्रियर्सन साहब ने जाकर स्वयम् देखा था। परन्तु उन्हों ने

---

१. भाग १६. सं० १०।

यह बात कहीं स्पष्टरूप से नहीं कही है। 'खड्गविलास' वाली रामायण में जो चित्र दिया गया है (और जिस पुस्तक के प्रकाशन में उन्हों ने सहायता की थी) उस के सम्बन्ध में केवल यही लिखा हुआ है 'हाथ के लिखे हुये अति प्राचीन और प्रमाणिक चित्र से लिया गया है।' वह कहां से और कैसे हस्तगत हुआ उस का कुछ हाल नहीं लिखा है।

पूर्वोक्त पं० रणछोड़ लाल व्यास, 'काशी तुलसी-स्मारक' की सहायता के लिये प्रह्लाद घाटवाला चित्र (जो वे अपने पास सुरक्षित होना बताते हैं) छपवाकर अब बेंचने लगे हैं। काशी नईबस्ती के रहनेवाले सुप्रसिद्ध ज्योतिषी पं० श्यामाचरण जी ने एक बार बाबू रामदीन सिंह से कहा था कि 'बांहपीड़ा से गोस्वामी जी का हाथ सूख गया था, उसी समय प्रह्लाद घाटवाला चित्र उतारा गया और उसमें एक हाथ सूखा है। पीछे वह हाथ दुरुस्त हो गया था।' व्यास जी जो चित्र बेंच रहे हैं उस में एक ही बांहु नहीं वरन् दोनों हाथ और दोनों पैर सूखे हैं। देखने से प्रतीत होता है कि प्लीहारोगग्रस्त किसी प्राणी का चित्र हो। उपर्युक्त दोनों चित्रों में तनिक भी सादृश्य नहीं पाया जाता।[1]

रामशलाका

व्यास रणछोड़ लाल के कथनानुसार जो रामशलाका पुस्तक चोरी हो गई वह कैसी थी सो तो नहीं कह सकते, परन्तु प्रचलित रामशलाका वस्तुतः कोई विशेष पुस्तक प्रतीत नहीं होती। रामचरित मानस की कई एक चौपाईयों को लेकर लोगों ने शगुन विचारने का एक ढङ्ग स्थिर किया है। पं० रामेश्वर भट्ट ने स्वसम्पादित रामायण में इसे सन्निवेशित किया है। और एक चक्र दे कर शकुन विचारने की रीति भी बताई है। उस में शुभाशुभफल जानने के लिये नीचे की चौपाइयां दी हुई हैं।

"१. सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजहिं मनकामना तुम्हारी॥
२. प्रबिसि नगर कीजै सब काजा। हृदय राखि कोसल-पुर-राजा॥
३. उघरे अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥
४. बिधि बस सुजन कुसंगति परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥
५. होइहैं सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावहिं साखा॥
६. मुद मंगल मय संत समाजू। जिमि जग जंगम तीरथराजू॥

---

१. श्री रामदास गौड़ ने भी एक लेख में लिखा है कि यह चित्र उस समय का है 'जब वह शायद प्लीहा या यकृत के किसी रोग से पीड़ित होंगे।'

उन्होंने रायकृष्ण दास के यहां के एक चित्र का भी हाल लिखा है और कहा है कि इस चित्र में 'रोगी का सा रूप भी नहीं है तो भी बाईं बांह सूखी हुई है।...जब यह दोनों चित्र अंतकाल के नहीं हैं तब उनकी बांह का सूखना अंतकाल की घटना नहीं हो सकता।'

७. गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥
८. बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सनमुष धरि काहु न धीरा ॥
९. सफल मनोरथ होहिं तुम्हारे। राम लषन सुन भये सुपारे ॥"

और मैनेजर भार्गव पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित रामायण में ५--८ चौपाइयों के बदले निम्नलिखित चौपाइयां देखी जाती हैं :—

"आवत इहि सर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई ॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परिस कु धातु सुहाई ॥
कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन के बचन व्याघ्र हरि ब्याला ॥
जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुपारी ॥"

'शिवसिंह सरोज' में 'रामशलका' का जो छन्द उद्धृत किया गया है वह उपर्युक्त दोनों महाशयों में से किसी की रामशलाका में नहीं देखा जाता :—

पं० ज्वालाप्रसादादि की रामायण में केवल चक्र देकर यह लिखा हुआ है कि नियमानुसार इस कोष्ठ के अक्षरों को लेने से जो चौपाई बनेगी उस के अर्थ के अनुसार शुभाशभफल समझना होगा।

इन सब बातों से स्पष्ट विदित होता है कि 'रामशलाका' गोसाईं जी कृत कोई विशेष पुस्तक नहीं है।

एकविंशति परिच्छेद

जानकीमङ्गल

रामचन्द्र तथा अन्य तीनों भाइयों के विवाह का हाल इस पुस्तक में वर्णन किया गया है। इसमें १६२ अरुण[1] छन्द और २४ हरिगीतिका छन्द हैं। आठ २ अरुण छन्द के पीछे एक हरिगीतिका है।

इस का मङ्गलाचरण देखिये :—

"गुरु गनपति गिरजापति गौरि गिरापति।
सारद सेस सुकबि स्रुति संत सरल मति॥
हाथ जोर करि बिनय सबहिं सिर नावों।
सिय रघुबीर बिबाह यथा मति गावों॥
सुभ दिन रच्यो स्वयंवर मंगलदायक।
सुनत स्रवन हिय बसहिं सीय रघुनायक॥"

इस पुस्तक से या किसी अन्य रीति से इस का रचना काल ज्ञात नहीं होता।

इस में राम लषण फुलवारी में नहीं गये हैं। यज्ञशाला में ही राम सीता का परस्पर संदर्शन हुआ है। कवि कहते हैं—

"राम दीख जब सीय सीय रघुनायक।
दोउ तन तकि तकि मैन सुधारत सायक॥"

अन्य राजाओं के धनुष नहीं तोड़ने पर विश्वामित्र ने कहा है कि रामचन्द्र को धनुष तोड़ने की आज्ञा दीजिये; और उन की सुकुमारता के विचार से जनक के कुछ संकोच करने और हिचकने पर विश्वामित्र ने रामचन्द्र की महिमा वर्णन की है। तब जनक जी से धनुष तोड़ने की आज्ञा पाकर रामचन्द्र ने धनुष उठाकर तोड़ डाला है।

कोहबर में जूआ खेलने की विधि हुई है। इस में विवाह के अनन्तर परशुराम जी का आगमन हुआ है और लक्ष्मण जी से कुछ बातचीत नहीं हुई है।

इन बातों के सिवाय अन्य कथाएं रामायणवर्णित कथाओं से मिलती हैं। वरन् इस के कई छन्दों के चरण भी सर्वथा वा अंशमात्र रामायण के दोहे और चौपाइयों के चरणों से मिलते हैं। रामायण के समान शगुन तथा पुष्पवृष्टि भी होती गई है।

---

१. यह छंद २० कला का होता है। श्री बाबा रामदास कृत गणप्रस्तारक प्रकाश भाषा देखिये।

अब इस की कुछ कविता अवलोकन कीजिये। देखिये मुनि के संग दोनों भाई अवध से चल कर राह में कैसे जा रहे हैं :—

"गिरतरु बेलि सरित सर विपुल बिलोकहिं।
धावहिं बालसुभाव विहँग मृग रोकहिं॥
सकुचहिं मुनिहिं सभीत बहुरि फिर आवहिं।
तोरि फूल फल किसलय माल बनावहिं॥"

रामायण में गोसाईं जी इस सुन्दरता के साथ दोनों भाइयों को मुनि के संग नहीं ले गये हैं। हां! गीतावली में यह छवि अच्छी रीति से दिखलाई गई है।

जनकपुर में दोनों भाइयों को देख जनक जी को महानन्द प्राप्त हुआ है। कवि कहते हैं :—

"देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ।
बँध्यो सनेह बिदेह बिदेह बिरागेउ॥
प्रमुदित हृदय सराहत भल भवसागर।
जहँ उपजहिं अस मानिक बिधि बड़नागर॥
पुन्य पयोधि मातु पितु ए सिसु सुरतरु।
रूप सुधा सुख देत नयन अमरनि बरु॥
केहि सुकृति के कुंअर कहिये मुनिनायक।
गौर स्याम छविधाम धरे धनुसायक॥
बिषय बिमुख मन मोर सेइ परमारथ।
इनहिं देखि भयो मगन जानि बड़ स्वारथ॥"

इस पुस्तक में गोसाईं जी की लेखनी की सी कहीं २ चमत्कारी देखी जाती है :—

"कहत बचन रद लसहिं दमक जनु दामिनि।"
"होति बिरहसर मगन देखि रघुनाथहिं।
फरकि बाम भुज नयन देहिं जनु हाथहिं।।"

अन्त में कवि कहते है :—

"उपवीत ब्याह उछाह जे सियराम मंगल गावहीं।
तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिन पावहीं॥"

'श्रीवेंकटेश्वर' छापाखाना द्वारा प्रकाशित 'षोड़श-रामायण' देख कर दोहावली, रामाज्ञा, जानकीमङ्गल, पार्वतीमङ्गल, कृष्ण गीतावली, छप्पैरामायण और संकट मोचन की समालोचना की गई है।

द्वाविंशति परिच्छेद

पार्वतीमङ्गल

इस पुस्तक के आदि में ये कई छंद दिये गये हैं जिन से इस की रचना का कारण तथा काल ज्ञात होता है।

"बिनय गुरुहिं गुनगनहिं गिरिहिं गननाथहिं।
हृदय आनि सियराम धरे धनु भाथहिं॥
गावउं गौरि गिरीस बिबाह सुहावन।
पापनसावन पावन मुनि-मन-भावन॥
कबित रीति नहिं जानउं कबि न कहावउं।
संकर चरित सुसरित मनहिं अन्हवावउं॥
पर अपबाद बिबाद बिदूषित बानिहिं।
पावन करौं सो गाइ भवेस भवानिहिं॥
जय सम्बत् फागुन सुदि पांचय गुरुदिन।
अस्विनि बिरचेउं मङ्गल सुनि सुख छिनु छिनु॥"

इस से स्पष्ट विदित होता है कि यह पुस्तक जय संवत् फाल्गुन सुदि पंचमी बृहस्पतिवार को अश्विनी नक्षत्र में बनी वा उस दिन इस की रचना आरम्भ हुई। परन्तु यह नहीं जाना जाता कि जय संवत् कौन विक्रमीय संवत् था। महामहोपाध्याय पं० सुधाकर जी ने गणना कर के बताया है कि जय संवत् १६४३ विक्रमीय संवत् में चल रहा था। उस हिसाब से ग्रियर्सन साहब ने इस पुस्तक की रचना बृहस्पतिवार २ फ़र्वरी १५८६ ई० लिखा है। उन्हों ने 'नोट्स औन तुलसी दास' शीर्षक लेख में १८९३ ई० के 'इन्डियन ऐन्टीकुयेरी' के पृ० ७-८ में इस गणना का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

इस पुस्तक में १४८ अरुण[1] छन्द और १६ हरिगीतिका छन्द हैं। हरिगीतिका छन्द एक नियम से नहीं रखा गया है। एक स्थान में ६, एक स्थान में १०, तीन स्थानों में १२, एक स्थान में १६ और शेष में ८ अरुण छन्दों के बाद हरिगीतिका का दर्शन होता है।

इस पुस्तक में शिवाशिव विवाह की कथा वर्णित है। परन्तु जिस ढङ्ग से गोसाईं जी ने यह कथा रामायण में लिखी है उस ढङ्ग से इसमें नहीं कही गई है। इस में महाकवि कालिदास कृत 'कुमार सम्भव' का अनुसरण किया गया है।

१. किसी २ ने इस पार्वतीमङ्गल के छन्द को सोहर छन्द लिखा है। सोहर छन्द २२ कला का बतलाया गया है, जैसा कि 'रामललानहछू' में है

नारद के इस उपदेश पर "अवसि होई सिध साहस फले सुसाधन। कोटिकल्पतरु सरिस संभु अवराधन ॥ तुम्हरे आस्रम अबहिं ईस तप साधहिं। कहिये उमहिं मनुलाइ जाय अवराधहिं।" मातापिता की सम्मति से सखियों के सङ्ग पार्वती शिवजी की सेवा में उपस्थित हो उन की सेवा आराधना करने लगी हैं। उसी समय देवतों के भेजे कन्दर्पको भस्म कर[1] उस की स्त्री को बर देकर उदासचित्त महादेव जी दूसरी जगह चले गये हैं।

इधर पार्वती जी उन की प्राप्ति के अर्थ कठिन दुष्कर तप में प्रवृत्त हुई हैं। सखी सब तपोवन में इन के साथ ही थीं। इन की तपस्या से प्रसन्न हो महादेव जी स्वयं ब्रह्मचारी का भेष धारण कर इन की प्रेमपरीक्षा को आये हैं और इन की सखी के मुख से तप का कारण सुन कर वे आप अपनी निन्दा करने लगे हैं।

"कहहु काह सुनि रीझहु बर अकुलीनहिँ।
अगुन अमान अजाति मातु पितु हीनहिँ॥
भीष मांगि भव पाहिँ चिता नित सोवहिँ।
नाचहिं नगन पिसाच पिसाचिन जोवहिँ॥
भांग धतूर अहार छार लपटावहिँ।
जोगी जटिल सरोष भोग नहिँ भावहिं॥
एकहु हरहिँ न बरगुन कोटिक दूषन।
नरकपाल गजखाल व्याल विष भूषन॥
कहँ राउर गुन सील सरूप सुहावन।
कहाँ अमङ्गल भेष विशेष भयावन॥"[2]

और यह २० कला का छन्द है। श्री वेंकटेश्वर-यन्त्रालय-प्रकाशित 'षोड़श रामायण' में इस छन्द को 'बरवै' लिखा है। बरवै रामायण के छन्द से मिलाकर देख लीजिये कि यह कहां तक ठीक है। पर जब कि इस ग्रन्थ के प्रकाशक ने ऐसे ग्रन्थ का नाम जिस में 'पार्वतीमङ्गल' तथा 'कृष्णगीतावली' सम्मिलित है, अशुद्ध रीति से 'षोड़श रामायण' रखा है तो उन्हें छन्द का अशुद्ध नाम लिख देने में क्या हिचक है? गोसाईं जी ने किसी देवता के विषय में कविता की ही, तो क्या सब रामायण ही कहलावेगी?

१. कुमारसम्भव के अनुसार जब पार्वती जी महादेव जी के पास उन के पूजनार्थ उपस्थित थीं उसी समय काम भस्म किया गया है। सती होने के लिये उद्यत रती को आकाशवाणी हुई है कि 'शरीर मत नष्ट करो' तुम्हें निजपति का पुनः संग होगा।'

२. "वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।
वरेषु यद्बालमृगाक्षि मृग्यते तदस्ति किंव्यस्तमपि त्रिलोचने॥"—कुमार सं०

इतना कहने पर भी पार्वती को अपने प्रण में अचल पाकर वे इन्हें अपने यथार्थ स्वरूप का दर्शन दे वहां से चले गये हैं और पार्वती जी आनन्द से हृष्टपुष्ट शरीर हो सहेलियों के साथ बिना किसी के बुलाये घर चली आई हैं।

पीछे महादेव जी ने सप्तऋषियों तथा अरुन्धती को भेज कर अपना विवाह ठीक कराया है। बारात आने पर जब शिव और उन के गणों के भेषभूषण का समाचार सुन कर मैना को सोच तथा पश्चात्ताप हुआ है तब हिमवान ही ने ईशान भगवान की महिमा जताकर उन्हें सन्तुष्ट किया है। अगवानी होने के अनन्तर ही वे जनवासा में चले गये हैं। विवाह के समय सुन्दर रूप धारण कर मंडप में आने पर परिछन हुआ है। और जेवनार विवाह के पीछे हुआ है। जानकीमङ्गल के समान कोहबर में जूआ की विधि भी हुई है। आकाशवाणी, प्रसूनवृष्टि, तथा शकुन भी होता गया है।

नगर निकट आने पर हरि ने परिहास से कहा था कि अपना २ समाज बिलग कर चलते जायं :—

"बिबुध बोल हरि कहेउ निकट पुर आयहु।
आपन आपन साज सबहिं बिलगावहु॥
प्रमथनाथ के साथ प्रमथगन राजहिँ।
बिबिध भांति मुष बाहन बेष बिराजहिँ॥
नरकपाल जल भरि २ पियहिँ पियावहिँ।
कमठ खपर मढ़ि खाल निसान बजावहिँ॥
बर अनुहरत बरात बनी हरि हँसि कह।
सुनि हिय हँसत महेश केलि कौतुक मह॥"

इस हंसी के पलटे में शिव जी ने अमरगण को खूब ही छकाया है। नगर निवासियों को भयभीत देख आप ने अपना तथा अपने गणों का ऐसा सुन्दर भेष सवांरा कि उस के सामने सब का रङ्ग फीका पड़ गया। कवि कहते हैं :—

"लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर।
भए सुन्दर सतकोटि मनोज मनोहर॥
नील निचोल छाल भई फनि मनि भूषन।
रोम २ पर उदित रूपमय पूषन॥
गन भए मङ्गल भेष मदनमनमोहन।
सुनत चले हिय हरषि नारिनर जोहन॥

संभु सरद राकेस नपतगन सुरगन।
जनु चकोर चहुं ओर विराजहिँ पुरजन॥"[1]

कदाचित् इसी से कालिदास ने कहा है कि यदि चाहने के योग्य रूपवाले इस जोड़े (शिवाशिव) को (ब्रह्मा) नहीं मिलाते तो ब्रह्मा का इस जोड़े में रूप बनाने का परिश्रम व्यर्थ हो जाता।

"परस्परेण स्पृहणीयशोभं न चेदिदं द्वन्दमयोजयिष्यत्।
अस्मिन् द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां विफलोऽभविष्यत्"

कवि ने इस ग्रन्थ के अन्त में कहा हैं :—

"कल्यान काज उछाह व्याह सनेह सहित जो गाइहें।
तुलसी उमा संकर प्रसाद प्रमोद मन प्रिया पाइहें॥"

इस का रङ्ग ढङ्ग और नाम सब जानकीमङ्गल के समान है। इन दोनों पुस्तकों की कथाएँ भी रामायण वर्णित जानकीविवाह तथा पार्वतीविवाह से भिन्न पाई जाती है और प्रभेद अधिकतर पार्वतीमङ्गल में देखा जाता है। दोनों एक ही छन्द में लिखे गये हैं और दोनों की कविता में भी उतना अन्तर नहीं है। इस से अनुमान किया जा सकता है कि इन दोनों की रचना एक ही कवि द्वारा एक ही समय कुछ दिन आगे पीछे हुई और पहले पार्वतीमङ्गल का प्रणयन हुआ क्योंकि जानकीमङ्गल की कविता अपेक्षाकृत कुछ अधिक उत्तम है। अर्थात् इन दोनों की रचना सं० १६४३ में रामायण लिखे जाने के १२ वर्ष पीछे हुई। परन्तु आश्चर्य है कि रामायण सी प्रौढ़ता इन के छन्दों में नहीं देखी जाती यद्यपि कहीं २ उस के भावों की झलक और उस का छन्दांश इन ग्रंथों में अवश्य दृष्टिगोचर होता है।

यदि यह कहें कि वयोवृद्धि के कारण इन ग्रन्थों की कविता में शिथिलता आ गई सो भी नहीं हो सकता, क्योंकि इस संवत् के पीछे की कवितायें जो कवितावली में समावेशित हैं रामायण ही के समान उत्कृष्ट देखी जाती हैं। और जया संवत् को जो हमारे लिये क्या हमारे समान हजारों के लिये एक नई वस्तु है क्षेपक मानने का भी हमें कोई कारण नहीं दीख पड़ता। एवं ज्योतिर्विद् पं० सुधाकरजी की गणना के सामने उसे विक्रमीय संवत् १६४३ नहीं मानने का भी हमें साहस नहीं होता। तब यह अनुमान किया जा सकता है कि जानकीमङ्गल की रचना गोसाईंजी ने रामायण के पहले की और उसी का अनुकरण कर के किसी अन्य तुलसी कवि ने पार्वतीमङ्गल बनाया अथवा किसी कवि की प्रभा सर्वकाल में समान ही देदीप्तमान नहीं रहती अतएव गोस्वामी जी कृत होने पर भी इन ग्रन्थों में शिथिलता आ गई। जोहो, परन्तु पार्वतीमङ्गल के गोसाईंजी कृत होने में बहुत से लोग सन्देह करते हैं।

१. कुमारसम्भव, श्लोक ३२–३४, सर्ग ७ देखिये।

त्रयोविंशति परिच्छेद

कृष्णगीतावली

यह ग्रन्थ गोसाईं जी ने ग्रन्थ के ढंग से नहीं लिखा था इस में सन्देह नहीं ! इस के पद समय समय पर लिखे गये थे और पीछे वे संकलित हुये । इन पदों की रचना गोसाईं जी ने ब्रजगमन पर वहीं की थी या वहां से लौट आने पर या कुछ वहां और कुछ लौट आने पर या जाने के पूर्व ही की थी ठीक नहीं कहा जा सकता । सब बातें सम्भव हैं । इस की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है ।

इस ग्रन्थ में भिन्न २ रागों के ६१ पदों में श्रीकृष्ण ब्रजविहारी की कई एक लीलाएं यथारुचि वर्णन की गई हैं । ब्रजभाषा से यह ग्रन्थ होने के कारण कोई २ इस के गोस्वामी जी कृत होने में सन्देह करते हैं ।[1] परन्तु यह केवल भ्रममात्र है । उस समय ब्रजभाषा का पूर्ण प्रचार था । कवि लोग ब्रजभाषा ही में कविता किया करते थे । गोस्वामी जी ब्रज भी पधारे थे । कृष्णलीला का ब्रजभाषा में वर्णन करना उपयुक्त समझ कर यदि इन्हों ने उसी भाषा में इन पदों की रचना की तो यह कोई आश्चर्य्य की बात नहीं । इन की कवितावली भी ब्रजभाषा मिश्रित है । और कृष्णलीला वर्णन भी आश्चर्य्यजनक नहीं; क्योंकि कवितावली तथा विनय-पत्रिका में भी कृष्ण सम्बन्धी कविताएं तथा पद देखे जाते हैं ।

पहले पद में कृष्णचन्द्र मा की गोद में बैठे तोतली बातें कर रहे हैं; दूसरे में चिकनी चुपड़ी छोटी मोटी रोटी खाने को मांग रहे हैं और बल भैया को नहीं देने का विचार कर रहे हैं; तीसरे में एक गोपी उलहना दे रही है; चौथे में कृष्ण कह रहे हैं कि 'यह मुझे झूठे ही दोष लगा रही है;' पांचवें में यशोदा कहती हैं कि 'यह तो अपने घर ही खेला करता है, दूसरे के घर कहां जाता है ?' १३वें तक इसी प्रकार की बातें हैं । १४--१७ में यशोदा रोष तथा ऊखली बंधन है । माता के हाथ में ताड़ना के निमित्त लकुटी देख कर आप रो रहे हैं । कवि कहते हैं :—

"मंजु अंजन सहित जलकन चुअत लोचन चारु ।
स्यामसारस मग मनो ससि स्रवत सुधा सिंगारु ।।

---

१. ग्रियर्सन साहब का कथन है कि इस की भाषा गोसाईं जी कृत अन्य पुस्तकों की भाषा से भिन्न होने के कारण बहुत से विज्ञजन इसे गोसाईं जी कृत होना स्वीकार नहीं करते । (Indian Antiquary p. 45. 1893. A. D.) और मैं समझता हूं कि यह पुस्तक ऊपर वर्णन किये गये तुलसीदास की बनाई न होगी । (The Modern Vernacular Literature of Hindustan)

सुभग उर दधि विन्दु सुन्दर लषि अपनपो वारु।
मनहुं मरकत मृदु सिषर पर लसत बिसद तुषारु ॥"

१८वें में अपनी पूजा न पाने से इन्द्र का कोप देखिये। कवि ने इसे राग मलार में वर्णन किया है।

"ब्रज पर घन घमंड कर आयो।
अति अपमान विचार आपनो कोपि सुरेश पठायो॥
दमकति दुसह दसहुं दिसि दामिनि भयो तम गगन गँभीर।
गरजत घोर वारिधर धावत प्रेरित प्रवल समीर॥
बार बार पविपात उपल घन बरसत बूंद विसाल।
सीत सभीत पुकारत आरत गोसुत गोपी ग्वाल॥
राषहु रामकान्ह यहि अवसर दुसह दसा भइ आई।
नन्द बिरोध कियो सुरपति सों सो तुम्हरो बल पाई॥
सुनि हँसि उठ्यो नन्द को नाहरु लियो कर कुधर उठाइ।
तुलसिदास मघवा अपने सों करि गयो गर्व गँवाइ॥"

२४वें तक गोवर्द्धन धारण, गोचारण, शोभावर्णन इत्यादि के अनन्तर २५ से मथुरागमन जनित गोपीगण विरह बहुत उत्तम रीति से वर्णन किया गया है। ३३ से उद्धव तथा एक भ्रमर को सम्बोधन कर के गोपियों का निज प्रेम तथा प्रेमव्यथा कथन एवम् कृष्ण, कूबरी, उद्धव और भ्रमर पर व्यंग की बौछार है—

"ऊधो या ब्रज की दसा विचारो। ता पीछे यह सिद्धि आपनी जोग कथा बिस्तारो॥ जा कारन पठये तुव माधव सो सोचहु मन माहीं। केतिक बीच विरह परमारथ जानत हौ किधों नाहीं॥ परमचतुर निज दास स्याम के संतत निकट रहत हौ। जलबूड़त अवलंब फेनु को फिर फिर कहा गहत हौ॥ वे अति ललित मनोहर आनन कौने जतन बिसारों। जोग जुगुति अरु मुकुति विविध बिध वा मुरली पर वारों॥ जिहि उर बसत स्याम सुन्दर घन तिहि निर्गुन किन आवे। तुलसीदास सो भजन बहावै जाहि दूसरो भावै॥"

"ऊधो जू कह्यो तिहरो कीबो। नीकै जिय की जानि अपनपौ समुझि सिखावन दीबो॥ स्याम बियोगिनि ब्रज के लोगनि जोग जोग जो जानो। तौ संकोच परिहरि पा लागौं परमारथ ही बषानो॥ गोपी ग्वाल गाइ गोसुत सब रहत रूप अनुरागे। दीन मलीन छीन तनु डोलत मीन मजा सों लागे॥

तुलसी है स्नेह दुषदायक नहिं जानत अस को है। तऊ न होत कान्ह को सो मन सबै साहिबी सोहै ॥"

अपनी विरहव्यथा वर्णन करते २ एक गोपी कह उठती है—

"गये कर तें घर तें आंगन तें ब्रज हू तें ब्रजनाथ। तुलसी प्रभु गयो चहत मनहुं तें सो तो मेरो हाथ ॥" अर्थात् मैं मन से कैसे जाने दूंगी ?

और ऊधो आप जो योग २ कह रहे हैं सो—

"सगुन छीरनिधि तीर बसत ब्रज तिहुंपुर बिदित बड़ाई। आकदुहन तुम्ह कह्यो सो परिहरि मोहि यह मति नहिं भाई ॥"

और यदि कोई कहे कि ऐसा प्रबल प्रेम है तो उन के वियोग में तुम्हारा प्राण क्यों नहीं प्रयाण करता तो उस का कारण सुनिये —

"ज्ञान कृपान समान लगत उर बिहरत छिन छिन होत निनारे।
अवधि जरा जोरति हठि पुन पुन या तें रहत सहत दुख भारे ॥
पावक बिरह समीर स्वांस तनु तूल मिलै तुम्ह जारनिहारे।
तिन्हहिँ निदरि अपने हित कारन राषत नयनन जुगल रषवारे ॥"[1]

पुनः—"बिनु ब्रजनाथ ताप नयनन को कौन हरै ?" अर्थात् कोई नहीं हर सकता। क्योंकि—

"कन कुंभ भरि-भरि पियूषजल बरषत सक्र कल्प सत हारे।
कदली सीप चातक को कारज स्वाति बारि बिनु कोउ न सँवारे ॥
सब अँग रुचिर किसोर स्याम घन जेहिं हृदजलज बसत हरि प्यारे।
तेहि उर किमि समात बिराटबपु सोभित सहित सिंधु गिरि भारे ॥
बढ्यो अति प्रेम प्रलय के बट ज्यों बिपुल जोगजल बोरि न पारे।
तुलसि दास ब्रज बनितन को ब्रत को समरथ करि जतन निवारे ॥"

इसी प्रकार योग पर प्रेम की प्रधानता प्रतिपादन करते अपने परम पुनीत प्रेम प्रकाश से विमोहित कर गोपियों ने ऊद्धव ऐसे प्रवीण ज्ञानी को भी प्रेम प्रवाह में भसा दिया है। गोपीगण आप धन्य हैं। आपका प्रेम धन्य है! आप प्रेम-पथ-पथिकों के शिरोमणि, पथप्रदर्शक तथा परम पूजनीय हैं! आप के चरणों में बारम्बार नमस्कार है।

इस के अनन्तर द्रौपदिचीर सम्बन्धी दो पद हैं।

---

१. इसे रामायण के 'बिरह अगिन तन तूल समीरा' इत्यादि से मिलाइये।

इस ग्रन्थ में विशुद्ध शृंगार तथा प्रेम बहुत विशदरूप से वर्णन किया गया है। कविता बड़ी ही सरस, रुचिकर तथा मनोहर है। सुन्दर भावों का भी अभाव नहीं है।

अब हम यहां पर केवल एक बात कह कर आगे बढ़ते हैं। ऊपर उल्लिखित पदों में से यह पद 'ऊधो या ब्रज की दसा बिचारो' हमें मुं० नवल किशोर के यन्त्रालय का छपा 'सूरसागर' में सूरदास जी के नाम से देखने में आया है। यह समालोचना हम श्रीवेंक्टेश्वर सम्पादित 'षोडशरामायण' देख कर लिख रहे हैं। दोनों ग्रन्थों में दोनों महाकवियों के नाम से एकही कविता यह अचम्भे की बात है तथा ग्रन्थप्रकाशकगण पुरातन महानुभावों की रचनाओं के संग्रह में कैसा गड़बड़ कर देते हैं और कर रहे हैं उस का यह एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। इन दोनों ग्रन्थों में से किस का लेख ठीक माना जाय ? हम तो कहेंगे कि प्रकाशक ने उसका 'सूरसागर' नाम ही व्यर्थ रखा है क्योंकि उस में सूरदास जी के अतिरिक्त नन्ददास, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास आदि के भी पद वर्तमान हैं। उस का नाम 'अष्टछाप पदावली संग्रह', 'अष्टछाप भणिताभण्डार' जैसा कोई रखा जाता तो ठीक होता और जब 'सूरसागर' नाम पड़ा तो उस ग्रन्थ में केवल सूरदास जी ही के पद संग्रह किये जाते। परन्तु ऐसा दूषण 'षोडश रामायण' में भी है जो कि पार्वतीमंगल की समालोचना में दिखलाया गया है।

चतुर्विंशति परिच्छेद

वैराग्य सन्दीपिनी

इस के प्रणयन का समय नहीं जाना जाता। लोगों का अनुमान है कि गृहीत्यागी होने पर कवि ने इसकी रचना की है। इसका तात्पर्य्य यही होगा कि विरक्त होने के थोड़े ही दिन पीछे इस की रचना हुई। नहीं तो विरक्त होने पर तो इन्हों ने सब ग्रन्थों ही की रचना की है।

इस पुस्तक में ४६ दोहे, २ सोरठे और १४ चौपाइयां हैं। इस के पहले दोहे में श्री सीताराम की युगल मूर्त्ति का ध्यान है; दूसरे दोहे का यह भाव है कि बिना राम के ध्यान के सच्चा सुखानन्द से चित्त प्रफुल्लित नहीं होता। तीसरे दोहे में रामचन्द्र का ब्रह्मैश्वर्य्य वर्णन हुआ है। इस के अनन्तर एक सोरठा में अज अद्वैत अनामादि गुण विशिष्ट ईश्वर के नर तन धारण करने का हेतु कहा गया है। इस के अनन्तर नीचे लिखे हुये दो दोहे हैं :—

"तुलसी यह तन तवा है, तपत सदा त्रैताप।
सांति होइ जब सांति पद, पावै राम प्रताप॥
तुलसी यह तन षेत है, मन बच कर्म किसान।
पाप पुण्य द्वै बीज हैं, बवै सो लवै निदान॥"

यह 'वैराग्य सन्दीपिनी' क्या है, इसे कवि ने इस दोहे में जनाया है :—

"तुलसी वेद पुरान मत, पूरन सास्त्र बिचार।
यह बैराग्यसँदीपिनी, अषिल ज्ञान को सार॥"

यह ग्रन्थ तीन प्रकाशों में विभक्त हुआ है। पहले में २६ (२२ दो० + ४ च०) छन्दों में सन्तस्वभाव वर्णन किया गया है। दूसरे प्रकाश में ६ (६ दो० + १ सो० + २ च०) छन्दों में सन्त महिमा कही गई है। तीसरे में १२ दोहे तथा ८ चौपाइयों में शान्ति का वर्णन है।

सुप्रसिद्ध बन्दनपाठक ने इस की टीका की है। वही इस समय हमारे सामने उपस्थित है। बाबू महादेव प्रसाद ने १८८६ ई० में वह टीका सम्पादकीय टिप्पणियों के साथ प्रकाशित की है। मैनपुरीनिवासी बैजनाथ दास ने भी इस की टीका की है। पहली टीका बांकीपुर 'खड्गविलास' प्रेस में एवम् दूसरी लखनऊ के मुं० नवलकिशोर के प्रेस में मुद्रित हुई है। 'इन्डियन एन्टीकुएरी' पृ० २०—२३ में ग्रियर्सन साहब ने इस का पूरा अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया है। पहली टीका सरल तथा संक्षिप्त है, दूसरी टीका खूब लम्बी चौड़ी एवम् संस्कृत के प्रमाणों से पूर्ण है।

संत महिमा के विषय में गोसाईंजी ने कहा है :—

"को वरनै मुख एक, तुलसी महिमा संत की।
जिनके बिमल बिवेक, सेस महेस न कहि सकत ॥[1]
महि पत्री करि सिंधु मसि, तरु लेखनी बनाइ।
तुलसी गनपति सो तदपि, महिमा लिखी न जाइ॥
तुलसी भगत स्वपच भलो, भजै रैन दिन राम।
ऊंचो कुल केहि काम को, जहां न हरि को नाम॥"[2]

'शान्ति' प्रकरण का सारांश यह है कि भक्ति भूषित दास यदि ज्ञानवान हो और सर्वत्यागी हो कर ईश्वर ध्यान में मग्न रह शान्ति धारण करें एवम् सहनशील हो तो वह महानन्द अनुभव करेगा। शान्ति के समान कहीं कोई सुख नहीं। शान्ति धारण करने से उस भक्त के हृदय में राम की दोहाई फिर जाती है, कामक्रोधादि भाग जाते हैं एवम् वह कामना हीन, अहंकारशून्य तेजसम्पन्न हो जाता है। जिस की ऐसी अवस्था हो जाती है वही ज्ञानी है, वही ध्यानी है, वही गुणी है, वही सर्वश्रेष्ठ है और वही ऐसा कह सकता है :—"न मत्लब है गदाई से, न यह ख़ाहिश कि शाही हो। इलाही हो वही, जो कुछ कि मर्ज़ीये इलाही हो॥"

---

१. गोसाईं जी के कथन की नीचे लिखे कथनों से तुलना कीजिये:—

"संत की महिमा बेद न जानहिं।" }
"नानक संत प्रभु भेद न भाई।" } सुखमणि साहब, महल्ला ५

२. "राम नाम संग मन नहिं हेता। जो कछु कीनो साउ अनेता।
वा तें उत्तम गनिये चँडाला। नानक जेहि मन बसहिं गोपाला॥"

पञ्चविंशति परिच्छेद

बरवै वा बरवा रामायण

यह छोटी-सी पुस्तक बरवा छंद में है। इस छंद का प्रति चरण १६ कला का होता है एवम् १२ और फिर ७ कला पर 'यति' (Cesura) होता है। प्रवाद है कि गोस्वामी जी ने अपने मित्र रहीम ख़ानख़ाना के अनुरोध से बरवै छंद में इस पुस्तक की रचना की थी। उन के एक मुंशी छुट्टी लेकर अपने घर अपना बिवाह करने गये थे। छुट्टी पूरी होने पर घर से आने के समय पहले उन की स्त्री ने उन्हें ठहराने का यत्न किया परन्तु उन के राज़ी नहीं होने पर उस ने यह बरवा "प्रेम प्रीति कै बिरवा चलेउ लगाय। सींचन की सुधि लीजो, मुरझि न जाय" लिख कर उन्हें ख़ानख़ाना की सेवा में उपस्थित करने को दिया। ख़ानख़ाना उसे देख कर ऐसे प्रसन्न हुये कि उन्हों ने उस मुंशी को तुरत घर लौट जाने की आज्ञा दी और उस छंद में उन्हों ने स्वयम् भी बहुत-सी कविताएं कीं एवम् अपने इष्ट मित्रों को भी उस छंद में कविता करने का अनुरोध किया।[1]

रामचरितमानस के सुप्रसिद्ध वक्ता श्रीवन्दन पाठक जी ने बरवै रामायण की 'स्नेह-प्रकाशिका' टीका लिखी है। उसे श्रीरामदीन सिंह जी ने १८६३ ई० में प्रकाशित किया है। बैजनाथ दास मैनपुरी ने भी इस की टीका की है जो लखनऊ के मुं० नवलकिशोर के छापेखाने में छपी है। दोनों टीकाएं अच्छी हैं। परन्तु इन में बहुत से छन्दों के स्थान कर्म में प्रभेद हैं। हम प्रथम टीका को आगे रखकर यह समालोचना लिख रहे हैं।

बरवै रामायण में सब मिलाकर ६६ छंद हैं। और वेही ७ काण्डों में बिभक्त किये गये हैं। परन्तु उन में रामकथा आभासमात्र ही पाई जाती है।

पुस्तक के आदि में रामचरितमानस प्रभृति के समान मङ्गलाचरण नहीं है।

बालकाण्ड—में १६ छंद हैं। १–७ तक में श्री रामचन्द्र का एवं ८–१३ तक में श्री जानकी जी का सौंदर्य्य वर्णन है। पाठक जी ने "बड़े नयन कुटि भृकुटि भाल बिसाल। तुलसी मोहत मनहि मनोहर बाल॥" को आदि में रखकर 'बाल' शब्द का अर्थ बालराजकुमार-श्रीराम किया है। और बैजनाथ दास ने पाठक जी के ८–१३ तक के छन्दों को क्रम से १, २, ३, ५, और छठां एवम् पूर्वोक्त प्रथम बरवा को ४था लिख कर 'बाल' का अर्थ श्री जनकजी लिखा है और तदनन्तर उन्हों ने पाठक जी के ग्रंथवाला ७ तथा २–६ बरबा दिया है। कदाचित इन महात्माओं ने अपनी २ उपासना के अनुसार इन छन्दों का स्थान क्रम स्थिर

---

१. परन्तु मुं० देवी प्रसाद कृत ख़ानख़ाना की जीवनी में इस का वर्णन नहीं है, यद्यपि इस प्रकार की बहुत-सी दूसरी बातें उस में देखी जाती हैं।

किया है। परन्तु न मालूम ग्रियर्सन साहब ने कौन सी पुस्तक देखकर लिखा है कि 'तीन छन्दों में श्री सीता छविवर्णन के अनन्तर रामायण की कथा सूक्ष्मरीती से कही गई है।' क्योंकि उपर्युक्त दोनों पुस्तकों में युगल मूर्त्तियों की छविवर्णन के अनन्तर रामायण की कथा—धनुषभङ्ग ३ छन्दों में, तथा विवाह ३ छन्दों में—आभासमात्र देखी जाती है।

अयोध्याकाण्ड—में ८ छन्द। कैकेयी कोप (आभासमात्र), और बनयात्रा दो छन्दों में; मार्गस्थ ग्रामवासियों का वार्तालाप; गङ्गा माहात्म्य तथा पगप्रक्षालन; फिर ग्रामवासियों का वचन। वाल्मीकि वचन एक छन्द।

आरण्यकाण्ड—"वेदनाम कहि, अँगुरिन षंडि अकास। पठयो सूपनषा हीं, लषनक पास॥" इस में कूट का ढङ्ग देखा जाता है। गोसाईं जी को और कहीं तो कूट कहते नहीं पाते।[१] क्या यहाँ सूपनषा के आने ही से इन के मन में कूट का उमङ्ग हुआ? दो छन्दों में कंचन मृग प्रसङ्ग और शेष तीन में जानकीविरहजनित रामचन्द्र का सन्ताप।

किष्किन्धा—दो छन्दों में हनुमान तथा सुग्रीव से रामचन्द्र का परिचय और वार्तालाप जैसा कि टीकाकारों ने दिखलाया है।

सुन्दरकाण्ड—६ छन्दों में श्री जानकी जी का हनुमान से राम विरहजनित सन्ताप (आभासमात्र), वर्णन और हनुमान जी का उन की दशा रामचन्द्र से निवेदन करना।

लंकाकाण्ड—में एक ही छन्द "बिबिधबाहिनी बिलसत सहित अनन्त। जलधि सरिस को कहै राम भगवंत।" टीकाकार कहते हैं कि विविध वाहिनी = नाना प्रकार की सेना, विलसते—क्रिया से शत्रुविजय, जानकी प्राप्ति, विभीषणराज्य कवि ने लखाया है। यदि इस रीति से छन्दों को काण्डों में विभक्त करके रामायण बनाई जाय तो केवल रामचरित मानस ही में से अनेक रामायण बन सकती हैं, गोसाईं जी की अन्य रचनाओं की बात दूर रहे।

उत्तरकाण्ड—२७ छन्द। दो में चित्रकूट महिमा और शेष में श्रीराम जी के पादपद्म में नेह तथा रामनाम जपने अर्थात् ईश्वर भक्ति का आदेश और माहात्म्य है। इन छन्दों में रामायण के नाम माहात्म्य का बहुत सा भाव ज्यों का त्यों आ गया है। वरन् कुछ अक्षर इधर उधर कर देने से वे बरवै भी चौपाइयों के समान हो जायेंगे।

इस पुस्तक के एक तिहाई छन्द शृंगाररस के होंगे। यद्यपि वह शृंगार-वर्णन दूषणीय नहीं है, तथापि हनुमान जी का यह वाक्य "सिय बियोग दुख केहि बिधि कहउं बषानि। फूलबान ते मनसिज वेधत आनि॥" सीता जी का रामवियोगजनित दुःख नहीं वरन् कामजनित दुःख जताता है जो गोसाईं जी की लेखनी तथा हनुमान जी के मुख के योग नहीं। कूट भी कान में खटकता है। अतएव यदि हम इस पुस्तक के गोसाईं जी कृत होने में सन्देह करें तो कुछ अनुचित नहीं होगा। परन्तु लोगों के कथनानुसार जब प्रचलित—'बरवा

---

१. रामसतसई का तीसरा सर्ग कूट ही में कहा गया है। परन्तु उस ग्रन्थ को भी बहुत से माननीय पुरुष गोस्वामी जी कृत होना नहीं मानते और न मानने का एक कारण वही कूट का होना बताते हैं।

रामायण' अपूर्ण है तब अपूर्ण पुस्तक को देखकर पूरी सम्मति देनी उत्तम नहीं। हाँ! वर्तमानावस्था में हम इतना अवश्य कहेंगे कि गोसाईं जी ने नियमपूर्वक इस नाम का कोई ग्रन्थ नहीं रचा है। मन के उमंग में उन्होंने कुछ स्फुट बरवा छन्दों की रचना की होगी और उनके संग्रह के समय अन्यविरचित बरवै भी उनमें सम्मिलित हो गये होंगे या कर दिये होंगे और वे ही कानों में खटकते हैं एवम् मन में सन्देह उत्पन्न करते हैं। पूर्वोक्त दोनों टीकाकारों की पुस्तकों में छन्दों के स्थानक्रम में प्रभेद होना भी इसे संग्रहमात्र ही सिद्ध करता है।

षड्विंशति परिच्छेद

रामलला नहछू

यह पुस्तक एक ग्राम छन्द में लिखी गई है। इस का प्रतिचरण २१ कला का है एवम् १२ और १० पर यति है। इस का नाम लोग सोहर छन्द कहते हैं। 'काशी ना० प्र० सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है कि "इधर का ख़ास ग्राम छन्द सोहर है जो कि स्त्रियाँ पुत्रोत्सव और विवाहोत्सव आदि आनन्दोत्सव पर गाती हैं।" विहारप्रान्त में पुत्र जन्मोत्सव ही के समय के गीत को सोहर कहते हैं, अन्य समय के गीतों को नहीं।

बारात जाने के पूर्व नहछू की विधि होती है। बर को माता गोद में लेकर बैठती है और नाइन बर के केवल पैरों का नख काटती है और नखों को महावर से रंग देती है। जिस समय तक नहछू नहीं होता पैर के नखों को नाई की नहरनी से नहीं काटते।

सुनते हैं कि संयुक्त प्रदेश तथा मिथिलादि प्रदेशों में यज्ञोपवीत के समय भी नहछू की विधि होती है। पं० रामगुलाम द्विवेदी जी के कथनानुसार यह नहछू चारों भाइयों के यज्ञोपवीत के समय का है। इसके टीकाकार पं० बन्दन पाठक[1] इसे मुन्डन का नहछू कहते हैं। मुण्डन प्रायः यज्ञोपवीत के समय हुआ करता है। परन्तु इसमें अन्य तीनों भाइयों के नहछू होने का वर्णन संकेतमात्र भी नहीं है। यद्यपि रामायण में भी उनलोगों के यज्ञोपवीत तथा विवाह का सविस्तार वर्णन नहीं है तथापि गोसाईं जी ने दो चार छन्दों ही में उसका हाल पाठकों को जना दिया है।

इसमें अवधपुरी ही में स्त्रियाँ रामचन्द्र को स्पष्ट गाली दे रही हैं। रामायण तथा जानकीमङ्गल में कवि जनकपुरवासियों का गाली देना संकेत द्वारा जनाया है। यदि हम इन गालियों को समयानुसार उचित परिहास मान भी लें तो भी हम इस वाक्य को 'अहिरिन हाथ दहेड़िया सगुन लेइ आवइ हो। उनरत योवन देषि नृपति मन भावइ हो ॥' दशरथ जी तथा गोसाईं जी के योग्य परिहास नहीं मान सकते। यह दशरथजी को दुराचारी बता रहा है। बेचारी अहिरिन तो शगुन की दहेड़ी लेकर आवै और आप उसके योवन पर मोहित होकर उसे पसन्द करने लगे। गोसाईं जी ऐसा कदापि नहीं कह सकते।

इन बातों के विचार से इस पुस्तक को गोसाईं जी कृत होना मानने में हमको हिचक होती हैं।

यह पुस्तक २० तुकों में समाप्त हुई है और इसकी भाषा प्रायः ग्राम्य भाषा है। इसका कुछ नमूना देखिये।

---

१ यह टीका बांकीपुर खड्गविलास प्रेस में छपी है।

"नयन बिसाल नउनियां भौंह चमकावइ हो।
देइ गारि रनिवासहिं प्रमुदित गावइ हो॥
काहे राम जिउ साँवर लछुमन गोर हो।
की दुहुँ रानि कौसिलहीं परिगा भोर हो॥
राम अहहिं दसरथ के लछुमन आनक हो।
भरत सत्रुहन भाइ तौ श्री रघुनाथक हो॥
गोद लिये कौसल्या बैठी रामहिं बर हो।
सोभित दूलह राम सीस पर आंचर हो॥"

[मुण्डन और यज्ञोपवीत के समय भी विवाह ही का गीत गाया जाता है।]

यह नहछू किसी का रचा हुआ हो हम अपने पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वे अपने घर की स्त्रियों में उपयुक्त समय पर इसके गाने का प्रचार करेंगे क्योंकि इससे गान का आनन्द और रामनामोच्चारण दोनों ही होगा और इसका फल तो ग्रंथकर्त्ता ने स्वयम् ही लिख दिया है, 'जे यह नहछू गावइ गाइ सुनावइ हो। रिद्ध सिद्ध कल्यान मुक्ति नर पावइ हो॥'

भला इससे बढ़कर और क्या चाहिये ?

सप्तविंशति परिच्छेद

सतसई वा रामसतसई

इस ग्रंथ के गोसाईं जी कृत होने में चिरकाल से सन्देह हो रहा है। आप की शिष्य-परम्परा में पं० रामगुलाम द्विवेदी तथा पं० शेषदत्त जी दो विख्यात पुरुष हो गये हैं। प्रथम महात्मा ने इसे गोसाईं जी कृत ग्रंथावली में परिगणित नहीं किया है। दूसरे ने इसे गोसाईं जी विरचित होना मानकर इसकी टीका भी बनाई है। प्रथम के शिष्य मुं० छक्कनलाल जिन से पं० सुधाकर जी के पिता रामायण पढ़ते थे, सब लोगों से दृढ़तापूर्वक कहा करते थे कि सतसई गोसाईं जी कृत नहीं है। यह बात स्वयम् पं० सुधाकर जी ने ग्रियर्सन साहब से कही थी। और दूसरे के पुत्र के शिष्य कोदोराम ने एक छप्पै[1] में सतसई के भिन्न २ सर्गों की श्री जानकी जी के भिन्न २ अंगों से तुलना की है। लोगों का कथन है कि पं० शेषदत्त जी का टीका लिखना कोई प्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि उन्होंने यह काम उस समय किया था जब किसी को इस ग्रंथ के गोस्वामी जी कृत होने में सन्देह नहीं हुआ था तब छप्पै की बात कौन चलावै।

लोगों का यह कहना कि रामगुलाम जी कथित 'दोहावद्ध' से 'सतसई' का ही तात्पर्य है सर्वथा निःसार है। सतसई ग्रंथ के कई एक दोहों से यह बात स्पष्ट प्रगट है कि इसका नाम सतसई है। तब यदि वे इसे गोसाईं जी कृत होना मानते तो इसका वास्तविक नाम न देकर उसके लिये एक भ्रमोत्पादक शब्द क्यों लिख देते? दोहाबद्ध शब्द दोहावली ही के लिये प्रयोग हुआ है।

इस पुस्तक के प्रथम सर्ग के २१वें दोहे से विदित होता है कि वैशाख शुक्ल नवमी गुरुवार १६४२ में इसकी रचना हुई, "अहिरसना थन धेनुरस, गनपति द्विज गुरुबार। माधव सित सियजन्मतिथि सतसइया अवतार।" सम्वत् १६४२ में तो गोसाईं जी अवश्य वर्तमान थे परन्तु यह १६४२ क्या है सो ज्ञात नहीं होता। पं० सुधाकर जी ने ग्रियर्सन साहब से कहा था कि यदि तिथि ठीक है तो इसे अवश्य विक्रमीय संवत् मानना पड़ेगा। साहब ने कई रीतियों से गणना करके देखा है। वह कहते हैं कि 'यदि तिथि ठीक है तो इस के लिखने में गोसाईं

---

१. श्री जू प्रेमा पाय लंक अति गोर परा है। बक्रउक्ति है उदर रामरस अमिय भरा है॥ हृदया आतम बोध कर्म सिद्धान्त गला है। आतम ज्ञान सिधांत जहाँ है ब्रह्म हला है॥ राजनीति है सीससिय यह बिधि तुलसी दास हिय। आदि अंत सों देखिये सतसइया है सत्यसिय॥

जी ने विगत सम्वत् (चैत्र-आदि) नहीं वरन् प्रचलित संवत् (कार्त्तिक-आदि) प्रयोग किया है[१] जिस के प्रयोग की चाल उन के समय में उस प्रान्त में नहीं थी और जैसा कि उन्होंने अन्य किसी ग्रंथ में नहीं किया है। एवम् इसे शाक्य सन् मानने से दिन मिलता है किन्तु इस का रचनाकाल गोसाइं जी के शरीर त्याग के १०० वर्ष पीछे हो जाता है।' इन कारणों से लोगों को इस दोहा के क्षेपक होने का सन्देह होता है। पं०सुधाकर जी ने निश्चय उपर्युक्त दोहे के आधार पर 'तुलसी सुधाकर'[२] पृ०१६ में सतसई की रचना का समय वैशाख शुक्ल ६ गुरुवार सं० १७७७ लिखा है किन्तु १७७७ किस गणना से हुआ यह बात समझ में नहीं आती।

इस के रचना काल में जो सन्देह हो परन्तु इस के २६४वें दोहे से भान होता है कि इस के रचयिता काशी में वास करते थे। 'रविचंचल अरु ब्रह्मद्रव बीच सुवास बिचारि। तुलसिदास आसन करै अवनिसुता उर धारि।'[३] एक और दोहे से भी यही ध्वनि निकलती है। परन्तु जब इस पुस्तक में ७०० से ४७ दोहे अधिक हैं तो इन दोहों का भी किसी के द्वारा इसमें घुसाया जाना क्या असम्भव है ?

पं० सुधाकर जी इस ग्रन्थ को गाज़ीपुरनिवासी तुलसी नामक कायस्थ का बनाया इन कारणों से मानते हैं कि इसमें मकरा के लिये 'कना' शब्द प्रयोग किया गया है। जैसा कि गाज़ीपुर प्रान्त में होता है; इस के ३६२-६३ दोहों में ऐन, गैन की कल्पनाएं की गई हैं एवम् कुछ गणित जाननेवाले कायस्थों सा १३५—१३८वें दोहों में कुछ गणित सम्बन्धी कल्पनाएं भी हैं।

केवल इन्हीं कारणों से हम इसे गाज़ीपुरी तुलसी विरचित होना मानने को तैयार नहीं हैं। गोसाइं जी ने रामायण में लिखा है 'धुँआं देषि षरदूषन केरी'। तो क्या जिस प्रान्त में धुँआं मृतक शरीर को कहते हैं वहीं के कोई तुलसीदास रामायण के कर्त्ता माने जायंगे ? फ़ारसी के उन शब्दों के प्रयोग का विचार नहीं करने पर भी जो पण्डित जी के कथनानुसार हिन्दीभाषा में मिल जाने के कारण गोसाइं जी के मातृभाषा के शब्द हो गये थे, उनके लिये ऐन, गैन की कल्पना कोई बात नहीं थी जब कि हम लोग रामायण में देखते हैं कि उन्होंने फ़ारसी के पद का ज्यों का त्यों अनुवाद कर दिया है। यथा 'फूलै फलै न बेंत, यदपि सुधा वर्षहिं जलद।'

'और गर आबे ज़िन्दगी बारद। हरगिज़ अज़ शाख़े बेद बर न ख़ोरी।'

कई दोहों में जो कुछ गणित की कल्पनाएं हुई हैं वे भी ऐसी कठिन नहीं हैं कि गोसाईं जी के समान विज्ञ पुरुष उन्हें नहीं कर सके। वे अत्यन्त साधारण हैं। केवल नौ का पहाड़ा जानने ही से वैसी कल्पनाएं हो सकती हैं। और कायस्थ कुछ ही गणित क्यों जानने लगे ? यह

---

१. चैत्र-आदि के अनुसार गणना करने से १५८५ ई० के २८ अप्रैल बुध को सूर्योदय के तुरत ही बाद नवमी समाप्त हुई थी और कार्त्तिक आदि के अनुसार एक रीति से १५८६ ई० के १७ अप्रैल रविवार को एवम् दूसरी रीति से १५८४ ई० के ६ अप्रैल बृहस्पति को सूर्योदय के १ घड़ी ४ पला बाद नवमी समाप्त हुई।

२. हम इसी पुस्तक को देख कर यह समालोचना लिख रहे हैं।

३. रविचञ्चल = लोलार्क; ब्रह्मद्रव्य = गङ्गा। काशी में गङ्गा और अस्सी के बीच में लोलार्क घाट है। वहां प्रति वर्ष भादो शुक्ल षष्ठी को रात भर मेला होता है और इसी दिन से इस नगर में कजली गाना बन्द किया जाता है।

तो मानो उन के बांटे ही पड़ा है। आज भी अधिकांश कायस्थ बड़े २ गणितज्ञ पण्डितों से सौ डेग आगे ही निकल जायंगे।

परन्तु पूर्वोक्त कारणों के सिवाय इस में और भी सन्देहोत्पादिनी बातें देखी जाती हैं। गोसाईं जी के अन्य ग्रन्थों के दोहों के समान इस के दोहे सरल नहीं हैं। इसी पुस्तक में जो लगभग सवा सौ दोहे दोहावली के पाये जाते हैं उन से अन्य दोहों को मिला कर देख लीजिये। लोग कहते हैं कि विषय के गूढ़त्व से दोहे क्लिष्ट हो गये हैं। ऐसा मान लेने पर भी कूटबद्ध एक सर्ग की आवश्यकता नहीं दीखती। सुनते हैं कि गोसाईं जी कूटरचना के विरोधी थे। उन के विरोधी होने में सन्देह नहीं। कूट सर्वसाधारण की समझ से बाहर होता है और इन्हें इस ढङ्ग से कुछ लिखना अभिप्रेत नहीं था जिससे जनसमूह लाभ नहीं उठावे।

इस के अधिकांश दोहे अपना अर्थ स्वयम् व्यक्त नहीं करते। अतएव टीकाकार और शिक्षक को उनका अर्थ बोधगम बनाने के लिये अपनी ओर से बहुत से शब्दों के जोड़ने की आवश्यकता होती है। रामायणादि के दोहे कम से कम एक अर्थ स्वयम् सूचित कर देते हैं। उनका गूढ़ार्थ इत्यादि जताने के लिये कोई चाहे उन के शब्दों को कितना ही तोड़ा मरोड़ा करें या अपनी ओर से उन में शब्दों को जोड़ा करे।

इस में बहुत से शब्द भी ऐसे प्रयोग हुये हैं जो गोसाईं जी के अन्य पुस्तकों में नहीं देखे जाते। जैसे, वाय (वाहि), नारि, (गर्दन), पपिहरा, तोहरो, (तुम्हार), रासभ (गदहा), खसम (पति), जगत्र (जगत,जग), कमान (सेना), मामिला, चाड (इच्छा), वृजिन (दुःख) इत्यादि।

इस की बन्दना भी गोसाईं जी के अन्य ग्रन्थों के समान नहीं है। इस में श्री रामचन्द्र की अपेक्षा श्री जानकी जी की उपासना का अधिक उपदेश है। कदाचित् इसी से कोदोराम ने भी इस के सर्गों को श्री सीता जी के अङ्गों से तुलना की है। और यदि प्रथम सर्ग का २१वाँ दोहा ठीक हो, तो इसी से इसका अवतार भी जानकी जी की जन्मतिथि को बताया गया है।

फिर यदि गोसाईं जी ने सतसई की रचना की और दोहावली के दोहों को उस में समावेशित किया अथवा वे दोहे पहले इसी पुस्तक में थे और यहीं से उठाकर दोहावली में रखे गये, तो एकही ग्रंथ में एक वस्तु के गुण दोष वर्णन वाले दो दोहों में परस्पर विरोध नहीं देखा जाता जैसा कि नीचे के दोहों में देखा जाता है। 'ह्वै अधीन जाचत नहीं सीस नाइ नहिं लेत' और 'चातक घन तजि दूसरो जिअत न नाई नारि।' प्रथम दोहा दोहावली में भी है। ये दोनों एक ही कवि के रचे नहीं हो सकते। यदि हों भी तो वह स्वयम् दोनों को एक ग्रंथ में पास ही पास नहीं रख सकता। पार्वतीमङ्गल की कथा में तथा रामायणवर्णित शिवविवाह में भी प्रभेद है। परन्तु वे दो भिन्न २ ग्रंथों में हैं। तौ भी इसी कारण से प्रथम पुस्तक के गोसाईं जी कृत होने में लोग सन्देह करते हैं।

इन कारणों से हमें भी सतसई के गोसाईं जी विरचित होने में सन्देह होता है। जो हो, यह ग्रंथ बहुत आनन्दप्रद और ज्ञानोत्पादक है। यदि सचमुच यह तुलसी नामक किसी

कायस्थ का बनाया हुआ है तो इसकी हमें महाममता है और हम उनकी बड़ी प्रशंसा करते हैं कि उन्हों ने एक ऐसी उतम पुस्तक की रचना की जो गोस्वामी जी की ग्रन्थावली में परिगणित होने लगी।

इस के सात सर्गों में क्रमशः प्रेमाभवित; पराभक्ति, उपासना (कूटद्वारा), आत्मज्ञान, कर्मसिद्धान्त, ज्ञानसिद्धान्त तथा राजनीति का दार्शनिक मतानुसार उपदेश दिया गया है। शिक्षा तथा सिद्धान्त गोस्वामी जी के मत से मिलता है। इस पुस्तक का गुण केवल दस पाँच दोहों के उद्धृत कर देने से नहीं जाना जायगा। अतएव इसका कोई छन्द उल्लेख नहीं करके हम पाठकों को परामर्श देंगे कि वे इसे स्वयम् पढ़कर लाभ उठावें।

पूर्वोक्त बैजनाथदासकृत इस पुस्तक की टीका भी लखनऊ के मुं० नवलकिशोर के छापेखाने में १८८६ ई० में प्रकाशित हुई है। टीका निस्सन्देह उत्तम है।

येही कई एक पुस्तकें पुरातन काल से गोसाईं जी की बनाई कही जाती हैं। अतएव इन की विस्तार पूर्वक समालोचना की गई है। इधर लोग बहुत से और भी ग्रन्थ गोसाईं जी के माथे मढ़ते गये हैं और मढ़ते जा रहे हैं। यहां तक कि उनकी संख्या अब ३२ तक पहुंच गई है। किन्तु इधर वाले ग्रंथों में से किसी को कोई गोसाईं जी कृत होना मानता है और किसी को कोई। इसका विवरण इस पुस्तक के पृ० १६१ में दिया गया है। इन में से दो चार के सिवाय हमें अन्य पुस्तकों के देखने का सौभाग्य नहीं हुआ है। जिन्हें देखा है वे निश्चय गोसाईं जी विरचित प्रतीत नहीं होतीं। यथा, 'रामशलाका'। इस की समालोचना पृ० ३५४ में हो चुकी है।

छप्पै रामायण—हनुमानबाहुक तथा कवितावली के छप्पै से इस के छन्दों का मिलान कीजिये। उनके ५वें तथा ६ठे चरणों में अट्ठाइस २ मात्रायें हैं एवम् १५ तथा १३ कलाओं पर यति है, जैसा कि नियमानुसार होना चाहिये। इस पुस्तक के प्रत्येक छप्पै के छठे चरण में २६ मात्रायें हैं एवम् १४ और १५ कलाओं पर यति है और ५वें चरण में तेरह २ मात्रों पर यति है। गोसाईं जीकृत छप्पै में ऐसा होने की सम्भावना नहीं। कई स्थानों में लिङ्गादि में भी गड़बड़ है। यथा, 'निसरेउ कर से तीर जाय संचानहि मारी', 'सुधि ब्याधा बिकलाने', 'भक्ति देहु राम आपना।' कई एक शब्द भी विचित्र हैं। यथा, इतिहासना (इतिहास); दिहि (दइ, दिया)।

संकटमोचन वा हनुमानाष्टक—श्री हनुमान जी की स्तुति में आठ सवैयाओं की यह एक छोटी सी पुस्तिका संकट निवारण के हेतु बनाई गई है, क्योंकि अन्त की सवैया में कहा है 'बेगि हरो हनुमान महा प्रभु जो कछु संकट होय हमारो' और इसके अन्त में कहा है "यह अष्टक हनुमान को, बिरचित तुलसी दास। गंगा दास जु प्रेम सों, पढ़ै होय दुख नास।" यह गङ्गादास कौन हैं? और जब किसी सवैया में गोसाईं जी का नाम नहीं है तो इन्हों ने इसे तुलसीदासविरचित कैसे कहा यह ज्ञात नहीं होता।

हनुमानचालीसा—इस के आदि में रामायण वाला दोहा "श्री गुरु चरन...... बरनो रघुबर विमल जस......" है। परन्तु इस में रघुवर यश नहीं वरन् हनुमान यश

वर्णन किया गया है। यह दोहा क्या पीछे जोड़ा गया ? इस में ४० चौपाइयां और आदि अन्त में एक २ दोहा है। अन्त के चौपाइयों में कहा गया है "यह सत बार पाठ कर जोई। छूटे बन्दि महा सुख होई।। जो यह पढ़ै हनुमान चलीसा। होइ सिद्ध साखी गौरीसा।।" इसी से कमल कुँअरी गोसाईं जी के दिल्ली के वन्दिगृहि में रखे जाने के समय इस की रचना बताती हैं और बहुत से लोग सिद्धिप्राप्ति के लिये इसका नित्य पाठ भी करते हैं।

हमारी समझ में गोस्वामी जी के सिर पर पुस्तकों के भारी बोझ देने की आवश्यकता नहीं। यदि लोगों का यह खयाल हो कि रचना का बाहुल्य ही गोसाईं जी की सुख्याति का कारण है और होगा तो हम इसे महाभूल और भ्रम कहेंगे। कई एक प्रामाणिक ग्रथों के सिवाय यदि अन्य सब ही ग्रंथ अन्य कवियों के बनाये सिद्ध हो जायं तौ भी इन महात्मा की सुख्याति में कदापि धब्बा नहीं लग सकता। केवल एक रामचरित मानस ही के कारण इन का मस्तक जगत् में सर्वदा उन्नत रहेगा और साहित्यसंसार में ये सदा पूज्य तथा उच्चासन के अधिकारी रहेंगे।

अष्टाविंशति परिच्छेद

गोसाईं जी की संस्कृतज्ञता

गोसाईं जी केवल हिन्दी भाषा ही के प्रवीण पण्डित नहीं थे; आप संस्कृतभाषा के भी पूरे ज्ञाता थे और आप ने संस्कृत ग्रन्थों का पूर्ण रूप से परिशीलन किया था; जिसके प्रभाव से संस्कृत ग्रन्थों के विषय, आशय और भाव इन के चित्त पर भली भांति खचित हो गये थे। इसी से ये संस्कृत श्लोक भी बना सके हैं और इसी से वेद, शास्त्र, पुराण तथा अन्याय ग्रन्थों की बातें अपनी रचनाओं में ऐसी अनुपम रीति से समावेशित करने में इन्हों ने ऐसी सफलता पाई है। संस्कृत ग्रन्थों के बहुत से उत्तम भाव तथा ललित उपमायें भी, कहीं ज्यों की त्यों और कहीं रूपान्तरावस्था में इन की पुस्तकों में पाई जाती हैं। इस परिच्छेद में उसी के कुछ उदाहरण दिखलाये जाते हैं।

बालकाण्ड।

१. मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल कलिमल दहन॥

"मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥"

२. बंदऊँ मुनिपद कंज रामायन जेहि निरमयेउ।
सखर सकोमल मंजु, दोष रहित दूषन सहित॥

"नमस्तस्मै कृता येन पुण्या रामायणी कथा।
सदूषणाऽपि निर्दोषा सखराऽपि सकोमला॥"

३. सोइ जल अनल अनिल संघाता।

"धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः।"—मेघदूत

४. एक छत्र एक मुकुटमनि, सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ।

"निर्वर्णं रामनामेदं केवलं च स्वराधिकम्।
सर्वेषां मुकुटं छत्रं मकारो रेफव्यञ्जनम्॥"

—महारामायण

५. बांझ की जान प्रसव की पीरा।

"नहि वन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम्।"

६. बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना ।। इत्यादि।

"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः सशृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्।।"—उपनिषद्।

७. जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।। इत्यादि।

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।"—गीता।

८. संभु बिरंचि बिष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना ।।
यस्यांशेन समुद्भूता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।।"—महारामायण।

९. ....अद्भुत रूप बिचारी। लोचन अभिरामं........खरारी ।।

"तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदाद्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ।।"— भागवत।

१०. ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहे।
मम उरबासी यह उपहासी सुनत धीरमति थिर न रहे ।।

"जठरे तव दृश्यन्ते ब्रह्माण्डाः परमाणवः।
त्वं ममोदरसम्भूत इति लोकान् विडम्बसे ।।"—अध्यात्म।

पुनः—"बिभर्त्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभूदहो नृलोकस्य विडम्बनं हितम्—भागवत।

११. ......प्रभु हंसि दीन्ह मधुर मुसकानी।

देषरावा मातहिं निज''' '''कोटि कोटि ब्रह्माण्ड ।।
अगनित रवि ससि सिव चतुरानन। बहुगिरि सरित सिंधु महि कानन ।।

"मुखं लालयती राजन् जृम्भतो ददृशे इदम्।"

"खरोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च ।।
द्वीपान्नगांस्तद् दुहितृर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि ।।" भागवत।

१२. जिन की रही भावना जैसी । हरि मूरति देखी तिन तैसी ।। इत्यादि ।

"मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्त्तिमान् ।
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।
मृत्यु र्भोजपतेर्विराड् विदुषां तत्त्वं परं योगिनां ।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गङ्गतः साग्रजः ।।"—भाग० ।

१३. रावण बान महा भट भारे । इत्यादि ।

"शृणुत जनककल्पाः क्षत्रियाः शुल्कमेते दशवदनभुजानां कुण्ठिता यत्र शक्तिः ।
नमयति धनुरैशं यस्तदारोपणेन त्रिभुवनजयलक्ष्मीर्जानकी तस्य दाराः ।।"

—हनुमन्नाटक ।

१४. दीप दीप के भूपति नाना ।...बीर बिहीन मही मैं जाना ।।

"आद्वीपात्परतोऽप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागताः
कन्यायाः कलधौतकोमलरुचेः कीर्त्तेश्च लाभः परः ।
नाकृष्टं न च टङ्कितं न नमितं नोत्थापितं स्थानतः
केनापदमहो महद्धनुरिदं निर्वीरमुर्वीतलम् ।।"—हनुमन्नाटक ।

१५. दिस कुंजरहु कमठ अहि कोला ।...होहु सजग सुनि आयसु मोरा ।।

"पृथ्वी स्थिरा भव भुजङ्गम धारयैनां त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः ।
दिक्कुञ्जराः कुरुत तत्त्रितये दिधीर्षां रामः करोति हरकार्मुकमाततज्यम् ।।"

—हनुमन्नाटक ।

१६. हमहिं तुम्हहीं सरबर कस नाथा ।

देव एक गुन धनुष हमारा । नव गुन परम पुनीत तुम्हारा ।।

"भो ब्रह्मन्भवता समं न घटते संग्रामवार्त्तापि नो
सर्वे हीनबला वयं बलवतां यूयं स्थिता मूर्द्धनि ।
यस्मादेकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्तमुर्वीभुजा-
मस्माकं भवतो यतो नवगुणं यज्ञोपवीतं बलम् ।।"—हनुमन्नाटक ।

अयोध्याकाण्ड ।

१. को न कुसंगति पाइ नसाई । रहइ न नीच मते चतुराई ।।

"धीरोऽत्यन्तदयान्वितोऽपि सुगुणाचारान्वितो वाथवा
नीतिज्ञो विधिवाददैशिकपरो विद्याविवेकोऽथवा ।
दुष्टानामतिपापभावितधियां सङ्गं सदा चेद्भवे—
त्तद्बुध्या परिभावितो व्रजति चेत्साम्ये क्रमेण स्फुटम् ।।"—अध्यात्म ।

२. काहु न कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत करम भोग सब भ्राता ॥

"सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥"

३. चरन कमल रज कहुँ सब कहई । मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥

"मानुषीकरणरेणुरस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी ।"

४. आरत काह न करइ कुकरमू ।

"बुभुक्षितः किं न करोति पापम् ।"

५. अरध तजहिं बुध सरबस जाता ।

"सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः ।"

आरण्यकाण्ड

१. मातु पिता भ्राता हितकारी ।....अमितदानि भर्त्ता वैदेही ।

"मितं ददाति जनको मितं भ्राता मितं सुतः ।
अमितस्य हि दातारं भर्त्तारं पूजयेत्सदा ॥"—शि० पुराण ।

२. बृद्ध रोग बस जड़ धन हीना । अंध बधिर क्रोधी अति दीना ॥
ऐसेहु पति कर किए अपमाना । नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥

"क्लीवं च दुरवस्थं वा व्याधितं वृद्धमेव च ।
सुखितं दुःखितं चापि पतिमेकं न लङ्घयेत् ॥"—शि० पु०

अन्यत्र—"दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जड़ो रोग्यधनोऽपि वा ।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥"—भागवत ।

३. जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं । इत्यादि ।

"चतुर्विधास्ताः कथिता नार्यो देवि पतिव्रताः ॥
स्वप्नेपि यन्मनो नित्यं स्वपतिं पश्यति ध्रुवम् ।
नान्यं परपतिं भद्रे उत्तमा सा प्रकीर्त्तिता ॥
या पितृभ्रातृसुतवत् परं पश्यति सद्धिया ।
मध्यमा सा हि कथिता शैलजे वै पतिव्रता ॥
बुद्ध्या स्वधर्ममनसा व्यभिचारं करोति न ।
निकृष्टा कथिता सा हि सुचरित्रा च पार्वति ॥"—शिवपुराण ।

४. आगे राम अनुज पुनि पाछे। ...ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ॥

"अग्रे यास्याम्यहं पश्चात्त्वमन्वेहि धनुर्धरः।
आवयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरात्मनोः ॥"—अध्यात्म।

५. पूछत चले लता तरु पाती। ....तुम देषी सीता मृग नैनी ॥

"भो भो वृक्षा बहुकुसुमयुता वायुना गुञ्जमानो
भो भो श्रेण्याखगमृगगणा देवदेवीमरण्या।
भो भो सर्वे जीवाश्च महिजलेष्वग्निवायुर्नभश्च
भो भो विदिशि दिशि च दृष्टा प्राणप्रिया जानकी ॥"

६. सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देषिये। भूप सुसेवित बस नहिं लेषिये ॥
राखिय नारि जदपि उर माहीं। जुबति सास्त्र नृपति बस नाहीं ॥

"शास्त्रं सुचिन्तितमपि प्रतिचिन्तनीयं
स्वाराधितोऽपि नृपतिः परिशङ्कनीयः।
अङ्के स्थिताऽपि युवतिः परिरक्षणीया
शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम् ॥"

७. फल भरि नम्र बिटप सब, रहे भूमि नियराय।

"भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः।"

किष्किन्धाकाण्ड

१. कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटइ अवगुनन्हि दुरावा ॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। स्रुति कह संत मित्र गुन एहा ॥

"पापान्निवारयति योजयते हिताय, गुह्यानि गूहति गुणान्प्रकटीकरोति।
आपद्गतं न च जहाति ददाति काले, सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥"

२. आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥ इत्यादि।

"परोक्षे कार्य्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥"

३. अनुज बधू भगिनी सुत नारी। इत्यादि।

"दुहिता भगिनी भ्रातुर्भार्या चैव तथा स्नुषा।
समा यो रमते तासामेकामपि विमूढधीः ॥"
पातकी स तु विज्ञेयः स वध्यो राजभिः सदा।
त्वं तु भ्रातुः कनिष्ठस्य भार्यां यो रमसे बलात् ॥—अध्यात्म।

४. लछिमन देषहु मोरगन, नाचत बारिद पेषि।
गृहि विरतिरत हरष जस विष्णु भगत कहं देषि ॥
"मेघागमोत्सवे हृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः।
गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाच्युतजनागमे ॥"—भाग०

५. दामिनि दमकि रहत घन माहीं। षल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥
"लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः।
स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥"—भाग०

६. बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे। षल के बचन संत सह जैसे॥
"गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षजचेतसः॥—भाग०

७. छुद्र नदी भरि चली तोराई। जस थोरेहु धन षल इतराई॥
"आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः।
पुंसो यथाऽस्वतन्त्रस्य देहद्रविणसम्पदः॥"—भाग०

८. दादुर धुनि चहुं दिसा सोहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥
"श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूका व्यसृजन् गिरः।
तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद् ब्राह्मणा नियमात्यये॥"—भाग०

९. नव पल्लव मे बिटप अनेका। साधक मन जिमि मिले बिबेका॥
"पीत्वाऽपः पादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्त्तयः।
प्राक्क्षामास्तपसा श्रान्ता यथा कामानुसेवया॥"—भाग०

१०. सस संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी॥
"क्षेत्राणि सस्यसम्पद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः।
धनिनामुपतापञ्च दैवाधीनमजानताम्॥"—भाग०

११. सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥
"शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः।
भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया॥"—भाग०

१२. भानु पीठि सेइय उर आगी। स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी॥
"पृष्ठतः सेवयेदर्कं जठरेण हुताशनम्।
स्वामिनं सर्वभावेन परलोकममायया॥"

सुन्दरकाण्ड

१. साषामृग की बड़ी मनुसाई । साषा ते साषा पर जाई ।। इत्यादि

"शाखामृगस्य शाखायाः शाखां गन्तुं पराक्रमः ।
यत्पुनर्लङ्घितोऽम्भोधिः प्रभावोऽयं प्रभो तव ।।"—हनु० ना०

२. जो संपति सिय रावनहिं; दीन्ह दिये दस माथ ।
सोइ सम्पदा विभीषनहीं, सकुचि दीन्ह रघुनाथ ।।

"या विभूतिर्दशग्रीवे शिरश्छेदेऽपि शङ्करात् ।
दर्शनाद्रामदेवस्य सा विभूतिर्विभीषणे ।।"—हनु० ना०

लंकाकाण्ड

१. प्रियबानी जे सुनहिं जे कहहीं । ऐसे जग निकाय नर अहहीं ।।
बचन परम हित सुनत कठोरे । सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे ।।

"सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।।"

२. षल तव कठिन बचन सब सहऊं । नीति धर्म मैं जानत अहऊं ।।

"रे रे शाखामृग त्वामहं धर्मशीलतया कटुप्रलापिनमपि न हन्मि उक्तं च—
यथोक्तवादी दूतः स्यान्न स वध्यो महीभुजा ।।"—हनु० ना०

३. तब प्रभु नारि बिरह बलहीना । अनुज तासु दुष दुषी मलीना ।।
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ । अनज हमार भीरु अति सोऊ ।।—इत्यादि ।

"रामस्त्रीविरहेण हारितवपुस्तच्चिन्तया लक्ष्मणः
सुग्रीवोऽङ्गदशल्यभेदकृतया निर्मूलकूलद्रुमः ।
गण्यः कस्य विभीषणः स च रिपोः कारुण्यदैन्यातिथि—
र्लङ्कातङ्कविटङ्कपावकपटुर्वध्यो ममैकः कपिः ।।"—हनु० ना०

४. कहु रावन रावन जग केते ।—इत्यादि ।

"रे रे रावण रावणाः कति बहूनेतान्वयं शुश्रुमः
प्रागेकं किल कार्त्तवीर्यनृपते दोर्दण्डपिण्डीकृतम् ।
एकं नर्त्तनदापितान्नकवलं दैत्येन्द्रदासीगणै
रन्यं वक्तुमपि त्रपामह इति त्वं तेषु कोन्योऽथवा ।।"—हनु० ना०

५. राम मनुज कस रे सठ बंगा । धन्वी काम नदी पुनि गंगा ।।

"रे रे रावण हीनदीनकुमते रामोऽपि किं मानुषः
किं गङ्गापि नदी······कामोऽपि धन्वी नु किम् ।।"—हनु० ना०

६. जौं षल भयेसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राषि न तोही ॥
"रामवध्यो न शक्तः स्याद्रक्षितुं सुरसत्तमैः।
ब्रह्मरुद्रेन्द्रसंज्ञैश्च त्रैलोक्यप्रभुभिस्त्रिभिः ॥"

उत्तरकाण्ड

१. नर सहस्र महं सुनहु पुरारी। कोउ इक होइ धरम व्रतधारी ॥ इत्यादि।
"मुग्धे शृणुष्व मनुजोऽपि सहस्रमध्ये धर्मव्रती भवति सर्वसमानशीलः
तेष्वेव कोटिषु भवेद्विषये विरक्तः सदासक्तो भवति कोटिविरक्तमध्ये।
ज्ञानिषु कोटिषु नृजीवनकोऽपि मुक्तः कश्चित्सहस्रनरजीवनमुक्तमध्ये
विज्ञानरूपविमलोऽप्यथ ब्रह्मलीनस्तेष्वेव कोटिषु सकृत् खलु रामभक्तः ॥"
—महारा०।

२. जो ज्ञानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआई बिमोह मन करई ॥
"ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥"—मार्क० पु०।

३. सो दासी रघुबीर कै, समुझे मिथ्या सोपि।
छूट न रामकृपा बिनु, नाथ कहउं पद रोपि ॥
"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥"—गीता।

४. निज सिद्धान्त सुनावउं तोहि। सुनि मन धरु सब तजि भजु मोही ॥
"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।"—गीता।

५. भगतिवंत अति नीचउ प्राणी। मोहि प्रानप्रिय सुनु मम बानी ॥
"अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥"—गीता।

६. जोइ तन धरउं तजउं पुनि, अनायास हरिजान ॥
जिमि नूतन पट पहिरइ, नर परिहरइ पुरान ॥
"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥"—गीता।

७. ईश्वर अंश जीव अविनासी।
"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।"—गीता।

८. जे अस भगति जानि परिहरहीं। केवल ज्ञान हेतु स्रम करहीं ॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोषित आक फिरहिं पय लागी ॥

"ये रामभक्तिममलां सुविहाय रम्यां ज्ञाने रताः प्रतिदिनं परिक्लिष्टमार्गे।
आरान्महेन्द्रसुरभीं परिहृत्य मूर्खा अर्क भजन्ति सुभगे सुखदुग्धहेतुम् ॥"

—महा० रा०

६. सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं विषयरत मंद मंदतर ॥
कांच किरिच बदले जिमि लेहीं। करतें डारि परसमनि देहीं ॥

"जन्मेदं व्यर्थतां नीतं भवभोगोपलिप्सया।
काचमूल्येन विक्रीतो हन्त चिन्तामणिर्मया ॥"

गीतावली

१. षेलत चलत करत मग कौतुक बिलमत सरित सरोवर तीर।
तोरत लता सुमन सरसीरुह पियत सुधा समनीर।
बैठत बिमल सिलनि बिटपनि तर पुनि पुनि बरनत छाह समीर ॥

"लतानुपातं कुसुमान्यगृह्णात् स नद्यवस्कन्दमुपास्पृशच्च ॥
कुतूहलाच्चारुशिलोपवेशं काकुत्स्थ ईषत् स्मयमान आस्त ॥"

—भट्टिकाव्य, सर्ग २।

२. गहि करतल मुनि पुलक सहित कौतुकहिं उठाय लियो।
नृपगन मुषनि समेत नमित करि सजि सुष सबहिं दियो ॥
आकरष्यो सिय मन समेत हरि हरष्यो जनक हियो।
भंज्यो भृगुपति गर्ब सहित तिहुलोक बिमोह कियो ॥

"उत्क्षिप्तं सह कौशिकस्य पुलकैः सार्द्धं मुखैर्नामितं
भूपानां जनकस्य संशयधिया साकं समास्फालितम्।
वैदेही मनसा समं च सहसा कृष्टं ततो भार्गव—
प्रौढाहङ्कृतिदुर्मदेन सहितं तद्भग्नमैशं धनुः ॥"—हनुमन्नाटक।

३. मंदाकनि मज्जत अवलोकत त्रिपाप त्रयताप नसाई।

"मन्दाकिनीं समासाद्य सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥"—महाभारत।

४. दशरथ सो न प्रेम प्रतिपाल्यो हुतो सकल जग साषी।
बरबस हरत निसाचरपति सो हठि न जानकी राषी ॥
मरत न मैं रघुबीर बिलोक्यों तापुस बेष बनाए।
चाहत चलत प्रान पांवर बिनु सियसुधि प्रभुहिं सुनाए ॥

"न मैत्री निर्व्यूढा दशरथनृपे राज्यविषया
न वैदेही त्राता हठहरणातो राक्षसपतेः।
न रामस्यास्येन्दुर्नयनविषयोऽभूत्सुकृतिनो
जटायोर्जन्मेदं वितथमभवद्भाग्यरहितम् ॥"—हनुमन्नाटके।

कवितावली

आंधरो अधम जड़ जाजरो जरा जनम सूकर के सावक ठकाठकेला मग में।
गिर्‌यो हिय हहरि हराम हो हराम हन्यो हाइ हाइ करत परीगा काल फग में॥
तुलसी बिसोक ह्वै त्रिलोकपति लोक गयो नाम के प्रताप बात विदित है जग में।
सोइ राम नाम जो सनेह सों जपत जन ताकी किमि महिमा कही है जात अग में॥

"दैवाच्छूकरशावकेन निहतो म्लेच्छो जराजर्जरो।
हारामेति हतोऽस्मि भूमिपतितो जल्पंस्तनुं त्यक्तवान्॥
तीर्णो गोपदवद्भवार्णवमहो नाम्नः प्रभावात्पुनः।
किं चित्रं यदि रामनामरसिकास्ते यान्ति रामास्पदम्॥"—वाराहपुराण

वैराग्यसन्दीपिनी

महि पत्री करि सिंधु मसि, तरु लेषनी बनाइ।
तुलसी गनपति सों तदपि, महिमा लिषी न जाइ॥

"असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे।
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमूर्वी॥
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं।
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥"

नवविंशति परिच्छेद

गोसाईं जी का मत

गोसाईं जी सुप्रसिद्ध धर्म्मसंशोधक श्री १०८ स्वामी रामानन्दजी के सम्प्रदाय के वैष्णव थे और इन का मत विशिष्टाद्वैत था। श्री १०८ शङ्कराचार्य्य जी एवम् श्री १०८ रामानुज स्वामी जी के अद्वैत मत से और इन के मत से आचार व्यवहार आदि की विभिन्नता के अतिरिक्त मुख्य भेद यह देखा जाता है कि श्री शङ्कराचार्य्य के ब्रह्म के स्थान में श्री रामानुज स्वामी ने विष्णु वा नारायण को माना है वैसे ही गोसाईं जी ने दशरथ-नन्दन श्रीरामचन्द्र ही को परब्रह्म ज्योतिस्वरूप सर्वव्यापी आदिगुणविशिष्ट जगत का कारण एवम् ब्रह्मा विष्णु महेशादि का उत्पत्तिकर्त्ता माना है।

"बिनु पग चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। गहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
जेहि इमि गावहिं बेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दशरथसुत भगत हित, कौसलपति भगवान॥
पुनः—जगत प्रकास प्रकासक रामू। मायाधीश ज्ञान गुन धामू॥
पुनः—संभु बिरंचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई॥"

और श्री सीता जी को इन्हों ने आदि शक्ति का अवतार माना है—

"आदि शक्ति जो जग उपजाया। सोउ अवतरहिं मोर यह माया॥"

और आप ने कहा है कि श्री रामचन्द्र तथा सीता जी एवम् परब्रह्म तथा उस की शक्ति कथनमात्र ही में भिन्न है नहीं तो वस्तुतः दोनों एक ही हैं—जैसे,

"गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।"

ये बाल्यावस्था ही में वैष्णव हुये थे। यह बात 'वाहुक' के ४०वें कवित्त 'बालपने सुधे मन राम सनमुष भयों' से सिद्ध होती है।

ये शुद्ध रामोपासक थे और अन्य देवतों की बन्दना स्तुति केवल राम ही के नाते करते थे क्योंकि इन का सिद्धांत यह था कि 'पूजनीय प्रिय परम जहां ते। मानिय सकल राम के नाते॥' और सबों से उन्हीं की कृपा तथा भक्ति प्राप्ति के लिये विनय करते थे। विनयपत्रिका इस बात की पूरी साची दे रही है। जिस देवता तथा प्राणी को श्री रामचन्द्र से जितना अधिक

प्रेम सम्बन्ध था ये भी उसे उतना ही अधिक मानते थे। 'सेवक सखा स्वामि सिय पिय के' तथा रामभक्तिदाता जानकर आप ने शिवजी को सब देवतों से श्रेष्ठ माना है। जब रामचन्द्र जी ही ने कहा है 'संकर भजन बिना नर, भगति न पावै मोर' तब ये उन का गुणगान तथा सम्मान क्यों नहीं करते और उन्हें सर्वश्रेष्ठ क्यों नहीं समझते?

हां! इन्हों ने कहीं २ देवतों को कौन कहे, देवराज को भी कुवाच्य कहा है। परन्तु यह बात केवल ऐसे अवसरों में देखी जाती है जब वे लोग किसी रामभक्त के प्रतिकूल कोई बात विचारने या करने पर उद्यत हुये हैं, अन्यथा नहीं। क्योंकि ये राम के दास को राम से अधिक समझते थे। नहीं तो इन्हें किसी देवता में द्वेषबुद्धि नहीं थी, और होती कैसे? ये श्रीराम के अनन्यभक्त थे और अनन्य का लक्षण इन्हों ने रामचन्द्र के मुख से यह कहलाया है 'सो अनन्य जा के अस मति न टरै हनुमंत। हम सेवक सचराचर रूप रासि भगवंत॥'

जब देवतों के सम्बन्ध में ऐसी बात थी तब राक्षसगण को जो खुले मैदान श्री राम तथा रामभक्त के विरोधी और महान् अपकारक थे, ये कुवाच्य कहने में क्यों संकोच करते, एवम् कोई अन्य निन्दनीय पुरुष ही इन के क्रोध और कुवाक्य से कैसे बचता?

ये रामगुणगान में निर्गुण ब्रह्म का भी विशेष वर्णन और प्रतिपादन करते गये हैं। ऐसा करना उपयुक्त ही था, क्योंकि निर्गुण और सगुण वस्तुतः दोनों अभिन्न हैं:—

"सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेमबस सगुन सो होई॥"[1]

हमारी समझ में निर्गुण को सगुण का नामान्तर मानना भी अयोग्य नहीं है। विज्ञान-पाठी जानते हैं कि धूप में, जो उजला दीखता है, अनेक रङ्गों का सम्मेलन है। परन्तु अनेक रङ्ग सम्पन्न होने पर भी वह रङ्गरहित अर्थात् उज्ज्वल ही कहलाता है, क्योंकि उसे कोई विशेष रङ्ग कहना योग्य नहीं, जब तक किसी कारण विशेष से उस उज्ज्वल पदार्थ का कोई विशेष रङ्ग देदीप्तमान हमलोगों को देखने में नहीं आवे। उसी प्रकार सर्वगुणसम्पन्न रहने अर्थात् सगुण रहने पर भी ब्रह्म निर्गुण ही कहलावेगा जब तक कोई कारणवश कोई विशेषगुण विशिष्ट हो वह भूतल में आविर्भूत होकर उसे पवित्र नहीं करे।

जब सगुण और निर्गुण एक ही वस्तु है तब ज्ञानयोग तथा भक्तियोग समान ही फल-दायक होगा, क्योंकि भक्त अपने उपास्यदेव में मन लीन कर देता है और ज्ञानी निज आत्मा ही में मन को लीन रखता है, यह बात भी गोसाईं जी भली भांति जानते थे। इन्हों ने स्पष्ट ही कहा है कि ज्ञान और भक्ति में कुछ भेद नहीं है और दोनों भवजनित दुःख के नाशक हैं।"

"भगतिहिं ज्ञानहिं नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा।"

---

१. श्रीगुरु नानक ने भी कहा है:—"निर्गुन आप सगुन भी ओही। कलाधार जिमि सगले मोही॥ निराकार आकार आप, निर्गुन सर्गुन एक। एकहिं एक बखानन्नो, नानक एक अनेक॥" (सुखमणि)

भवसंभव क्लेश के विनाश करने में तो ज्ञान और भक्ति में कुछ भेद नहीं, परन्तु ज्ञान दुष्कर तथा दुष्प्राप्य है और भक्ति सहज तथा सुगमप्राप्य है। क्योंकि संसार सर्वथा माया का वशीभूत हो रहा है। इस के पंजे से निकलना और इसके फंदे से बचना बड़े ही धीरवीर का काम है। गोसाईं जी कहते हैं कि योग, ज्ञान, विराग ये सब पुरुष हैं और माया तथा भक्ति स्त्रीस्वरूपिणी हैं। भक्ति और माया दोनों स्त्रीरूपिणी होने से माया भक्ति को नहीं मोह सकती, क्योंकि नारी को नारी क्या विमोहित करेगी। परन्तु ज्ञान के पुरुष रूप होने से विश्व-मोहिनी माया का प्रपंच शीघ्र अनायास उसे अपने जाल में फंसाने को समर्थ हो जाता है। अर्थात् ज्ञानप्राप्त होने पर भी माया के प्रभाव से ज्ञानी का ज्ञान भ्रष्ट हो जाने की सम्भावना है। और परमेश्वर की भक्ति पर सानुकूल रहने से ईश्वरवशवर्त्तिनी माया भक्ति के निकट जाने का साहस नहीं करती तथा भय खाती है।

माया क्या है उसी को बताते हैं कि 'गो गोचर जहं लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई॥' उसी के वश में संसारमात्र है और वह दो प्रकार की है—विद्या और अविद्या। उन में से 'एक रचै जग गुन बस जाके। प्रभुप्रेरित नहिं निज बल ताके॥ एक दुष्ट अतिसय बल रूपा। जा बस जीव परा भव कूपा॥ सो प्रभु भ्रूविलास पगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा॥' इसी से वह अविद्या रूपी माया प्रभु के भक्तों पर प्रभाव दिखलाने को समर्थ नहीं होती।

भक्त पर ईश्वर के सानुकूल रहने का कारण यह कहा गया है कि वे ज्ञानी को प्रौढ़ सुत के सदृश और भक्त को अबोध शिशु के समान समझते हैं, क्योंकि ज्ञानी को अपना बल रहता है और भक्त को ईश्वर का भरोसा होता है। अर्थात् ज्ञानमार्ग निराश्रय है और भक्ति-पथ में सगुण उपासना का सहारा है। अतएव ज्ञानमार्ग दुःसाध्य और भक्तिपथ सगुन ब्रह्म के अवलम्बन से सुगम एवम् सुलभ है। 'रामचरित मानस' के उत्तरकाण्ड में 'ज्ञानदीपक निरूपण' प्रकरण में ज्ञानमार्ग की कठिनाई की रूपक द्वारा व्याख्या कर के इस गूढ़ विषय को इन्हों ने सरल रीति से समझा दिया है और इन के तथा गीता के मत से कोई वास्तविक विरोध नहीं रह गया है। इस मार्ग की कठिनाई के ध्यान ही से इन्हों ने 'ज्ञान पंथ कृपान कै धारा। परत षगेस न लागहिं बारा॥' कहा है एवम् ज्ञान पर भक्ति की प्रधानता दी है और रामचन्द्र के मुख से भी कहलवाया है कि सुविचारी बुद्धिमान 'पाएहु ज्ञान भगति नहिं तजहीं' जिस में माया की धोखेबाजी से सुरक्षित रहें।

इन्हों ने बहुतेरों के समान केवल ज्ञान ही को मुक्ति का कारण और भक्ति को ज्ञान प्राप्ति का एक मुख्य साधन नहीं माना है, वरन् भक्ति को ही मुक्ति माना है 'राम भगति सोई मुकुति गोसाईं।' क्योंकि भक्ति करते २ अविद्याजनित अज्ञानान्धकार विनाश हो चित्त शुद्ध हो जाता है और नित्यप्रति प्रभु पादपद्म में उत्तरोत्तर प्रीति बढ़ते २ अवाञ्छनीय होने पर भी भक्त को मुक्ति आप ही आप प्राप्त हो जाती है। इसी से जिस में भक्ति का प्राधान्य न हो ऐसी मुक्ति इन्हों ने कभी नहीं मांगी है। और इसी से इन्हों ने कहा है 'जेहि जोनि जन्मों करमबस सिय-राम पद अनुरागऊं।' अन्य कोई भक्त भी ऐसी मुक्ति और ज्ञान नहीं चाहता।

पूर्वोक्त बातों से गोसाईं जी का यह सिद्धान्त प्रगट होता है कि प्रथम तो भक्ति बिना ज्ञान का होना ही असम्भव है और यदि हो भी तो भक्ति द्वारा पुष्टित नहीं रहने से थोड़े ही में माया के फंदे में फंस कर उस के नष्ट हो जाने का भय रहता है जैसा कि गुरु नानक जी ने भी कहा है कि 'भक्ति बिना बहु डूबे सियाने ।' भक्ति में इस का भय नहीं। क्योंकि जैसे माता-पिता छोटे बालकों की रखवारी करते हैं वैसे ही प्रभु भक्त की रखवारी करते रहते हैं। स्वयम् श्री रामचन्द्र जी कह रहे हैं कि 'भक्त मुझे प्राणप्रिय है और भक्तिहीन पुरुष मुझे नहीं भाता। भक्तिहीन बिरंचि किन होई। सब जीवन सम प्रिय मोहि सोई ॥' सच है, छोटा बालक किस को प्यारा नहीं होता ? और यदि वह ज्ञानवान हो तब तो वह और भी अधिक स्नेहपात्र होता है। इसी कारण से आर्त्त, अर्थार्थी, जिज्ञासू तथा ज्ञानी ये चार प्रकार के भक्तों में से गोसाईं जी ने 'ज्ञानी भक्त' को प्रभु का विशेष प्यारा कहा है। वही पराभक्ति का अधिकारी होता है। पराभक्ति ही को गोसाईं जी पूर्ण भक्ति मानते थे जिसका लक्षण आपने विनयपत्रिका के १६७वें पद में कहा है :—

"रघुपति भगति करत कठिनाई। कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई ॥ जो जेहि कला कुसल ता कहं सोइ सुलभ सदा सुपकारी। सफरी सनमुष जल प्रवाह चले सुरसरि वहै गज भारी ॥ ज्यों सर्करा मिले सिकता महुं बल तें न कोउ विलगावै। अति रसज्ञ सूछम पपीलका विनु प्रयासहिं पावै ॥ सकल दृस्य निज उदर मेलि कै सोवै तजि निद्रा जोगी। सोइ हरिपद अनुभवै परम सुप अतिसय द्वैत वियोगी ॥ सोक मोह भय हरप दिवस निसि देस काल तहं नाहीं। तुलसिदास यह दसा हीन संसय निरमूल न जाहीं ॥"

उपर्युक्त चारो प्रकार के भक्तों को नाम ही का आधार होता है। परमेश्वर की प्रसन्नता के निमित्त भगवतभजन और नामजाप ये दो मुख्य साधन हैं। प्रथम के विषय में आपने कहा है कि 'रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निरबान। ज्ञानवंत अपि सोपि नर, पशु बिनु पूंछ समान ॥' तथा 'बिनु हरिभजन न भव तरहिं, यह सिद्धान्त अपेल' और रामनाम का माहात्म्यवर्णन में तो रामचरित्रमानस में आप ने अपूर्व पांडित्य प्रदर्शन किया है, अर्थात् रामनाम की अनेक उपमायें देकर आपने अपनी प्रबल कविताशक्ति का भी परिचय दिया है। 'बंदउं राम नाम रघुबर के' यहाँ से प्रराम्भ कर कई चौपाइयों और दोहों में नाम माहात्म्य वर्णन करते २ इन्होंने यहां तक कह दिया है 'राम न सकहिं नाम गुन गाई' इस नाममहिमा कथन में इन्हों ने उपनिषद् तथा वेदान्त विषय को भी महा रुचिकर और सरल रीति से बोधगम्य बना दिया है। इन्हों ने यह भी स्पष्ट कहा है कि कलि में कर्मयोग एवम् ज्ञानयोग साधन मनुष्यों के लिये कठिन है, अतएव परमेश्वर का नाम जपने ही से जीव का कल्याण होगा।

श्री गुरु नानक जी ने भी नाम की महिमा का बहुत वर्णन किया है और कहा है :—

"सभी जप सभी तप सभी चतुराई। उझड़ी भ्रमे राहि न पाई ॥

बिनु सूझै कोथै ना पाय। नाम विहुणा मट्टै चाय।।"—महल १।

"नाम बिहूना मुक्ति न होइ।" —महल ५।

प्राचीन तथा मध्य युग के कृस्तानी धर्मपुस्तकों में भी ईसाइयों के प्रभु महात्मा ईसामसीह के नामोच्चारण की महिमा का वर्णन पाया जाता है। ओरिजेन कहता है कि 'ईसामसीह के नामोच्चारण में, जो उन के जीवन-कथा-पाठ में हुआ करता है, यमदूतों के भगाने की शक्ति है। नाम रहस्य का भी गुप्त विज्ञान है, जो उसके शिष्यवर्ग को शक्ति प्रदान करता है। ईसा का नाम भी इसी नामविज्ञान के अन्तर्गत है।' दूसरे लोगों का कथन सुनिये। **टामस ए केम्पिस**—पवित्र नामोच्चारण, पाठ में लघु, स्मरण में सहज, मनन में सुखद एवम् रक्षण में बलिष्ठ है। **पी० पेल्बर्ट**—अपने महापवित्र नाम के प्रभाव से जो पांच[१] अक्षरों का है वह नित्यप्रति पापियों का उद्धार किया करता है। **एस० बोनावेन्चुरा**—ऐसा कोई नहीं है जो भक्तिपूर्वक उस का नाम उच्चारण करे और उस से लाभ न उठावे। पुन:—नाम प्रतापवान और अद्भुत है। जो इसे धारण करेंगे उन्हें मरण काल में भय नहीं व्यापेगा। **रिकार्डस डी० एस० लारन्शियो**—रोगनिवृत्तिके निमित नाम ही अलम है, क्योंकि कोई ऐसी महामारी नहीं जो नामप्रभाव से निश्चय नाश न हो। **एस० विग्रेट्**—नाम उच्चारण सुन कर भूत प्रेत ऐसा भागते हैं मानो आग के सामने से भागते हों। सब भूत प्रेतादि इस नाम का सम्मान करते और इस से भय खाते हैं। जिस जीव को वे चंगुल में पकड़े रहते हैं उसे नाम-उच्चारण सुन कर वे परित्याग कर देते हैं। **आनोरियस**—नाम सर्वोपरि मधुर है और इसमें स्वर्गीय स्वाद मिलता है।[२]

---

१. Jesus (जीसस)।

२. *Origen* himself says that the power of Exorcism lies in the name of Jesus, which is uttered as the stories of 'His life are being narrated.' He talks of a 'Secret science of names', which confers powers upon the initiated. 'The name of Jesus,' he adds 'comes under this science of names.' *Thomus a Kempis*—"The holy utterance, short to read, easy to retain, sweet to think upon, strong to protect." P. *Pelbart*—"By his most holy name, which consists of five letters, He daily offers pardon to sinners." *S. Bonaventura* "No one can devoutly utter Thy name without profit" and again "Glorious and wonderful is the name. Those who keep it will have no fear when at the point of death." *Recardus de S. Laurentio*—"The name alone is sufficient for healing; for there is no plague so obstinate that does not

आधुनिक कृस्तानी भजनों में भी नाम के आदर का चिन्ह देखा जाता है।

इन कथनों से स्पष्ट भान होता है कि हरिनामकीर्त्तन का बड़ा माहात्म्य है और इस बात को सब देश के धर्म्मप्रचारक मानते आते हैं। परन्तु हरिनाम कीर्त्तन तथा ईश्वर में अनुराग बिना सत्संग के नहीं हो सकता और इस के बिना भक्ति भी प्राप्त नहीं हो सकती। "बिन सत्संग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गए बिनु रामपद, होइ न दृढ़ अनुराग।" और "भगति सुतंत्र सकल गुन षानी। बिनु सत्संग न पावहिं प्रानी।" इसी से नवधा भक्ति में प्रथम भक्ति सत्संग ही बताई गई है।

गोस्वामी जी में नवधा भक्ति वर्त्तमान थी। निज इष्ट देव में भक्तों की शृंगार, दास, वात्सल्यादि भिन्न २ प्रकार की भावनाएं होती हैं। गोसाईं जी का श्री रामचन्द्र में दास्यभाव ज्ञात होता है और उस में कुछ वात्सल्य की भी झलक देखी जाती है।

गोसाईं जी भक्तिपथ के एक प्रधान पथिक तथा पथप्रदर्शक हुये हैं। इन की भक्ति पराकाष्टा की थी। इसी से ये अपने ग्रन्थों को ऐसा भक्तिपूर्ण बनाने और उस में ऐसा भक्ति-स्रोत बहाने को समर्थ हुए हैं कि उन के पाठ से पाठक भक्तिरस में निमग्न हो जाता है। इन की प्रत्येक पुस्तक भक्तिरस में पगी हुई है। सूरदास जी के सिवाय अन्य कोई इन के समान भाषा का भक्तकवि दृष्टिगोचर नहीं होता। ये सर्वदा भक्तिभाव में विभोर श्री रामचन्द्र के चरणकमलों में चित्त लगाये प्रेमपूर्वक उन्हीं का गुणगान करते, भक्तिरीति दृढ़ाते, प्रेमाभक्ति की प्रधानता तथा आवश्यकता दिखलाते और जताते गये हैं। प्रेम की प्रधानता इन्होंने स्वयम् ही नहीं कही है वरन् शिवजी के मुख से भी कहलवाया है:—"हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहि मैं जाना।। अगजग मय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटे जिमि आगी।"

ये निष्काम भक्त थे क्योंकि ये जानते थे कि संसार में भक्ति से बढ़ कर अन्य कोई पदार्थ नहीं, उसी की प्राप्ति में सब कुछ प्राप्त हो गया। अन्य कामना की क्या आवश्यकता। निष्काम भजनानन्दी के हृदय में भगवान सदा वास करते हैं जैसा कि कहा है:—

"बचन, कर्म, मन मोर गति, भजन करै निष्काम।
ता के हिरदयकमल में, सदा करौं बिसराम।।"

---

inevitably yield to the name." *S. Bridget*—"Evil spirits flee, as if from fire when they hear the Name," and "all demons honor this Name and fear it. When they hear it, they at once release the soul which they have been holding in their talons.' *Honarius*—"The Name is full of all sweetness and of divine relish" Vide "Gleamings from the Bhakta Mala." by. G. A. Grierson and the Translation of Ramayan of Tulsi Das, by Growse, Bal Kand; p. 19, note,—edited by Ram Narayan Lal.

प्रिय पाठकों से हमारी प्रार्थना है कि वे किसी सम्प्रदाय वा धर्म के अनुयायी क्यों न हों निज इष्ट देव प्रभु के पादपद्मों में सदा सानुराग चित्त दिये प्रेमपूर्वक उन के भजन और गुणकीर्त्तन में अनुरत रहेंगे। इसी से ईश्वर के दयापात्र होने और उभय लोक में कल्याण की आशा है। शेली (Shelly) के कथनानुसार सामान्य कीटानुकीट भी प्रेम और पूजन द्वारा परमात्मा में लीन हो सकता है।

"The spirit of the worm beneath the sod,
By love and worship blends itself with God."

त्रिंशत् परिच्छेद

वाल्मीकीय तथा अध्यात्म रामायण

इन रामायणों का विषय वर्णन करने के पूर्व हम वाल्मीकीय रामायण के रचना-कालादि के सम्बन्ध में कुछ कहना उचित समझते हैं। अन्य प्राचीन ग्रन्थों के समान इस के प्रणयनकाल में भी मतभेद है। सर विलियम जोन्स इस का निर्माणकाल ई० सन् के २०२४ वर्ष पूर्व बताते हैं, टाड ११००, वेन्टली ६५० तथा ग्रेशियो १३०० वर्ष ईसा के पहले मानते हैं।

कोई २ कहते हैं कि यूनानी लेखकों ने रामायण का उल्लेख नहीं किया है; चीनी यात्री फाहियान भी, जो ४००-५०० ई० में भारतवर्ष में आया था, अयोध्या का हाल नहीं लिखता है; और रामायण में दो स्थानों में (एक बालकाण्ड और एक किष्किन्धा में) यवन शब्द आया है। इन कारणों से रामायण की रचना यूनानियों के भारतवर्ष में आने के बहुत दिन पीछे हुई होगी।

ग्रेशियो का कथन है कि यूनानियों ने भारतवर्ष के केवल जलवायु, उपज, वस्त्र, शस्त्र, रीति-रसम, प्रदेशों, नदियों तथा पर्वतों का हाल लिखा है और कुछ नहीं[1] और फाहियान ने भी केवल बौद्धमठ, बौद्धविहार, भिक्षुक, गाथा तथा बौद्धनियमों का वर्णन किया है।

यवन शब्द प्रयोग के विषय में शेगेज कहते हैं कि पहले यह शब्द भारतवर्ष के पश्चिमस्थ प्रदेशों की जातियों के सम्बन्ध में प्रयोग होता था और पीछे यूनानियों के लिये प्रयोग होने लगा (अर्थात् रामायण वाले यवन शब्द को यूनानियों से सम्बन्ध नहीं है)।

आर्थर मेक्डानेल प्रोफेसर जकोबी से सहमत होकर उसे क्षेपक मानते हैं और कहते हैं कि यह क्षेपक ई० सन् के ३०० वर्ष पूर्व हुआ। आप कहते हैं कि बुद्ध का नाम जो रामायण के एक स्थान में आया है वह भी क्षेपक है।[2] पालीभाषा में जो 'दशरथ जातक' पुस्तक है उस में कुछ उलट-फेर कर रामकथा लिखी गई है और उसमें लंकाकांड का १२८वाँ श्लोक पाली के ढङ्ग से गद्य में लिखा गया है। महाभारत में भी रामकथा तथा इस रामायण के कई एक श्लोक हैं। रामायण में पाटलीपुत्र का वर्णन नहीं है जो कि ई० सन् के पूर्व ३८० में (मगध के राजा) कालाशोक के समय बसाया गया और मेगास्थिनीज़ के समय

---

१. मेगास्थिनीज़ का लिखा हुआ ग्रंथ विद्यमान नहीं है। अन्य ग्रंथकारों ने उस के ग्रंथ से जो २ अंश उठा कर अपनी २ पुस्तकों में उद्धृत किया है वे ही सब श्वानवेक् (Dr. Schwanbeck) द्वारा संकलित हो कर मेगास्थिनीज़कृत भारतवृत्तान्त के नाम से प्रचलित है।

२. क्षेपक प्रेमीगण देखें कि भविष्यत् में इस का कैसा अनिष्टकर परिणाम होता है। इन्हीं क्षेपकों के कारण बहुत से लोग वाल्मीकीय को कलह का बना कहने पर तैयार हुये हैं।

भारतवर्ष की राजधानी हो गया था। यह सब बातें कह कर आप रामायण का समय ईस्वी सन् ५०० वर्ष पूर्व बताते हैं।[१]

ग्रेशियो कहते हैं कि रामचन्द्र से सुमित्र पर्यन्त, जो विक्रमादित्य के समसमायिक थे, ५६ राजे हुये और प्रत्येक का औसत २४ वर्ष शासनकाल मानने से लगभग १३०० वर्ष ईसा के पूर्व होता है। इन का यह भी कथन है कि रामायण का वर्णन राजतरंगिनी में आया है। कश्मीर के राजा द्वितीय दामोदर को शापवश कोढ़ हो गया था और रामायणश्रवण से उस शाप का मोचन कहा गया है। द्वितीय दामोदर त्रितीय गोनर्द से, जिस का समय राजतरंगिनी के अनुवादक ट्रायर ने ईस्वी सन् के ११८० वर्ष पूर्व स्थिर किया है, पांच पीढ़ी ऊपर थे। प्रत्येक राजा का शासनकाल २४ वर्ष मानने से, इस से भी रामायण का समय लगभग १३०० वर्ष ईसा के पूर्व होता है।

अमेरिका के 'नालेज' नामक पत्र में वाल्टर आल्ड ने लिखा है कि 'रामजन्म के समय जिन जिन ग्रहों के जिन जिन राशियों में होने का रामायण में उल्लेख है वे सब ग्रह १० फरवरी को १७६१ वर्ष ई० सन् के पूर्व उन राशियों में थे। इस से प्रतीत होता है कि रामायण की रचना उसी समय के लगभग हुई होगी। अर्थात् साहब की राय में रामायण को बने कोई ३६७० वर्ष हुए।" [२]

निश्चय यह एक पुष्ट प्रमाण है। वाल्मीकि जी को हम लोग रामचन्द्र जी का समकालीन पुरुष मानते हैं। बनवास के समय सीता जी उन्हीं के आश्रम में ठहरी थी; वहीं लवकुश का जन्म हुआ; वहीं वे लोग बढ़े, पढ़े इत्यादि।

परन्तु जर्मनी पण्डित लासेन साहब तथा उनके अनुयायी कई एक देशीय महाशय भी वाल्मीकि जी की रामायण का कर्त्ता होना स्वीकार करना नहीं चाहते और मेक्डानेल साहब लवकुश नामों को संस्कृत शब्द 'कुशिलव' (भांट वा नाटक खेलनेवाला) की व्याख्या मानते हैं और कुछ नहीं। किन्तु हम नहीं समझते कि ऐसा होने पर भी इन के व्यक्ति विशेष के नाम होने में क्या आपत्ति है?[३] कौन जाने रामायण वर्णित कुशलव घटना के कारण ही यह शब्द पीछे उक्त अर्थ में प्रयोग होने लगा हो।

वाल्मीकीय रामायण का कई भाषाओं में अनुवाद हुआ है। लड़कपन से सुनते आते हैं कि अकबर के संस्कृतज्ञ अमात्य फ़ैज़ी ने भागवत, वाल्मीकीय रामायण, गीता तथा अन्याय संस्कृत ग्रंथों का फारसी भाषा में अनुवाद किया था।

हमारे द्वितीय पितृव्य पूज्यचरण मुं० जगदम्बा सहाय के हाथ की १८२७ ई० की लिखी हुई भागवत की एक प्रति हमारे पुस्तकालय में है। पूज्यपिता श्री काली सहाय को कई बार उसका आद्योपांत पाठ करते देखा है। यह अनुवाद गद्य में है।

---

१. Vide, 'A History of Sanskrit Literature' by Arthur A. Macdonell, p.306-9.

२. सरस्वती, भाग १०, पृष्ठ २, ४७१-७२।

३. Hunter, Fisher, Hawker, Falconer इत्यादि अन्य अर्थ बोधक शब्द होते हुऐ भी व्यक्ति विशेष के नामों के लिये प्रयोग हुआ करते हैं।

१६०१ ई० का बरैलीनिवासी मुं० रोशनलाल बरिस्टर के आज्ञानुसार प्रकाशित पद्यबद्ध गीतानुवाद भी हमारे पास है। यह अनुवाद स्वतंत्र है।

चौथे कायस्थ कान्फ्रेंस के समय जब हम परम प्रेमी काशीवासी स्वर्गीय पं० अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य्य के साथ सं० १६४६ में लाहौर जा रहे थे, तब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कनिष्ठ भ्राता बाबू गोकुलचन्द से मिलने गये थे। प्रसंगवश उन्हों ने श्री सीताजी की लज्जाशीलता के वर्णन में फ़ैज़ी का यह पद्य कहा थाः—

"तनशरा पैरहन उरियां न दीद।
चो जान अन्दर तनस्त वन जां न दीद ॥"

अर्थात् परिधान वस्त्र ने सीताजी को नग्न नहीं देखा, जैसे जान शरीर में है पर शरीर प्राण को नहीं देखता है।

'आईन अकबरी' ब्लाक् मैन जिल्द १, पृ० १०५ से ज्ञात होता है कि अकबर ने पहले पहल संस्कृत रामायण का गद्यानुवाद करने का भार क़ादिर बख़्श बदायूनी को सौंपा था। उस अनुवाद की बहुत प्रशंसा हुई थी। वह पुस्तक शायद अमेरिका युक्त प्रान्त के कर्नल हन्ना के संग्रह में है।

इस रामायण का आनन्द खां (तख़ल्लुस ख़ुश) कृत एक दूसरा आधुनिक और अपूर्ण गद्यानुवाद है। अन्त भाग का अनुवाद नहीं पाया जाता।

ग्रीफिथ साहब ने अंगरेज़ी में इस का पद्यबद्ध अनुवाद किया है। अंगरेजी गद्य में एवम् इटेलियन तथा फ्रेंच भाषा में यह अनूदित हुआ है। और ल्यटिन भाषा में भी इस के अंशानुवाद की बात सुनी जाती है। इस का हिन्दी अनुवाद भी छपा है और मूल के साथ इस की अनेक टीकाएं भी छपी हैं।

अब आगे वाल्मीकीय तथा अध्यात्म रामायण का विषय संक्षिप्ततः वर्णन किया जाता है इस के पाठ से पाठकों को सहज ही ज्ञात हो जायगा कि रामचरित मानस तथा उपर्युक्त उभय रामायणों के कथाप्रसंग में कहां कहां प्रभेद है।

बालकाण्ड—वाल्मीकीय रामायण के आरंभ में नारद जी वाल्मीकिजी को रामकथा संक्षेप में सुना गये हैं। फिर रामायणरचना का कारण कहा गया है कि एक क्रौंच पक्षी का बध होते देख कर वाल्मीकिजी का हृदय दुःख से महा संतप्त हुआ है, तब ब्रह्मा ने उन के हृदय की शान्ति के निमित्त नारद से सुनी हुई रामकथा काव्यबद्ध करने को उन्हें स्वप्न में आदेश किया है। फिर सूची समान रामकथा कही गई है। इसके अनन्तर अयोध्या नगर का वर्णन, दशरथ के अश्वमेधयज्ञ का वृत्तान्त, ऋषिश्रृंग की कथा और उनकी सहायता से दशरथ के पुत्रेष्टियज्ञ करने का हाल कहा गया है। फिर बानरों की उत्पत्ति एवं चारो भाइयों के जन्म नामकरणादि तथा उन के विवाह की चिन्ता का हाल वर्णित हुआ है।

इस में गोस्वामी जी कृत रामायण के समान रामावतार, रावणावतार तथा मदनदहन की कथाएं नहीं हैं। इस में यह लिखा हुआ है कि विश्वामित्र के संग जाते समय गंगा सरयू के

संगम पर एक आश्रम में बहुत से ऋषियों को हजारों वर्षों से तपस्या करते जानकर रामचन्द्र के उस विषय में पूछने पर विश्वामित्र ने कहा है कि यह कामाश्रम है; यहाँ महादेव जी पूर्वकाल में तपस्या करते थे और जब वे अपना विवाह करके सब देवतों के संग चले जाते थे, उस काल में मन्मथ ने उन का मन मथन करना चाहा था, तब शिवजी ने 'हुम' कहकर उस की ओर देखा और वह भस्म हो गया। उस स्थान से भागते हुए जहां उस की देह गिरी वह अङ्गद देश[1] कहलाता है।

अध्यात्म में नारद का ब्रह्मा से प्रश्न; तब पार्वती-शिव-सम्बाद है। सीता जी ने हनुमान जी से रामायण की संक्षिप्त कथा कही है। और रामचन्द्र ने आत्म-अनात्म तत्व वर्णन किया है। अनन्तर महादेव जी विस्तारपूर्वक रामकथा कहने लगे हैं। गोरूप धारण कर सब देवतों के संग क्षीरसागर के तीर जा पृथ्वी ने भगवान की स्तुति की है। दशरथ ने अपने दामाद ऋषिश्रृंग की सहायता से पुत्रेष्टियज्ञ किया है और रामचन्द्रादि का अवतार हुआ है।

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार दोनों भाइयों को साथ लेकर विदा होने पर[2] विश्वामित्र ने राम को 'बलाअतिबला' विद्या सिखाई है जिस से भूख प्यास का क्लेश नहीं होता। फिर कामाश्रम, सरयू उत्पत्ति, गंगा के दक्षिणतटस्थ मलद और करुष देश[3] की एवम् ताड़का और मारीच की उत्पत्ति की कथाएं कही गई हैं। मार्ग ही में ताड़काबध हुआ है। अनन्तर रामचन्द्र को नाना प्रकार का देवास्त्र प्रदान कर मुनि ने उन्हें शस्त्रसंहार-विद्या भी सिखलाई है। फिर सिद्धाश्रम[4] तथा बावन जी की कथाएं और मारीच सुबाहु आदि के संग युद्ध का हाल वर्णित है।

तब धनुषयज्ञ देखने के लिये जनकपुर प्रस्थान की बात है। पहले दिन सांझ को लोग सोन किनारे ठहरते हैं। रात को रामचन्द्र के पूछने पर कि 'यह कौन देश है' मुनि ने कुशनाभ राजा की कथा अर्थात् निज वंशावली एवम् गंडक की उत्पत्ति सुनाई है। दूसरे दिन सोन पार हो मध्याह्नकाल में लोग गंगा किनारे पहुँच कर वहीं ठहर गये हैं। मुनि ने वहां पर गंगाउमा

---

१. अङ्गद देश को वर्तमानकाल का बलिया जिला बताते हैं।

२. इस पुस्तक का पृ० १५० नोट, ५ देखिये।

३. यही पीछे ताड़का बन हो गया था। यह स्थान शाहाबाद में था।

४. सिद्धाश्रम को कोई २ हजारीबाग के ज़िले में बताते हैं। परन्तु वहाँ से मिथिला जाते समय कोई कितनाही द्रुतगामी क्यों न हो डेढ़ दिन में गंगा तट पर नहीं पहुँच सकता, और जानेवाले को सोन पार भी होना नहीं पड़ेगा, यदि वेग्लर साहब का यह कथन स्वीकार भी कर लिया जाय कि रामचन्द्र के समय सोन नदी दाऊदनगर से टेढ़ी होकर फतुहा के पास गंगा में मिलती थी (Archaelogical Survey of India, Vol. VIII, p. 6-II) वरन् ताड़कावध के अनन्तर शाहाबाद से सिद्धाश्रम जाते समय वाल्मीकिजी लोगों को सोन पार कराते। वस्तुतः सिद्धाश्रम शाहाबाद में बगसर से दक्षिण-पूर्व की ओर कहीं था।

की उत्पत्ति वर्णन किया है। प्रातःकाल गंगा पार हो विशाल नगरी में पहुँचे हैं। ग्रन्थ में उस नगर का बहुत लम्बा चौड़ा वर्णन दिया हुआ है।

इस में अहिल्या के शापित होने की कथा है, परन्तु उन के शिला होने, रामचन्द्र के उस शिला को पद से स्पर्श करने तथा उन के पतिलोक गमन की बातें नहीं हैं। गौतम जी ने यह शाप दिया है कि 'यह स्थान सर्वथा निर्जन हो जायगा, तू सब जीवों से अदृश्य निराहार वायुभक्षण करती भूशायिनी हो तपस्या करती रहोगी; राम के इस घोरबन में आने पर तू पवित्र होगी।' रामचन्द्र के वहाँ पधारने पर अहिल्या पूर्ववत् हो गई हैं। रामलक्ष्मण ने उनके चरणों की बन्दना की है और उन का सत्कार स्वीकार किया है। गौतम जी भी उस समय वहाँ आ गये हैं और उन से सत्कारित तथा पूजित हो रामचन्द्रादि जनकपुर सिधारे हैं।

"वातभक्षा निराहारा तप्यन्ति भस्मशायिनी।
अदृश्या सर्वभूतानामाश्रयेऽस्मिन् वसिष्यसि॥
यदा त्वेतद्वनं घोरं रामो दशरथात्मजः।
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा पूता भविष्यसि॥
विश्वामित्रवचः श्रुत्वा राघवः सह लक्ष्मणः।
विश्वमित्रं पुरस्कृत्य आश्रमं प्रविवेश ह॥
ददर्श च महाभागां तपसा द्योतितप्रभाम्।
धूमेनाभिपरीताङ्गी दीप्तामग्निशिखामिव॥
शापस्यान्तमुपागम्य तेषां दर्शनमागता।
पाद्यमर्घ्यं तथा तीर्थं चकार सुसमाहिता॥"

'अध्यात्म' में मुनि के संग जाने के अनन्तर ताड़का बध, कामाश्रमवास, सिद्धाश्रम में सुबाहु आदिक बध, जनकपुर की ओर कूंच, और गंगा के इसी पार अहिल्यावाली घटना [1] और यहीं मल्लाह का रामचन्द्र का पैर धोना कहा है।

उस में गौतम ने शाप दिया है कि हे दुष्टे! इस मेरे आश्रम में रात दिन निराहार घोर तप करती हुई शिला के उपर स्थित हो एवम् घास, पवन, वर्षा इन को सहती हुई एकाग्रचित्त से तप करती रह। जब रामचन्द्र तेरे आश्रम की शिला के उपर चरण रखेंगे तब तू पाप से छूट जायगी:—

"दुष्टे त्वं तिष्ठ दुर्वृत्ते शिलायामाश्रमे मम।
निराहारा दिवारात्रं तपः परममास्थिता॥
यदा तवाश्रमशिलां पादाभ्यामाक्रमिष्यति।"

---

१. इस पुस्तक का पृ० १५१ देखिये।

उस आश्रम में जाने पर 'मैं राम हूं' ऐसा कह कर राम ने अहिल्या को प्रणाम किया है।[1]

जनकपुर की फुलवारी की कथा इन दोनों ग्रन्थों में नहीं है। और अध्यात्म में विश्वामित्र जी के कहने पर जनक ने अपने मंत्रियों को आज्ञा देकर घंटा तथा रत्नादिकों से भूषित शिवधनु को ५००० मनुष्यों के द्वारा मँगवाया है एवम् उसे सब राजों के सामने रामचन्द्र ने तोड़ा है।

'वाल्मीकीय' में जनकपुर पहुंचने पर निज पुरोहित, गौतमतनय सतानन्द सहित जनक का इन लोगों का आगत स्वागत करना, सतानन्द का विश्वामित्र के तप तेजादि का हाल कहना, निज माता के शापमोचन का वृत्तान्त सुन कर प्रसन्न होना वर्णित है।

दूसरे दिन जनक जी ने राम लक्ष्मण के सहित विश्वामित्र को बुला भेजा है और मुनि को यह कहने पर कि 'ये दोनों बालक धनुष देखना चाहते हैं, यदि दिखा दीजिये तो ये कृतार्थ हों' जनक ने कहा है 'कि महादेव जी ने यह धनुष दक्षयज्ञ के समय[2] देवतों के वध के निमित्त उठाया था, परन्तु उनके विनय पर प्रसन्न हो यह धनुष देवतों ही को दे दिया था, जिन लोगों ने इसे हमारे पूर्वज निमि के पुत्र देवराट को धरोहर दिया।' एक बार सीता जी के इसे उठा लेने[3] से हम ने प्रण किया कि जो प्राणी इस धनुष को तोड़ेगा उसी से हम सीता का विवाह कर देंगे। देश २ के राजा आये, परन्तु कोई इसे तोड़ने को समर्थ नहीं हुये। अतएव हम ने उन लोगों को बिदा कर दिया जिस से क्रुद्ध हो कर सब लोगों ने हमारा नगर घेर कर सीता को बलात्कार लेना चाहा। वर्ष दिन पूरा होने पर दुर्ग संरक्षण का कोई उपाय न देख हम ने तपस्या द्वारा देवतों से चतुरङ्गिणी सेना प्राप्त की जिस के भय से वे लोग भाग गये। अच्छा, हम इन लोगों को धनुष दिखला देते हैं, यदि ये लोग रोदा भी चढ़ा देंगे तो हम

---

१. पद्मपुराण में शिला होने की बात देखी जाती है :—"गच्छतस्तस्य रामस्य पादस्पर्शान्महाशिला। काचिद्योषाऽभवत्सद्यो विस्मितं मुनिरब्रवीत्॥ शापदग्धा पुरा भर्त्रा राम शक्रापराधतः। अहल्याख्या शिला जज्ञे शतलिङ्गी कृतस्वराट्॥ त्वदंघ्रिस्पर्शनात्तस्यै शापान्तं प्राह गौतमः। तस्मादियं ते पादाब्जस्पर्शाच्छुद्धाऽभवत्प्रभो॥"

रघुवंश भी ऐसा ही कहता है।

२. कूर्म पुराण में यही है। परन्तु भट्टि काव्य में इस को वह धनुष होना लिखा है जिस से शिवजी ने त्रिपुरा का नाश किया था। :—'अजिग्रहन्तं जनको धनुस्तद् येनार्दिदद्दैत्यपुरं पिनाकी।' यह कथन अध्यात्म तथा भारत से मिलता है।

३. उठाने की बात कई रीति से कही जाती है—(क) सीता ने सखियों के संग खेलते समय उठा लिया; (ख) खेलते समय उनकी ओढ़नी में लग कर हट गया; (ग) यह समझ कर कि धनुष की पूजा के लिये पिताजी को दूर जाते कष्ट होता है सीता जी इसे घर उठा लाईं; (घ) माता के सावकाश नहीं रहने से धनुष के स्थान को पूजा के निमित्त एक दिन लीपने गईं और उसे हटा कर उन्हों ने चौकोर चौका लगा दिया।

दशरथनन्दन के साथ कन्या का विवाह कर देंगे।'[1] अन्ततः आठ पहियों के छकड़े पर खींचकर ५००० वीरों ने उस धनुष को नगर के बाहर लाया है और जनक जी तथा मुनि की आज्ञा पाकर रामचन्द्र ने उस पर रोदा चढ़ा उसे तोड़ दिया है।

जनक का नहीं वरन् मुनि का लिखा पत्र अवध गया है। बारात आने पर दशरथ ही ने वशिष्ठ जी से कहलवा कर अन्य तीनों भाइयों का विवाह वहीं कराया है। विवाह हो जाने पर विश्वामित्र जी उत्तर की ओर तपस्या करने चले गये हैं। बारात लौटने पर भरत तथा शत्रुहण जी मामा युधाजित के संग नानिहाल गये हैं।

वाल्मीकि तथा अध्यात्म दोनों ही में बारात लौटती समय परशुराम जी ने मार्ग में आकर रामचन्द्र पर क्रोध किया है और उन्हीं से साधारण रीति से बातचीत भी हुई है। रामचन्द्र ने उन के वैष्णवी धनुष[2] पर रोदा चढ़ा कर उन से पूछा है कि 'कहिये, इस से आप की गति का निरोध करें या आप के तपोबल द्वारा उपार्जित लोकों का क्षय कर दें?' भार्गव ने कहा है कि 'मेरी गति का निरोध न हो, हम स्वर्गसुख भोगना नहीं चाहते' और वे तब महेन्द्र पर्वत पर चले गये हैं।

अध्यात्म में दशरथ जी की रानियां तथा गुरुपत्नी भी बारात गई हैं। विवाहान्तर सीता की उत्पत्ति की कथा तथा रामस्तुति है। परशुराम जी निज वृत्तान्त वर्णन कर और रामचन्द्र की स्तुति कर महेन्द्रपर्वत पर गये हैं।

अयोध्याकाण्ड—रामचन्द्र के सद्गुणों के विचार से एवम् अपने शरीर में जरागम तथा स्वर्ग में ग्रह नक्षत्रादि की आकृतियां विकृत देखने से दशरथ ने निज मंत्रियों की सम्मति से रामचन्द्र को युवराज बनाना स्थिर किया है एवम् उसकी तैयारियां होने लगी हैं। उन्हों ने सभा में रामचन्द्र से यह बात कही है और अन्तःपुर में भी बुलाकर उन से एकान्त में कहा है कि हम तुम्हें कल ही युवराज बना देने की इच्छा करते हैं जिस में भरत के आने के पूर्व ही यह कार्य्य सम्पन्न हो जाय, नहीं तो उन के यहां रहने पर कदाचित् कोई विघ्न खड़ा हो जाय।'[3]

---

१. रघुवंश के अनुसार रामचन्द्र को बालक समझ जनक को उन्हें धनुष दिखलाने में हिचक हुआ था :—

'अब्रवीच्च भगवन् मतङ्गजैर्यद्बृहद्भिरपि कर्म दुष्करम्।
तत्र नाहमनुमन्तुमुत्सहे मोघवृत्ति कलभस्य चेष्टितम्॥'

सर्ग १२, श्लोक ३१।

२. रामचन्द्र के बल की स्वयम् परीक्षा करने के लिये वैष्णवी धनुष दिया, क्योंकि वह शिवधनु के समान ही कठिन था।

३. इस वाक्य से अनुमान होता है कि दशरथ ने इसी विचार से भरत जी को नाना के घर भेज दिया था। गोसाईं जी ने भी मंथरा के मुख से यह बात कहलवाई है 'भरत भूप पठए ननिअउरे। राम मातु मत जानब रउरे।' परन्तु भरत से राजा के भय करने का कोई कारण रामायण से विदित नहीं होता। हां, भरत जी के मामा से हो तो हो, क्योंकि कैकेयी से इसी प्रतिज्ञा पर विवाह हुआ था कि उन के उदर का पुत्र सिंहासन पर बैठाया जायगा। परन्तु सच पूछिये तो भरत के उपस्थित नहीं रहने ही से यह सब उत्पात हुआ।

यह सुसमाचार सुन कर कौशल्या इस कार्य्य की सफलता के निमित्त देवपूजन कर विष्णुध्यान में ऐसी निमग्न हुई हैं कि भाई तथा स्त्री के सहित रामचन्द्र के उन के निकट जाने पर सुमित्रा के कहने से उन्हों ने नेत्र खोला है और इन लोगों को देखा है। वहां से अपने भवन में जाकर दशरथ तथा वशिष्ठ जी के उपदेशानुसार रामचन्द्र जी सीता जी के सहित संयम में प्रवृत्त हुये हैं।

अध्यात्म में पहले ब्रह्मा के भेजे हुये नारद जी रामचन्द्र के पास आकर रावण वध के निमित्त निवेदन कर गये हैं। तदनन्तर युवराजपद प्रदान का विचार और उद्योग हुआ है। बुढ़ापासूचक उज्ज्वल केश देखने अथवा नक्षत्रादि की विकृत मूर्त्तियां दृष्टिगोचर होने की कथा उस में नहीं है। उस के अनुसार रामचन्द्र ने अपनी माता को उस समय ध्यानावस्थित देखा है जब वे वनगमन के लिये उन से बिदा होने गये हैं।

रामचरितमानस तथा अध्यात्म जैसा वाल्मीकि जी ने सरस्वती द्वारा मंथरा की बुद्धि भ्रष्ट नहीं कराई है। प्रातः काल कोठे से नगर की सजावट देख किसी दाई से पूछने पर उसे यथार्थ बात ज्ञात हुई है और तब उस ने अपनी कुटिलाई से कैकेयी का मत फेर उन्हें दो बर मांगने पर उद्यत किया है।

राजा ने कैकैयी को पहले बहुत कुछ समझाया बुझाया है, किन्तु उन का हठ देख दुःख से महा कातर हो क्रोध में यह भी कहा है कि 'मेरे मरने पर तू मेरा शरीर न छूये तथा भरत मेरी अन्त्येष्टिक्रिया नहीं करे'।[१]

जब सुमंत के संग रामचन्द्र कैकैयी के भवन में गये तब छिपे २ लक्ष्मण भी वहां गये हैं। राजा ने रामचन्द्र से कहा है कि 'मुझ स्त्रीवशीभूत को कारागार में डाल कर तुम राज्य करो।' इस पर सम्मत न होकर जब रामचन्द्र अपनी माता से बिदा होने गये हैं तब उन्हों ने तथा लक्ष्मण ने इन्हें बन जाने से रोकने की बड़ी चेष्टा की है; एवम् रामचन्द्र को सिंहासनारूढ़ कराने को उद्यत हो कर लक्ष्मण जी ने कहा है कि 'आप भाग की प्रबलता बखान रहे हैं और हम राजा को बन्दी करके एवम् भरत शत्रुहण तथा उन के पक्षपातियों को, चाहे वे देवराज्य ही क्यों न हों, रणक्षेत्र में भूशायी बनाकर संसार को आज यह दिखला देंगे कि पौरुष के सामने भाग की क्या गिनती है।'[२] और सीता जी ने अपना प्रेम अटल पातिव्रत, भावी वियोगदुःख जनाते हुए यह भी कहा है कि 'आप हमें बन दिखाने के लिये बहुत दिनों से कह रहे हैं; हम ने अपने मयके में ज्योतिषियों से भी सुना है कि हम को बन में रहना होगा, अतएव हमको भी साथ लेते चलिये।' और इसी वार्तालाप में उन्हों ने यह भी कहा है कि 'आप हमें साथ ले जाने में भय करते हैं, आप निश्चय आकार ही में पुरुष हैं, आप के तेज प्रताप की प्रशंसा व्यर्थ ही है, यदि हमारे

---

१. भरत पर इतना कोप करने और उन से इतना विरक्त होने का कारण विदित नहीं होता।

२. अध्यात्म में भी ये बातें पाई जाती हैं।

पिता आप को ऐसा जानते तो आप को अपना दामाद नहीं बनाते।'[1] ऐसा कहने का अभिप्राय केवल यही था जिस में रामचन्द्र उन्हें घर न छोड़ जायँ।

रामचन्द्र ने उत्तर प्रत्युत्तर द्वारा सबों को शान्त कर लक्ष्मण तथा सीता के संग बन जाना स्थिर किया है। और वरुण-प्रदत्त दो धनुष, दो अभेद कवच तथा दो अघट निषंग को, जो जनक ने उन्हें दहेज़ में दिया था, गुरु के घर से मंगवा भेजा है एवम् अपनी सारी चीज़ वस्तुओं को वशिष्ठ जी के पुत्र सुयज्ञ तथा अन्य ब्राह्मणों को और निज के तथा अपनी माता के दास दासियों को बांट दिया है। उनके आदेश से सीताजी ने भी अपना भूषणादि सुयज्ञ[2] की स्त्री को दे दिया है और तब लोग दशरथ जी से बिदा होने गये हैं।

उस समय उस स्थान में वशिष्ठ जी, सब रानियां तथा नगरनिवासीगण भी इकट्ठे हुए हैं। सुमंत ने कैकेयी को सक्रोध धिक्कारते हुए उनकी माता के हठी तथा कुटिल स्वभाव की भी बातें कही हैं। जब कैकेयी ने मुनिवस्त्र लाकर तीनों आदमियों को दिया है उस समय वशिष्ठ जी ने भी बहुत क्रुद्ध होकर कहा है कि सीता को क्यों मुनिपट दिया जाता है? वर तो इन के बारे में नहीं है।[3] अन्य नर नारियों ने भी धिक्कारा है। फिर कौशल्या तथा सुमित्रा ने सीता तथा लक्ष्मण को उपदेश दिया है।

अन्तत: जानकी जी वस्त्राभूषण धारण कर और १४ गहनों को लेकर एवम् रामचन्द्र तथा लक्ष्मण जी पूर्वोक्त कवच, अस्त्र शस्त्र, कुदाल, पिटारी इत्यादि लेकर रथारूढ़ हो बन को रवाने हुए हैं। पुरजन, रानीगण तथा राजा उन के पीछे दौड़े हैं। सुमंत के समझाने बुझाने से स्त्रियां घर की ओर लौट गई हैं। दशरथ कैकेयी पर कठिन कोप करते उन्हें अपना शरीर स्पर्श करने का निषेध करते है एवम् कौशल्या के भवन में चले जाते हैं। नगरनिवासी लोग रामचन्द्र के पीछे २ तमसा नदी[4] तक गये हैं।

कुछ रात रहते ही रामचन्द्र चुपके वहां से रथ चला देते हैं और वेदश्रुति[5] गोमती सयन्दिका[6] नदी पार होने पर शृङ्गबेरपुर में निषाद से भेंट होती है। प्रातःकाल गंगा पार होने पर भरद्वाजऋषि का दर्शन होता है। वे इनलोगों को स्वाश्रम ही में रखना चाहते हैं, परन्तु वह स्थान अयोध्या के निकटवर्त्ती होने के कारण रामचन्द्र के प्रस्ताव अस्वीकार करने पर उन्हों ने चित्रकूटवास की सम्मति दी है एवम् कुछ दूर जाकर चित्रकूट का मार्ग स्वयम् दिखा

१. हमारी समझ में इस प्रकरण का वर्णन गोस्वामी जी ने अच्छा किया है। इन्होंने वार्त्तालाप में सब पात्रों के गौरव की रक्षा की है।

२. अध्यात्म में वशिष्ठ की स्त्री लिखा है। गया एक ही घर में, मिला हो चाहे सास को चाहे पतोह को।

३. अध्यात्म में यह बात है। परन्तु लक्ष्मण के विषय में भी वशिष्ट जी ने यही बात क्यों नहीं कही?

४. वर्त्तमान टौंस।

५. वर्त्तमान बेदसा।

६. वर्त्तमान सई।

दिया है तथा उसका पूरा वर्णन भी कर दिया है उन्हीं के कहने के अनुसार बांस का बेड़ा बनाकर तथा यमुना पार उतर कर इन लोगों ने वाल्मीकि जी का दर्शन किया है। लक्ष्मण ने लकड़ी काट कर कुटी का निर्माण किया है और एक मृगा मार कर तथा यज्ञ करके गृहि-प्रवेश किया गया है। अध्यात्म के अनुसार कुटी बनाने में वाल्मीकि जी के शिष्यों ने भी सहायता की है। यह बात बहुत सम्भव है।

वाल्मीकीय में केवट के पैर धोने, भरद्वाज के शिष्यों का रास्ता दिखाने, निषाद के संग जाने तथा यमुना पार होने पर एक तपस्वी के इनलोगों के साथ हो जाने की बातें कहीं नहीं है और न वाल्मीकि ने विविध भांति का रामचन्द्र के रहने का ठौर ही बताया है। सीता जी ने गंगा तथा यमुना दोनों ही की प्रार्थना की है कि 'पति तथा देवर के साथ सकुशल लौटने पर मांस और मदिरा से पूजा करूँगी।' यमुना पार श्यामवट की प्रदक्षिणा कर उस की भी प्रार्थना की है।[1]

अध्यात्म में शृङ्गबेरपुर में लक्ष्मण का निषाद प्रति ज्ञानोपदेश केवल गंगाजी की मनित, और वाल्मीकि जी का रामचन्द्र के लिये भिन्न २ निवासस्थान बताना तथा निज वृत्तान्त वर्णन करना लिखा है।

निषाद के पास तीन दिन ठहर कर सुमंत्र का अयोध्या लौट आना; पुरवासियों की उदासी; राजा की व्याकुलता; कौशल्या का खेद; सुमंत्र का कथा वर्णन। छठे दिन आधीरात में दशरथ का स्वर्गप्रयान, भरत जी का नानिहाल[2] से बुलाया जाना और आने के समय बिदाई में प्रचुर पदार्थ हाथी, खच्चर, कुत्ता आदि पाना, अवध आने पर सब वृतान्त जानने से निज माता को धिक्कारना तथा कौशल्या दर्शन इत्यादि।

राजा के देहसत्कार के अनन्तर एक दिन कई दासियों के संग मंथरा को आभूषणों से भूषित देख दरबान उसे शत्रुहण के पास पकड़ लाया है। वे उसे पीटने लगे हैं; कैकेयी उसे छोड़ाने आई है; शत्रुहण ने उन्हें भी बेतरह फटकारा है; अन्ततः भरतजी ने उसकी रिहाई करा दी है।

---

१. रामायण में जानकी जी के इन मन्नितों का भार उतारने के लिये देवसरि आदि की पूजा करने का हाल कहीं नहीं लिखा हुआ है।

२. कोई २ 'गिरिब्रज' अर्थात् बिहार प्रदेशान्तर्गत वर्तमान 'राजगृहि' को भरत जी का नानिहाल बताते हैं। यह सर्वथा भूल है। वाल्मीकीय रामायण में स्पष्ट कहा है कि अयोध्या से पश्चिम ओर चल कर हस्तिनापुर होते और थोड़ी देर गिरिब्रज में सुस्ता कर दूत लोग वहां से फिर शीघ्र उन के नानिहाल गये। (अ० सर्ग ६८, श्लोक १२, १३ २१)। उत्तरकाण्ड के सर्ग १००-१०१ से भी इन का नानिहाल पश्चिम ही प्रान्त में सिंध नदी की ओर होना सिद्ध होता है। और गिरिब्रज के नाम के क्या दो स्थान नहीं हो सकते? टाड साहब ने 'गृहि' तथा 'महल' इन दोनों शब्दों को एक अर्थबोधक जान कर वर्त्तमान राजमहल को राजगृहि होना बताया है।

भरत जी के बन जाने के समय बहुत से शिल्पकार रास्ता दुरुस्त करने को आगे भेजे गये हैं। भरत जी के शृंगबेरपुर पहुँचने पर निषाद ५०० नावों पर सौ २ कैवर्त्तक तथा सौ २ बीरों को बिठा घाटों को रुकवा कर मांस, मछली, शहद आदि लिये स्वयम् भरत जी से मिलने आया है और उन से स्पष्ट पूछा है कि 'आप किस मनसा से ससैन्य रामचन्द्र के पास जा रहे हैं?'

प्रयाग में भरद्वाज ने अपने तपोबल से ऋद्धि सिद्धि को आज्ञा दे भरत जी की पहुनाई करने के लिये अल्पकाल में अद्भुत सामग्रियां प्रस्तुत कराई हैं। अप्सराओं को भी नाचरङ्ग के लिये वहां बुलवा लिया है।

भरतजी के रामचन्द्र के निकट पहुंचने के थोड़ी ही देर पहले लक्ष्मण जी ने एक मृग मार कर उसका मांस रांधा है और उसी समय एक काक आकर सीताजी को बहुत पीड़ित किया है। इस काककथा को लोग क्षेपक बताते हैं, परन्तु सुन्दरकाण्ड में सीता जी ने भी इस कौआ की बात हनुमान जी से कही है। यदि क्षेपक है तो दोनों स्थानों का वर्णन। यहां पर और भी बहुत सी बातें क्षेपक प्रतीत होती हैं। हमारी समझ में तो बाल में तथा राज्याभिषेक की बाद वाली बहुत सी कथाएं भी क्षेपक हैं।

इस में लक्ष्मणकोप तथा भरतकूप की कथाएं नहीं हैं। हां! रामचन्द्र के लौटने पर सम्मत नहीं होने से भरत जी कुशासन बिछा कर प्राण परित्याग करने पर अवश्य उद्यत हुये हैं।

भरत जी के लौट आने पर चित्रकूट के मुनिलोग रामचन्द्र से कुछ भय मान उस बन को त्याग वहां से अन्यत्र जाने लगे हैं तब रामचन्द्र ही स्वयम् वहां से चल दिये हैं। चलते समय अत्रिमुनि का दर्शन हुआ है। उन की स्त्री अनसूया जी ने जानकी जी को पातिव्रत धर्म का उपदेश दिया है और दो दिव्यमाला श्रेष्ठ वस्त्राभूषण पहिनाकर तथा उन के अङ्गों में रागादि लेपन कर उन्हें अपनी कुटी से बिदा किया है।

अध्यात्म के अनुसार जब अवधवासीगण रामचन्द्र को बन्धु तथा स्त्री सहित दशरथ के महल की ओर पांव २ जाते देख खेदित हुये हैं उस समय वामदेव ने उन के क्रमशः विष्णु, तथा शक्ति शेष के अवतार होने एवम् रामचन्द्र के आठ पूर्वावतारों का हाल वर्णन किया है। और चित्रकूट में भरत के प्राण परित्याग करने के लिये उद्यत होने पर रामचन्द्र के संकेतानुसार वशिष्ठ जी ने एकान्त में रामचन्द्र के विष्णु के अवतार होने का हाल भरत को जताया है और कैकेयी ने भी एकान्त में अपना अपराध क्षमा करा कर भक्ति का वरदान लिया है। अनसूया ने दो कुंडल तथा दो दिव्यभूषण पहनाया है।

आरण्यकाण्ड—इस रामायण में अत्रिमुनि से भेंट अयोध्याकाण्ड के अन्त में हुई है और जयन्त ने चित्रकूट में सीता जी की छाती में चोंच तथा चंगुल मार कर उन्हें व्यस्त किया है।

दंडकवन के मुनियों के आश्रमों की शोभा, मुनिगणमिलन, वनछविवर्णन विराधवध, शरभंगमुनिदर्शन और उन का शरीरत्याग; मुनियों का इकट्ठा हो कर राक्षसों के वध के लिये

रामचन्द्र से प्रार्थना करनी एवम् उन का वरदान देना, फिर सुतीक्ष्ण की भेंट, ये सब बातें कथित हैं। शरभङ्ग मुनि तथा सुतीक्ष्णमुनि से भेंट होने पर उन लोगों ने स्तुतिवन्दना नहीं की है। वरन् शरभङ्ग मुनि ने कहा है कि 'हम ने अपने उग्रतप से ब्रह्मलोकादि जीत लिये हैं और इन्द्र हमें ब्रह्मलोक ले जाने को आये थे। हम अपने तपबल से जीते हुये सब लोक आप को दे देते हैं।' उस के उत्तर में रामचन्द्र ने कहा है कि 'यदि आप कहें तो आप के जीते हुये लोकों को हम यहीं बुला दें।' सुतीक्ष्ण से भी इसी प्रकार की बातचीत हुई है।

सीताजी ने खङ्गसेवी मुनि की कथा कह कर दंडकवन में जाने तथा राक्षसों को बध करने से रामचन्द्र को निषेध किया है और रामचन्द्र ने उन्हें समझाया है। यहीं पर माण्डकर्णि ऋषि कृत 'पंचाप्सर' तथा इल्वल-बातापी की भी कथाएं वर्णित हैं।

भेंट होने पर अगस्त जी ने वैष्णवचाप, वाण तथा दो अघटवाण वाला निषङ्ग रामचन्द्र को प्रदान किया है और गीध ने जीवों की उत्पत्ति की लम्बी चौड़ी कथा सुनाई है।

पंचवटी में सूपनषा अपने सहज रूप में रामचन्द्र के पास आई है। कवि ने रामचन्द्र तथा उस के रूप में अच्छी असमता दिखलाई है। उस समय दोनों भाइयों में अच्छी दिल्लगी भी हुई है। रामचन्द्र ने कहा है कि 'लक्ष्मण से विवाह करो तो 'मेरुमर्कप्रभा यथा' शोभा होगी'' और लक्ष्मण ने कहा है कि 'रामचन्द्र से विवाह करने में दोनों प्राणियों का रङ्ग में रङ्ग मिल जायगा।'

सूपनखा के विरूपा किये जाने पर खर ने पहले केवल १४ राक्षसों को भेजा है और उन के मारे जाने पर तुमुल युद्ध हुआ है।

अकम्पन के मुख से पहले खरदूषणादि के बध का वृत्तान्त सुनकर रावण मारीच के पास गया है और उस के समझाने से ज्योंही लौट कर घर आया है त्योंही सूर्पनखा वहां पहुंच कर उसे धिक्कारने लगी है और नीति को छांटने लगी है। तब फिर मारीच के पास जाकर रावण ने उसे मृग बनने पर उद्यत किया है। उस के मृग बन कर आने पर लक्ष्मण ने कह दिया है कि 'यह छली मारीच है, मृग नहीं है।'

सीता जी ने बहुत कटुवचन कह कर लक्ष्मण को रामचन्द्र के पास भेजा है और वे यह कह कर चले हैं कि 'तुम्हारा विनाशकाल उपस्थित हुआ है, इसी से ऐसी बातें मुख से निकाल रही हो।' इस में सीता के अग्नि प्रवेश तथा लक्ष्मण के रेखा खींचने की बातें नहीं हैं।

रावण के यतिरूप धारण कर आने पर सीता जी ने उसे कुशासन पर बिठाया है, वार्त्तालाप किया है और उसका असल अभिप्राय जानने पर उसे घोर धिक्कार देने लगी है।

जटायु को ताड़ित करते तथा रास्ता भर जानकी द्वारा धिक्कारित होते, रावण ने पहले अपने महल में ले जा कर उन्हें अपना सारा सदन दिखलाया है, प्रेमविनय किया है और घोर तिरस्कृत होने पर एक वर्ष का समय दे कर उन्हें अशोक वाटिका में ८ राक्षसियों के पहरे में रखा है। वहां इन्द्र ब्रह्मा का दिया हुआ हव्य खिला गये हैं। सीता जी रास्ते में पटभूषण गिराती गई हैं।

प्रियाविरह से व्याकुल भाई के संग जानकी को वन में खोजते समय रामचन्द्र को जटायु से भेंट हुई है एवम् उसी खोज के समय लक्ष्मण ने अयोमुखी एक दूसरी राक्षसी की भी नाक कान तथा कुच काट लिया है।[1]

फिर कबन्ध वध, उस का निज वृत्तान्त वर्णन, पम्पासर तथा सुग्रीव की कथा कह कर एवम् पम्पासर दिखा कर शवरी के निज शरीर त्याग करने की बातें लिखी हैं। पम्पासर में नारदागमन नहीं हुआ है। परन्तु उस सर का शोभा-वर्णन देखा जाता है।

अध्यात्म में पहले अत्रिमुनि के कई शिष्यों ने इन लोगों को एक नौका पर बिठा कर एक नदी पार किया है। तब विराधवध, शरभङ्गमुनि का दर्शन एवम् उन का शरीरत्याग हुआ है। वनभ्रमण करते समय हड्डियों का ढेर देख उस के सम्बन्ध में रामचन्द्र के मुनियों से पूछने पर उन लोगों ने कहा है कि 'जो ऋषिलोग समाधि धर्म्म को त्याग कर विषयों में प्रवृत्त हुये थे उन्हें राक्षसों ने मार कर खा डाला है और ये सब उन की हड्डियां हैं, "राक्षसैर्भक्षितानीश प्रमत्तानां समाधितः। अन्तरायं मुनीनां ते पश्यंतोऽनुचरन्तिति हि।' तब रामचन्द्र ने राक्षसवध की प्रतिज्ञा की है। परन्तु धर्म्मभ्रष्ट विषयरत मुनियों के मारने में राक्षसों ने क्या अपराध किया?

इस के अनन्तर सुतीक्ष्ण भेंट, उन का रामचन्द्र की स्तुति करनी तथा वर पाना, और अग्निजिच्छुमुनि का दर्शन है। फिर अगस्त जी के आश्रम में जाने पर उन्हों ने अपने शिष्यों तथा अन्य मुनियों के सामने रामचन्द्र का यथार्थ (ईश्वर) रूप वर्णन किया है। जटायु कबंध तथा शबरी ने भी रामचन्द्र की स्तुति की है। उसी से सीता जी का समाचार तथा पम्पासर का हाल ज्ञात हुआ है। पंचवटी में वास के समय रामचन्द्र ने लक्ष्मण को ज्ञान-भक्ति आदि का उपदेश दिया है।

किष्किन्धाकाण्ड—पम्पासर के तीर पर रामचन्द्र उस की शोभा वर्णन करते २ विलाप करने लगे हैं और लक्ष्मण जी ने उन्हें बहुत समझाया और साहस दिलाया है। ऋषमुक के निकट हनुमान जी भिक्षुक के रूप में रामचन्द्र से मिले हैं। बाण से बेधित होने पर बालि ने व्यंग की बातें बहुत कही हैं, स्तुति नहीं की है और उस ने अङ्गद को सुग्रीव को सौंपा है, रामचन्द्र को नहीं।

वर्षावर्णन विशद है, परन्तु गोस्वामी जी के ढंग से नहीं है। सीता जी के खोजने के समय अङ्गद ने एक राक्षस को रावण समझ बध कर दिया है; वाल्मीकीय रामायण में सीता के खोजने के लिये चारो ओर बानरों[2] के भेजे जाने तथा उन लोगों के खोजने का हाल सविस्तर वर्णित है।

---

१. इस के साथ ऐसे बर्ताव का कोई कारण नहीं दीखता। यह कथा क्षेपक बोध होती है, क्योंकि ये लोग अकारण प्राणीपीड़क नहीं थे।

२. सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान तथा यामवान प्रभृति क्या सचमुच बानर ही थे? रामायण पाठ से तो ऐसा ही प्रतीत होता है, परन्तु लोग कहते हैं कि वे एक जाति के वनपर्वतवासी मनुष्य ही थे। जिस जाति की ध्वजा पर बन्दर का चिन्ह था वह बानर जाति कहलाती थी, जिस की ध्वजा पर रीछ का चित्र था वह रीछ कहलाती थी। जैसे

बानरों के बिल में प्रवेश करने तथा वहां से वहिष्कृत होने की कथा है, परन्तु बिल-निवासिनी (हेमा की सखी) स्वयम्प्रभा के श्री राम के निकट जा कर स्तुति करने और वहां से उस के बद्रिकाश्रम में जाने की बातें नहीं हैं। (यह कथा अध्यात्म में देखी जाती है)। इसी हेमा पर मय नामक मायावी दानव आसक्त था, इन्द्र ने उसे वज्र से मार डाला और ब्रह्मा ने उस का यह स्वर्णमय वन और घर हेमा को दे दिया था।

सम्पाती ने निशाकर मुनि की कथा तथा अपने पुत्र सुपार्श्व से रावण के जानकी जी को ले जाने का जो हाल सुना था, सब बातें बानरों को सुनाई हैं। और लंका जाने के लिये हनुमान जी कूद कर महेन्द्र पर्वत पर चढ़े हैं।

अध्यात्म में हनुमान जी बटु के ही रूप में पहले दोनों भाइयों से मिले हैं। सुग्रीव के राज प्राप्त होने पर रामचन्द्र ने लक्ष्मण को क्रियायोग का उपदेश किया है। लक्ष्मण जी के कोप करने पर हनुमान, तारा, अङ्गद, सुग्रीव आदि सबों ने उन से विनय प्रार्थना की है। मंत्रियों के सहित उपस्थित हो कर सुग्रीव ने रामचन्द्र को बानर वीरों का नाम तथा उन का बल पराक्रम संक्षेप में वर्णन किया है।

सुन्दरकाण्ड—महेन्द्रपर्वत से प्रस्थान कर हनुमान जी के आकाशमार्ग से समुद्र पार हो लम्बपर्वत पर पहुंचने तथा लङ्किनी बध तक की सब घटनाएँ प्रायः वेही हैं जिनका वर्णन रामचरितमानस में पाया जाता है।

उस पार लंका का विभव देख हनुमान जी को कार्य्य सिद्ध होने में सन्देह हुआ है और वे मन ही मन कहने लगे हैं कि अङ्गद, नल, जामवान, द्विविद, सुग्रीव इत्यादि ये ही कई एक बानरों के सिवाय दूसरे का यहां प्रवेश करना भी दुष्कर है। अनेक संकल्प विकल्प के अनन्तर सब देवों तथा राम, लक्ष्मण, जानकी सुग्रीव आदि को नमस्कार कर ये जानकी की खोज में प्रवृत्त हुये हैं। उन को खोजते ये रावण के रनिवास में, जहां वह अनन्त कमनीय कामिनियों के संग विराज रहा था, पहुंच गये हैं। इसी मध्य में कवि ने रावण के गृह आदि, अशोकवाटिका तथा निशाचरियों का सौन्दर्य्य वर्णन किया है। जब हनुमान जी वृक्ष पर बैठे सीता जी का दर्शन कर रहे थे उसी काल में कुछ रात रहते कतिपय ललनाओं के सङ्ग रावण वहां पहुंच कर जानकी जी को अपने वश में लाने के लिये उन्हें धमकाने और फुसलाने लगा है और उस के सङ्ग की लावण्यमयी ललनाओं ने संकेत द्वारा सीता को जताया है कि आप निर्भय होकर धधकारिये; यह बिना आप की इच्छा के आप के सङ्ग बलात्कार नहीं कर सकता।

दो मास का अवसर देकर उस के वहां से चले जाने पर, राक्षसियों का धमकाना, फुसलाना, क्लेश देने पर उद्यत होना; त्रिजटा का समझाना; हनुमान का सीता से वार्त्तालाप और उस के मध्य चित्रकूट के काक (जयंता) की कथा एवम् चूड़ामणि देने का हाल कहा गया है।

आजकल रूसियों की ध्वजा पर रीछ का तथा अंगरेज़ जाति की ध्वजा पर सिंह का चित्र होने से उन देशों के वीरों को British lions और Russion bears कहते हैं। जैनों की राम-रावण कथा में भी बानरचिन्हाङ्कित ध्वजा मुकुट धारी जाति बानरवंशीय कही गई है।

सीता जी के अशोकवाटिका में रहने का पता विभीषण ने नहीं बताया है और न उन से इन्हें भेंट हुई है। हां! रावण की सभा में उन्हों ने हनुमान को अवश्य देखा है। विभीषण की कन्या कला ने उन के तथा अविन्धा मंत्री मेधावी के रावण को समझाने का हाल सीता जी को सुनाया है।

प्रहस्तपुत्र , जम्बुमाली, ७ मंत्री पुत्र, विरूपाक्ष, यूपाक्ष, प्रघस, भासकर्ण आदि वीरों का ससैन्य बध करने के अनन्तर हनुमान ने अक्षयकुमार का युद्धक्षेत्र में क्षय किया है। फिर ब्रह्मपाश में बँधाकर रावणसभा में जाने पर उन्हें उससे बातचीत हुई है।

आग लगाने पर हनुमान को भारी सोच हुआ है कि 'जिस की खोज के लिये समुद्र फांद कर हम यहां आये अब वे भी अशोकवाटिका में जलकर भस्म हो जायंगी, हम रामचन्द्र को अब क्या समाचार कहेंगे।'

अनन्तर लंका से लौट कर मधुबन में बानरों का फल खाना तथा हनुमान का लंका का वृत्तान्त वर्णन करना है।

अध्यात्म के अनुसार लंकापुरी की देवी ने सीता के अशोक वाटिका में रहने का पता हनुमान को बताया है और वे खोजते २ वहां पहुंचे हैं। (इसमें भी विभीषण से भेंट नहीं लिखी है)। इन के वहां पहुंचने पर पिछली पहर रात में रावण यह स्वप्न देख कर कि एक बानर पेड़ के पत्तों में छिप कर जानकी से बातें कर रहा है स्त्रियों के सङ्ग वहां गया है और उसने सीता को बहुत त्रास दिखाया है।

रावण की सभा में जाने पर हनुमान जी ने निज वृत्तान्त कहते समय रावण को विष्णु-भक्ति का उपदेश दिया है, और किष्किन्धा लौट आने पर सीता जी का समाचार रामचन्द्र को सुनाया है तथा लङ्कादहन का भी हाल कहा है।

लङ्काकाण्ड —लंका का वृत्तान्त सुनकर समुद्र पार होना दुष्कर जान रामचन्द्र का सोच करना, हनुमान का समझाना, फिर ससैन्य सागर किनारे पहुंचना; सागर छविवर्णन। उधर हनुमान जी के चले आने पर रावण का मंत्रियों के संग विचार, निश्चरों की खुशामदी बातें, विभीषण का समझाना। फिर सार्वजनिक सभा; नगर की रक्षा का प्रबन्ध, सीता के अपहरण का हाल सुनाकर रावण का सबों से राय पूछनी; कुम्भकर्ण का रामचन्द्र का पराक्रम तथा महिमा वर्णन कर पीछे युद्ध करने की प्रतिज्ञा करनी; विभीषण तथा प्रहस्त का मेघनाद को धिक्कारना और समझाना। रावण के केवल कटु वाक्य कहने से विभीषण का उसे त्याग कर चार मंत्रियों के संग रामचन्द्र के पास आना; और सम्मुख होने पर उन का यह कहना कि 'हमारा जीवन, सुख तथा राज्यप्राप्ति सब आप ही के आधीन है' एवम् रावण का बलाबल वर्णन कर उसके निधन तथा लंकाविध्वंस में सहायता देने की प्रतिज्ञा करनी और तब उन का लंकेश बनाया जाना।

विभीषण के परामर्श एवम् लक्ष्मण तथा सुग्रीव के अनुमोदन से समुद्र से मार्ग मांगना समुद्र पर कोप, सेतुबन्धन। रावण का भेजा शुक का सुग्रीव और रामचन्द्र में भेद कराने के लिये आना, पकड़ा जाना, रिहाई पाना। फिर शुक और सारण का बानर के भेष में आना

विभीषण का उन्हें पकड़ कर राम के पास लाना और छुटकारा पाकर उन का रावण से सब सेना का हाल कहना, उन दोनों के संग रावण का गढ़ पर चढ़कर बानरी सेना देखना, उनलोगों का रावण से मुख्य २ यूथपतियों का नामादि वर्णन करना और उन के उत्तम उपदेश देने से उन लोगों का सभा में आना जाना बन्द किया जाना, फिर रावण का शार्दूल के संग दूतों को भेजना, उनका पकड़ाना, छूटना और जाकर रावण से सब हाल कहना।

अध्यात्म में संक्षेपतः यही सब बातें हैं। और सेतुबन्धन के पश्चात् रामेश्वरस्थापन का हाल लिखा है। वाल्मीकि जी ने इस का स्पष्ट वर्णन नहीं किया है। लंका से लौटते समय पुष्पक विमान पर चढ़े राम ने जानकी जी को मार्गस्थ सब वस्तुओं को दिखाते समय कहा है कि 'हम ने यहां महादेव की स्थापना की है।' और अध्यात्म में शुक का पूर्व वृत्तान्त कथन एवं बानरी सेना देखने के लिये रावण का मंत्रियों के संग गढ़ पर चढ़ना और रामचन्द्र का उस का छत्रादि ध्वंस करना लिखा है।

मंत्रियों से मंत्रणा; मायारचित रामचन्द्र का सिर, भुजा, शर, चाप सीताजी को दिखाना; उनका विलाप और सरमा का समझाना; वृद्ध लोगों और रावण की माता का तथा माल्यवान का सीता को लौटा देने का परामर्श।

रावण का गढ़ के चारों द्वारों पर सेना नियुक्त करना; रामचन्द्र का लक्ष्मण प्रभृति के संग सुबेल शिखर पर चढ़ना, लंकाछवि वर्णन, दूर से रावण को देख सुग्रीव का छलांग मार कर उस के निकट पहुंच जाना; उस के संग द्वन्द्व युद्ध, उस का मुकुट गिरा देना, दोनों का नाली में लुढ़कना (ये सब बातें सर्वथा क्षेपक प्रतीत होती हैं) फिर अङ्गद का दूत पिठाया जाना, रावण से थोड़ा वार्तालाप, चार राक्षसों का उन्हें बांधने पर उद्यत होने से उन चारों के लिये उनका छलांग मार कर गढ़ के शिखर पर चढ़ पदप्रहार से उसका एक अंश ढाह देना, एवम् उन के वहां से कूदते समय सब राक्षसों का त्रसित होकर भूतल में गिर पड़ना।

युद्ध आरम्भ होने पर कुछ काल मार काट के अनन्तर उभय पक्षों के प्रधान २ योद्धाओं में द्वन्द्व युद्ध होने लगा है। मेघनाद अन्तर्ध्यान हो सब वीरों को मूर्च्छित कर राम लक्ष्मण को नागफांस से बांध पिता के पास हर्षित चला गया है। तब रावण की आज्ञा से त्रिजटा पुष्पक विमान पर चढ़ा कर सीता जी को रणक्षेत्र में मूर्च्छित भाइयों को दिखाने के लिये ले गई है उन्हें देख सीता विलाप करती हैं और त्रिजटा उन्हें समझाती है। फिर गरुड़ आकर नागफांस काटते हैं। (अध्यात्म के अनुसार इस समय हनुमान द्वारा क्षीर सागर से द्रोणपर्वत मंगाया गया है।)

इस समाचार के पाने पर रावण के पिठाये धूम्राक्ष, वज्रदंष्ट्र और अकम्पन का क्रमशः सारी सेना लेकर आना और निज विक्रम प्रदर्शन के पश्चात् उन लोगों का हनुमान और अङ्गद के हाथ से निहत होना।

फिर सेनाध्यक्ष प्रहस्त का नारान्तक, कुम्भ हनु, महानाद, समुन्नत योद्धागण तथा बलिष्ट सेना के सहित आना और तुमुल युद्ध के अनन्तर सेनापति नील के द्वारा तथा अन्य चार योद्धाओं का क्रमशः द्विविद, तार, जामवान और दुर्मुख के हाथ से वीरगति को प्राप्त होना। (इन सबों का वर्णन अध्यात्म में नहीं है।)

अनन्तर स्वयम् युद्ध कर के रावण ने लक्ष्मण को घायल किया है। कुछ देर के बाद बिना उद्योग वे होश में आये हैं। रावण भी रामचन्द्र से पराजित होकर लंका में चला गया है। अध्यात्म में इस अवसर पर भी क्षीर सागर से द्रोणपर्वत आया है और सुषेण ने औषधि प्रयोग किया है। यहीं पर कालनेमि की भी कथा है।

तब कुम्भकर्ण का जगाया जाना, उस का रावण को उपदेश देना, फिर युद्धक्षेत्र में आकर सब वीरों को जर्जरित करना, सुग्रीव द्वारा उस की नाक कान काटा जाना, जब कि वह इन्हें कांख में दाबे लंका जा रहा था; एवम् लक्ष्मण के द्वारा अपना कवच कटने पर उस का लक्ष्मण के बल की प्रशंसा करते राम से युद्ध करने की इच्छा प्रगट करना और अंत में उन्हीं के हाथ से निहत होना। (अध्यात्म में इसी के पीछे नारदजी ने स्तुति की है।)

फिर त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक, नरान्तक, महोदर तथा महापार्श्व का एक संग सेना लेकर युद्ध करने आना और क्रमशः हनुमान, लक्ष्मण, अंगद, नील तथा ऋषभ के हाथ से मारा जाना।

मेघनाद का निकुम्भिला में हवनादि कर के रणक्षेत्र में अन्तर्ध्यान होकर राम, लक्ष्मण एवम् सब प्रधान बानर वीरों को वाण तथा ब्रह्मास्त्र से व्यथित और मूर्च्छित करना। जामवान के कहने से हनुमान का रात ही में हिमालय से सञ्जीवनीबूटीवाला पर्वत लाना एवम् सबों का मूर्च्छा विगत तथा चंगा होना।

सुग्रीव की सम्मति से उसी रात को बानरों का लंका में आग लगाना; फिर कुम्भ और निकुम्भ का युवाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजंघ, कंपन तथा भारी सेना के साथ आकर युद्ध करना एवम् सुग्रीव, हनुमान मयन्द, द्विविद के द्वारा एवम् प्रजंघ और कंपन का अङ्गद द्वारा वध। फिर मकराक्ष का रामचन्द्र के हाथ से निहत होना।

मेघनाद का फिर हवन कर के युद्ध करना, और इसी समय माया की सीता को रथ पर लाकर हनुमानादि के सम्मुख खड्ग से उन्हें दो टुकड़ा कर देना, इस पर रामचन्द्र का विलाप करना और विभीषण का समझाना।

मेघनाद का फिर यज्ञ में प्रवृत्त होना, लक्ष्मणजी का बानरी सेना तथा विभीषण के सहित जाकर यज्ञ विध्वंस करना, मेघनाद का विभीषण को धिक्कारना और लक्ष्मण जी के संग तीन दिन तीन रात तुमुल युद्ध कर वीरगति को प्राप्त होना। (अध्यात्म में नारदगमन के पश्चात् ही मेघनाद के इस युद्ध का वर्णन है। और मेघनाद के संग रामचन्द्र के स्वयम् युद्ध करने को उद्यत होने पर उस का वध लक्ष्मण ही द्वारा पूर्व ही से निश्चित रहने एवम् लक्ष्मण जी के कठिन व्रत की कथा कही गई है।)

फिर रावण का खड्ग लेकर जानकी जी के वध के लिये दौड़ना और सुपार्श्वमंत्री से रोका जाना; शेष सेना का राम से युद्ध करना; राक्षसियों का विलाप करना तथा सूपनखा की निन्दा करनी। तब महापार्श्व, महोदर तथा विरूपाक्ष का युद्ध करना और पहले दूसरे का सुग्रीव से एवम् तीसरे का अङ्गद के हाथ से प्राण विसर्जन करना। यह युद्ध प्रकरण या तो

क्षेपक है या लंका में एक ही नाम के कई योद्धा थे। क्योंकि ४३वें सर्ग में लक्ष्मण द्वारा विरूपाक्ष का एवम् ७०वें सर्ग में नील और ऋषभ के हाथ से वध का हाल कहा जा चुका है।

रावण के संग युद्ध करते समय विभीषण की रक्षा करने में लक्ष्मण रावण के शक्ति-प्रहार से मूर्च्छित हुये हैं। और राम से पीड़ित होकर रावण लङ्का चला गया है। सुषेण[1] की सम्मति से हनुमान फिर महोदय शिषर लाये हैं और लक्ष्मण जी चंगा हुये हैं।

तब तीन दिन तक रोमहर्षण तथा विपुल संग्राम कर रावण वीर गति को प्राप्त हुआ है। इसी समय इन्द्र ने अपना रथ, सारथी, धनु, कवच, बाण, शक्ति रामचन्द्र के पास भेजा है। उस के वीरधाम पयान के अनन्तर मन्दोदरी प्रभृति तथा विभीषण के विलाप और उस के देह सत्कार का हाल कहा गया है। फिर देवागमन, विभीषण का राज्याभिषेक, सीता का अग्नि में प्रवेश कर अपने सतीत्व-संरक्षण की परीक्षा देनी, दशरथ का पुत्रों तथा पुत्रवधू से मिलना, रामचन्द्र के अनुरोध से इन्द्र के यह कहने पर कि 'मृत बानर भालु जी उठे' उन सबों का जी उठना। इस में अमृत वृष्टि की बात नहीं है।

फिर पुष्पक पर चढ़ कर सब लोगों का लंका से प्रस्थान, जानकी जी को विमान पर से मार्गस्थ वस्तुओं को दिखाते, किष्किन्धा से तारा आदि बानरों की स्त्रियों को लेते रामचन्द्र भरद्वाज के आश्रम में पहुंचे हैं। वहीं सब लोग ठहर गये हैं और राह में निषाद को खबर देते नन्दीग्राम में हनुमान जी ने भरत जी को रामागमन का शुभ समाचार जनाया है, जिसे सुन कर भरत जी उन्हें एक लाख गऊ, १०० गांव तथा कुण्डलादि भूषणों से भूषित सुन्दर सुशील १६ कन्यायें भार्य्या बनाये जाने के लिये देने को तैयार हुये हैं।

अनन्तर भरतमिलाप, नगर प्रवेश, पुष्पक का कुबेर के पास भेजा जाना, रामचन्द्र का राज्याभिषेक, बानरादि की बिदाई, भरतजी का युवराज बनाया जाना, और समय २ पर अश्वमेधादि यज्ञ होना कहा गया है। तब रामराज्य का आनन्दप्रद सुख विभव वर्णित है। यह सुख वर्णातीत है। यह उपमा रहित होकर केवल उपमेय भाव से इस संसार में विदित है। हनुमन्नाटक में श्री रामचन्द्र के उज्ज्वल सुयश के विषय में कहा है :—"महाराज श्रीमन् जगति यशसा ते धवलिते। पयःपारावारं परमपुरुषोऽयं मृगयते॥ कपर्दी कैलासं कुलिशभृदपि स्वं करिवरं। कलानाथं राहुर्कमलभवनो हंसमधुना॥" रामायण की कथा वस्तुतः यहीं समाप्त हुई है। उत्तरकाण्ड के केवल श्वानादि के न्याय, सीता वनवास, तथा अश्वमेध प्रकरण ही को रामकथा से सम्बन्ध है। अन्य कथाएं व्यर्थ की पचड़ाएं हैं और निस्सन्देह पीछे जोड़ी गई हैं।

अध्यात्म में भी प्रायः यही सब बाते हैं। उस में हनुमान जी हिमालय में तप करने चले गये हैं। बाल्मीकीय में यह बात उत्तर काण्ड में कही गई है।

उत्तरकाण्ड—श्रीरामचन्द्र के राजसिंहासन पर विराजमान होने पर अगस्त्य प्रभृति ऋषिगण चारों ओर से मिलने आये हैं। उन लोगों ने रामविजय की बड़ाई करते मेघनाद की भी बड़ाई की है। रामचन्द्र के यह पूछने पर कि 'सब राक्षसों से अधिक उसी की

---

१. बाल्मीकीय में सुषेण को लंका का वैद्य नहीं लिखा है, वरन् ये सेना के सर्जन (वैद्य) प्रतीत होते हैं और अंगद के नाना थे।

क्यों प्रशंसा की जाती है' अगस्त्य जी ने पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा से लेकर राक्षसों की उत्पत्ति की लम्बी चौड़ी कथा कहते रावण और उस की बहन भाइयों के जन्म, तप, वरदान, विवाहादि का हाल वर्णन किया है और मंदोदरी के संग रावण के विवाह के सम्बन्ध में कहा है कि मय उस कन्या को लिये घूम रहा था। रावण के पूछने पर उस ने कहा कि 'देवतों ने हेमा नाम की अप्सरा को मुझे दे दिया था, दस हजार वर्ष तक मैं उस के साथ प्रेमासक्त रहा, अब वह देव-लोक में चली गई है। उस के विरह से कातर मैं १४ वर्ष तक अपनी इस स्वर्णमय पुरी में रहा। अब इस कन्या के विवाह के लिये इस वन में आया हूँ। यह कन्या हेमा के गर्भ से है।'

यह वृत्तान्त किष्किन्धाकाण्ड की बिलनिवासिनी की कही हुई बातों से नहीं मिलता। उस में मय का इन्द्र से मारा जाना एवम् हेमा का जीवित रहना कहा गया है। इस पुस्तक का पृ० ३४० देखिये और वाल्मीकीय किष्किन्धा काण्ड, सर्ग ५१ से उ० का० सर्ग १२ का मिलान कीजिये। वाल्मीकि जी भांग नहीं खाये हुये थे कि एक ही ग्रन्थ में एक ही कथा को दो रीतियों से लिखते। इन में से एक अवश्य क्षेपक है।

अनन्तर अपने ज्येष्ठ विमातृ भ्राता धनपति कुवेर से रावण का युद्ध करना और उन का पुष्पक विमान छीन लाना; नन्दीश्वर का मुख देख कर हंसने से उनके श्राप से ग्रस्त होना,[1] कैलाश उठाने का यत्न करना और महादेव जी के अंगूठे से पर्वत दबाये जाने से पीड़ित हो हज़ार वर्ष तक भोलानाथ की स्तुति करते रहने पर रावण का उन से वरदान तथा चन्द्रहास खड्ग पाना; कुशध्वज की कन्या वेदवती के केशाकर्षण से उस का शाप देना; यज्ञविध्वंस के भय से मरुत राजा का एवम् अनेक अन्य राजों का अपनी २ पराजय स्वीकार करना; अयोध्या के राजा अरण्य का युद्ध में मिहनत करना और उन से शापित होना; नारद के उपदेश से यमराज के संग घन-घोर युद्ध (इसी के अन्तर्गत यमपुरी का भी दृश्य दिखलाया गया है) नाग लोगों को वश करना निपात कवच दैत्यों से युद्ध और कालकेय दैत्यों के संग युद्ध में सूपनखा के पति का बध कर देना; वरुण के लड़कों से युद्ध, फिर अश्वमनगर में बलि के दर्शन का वृत्तान्त; सूर्य पराजय; चन्द्रलोक गमन और पर्वत मुनि से वहां का वृत्तान्त जानना; मान्धाता से पराजित होना; चन्द्रमा पर शस्त्र उठाने से ब्रह्मा का रावण को निवारण करना और एक मंत्र बताना; कपिलदेव से तमांचा खाकर पृथ्वी पर गिरना एवम् एक महात्मा के हंसने से अचेत गिर पड़ना—ये सब बातें वर्णित हैं। किन्तु अश्वमनगर से लेकर जितनी बातें कही गई हैं वे सब क्षेपक मानी जाती हैं।

---

१. रावण को कई शाप हुए थे। उसके पिता विश्रवा ने शाप दिया था; नन्दीश्वर का शाप था कि बानरों से तेरे वंश का नाश होगा; वेदवती का शाप था कि मैं जानकी होकर तेरा नाश कराऊंगी; अरण्य ने कहा था कि उन के वंशधर उस का नाश करेंगे; पतिव्रता स्त्रियों ने कहा था कि स्त्रीकार्य्य ही से उस का सर्वनाश होगा; कुबेर के पुत्र नलकूबर ने शाप दिया था कि स्त्री के साथ बलात्कार करने से उस का कपाल सात खण्ड हो जायगा। इसी भय से उसे जानकी जी के साथ बलात् करने का साहस नहीं होता था।

फिर सती स्त्रियों को हरण करने से उन का शाप देना; रावण के लंका में लौट आने पर सूपनखा का निज पति के लिये विलाप करना और उस के मौसेरे भाई खर आदि के संग उस का दंडक में रहने के लिये भेजा जाना; मौसेरी बहन कुम्भीनसी के हर ले जाने वाले मधु राक्षस से लड़ने के लिये रावण का मधुपुरी जाना और बहन की प्रार्थना से उस से मिताई कर इंन्द्रलोक में जा इन्द्र से युद्ध ठानना और तुमुल संग्राम के अनन्तर मेघनाद का इन्द्र को पकड़ कर लंका में ले जाना और ब्रह्मा का उन्हें छुड़ा लाना कहा गया है। इसी प्रकरण में अहल्या के उपाख्यान का भी उल्लेख है।

फिर सहस्राजु न के रावण को युद्ध में पकड़ लेने और बालि के उसे कांख में दाबे घर आने का हाल तथा हनुमानजी के जन्मपराक्रम का वर्णन है। तब पांच अध्यायों में बालि और सुग्रीव की उत्पत्ति, हरिरूप वर्णन; श्वेतदीप में स्त्रियों से रावण का पकड़ा जाना; एक बूढ़ी अबला का उसे लेकर आकाश में उड़ना और उस के हाथ से छूट कर उस के समुद्र में गिरने की कथाएं हैं जो क्षेपक कही जाती हैं।

तदनन्तर जनकराज, मामा युधाजित, काशीराज एवम् अन्य ३०० राजों की (जिन्हें भरतजी ने सीताहरण का समाचार सुन कर सहायता के निमित्त बुला भेजा था) तथा सुग्रीव विभीषण हनुमानादि की बिदाई की बातें हैं। यहां बानरों की बिदाई दोबारे कही गई है। चलते समय हनुमान जी ने प्रार्थना की है 'कि जब तक रामकथा गाई जावे तब तक हमारा प्राण हमारे शरीर को परित्याग नहीं करे; अप्सरा नित्य हमें यह चरित्र सुनाया करें, इसी से आप के दर्शन की उत्कंठा तृप्त करेंगे।'

फिर अशोकवन में मद्यमांस, ढालकाट और नाचरङ्ग का वर्णन है। तब लोकापवाद के कारण सीता जी का त्याग, उन का वाल्मीकि आश्रम में ठहरना; रामचन्द्र को शोकाक्रान्त देख लक्ष्मण जी का उन्हें समझाना; रामचन्द्र का भी नृग, निमिराज तथा ययाति के शापादि का का वृतान्त लक्ष्मण को सुनाना एवम् श्वान और भिक्षुक तथा गिद्ध और उलूक के झगड़ों के न्याय की कथाएं हैं।

तब ऋषियों की प्रार्थना पर रामचन्द्र की आज्ञा से शत्रुहण जी ने मथुरा में जाकर लवणासुर का बध कर वहां अपना राज्य संस्थापन किया है। इसी यात्रा में जिस रात्रि को वे वाल्मीकि आश्रम में ठहरे थे लव कुश का जन्म हुआ था।

फिर एक तपस्वी शूद्र के बध द्वारा एक वृद्ध ब्राह्मण के मृतबालक को पुनर्जीवित कर रामचन्द्र अगस्त्य मुनि के दर्शन को गये हैं। उन्हों ने इन को एक स्वर्णकङ्कण दिया है और उस का वृत्तान्त पूछने पर कहा है कि 'विदर्भदेश का राजा श्वेत अपनी तपस्या द्वारा ब्रह्मलोक प्राप्त करने पर भी अन्नादि दान नहीं करने से अपना मांस आप भक्षण करने का दुःख भोगता था और उससे उद्धार पाने की पूजा में उस ने मुझे यह आभूषण दिया है।' मुनि के दंडकदेश के राजा दंडक के निज गुरु शुक्राचार्य्य की कन्या का सतीत्व नष्ट करने से उस का सर्वनाश और उसके देश के अरण्य हो जाने का हाल भी कहा है।

फिर रामचन्द्र का यज्ञ करने का विचार देख लक्ष्मणजी ने अश्वमेध का माहात्म्य वर्णन में इन्द्र द्वारा वृत्रासुर के बध की कथा और रामचन्द्र ने वाल्मीकि देश के राजा इल की कथा कही है, जिसने शापवश एक मास स्त्री और एक मास पुरुष रहकर एक वर्ष व्यतीत किया था।

नैमिषारण्य में यज्ञारम्भ होने पर वाल्मीकि जी की आज्ञा से लवकुश ऋषिबालक के भेष में आकर रामायण गान करने लगे हैं। उत्तरकाण्ड की कथा सुनने से यह बात ज्ञात होने पर कि वे दोनों बालक गायक सीताजी के पुत्र हैं, रामचन्द्र ने वाल्मीकि जी तथा सीताजी को सभा में बुलवा भेजा है। उस सार्वजनिक सभा में मुनि ने सीता जी के शुद्धाचार की साक्षी दी है। रामचन्द्र ने भी कहा है कि 'हम इन्हें पूर्व ही से सती समझते हैं, केवल लोक निन्दा के भय से हमने इन्हें परित्याग किया था।' और जानकी जी ने कहा है कि 'यदि मैं संसार में सिवाय पतिदेव के और किसी को नहीं जानती हूँ, तो पृथ्वी फट जाय और मैं उस में प्रवेश कर जाऊं। इतना कहते ही पृथ्वी फट गई है और शेषनाग के फण पर पृथ्वी माता सिंहासनारूढ़ बाहर निकल सीता जी को अङ्क में ले पाताल चली गई हैं।[1] इस घटना से रामचन्द्र महा शोकित और कुपित हुये हैं। और ब्रह्मा ने उन्हें समझा बुझा कर शान्त किया है।

फिर कालपुरुष का आगमन, रामाज्ञा से लक्ष्मणजी का सरयूतट पर योगाभ्यास से शरीर त्याग करना एवम् कुछ दिन पीछे रामचन्द्र का शेष दोनों भाइयों, माताओं तथा प्रजावर्ग के सहित निजधाम (साकेत) सिधारना है।

इस घटना के पूर्व ही रामचन्द्र ने अपने दोनों पुत्रों को भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों का राजा बना दिया था।

अध्यात्म में संक्षेपतः यही सब बातें है, परन्तु उस में रामगीता तथा रामचन्द्र को कौशल्या का उपदेश करना अधिक है और रावणादि के जन्म, कर्म तथा बालि सुग्रीव की जन्मकथा के अतिरिक्त कोई अन्य उपाख्यान नहीं है।

'रामचरित मानस' का उत्तरकाण्ड इन दोनों ग्रंथों के उत्तरकाण्ड से सर्वथा भिन्न है।

---

१. रघुवंश में रामायण का अनुकरण है। परंतु पद्म पुराण में लिखा है कि लवकुश के गान से यह जान कर कि वे उन के पुत्र थे रामचन्द्र सीताजी से मिलने के लिये फिर बहुत व्यग्र हो गये और लक्ष्मण द्वारा वे फिर लाई गईं और सुखानन्द से काल व्यतीत करने लगीं। कुछ हेर फेर करके भवभूति ने भी 'उत्तररामचरित्र' में यही कहा है।

उपसंहार (क)

१३ सुदी आसिन सं० १६६६ के पंचनामे की प्रतिलिपि।

श्रीजानकीवल्लभो विजयते।

द्विश्शरं नाभिसन्धत्ते द्विस्स्थापयति नाश्रितान्।
द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नैव भाषते॥

तुलसी जान्यो दसरथ हि धरमु न सत्य समान।
रामु तजो जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान॥

धर्म्मो जयति नाधर्म्मस्सत्यं जयति नानृतम्।
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुरः॥

अल्लाह अकबर

चूँ आनन्द राम मैं टोडर मैं देवराय व कन्हाई मैं रामभद्र मैं टोडर मज़कूर दर हुजूर आमदह करार दादन्द के दर मवाजी मतरूके तफसील-आं दर हिन्दवी मजकूर अस्त वा मलाहजा बतराखी जान नशीन करार दादेम व एक सद-पंजाह बिगहा जमीन। ज्यादा किसमत मोजाफ़ह खुद दर मौजे भदैनी आनन्द राम मजकूर व कन्हाई मैं रामभद्र मजकूर तजवीज नमूदह बरीं माने राजी कुश्ता एतराफ सहीह शरही नमूदन्द बना बरां मुहर करदह शुद।

इस के आगे काज़ी का मुहर दस्तख़त, हिस्से की तफ़सील और गवाही आदि हैं। फ़ार्सी का अनुवाद – आनन्द राम बेटा टोडर बेटा देवराय और कन्हई बेटा रामभद्र बेटा टोडर मज़कूर हजूर में आकर एक़रार किया कि आपस की रज़ामंदी से हमलोगों ने तर्के को जिसकी तफ़सील हिन्दी में है आधा २ क़रार दिया और मौज़े भदैनी में १५० बीघा ज़मीन अपने आधे आध हिस्सा से अधिक तजवीज करके और इस बात पर राजी होकर एकरार सही किया, इसलिये मुहर किया गया।

नोट—परन्तु इस पंचनामे में गोसाइँ जी का नाम कहीं नहीं देखा जाता। खड्ग-विलास प्रेस प्रकाशित तथा का० ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित रामायणों में भी पंचनामे की प्रतिलिपि को देख लीजिये।

उपसंहार (ख)

शिवपुर शिलालेख

प्रत्यर्थिक्षितिपालकालनसु.........ने दूतिका
मुद्राङ्कप्रकटप्रतापतपनप्रोद्भासिताशामुखे ।
क्षोणीशेऽकबरे प्रशासति महीं तस्मिन् नृपालावलि—
स्फूर्जनमौलिमरीचिवीचिरुचिरो दञ्चत् पादम्भोरुहे ॥१॥
तद्राज्यैकधुरन्धरस्य वसुधा साम्राज्यदीक्षागुरोः
श्रीमट्टण्डनवंशमण्डनमणेः श्रीटोडरक्ष्मापतेः ।
धर्म्मौघैकविधौ समाहितमतेरातेतीऽचीकर—
द्वापी पाण्डवमण्डपे......वनो गोविन्ददासः सुधी ॥२॥
ऋतुनिगमरसात्मसम्मिते (१६४६) वत्सरेशे
सुकृतिकृतिहितैषी टोडरक्षोणिपालः ।
विहितविविधपूर्तोऽचीकरच्चारुवापी
विमलसलिलसारां बद्धसोपानपंक्तिम् ॥३॥

पुस्तक मतप्रभेद चक्र उपसंहार (ग)

[इस चक्र को दूसरे खण्ड के दूसरे परिच्छेद का अंश समझिये]

रामचरितमानस (रामायण) से लेकर 'रामललानहछू' तक की समालोचना इस ग्रंथ में विस्तारपूर्वक की गई है। इन १२ ग्रंथों को प्रायः सभी लोग प्राचीनकाल से गोसाईं जी कृत होना मानते आते हैं और सब लेखकों ने इन के नामों का उल्लेख किया है। परन्तु इन में से कई एक के विषय में अब बहुत से लोगों को सन्देह होने लगा है। आगे के चक्र में उन पुस्तकों के नाम दिये जाते हैं, जिन्हें लोग इधर गोसाईंजीकृत होना कहने लगे हैं।

उपर्युक्त चक्र

नाम ग्रंथकर्त्ता या ग्रंथ	सतसई	हनुमानबाहुक	संकटमोचन	रामशलाका	छप्पै रामायण	हनुमानचालीसा	छन्दावली	रोला रामायण	झूलना रामायण	कुंडलिया रामायण	कड़खा रामायण	कलिधर्मनिरूपण	नामकलाकोष	रामलला	मङ्गलावली
१. पं० रामगुलाम द्विवेदी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
२. पं० शेषदत्त (फनीश)	स	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
३. इनके पुत्र के शिष्य कोदोराम	स	०	०	०	०	स	०	०	०	०	०	०	स	०	०
४. शिव सिंह सरोज	स	स	स	स	स	०	स	स	स	स	स	०	०	०	०
५. भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका	०	स	स	स	स	०	०	स	स	०	स	स	०	०	०
६. भक्तकल्पद्रुम	०	स	०	स	०	०	०	स	स	स	०	०	०	०	०
७. का० ना० प्र० सभावाली रामायण	स	स	स	स	स	०	स	स	स	स	स	०	०	०	०
८. इन्डियन एन्टीकुएरी (ग्रियर्सन सा०)	स	स	स	स	स	०	०	स	स	स	स	०	०	०	०
९. पं० ज्वाला प्रसाद	स	स	स	स	स	०	स	स	स	स	स	०	०	०	०
१०. पं० रामेश्वर भट्ट	स	स	स	स	०	०	०	स	स	स	स	०	०	स	०
११. उर्दू भक्तमाल—तुलसी राम मिरजापुरी	०	स	०	स	०	०	०	स	स	०	स	०	०	०	०
१२. ग्राउस साहब	स	स	०	स	०	०	०	स	स	०	स	०	०	०	०
१३. सुगम पथ	स	स	०	स	०	०	स	०	०	०	०	०	०	०	स

आगे का पृ० देखिये

नोट (क) —'स' यह सूचित करता है कि इन लोगों ने इन पुस्तकों के नाम अपने ग्रंथों और लेखों में दिये हैं।

नोट (ख) का० ना० प्र० सभा की खोज वाली पुस्तकों के नाम, जो इस पुस्तक के पृ० १३१ में दिये गये हैं, इस चक्र में नहीं हैं।

कोई 'कवितावली' का अंश और कोई एक पृथक् ग्रंथ कहकर प्रायः सब किसी ने 'हनुमानबाहुक' को गोसाईं जी कृत होना माना है।

२. इन्हों ने 'सतसई' पर टीका लिखी हैं।

३. इन्हों ने 'दोहावली' का नाम देकर 'सतसई' का नाम दिया है।

५-६. इन ग्रंथों में 'रामाज्ञा' का नाम नहीं है।

७. इस में ये ग्रंथ गोसाईं जी कृत होना स्पष्ट रूप से माने नहीं गये हैं।

८. इन्हें इन ग्रंथों के गोसाईं जी कृत होने में सन्देह है।

१२. इन्हें 'सतसई' को छोड़ अन्य पाँचों पुस्तकों एवम् जानकीमंगल और पार्वती मंगल में भी सन्देह है और बरवै आदि शेष प्राचीन पुस्तकों का इन्हों ने नाम तक नहीं दिया है।